॥ श्री ॥

महाभारत शल्यपर्वकी विषयसूची

शल्यपर्वकी विषयसूची समाप्त

पुस्तक मिलनेका पता-

पं० रामस्वरूप शर्म्मा

सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद.

॥ श्रीहरिः ॥

महाभारत

शल्यपर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ॥
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय उवाच । एवं निपातिते कर्णे समरे सव्यसाचिना ॥ अल्पावशिष्टाः कुरवः किमकुर्वत वै द्विज ॥ १ ॥ उदीर्य्यमाणञ्च बलं दृष्ट्वा राजा सुयोधनः । पाण्डवैः प्राप्तकालञ्च किम्प्रापद्यत कौरवः ॥ २ ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तदाचक्ष्व द्विजोत्तम । नहि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततः कर्णे हते राजन् धार्त्तराष्ट्रः सुयोधनः भृशं शोकार्णवे मग्नो निराशः सर्वतोऽभवत् ॥ ४ ॥ हा कर्ण हा कर्ण इति शोचमानः

श्रीनारायण, नरोंमें उत्तम नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके कथा का आरम्भ करे॥जनमेजयने बूझा, कि—हे वैशम्पायनजी! इसप्रकार जब अर्जुनने कर्णको मारडाला तब थोड़ेसे बचे हुए कौरवोंने क्या किया? ॥ १ ॥ कुरुवंशी राजा दुर्योधनने पाण्डवोंकी सेनाकी चढ़ती और उनसे अपनी सेनाका संहार होते देख कर क्या किया? ॥ २ ॥ हे द्विजवर ! मैं यह सुनना चाहता हूँ सो आप कहिये, क्योंकि—पूर्वजोंके महान् चरित्रको सुनते हुए मेरा जी नहीं भरता ॥३॥ वैशम्पायनने कहा कि—हे राजन् ! जब कर्ण मारागया तब धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन सब ओरसे निराश होकर शोकसागरमें डूबगया ॥ ४ ॥ हा कर्ण ! हा कर्ण ! ऐसा कहकर वार २ शोक करता हुआ मरनेसे शेष बचेहुए राजाओं

पुनः पुनः । कृच्छ्रात् स्वशिविरं प्रायाद्धतशेषैर्नृपैः सहः ॥५॥ स समाश्वास्यमानोपि हेतुभिः शास्त्रनिश्चितैः । राजभिर्नालभच्छर्म सूतपुत्रवधं स्मरन् ॥ ६ ॥ स दैवं बलवन्मत्वा भवितव्यञ्च पार्थिवः । संग्रामे निश्चयं कृत्वा पुनर्युद्धाय निर्ययौ ॥ ७ ॥ शल्यं सेनापतिं कृत्वा विधिवद्राजपुङ्गवः । रणाय निर्ययौ राजन् हतशेषैर्नृपैः सहः ॥८॥ ततः सुतुमुलं युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः । अभवद्भरतश्रेष्ठ देवासुररणोपमम् ॥ ९ ॥ ततः शल्यो महाराज कृत्वा कदनमाहवे । हतसैन्योऽथ मध्यान्हे धर्मराजेन पातितः ॥१०॥ ततो दुर्योधनो राजा हतबन्धू रणाजिरात् । अपसृत्य ह्रदं घोरं विवेश रिपुजाद्भयात् ॥ ११ ॥ तथापरान्हे तस्याऽह्नः परिवार्य सुयोधनः । ह्रदादाहूय वेगेन भीमसेनेन पातितः ॥ १२ ॥ तस्मिन् हते

के साथ बड़े कष्टसे अपनी छावनीमें को गया ॥ ५ ॥ तहाँ राजाओंने शास्त्रोंमें निश्चय कियेहुए बहुतसे कारण दिखाकर दुर्योधन को समझाया, परन्तु कर्णके मरणको स्मरण कर करके उसको चैन नहीं पड़ा ॥ ६ ॥ उस राजा दुर्योधनने भाग्य और भवितव्यताको बलवान् मानकर फिर युद्ध करनेका निश्चय किया, फिर रण करने के लिये निकल आया ॥ ७ ॥ हे राजन् ! उस समय शल्यको विधिवत् सेनापति बना महाराज दुर्योधन शेष बचे हुये राजाओंको साथ ले रणके लिये चलदिया ॥ ८ ॥ हे भरतवंशी जनमेजय ! तब तो कुरुपाण्डवोंकी सेनाओंका देवासुर-संग्रामकी समान महाघोर युद्ध हुआ ॥ ९ ॥ हे महाराज ! शल्यने रणमें बड़ा संहार किया तब मध्यान्हके समय धर्मराजने उसकी सेनाका संहार करके उसको भी मार गिराया ॥ १० ॥ तब तो बन्धुशून्य हुआ राजा दुर्योधन शत्रुके भयसे रणभूमिको छोड़ भागा और एक भयानक गहरे सरोवरमें जाछिपा ॥ ११ ॥ परन्तु उसीदिन तीसरे पहरके समय भीमसेनने उस सरोवरको महारथियोंसे घेर लिया और दुर्योधनको रणके लिये ललकार कर बाहर निका-

महेष्वासे हतशिष्टास्त्रयो रथाः। संरम्भान्निशि राजेन्द्र जघ्नुः पाञ्चालसोमकान् ॥ १३ ॥ ततः पूर्वाह्णसमये शिबिरादेत्य संजयः। प्रविवेश पुरं दीनो दुःखशोकसमन्वितः ॥ १४ ॥ स प्रविश्य च पुरं सूतो भुजावुच्छ्रित्य दुःखितः। वेपमानस्ततो राज्ञः प्रविवेश निवेशनम् ॥ १५ ॥ रुरोद च नरव्याघ्र हा राजन्निति दुःखितः। अहो वत विनष्टाःस्मो निधनेन महात्मनः॥१६॥ अहो सुवलवान् कालो गतिश्च विषमा तथा। शक्रतुल्यबलाः सर्वे यत्रावध्यन्त पाण्डवैः॥ १७॥ दृष्ट्वैव तु पुरो राजन् जनः सर्वः स संजयम्। क्लेशेन महता युक्तं सर्वतो राजसत्तम। प्ररुरोद भृशोद्विग्नो हा राजन्निति विस्वरम्॥ १८ ॥ आकुमारं नरव्याघ्र तत् पुरं वै समन्ततः। आर्त्तनादं ततश्चक्रे श्रुत्वा विनिहतं नृपम्

ला तथा मार गिराया ॥१३॥ उस महाधनुर्धारीके मारे जाने पर जो तीन महारथी (अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा) वचे थे, उन्होंने आधी रातके समय क्रोधमें भर कर हे राजेंद्र ! पांचालवंशी और सोमकवंशी योधाओंको मार डाला ॥ १३ ॥ दूसरे दिन प्रातःकाल होने पर सञ्जय दीनता, दुःख और शोकके साथ छावनीमेंसे निकल कर हस्तिनापुरमें पहुँचा ॥ १४ ॥ वह नगरमें घुसते ही दोनों हाथ उठा कर काँपता २ राजमहलके भीतर जा पहुँचा ॥ १५ ॥ और वह 'हे नरव्याघ्र ! हे राजन् !' ऐसा कह कर दुःखके साथ हाय २ करता हुआ बोला, कि—उस महात्माके मरणसे हम सब मारे गये ॥ १६ ॥ ओः ! समय बड़ा बलवान् है और उसकी गति टेढ़ी है, जिसके प्रभावसे इन्द्रकी समान पराक्रमी सब राजे मारे गये ॥ १७ ॥ हे राजन् ! उस समय नगरके सब लोग चारों ओरसे दौड़ आये और महाक्लेशयुक्त हुए सञ्जयको देखकर बड़े ही घबड़ागये और डीक फोड़कर ओ राजन् ! हा राजन् ऐसा कह कर रोने लगे ॥१८॥ हे नरेन्द्र ! उस नगरमें जहाँ तहाँ बालकोंसे लेकर बूढ़े तक सब राजाके मरण

॥ १९ ॥ धावतश्चाप्यपश्याम तत्र स्त्रीपुरुषांस्तथा । नष्टचित्ता-निवोन्मत्तान् शोकेन भृशपीडितान् ॥ २० ॥ तथा स विह्वलः सूतः प्रविश्य नृपतिक्षयम् । ददर्श नृपतिश्रेष्ठं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् २१ दृष्ट्वा चासीनमनघं समन्तात् परिवारितम् । स्नुषाभिर्भरतश्रेष्ठं गान्धार्या विदुरेण च । तथान्यैश्च सुहृद्भिश्च ज्ञातिभिश्च हितैः सदा ॥ २२ ॥ तमेव गाढं ध्यायन्तं कर्णस्य निधनं प्रति । रुदन्नेवाब्रवीद्वाक्यं राजानं जनमेजय ॥ २३ ॥ नातिहृष्टमनाः सूतो बाष्पसन्दिग्धया गिरा । संजयोऽहं नरव्याघ्र नमस्ते भरतर्षभ २४ मद्राधिपो हतः शल्यः शकुनिः सौबलस्तथा । उलूकः पुरुषव्याघ्र कैतव्यो दृढविक्रमः ॥ २५ ॥ संशप्तका हताः सर्वे काम्बोजाश्च शकैः सह । म्लेच्छाश्च पार्वतीयाश्च यवनाश्च निपातिताः २६ प्राच्या हता महाराज दाक्षिणात्याश्च सर्वशः । उदीच्या निहताः

को सुन कर बड़ा विलाप करने लगे ॥ १९ ॥ देखने में आया कि—तहाँ स्त्री और पुरुष अत्यन्त शोकसे पीड़ा पाकर अपने आपको भूले हुए पागलोंकी समान इधर उधर दौड़े फिरते थे २० इस प्रकार घबड़ाया हुआ सञ्जय जब राजमहलमें जाकर प्रज्ञाचक्षु (अन्ध) राजा धृतराष्ट्रसे जाकर मिला ॥ २१ ॥ उस समय निर्दोष राजा धृतराष्ट्रको उसकी पुत्रवधू-गान्धारी, विदुर तथा अन्य स्नेही संबन्धी और सदा हित करनेवाले मनुष्य लड़ाईका समाचार जाननेको घेरे बैठे थे ॥ २२ ॥ उस समय, वह कर्णके मरण की ही चर्चा कर रहे थे, हे जनमेजय ! उस समय उदास मन-वाले संजयने सन्देहभरी वाणीमें रोते २ राजा धृतराष्ट्रसे कहा कि—हे भरतसत्तम नरेन्द्र ! मैं संजय आपको प्रणाम करता हूँ २३ २४ हे नरेन्द्र ! मद्रदेशका स्वामी शल्य, सुवलकुमार शकुनि तथा कितवका पुत्र दृढपराक्रमी उलूक मारा गया ॥ २५ ॥ सब संशप्तक तथा शकोंके साथ सब कम्बोज मारे गये, म्लेच्छ, पहाड़ी और यवन राजे भी मारडाले गये ॥ २६ हे महाराज ! पूर्वदेश

सर्वे प्रतीच्याश्च नराधिप ॥ २७ ॥ राजानो राजपुत्राश्च सर्वशो
निहता नृप । दुर्योधनो हतो राजा यथोक्तं पाण्डवेन ह ॥२८॥
भग्नसक्थो महाराज शेते पांसुषु रूषितः । धृष्टद्युम्नो हतो राजन्
शिखण्डी चापराजितः ॥ २९ ॥ उत्तमौजा युधामन्युस्तथा राजन्
प्रभद्रकाः ।पांचालाश्च नरव्याघ्राश्चेदयश्च निषूदिताः ॥ ३० ॥
तव पुत्रा हताः सर्वे द्रौपदेयाश्च भारत । कर्णपुत्रो हतः शूरो
वृषसेनो महाबलः ॥ ३१ ॥ नरा विनिहताः सर्वे गजाश्च विनि-
पातिताः । रथिनश्च नरव्याघ्र हयाश्च पतिता युधि ॥ ३२ ॥
किंचिच्छेषं च शिबिरं तावकानां कृतं प्रभो । पाण्डवानां कुरूणां
च समासाद्य परस्परम् ३३प्रायः स्त्रीशेषमभवज्जगत्कालेन मोहितम्।
सप्त पांडवतः शेषा धार्त्तराष्ट्रास्तथा त्रयः ॥ ३४ ॥ ते चैव भ्रा-

के और दक्षिणदेशके भी सब राजे मारे गये हे नरेन्द्र ! उत्तरके
और पश्चिमके भी राजे मारे गए ॥ २७ ॥ हे राजन् !
सब ही राजे और राजकुमार मारे गये तथा जैसा भीमसेन
ने कहा था तैसे ही राजा दुर्योधन भी मारा गया ॥ २८ ॥ हे
राजन ! दुर्योधनकी टाँगें तोड़डालीं और वह धूलिसे सना हुआ
रणभूमिमें पड़ा है, हे राजन् ! धृष्टद्युम्न और अजेय शिखण्डी
भी मारा गया ॥ २९ ॥ हे राजन् ! उत्तमौजा, युधामन्यु, प्रभ-
द्रक, पंचालदेशके राजे और हे राजेंद्र ! चेदि देशके राजे भी
मारे गये ॥ ३० ॥ हे भारत ! तुम्हारे और द्रौपदीके सब पुत्र
भी मारे गये, कर्णका शूर पुत्र महाबली वृषसेन मारा गया ३१
हे नरव्याघ्र ! सब योधा, हाथी भी मारे गये, रथी और घोड़े
भी मरे हुए रणभूमिमें पड़े हैं॥३२॥ हे प्रभो !पाण्डवोंने तुम्हारे
लश्करमें कुछ थोड़ेसोंको ही जीता छोड़ा है,पाण्डव और कौरवों
का युद्ध आपसमें होनेके कारण कालसे मोहित हुए इस जगत्में
केवल स्त्रियें ही जीती रहगई हैं, पाण्डवोंकी ओर पाँच पाण्डव
कृष्ण और सात्यकि ये सात बचे हैं तथा हमारी ओर कृपाचार्य

तरः पंच वासुदेवोऽथ सात्यकिः। कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्च जयताम्वरः ॥ ३५ ॥ तथाप्येते महाराज रथिनो नृपसत्तम। अक्षौहिणीनां सर्वासां समेतानां जनेश्वर ॥ ३६ ॥ एते शेषा महाराज सर्वेऽन्ये निधनं गताः। कालेन निहतं सर्वं जगद्वै भरतर्षभ। दुर्योधनं वै पुरतः कृत्वा वैरं च भारत ॥ ३७ ॥ वैशम्पायन उवाच। एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः। निपपात महाराज गतसत्त्वो महीतले ॥ ३८ ॥ तस्मिन्निपतिते भूमौ विदुरोपि महायशाः। निपपात महाराज राजव्यसनकर्षितः ॥ ३९ ॥ गान्धारी च नृपश्रेष्ठ सर्वाश्च कुरुयोषितः। पतिताः सहसा भूमौ श्रुत्वा क्रूरं वचस्तदा ॥४०॥ निःसंज्ञं पतितं भूमौ तदासीद्राजमण्डलम्। प्रलापयुक्तं महति चित्रन्यस्तं पटे यथा ॥ ४१ ॥ कृच्छ्रेण तु ततो

कृतवर्मा, और विजय पानेवालेमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा ये तीन बचे हैं ॥ ३३–३५ ॥ हे महाराज! जो अठारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हुई थी, उसमें से ये दश महारथी ही बचे हैं, इनके सिवाय और सब कालके गालमें चले गये, हे भरतवंशी महाराज! कालने स्वयं दुर्योधनको आगे करके ऐसा वैरभाव उत्पन्न कर दिया और सब जगत्का संहार कर डाला ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजेन्द्र जनमेजय!-सञ्जयकी ऐसी क्रूर हृदयको फाड़डालनेवाली बात सुनकर राजा धृतराष्ट्र निःसत्त्व होकर भूमि पर गिरपड़ा ३८ यह देखकर महायशा विदुर भी राजाके दुःखसे व्याकुल होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥ ३९ ॥ गान्धारी तथा कौरवकुलकी सब स्त्रियें भी संजयसे इस अशुभ समाचारको-सुन कर एकसाथ भूमि पर गिर पड़ीं ॥ ४० ॥ उस समय सब राजमण्डल मूर्छित होकर विलाप करता हुआ भूमिपर गिर पड़ा, वह सब दृश्य चित्रपटपर बनाई हुई तसवीरसा दीखता था ॥ ४१ ॥ पुत्रके मरणसे दुःखी हुए राजा धृतराष्ट्रको फिर धीरे २ होश

राजा धृतराष्ट्रो महीपतिः। शनैरलभत प्राणान् पुत्रव्यसनकर्षितः ॥४२॥ लब्ध्वा तु स नृपः संज्ञां वेपमानः सुदुःखितः। उद्वीक्ष्य च दिशाः सर्वाः क्षत्तारं वाक्यमब्रवीत्॥४३॥विद्वन् क्षत्तर्महाप्राज्ञ त्वं गतिर्भरतर्षभ। ममानाथस्य सुभृशं पुत्रैर्हीनस्य सर्वशः॥४४॥एवमुक्त्वा ततो भूमौ विसंज्ञो निपपात ह। तं तथा पतितं दृष्ट्वा बान्धवा येऽस्य केचन ॥ ४५ ॥ शीतैस्ते सिषिचुस्तोयैर्विव्यजुर्व्यजनैरपि। स तु दीर्घेण कालेन प्रत्याश्वस्तो महीपतिः ॥ ४६ ॥ तूष्णीं दध्यौ महीपाल पुत्रव्यसनकर्षितः। निःश्वसन् जिह्मग इव कुम्भक्षिप्तो विशाम्पते ॥ ४७ ॥ संजयोऽप्यरुदत्तत्र दृष्ट्वा राजानमातुरम्। तथा सर्वाः स्त्रियश्चैव गांधारी च यशस्विनी ॥ ४८ ॥ ततो दीर्घेण कालेन विदुरं वाक्यमब्रवीत्। धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठ मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ॥ ४९॥ गच्छन्तु योषितः सर्वा गान्धारी च यशस्विनी। तथे-

हुआ ॥ ४२ ॥ वह राजा होशमें आकर हाँपता हुआ बडे दुःख से सब ओर को दृष्टि डाल कर विदुरसे कहनेलगा ॥ ४३ ॥ हे महाबुद्धिमान् विद्वान् विदुर! मेरे सब पुत्र मारे गये, मैं अत्यन्त अनाथ होगया हूँ, अब तू ही मेरा आधार है ॥४४॥ ऐसा कहने के अनन्तर वह फिर बेहोश होकर भूमिपर गिर पड़ा, राजा धृतराष्ट्रको फिर अचेत हो पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर उसके जो कोई बान्धव तहाँ थे वे उसके ऊपर शीतल जल छिड़कनेलगे और पंखोंसे हवा करनेलगे, कितना ही समय बीतने पर राजा को फिर चेत हुआ ॥ ४५ ॥४६॥ पुत्रमरणके शोकसे दुःखित हुआ राजा चुप रहकर मन ही मनमें विचारने लगा (कि-अहो! दैवकी गति कैसी विचित्र है!) और हे राजन्! वह घड़ेमें डाले हुए साँपकी समान लंबे साँस लेनेलगा ॥ ४७ ॥ राजाको व्याकुल देखकर संजय भी रोनेलगा तथा यशस्विनी गांधारी और सब स्त्रियें भी रोनेलगी ॥४८॥ बार २ मूर्छित होकर कितनी ही देर बाद विदुरसे कहा, कि- ॥४९॥ सब स्त्रियें

मे सुहृदः सर्वे भ्राम्यते मे मनो भृशम् ॥ ५० ॥ एवमुक्तास्ततः क्षत्ता ताः स्त्रियो भरतर्षभ । विसर्ज्जयामास शनैर्वेपमानः पुनः पुनः ॥ ५१ ॥ निश्चक्रमुस्ततः सर्वास्ताः स्त्रियो भरतर्षभ । सुहृदश्च ततः सर्वे दृष्ट्वा राजानमातुरम् ॥ ५२ ॥ ततो नरपतिं तूर्णं लब्धसंज्ञं परन्तप । अवैक्षत् संजयो दीनं रोदमानं भृशातुरम् ॥ ५३ ॥ प्रांजलिर्निःश्वसन्तं च तं नरेन्द्रं मुहुर्मुहुः । समाश्वासयत क्षत्ता वचसा मधुरेण ह ॥५४ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि धृतराष्ट्रप्रमोहे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच । विसृष्टास्वथ नारीषु धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः । विललाप महाराज दुःखाद्दुःखतरं गतः ॥ १ ॥ सधूममिव निःश्वस्य करौ धुन्वन् पुनः पुनः । विचिन्त्य च महाराज ततो वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । अहो बत महद्दुःखं यदहं

यशस्विनी गान्धारी तथा ये सब संबन्धी अब जायँ क्योंकि-मेरा चित्त बहुत ही चक्कर खारहा है ॥५०॥ हे भरतर्षभ ! धृतराष्ट्र के ऐसा कहने पर विदुरने काँपते २ धीरेसे उन स्त्रियोंको विदा कर दिया ॥ ५१ ॥ हे भरतर्षभ ! तब वे सब स्त्रियें तहांसे बाहर चली गईं, तब सब सम्बन्धी भी राजाको घबड़ाते देखकर तहांसे चले गये ॥ ५२ ॥ हे शत्रुनाशन राजन् ! जब राजा धृतराष्ट्र को कुछ चेतना हुई तो संजयने दोनों हाथ जोड़कर रोते हुए अतिव्याकुल हुए और बार बार साँस लेते हुए राजा धृतराष्ट्रकी ओरको देखा और मधुर वाणीसे धीरज देनेलगा ॥५३॥५४॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायनने कहा, कि–हे महाराज जनमेजय ! उस मन्दिरमेंसे स्त्रियोंके चलीजाने पर अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र दुःख पर दुःख को याद कर २ के विलाप करने लगा॥ १॥ हे महाराज ! धुआँ निकालता हो इसप्रकार श्वासें लेता हुआ बार २ हाथोंको पटकने लगा और फिर कुछ विचार कर यों बोला ॥ २ ॥ धृतराष्ट्र

पाण्डवान् रणे । त्वेमिणश्चाप्यरोगांश्चैव त्वत्तः सूत शृणोमि वै ३
वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम।यच्छ्रुत्वा निहतान् पुत्रान् दीर्यते
न सहस्रधा ॥ ४ ॥ चिन्तयित्वा वयस्तेषां बालक्रीडां च संजय ।
अद्य श्रुत्वा हतान् पुत्रान् भृशं मे दीर्यते मनः ॥ ५ ॥ अन्धत्वा-
द्यदि तेषान्तु न मे रूपनिदर्शनम् । पुत्रस्नेहकृता प्रीतिर्नित्यमेतेषु
धारिता ॥ ६ ॥ बालभावमतिक्रान्तान् यौवनस्थांश्च तानहम् ।
मध्यप्राप्तांस्तथा श्रुत्वा हृष्ट आसं तदानघ ॥ ७ ॥ तानद्य निहतान्
श्रुत्वा हतैश्वर्य्यान् हतौजसः । न लभे वै क्वचिच्छान्तिं पुत्राधि-
भिरभिप्लुतः ॥ ८ ॥ एह्येहि पुत्र राजेन्द्र ममानाथस्य साम्प्रतम् ।
त्वया हीनो महाबाहो कान्नु यास्याम्यहं गतिम् ॥ ९ ॥ कथं त्वं

ने कहा, कि–हाय हाय बड़े दुःखकी बात है कि–हे संजय! मैं तुझ से सुनरहा हूँ, कि–रणमें पाण्डवोंका बालबांका भी नहीं हुआ और वे आनन्दमङ्गलसे हैं ॥३॥ निःसन्देह मेरा हृदय वज्रसारका बना हुआ बड़ा ही दृढ़ है, जो पुत्रोंके मरणको सुनकर भी सहस्र टुकड़े नहीं होता है ॥ ४ ॥ हे संजय ! पहले तो मुझे उनकी अवस्था और बालक्रीड़ाका ध्यान आता है और फिर अब मैं उनके मरणका समाचार सुन रहा हूँ, इससे मेरा मन अत्यन्त फटा जाता है ॥ ५ ॥ अन्ध होने के कारण यद्यपि मैंने उनका रूप नहीं देखा था तो भी पुत्रस्नेहके कारणकी प्रीति उनके ऊपर मेरी सदा ही थी ॥ ६ ॥ हे निर्दोष संजय ! मेरे पुत्र बालक से युवा हुए और फिर मध्य अवस्थामें आये, यह सुन कर उस समय मुझे आनन्द हुआ था,उन पुत्रोंको आज ऐश्वर्य और बल-रहित होकर मरा हुआ सुन रहा हूँ, इस कारण दुःखसागरमें डूब गया हूँ और मुझे कहीं भी चैन नहीं पड़ता ॥७॥ ८॥ (धृत-राष्ट्र अपने पुत्रोंके लिये विलाप करता हुआ कहता है, कि-) हे राजेन्द्रकुमार ! तू इस समय मुझ अनाथके पास आ, हे महा-बाहु पुत्र ! तेरे बिना मेरी क्या गति होगी ? ॥ ९ ॥ हे तात !

पृथिवीपालांस्त्यक्त्वा तात समागतान् । शेषे विनिहतो भूमौ प्राकृतः कुनृपो यथा ॥ १० ॥ गतिर्भूत्वा महाराज ज्ञातीनां सुहृदां तथा । अन्धं वृद्धं च मां वीर विहाय क्वाभिगच्छसि ॥ ११ ॥ सा कृपा सा च ते प्रीतिः सा च राजन् सुमानिता । कथं विनिहतः पार्थैः संयुगेष्वपराजितः ॥ १२ ॥ को नु मामुत्थितं काले तात तातेति वक्ष्यति । महाराजेति सततं लोकनाथेति चासकृत् ॥ १३ ॥ परिष्वज्य च मां कण्ठे स्नेहेनाक्लिन्नलोचनः । अनुशाधीति कौरव्य तत् साधु वद मे वचः ॥ १४ ॥ ननु नामाहमश्रौषं वचनं तव पुत्रक । भूयसी मम पृथ्वीयं यथा पार्थस्य नो तथा ॥ १५ ॥ भगदत्तः कृपः शल्य आवन्त्योथ जयद्रथः । भूरिश्रवाः शलश्चैव सोमदत्तोथ बाह्लिकः ॥ १६ ॥ अश्वत्थामा च भोजश्च मागधश्च महाबलः । बृहद्बलश्च काशीराः शकुनिश्चापि सौबलः ॥ १७ ॥

इकट्ठे हुए राजाओंको छोड़कर एक साधारण छोटेसे राजा की समान मर कर तू रणभूमिमें क्यों सोरहा है ? ॥ १० ॥ हे वीर महाराज ! तू जातिवाले और संबन्धियोंका आधाररूप था, अब इस अन्धे बूढ़े बापको छोड़कर कहाँ जाता है ! ॥ ११ ॥ हे राजन् ! तेरी वह कृपा, प्रीति और उत्तम मान्यता कहाँ गई ? तू तो युद्धोंमें अजेय था, तुझे पाण्डवोंने कैसे मारडाला ? ॥ १२ ॥ हे तात ! जब मैं शय्यापरसे उठूँगा तब बारर हे तात ! हे महाराज ! और हे लोकनाथ ! कहकर कौन पुकारेगा ? ॥ १३ ॥ स्नेहसे नेत्रोंमें जल भरकर और कण्ठसे चिपट कर तू मुझसे कहा करता था, कि-हे कुरुराज ! मुझे आज्ञा दो, वे सब बातें अब मुझसे कौन कहेगा ? इसका मुझे उत्तर दे ॥ १४ ॥ यह सब पृथिवी मेरी है, पाण्डवोंकी नहीं है, तेरे इस कथनको भी मैं सुना करता था ॥ १५ ॥ भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द, जयद्रथ; भूरिश्रवा, सोमदत्त, महाराज बाल्हिक ॥ १६ ॥ अश्वत्थामा, भोज, महाबली मगधराज, का-

म्लेच्छाश्च बहुसाहस्राः शकाश्च यवनैः सह । सुदक्षिणश्च काम्बोजस्त्रिगर्त्ताधिपतिस्तथा ॥ १८ ॥ भीष्मः पितामहश्चैव भारद्वाजोऽथ गौतमः । श्रुतायुश्चायुतायुश्च शतायुश्चैव वीर्यवान् १९ जलसन्धोऽथार्ष्यशृङ्गी राक्षसश्चाप्यलायुधः । अलम्बुषो महाबाहुः सुबाहुश्च महारथः ॥२०॥ एते चान्ये च बहवो राजानो राजसत्तम । मदर्थमुद्यताः सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ २१ ॥ येषां मध्ये स्थितो युद्धे भ्रातृभिः परिवारितः । योधयिष्याम्यहं पार्थान् पञ्चालांश्चैव सर्वशः ॥२२॥ चेदींश्च नृपशार्दूल द्रौपदेयांश्च संयुगे । सात्यकिं कुन्तिभोजं च राक्षसं च घटोत्कचम् २३ एकोप्येषां महाराज समर्थः सन्निवारणे । समरे पांडवेयानां संक्रुद्धोप्यभिधावताम् ॥ २४ ॥ किं पुनः सहिता वीराः कृतवैराश्च पांडवैः । अथवा सर्व एवैते पांडवस्यानुयायिभिः ॥ २५ ॥

शिराज, बृहद्बल और सुबलका पुत्र शकुनि ॥ १७ ॥ लाखों म्लेच्छ,शक, यवन, सुदक्षिण, कांबोज, त्रिगर्त्तका राजा ॥१८॥ पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, श्रुतायु अयुतायु और पराक्रमी शतायु ॥ १९ ॥ जलसंध, ऋष्यशृङ्गी, अलायुध राक्षस, महाबाहु अलंबुष, महारथी सुबाहु ॥ २० ॥ हे राजेन्द्र ! ये सब तथा और भी बहुतसे राजे अपने प्राण और धनभण्डारोंका मोह छोड़कर मेरे लिये लड़नेको उद्यत होगये थे ॥ २१ ॥ उन सबोंके बीचमें तू अपने भाइयोंके साथ लड़नेको खड़ा हुआ था और कहता था, कि—मैं पाण्डव, पञ्चालराज, चेदिराज, द्रौपदी के पुत्र, सात्यकि, कुन्तिभोज और राक्षस घटोत्कच इन सबके साथ लड़ूँगा ॥ २२ ॥ २३ ॥ यदि क्रोधमें भरजाऊँ तो मैं अकेला ही संग्राममें चढकर आए हुये पाण्डवपक्षके सब योधाओं को रोक सकता हूँ ॥ २४ ॥ फिर जिनका पाण्डवोंसे वैर बँध गया है वे सब वीर इकठे होकर क्यों न रोकसकेंगे ? अथवा हे राजेन्द्र ! ये सब पाण्डवपक्षके योधाओंके साथ भी संग्राममें

योत्स्यन्ते सह राजेन्द्र हनिष्यन्ति च तान्मृधे । कर्ण एको मया सार्द्धं निहनिष्यति पांडवान् ॥ २६ ॥ ततो नृपतयो वीराः स्थास्यन्ति मम शासने । यश्च तेषां प्रणेता वै वासुदेवो महाबलः । न स सन्नह्यते राजन्निति मामब्रवीद्वचः ॥ २७ ॥ तस्याहं वदतः सूत बहुशो मम सन्निधौ । शक्तितो ह्यनुपश्यामि निहतान् पांडवान्मृधे ॥ २८ ॥ तेषां मध्ये स्थिता यत्र हन्यन्ते मम पुत्रकाः । व्यायच्छमानाः समरे किमन्यद्भागधेयतः ॥ २९ ॥ भीष्मश्च निहतो यत्र लोकनाथः प्रतापवान् । शिखण्डिनं समासाद्य मृगेन्द्र इव जम्बुकम् ॥ ३० ॥ द्रोणश्च ब्राह्मणो यत्र सर्वशस्त्रास्त्रपारगः । निहतः पांडवैः संख्ये किमन्यद्भागधेयतः ॥ ३१ ॥ कर्णश्च निह-

लड़ेंगे और उनको मारडालेंगे, अकेला कर्ण ही मेरे साथमें रह कर पाण्डवोंको मारडालेगा ॥ २५ ॥ २६ ॥ तब पाण्डवपक्षके जो वीर राजे बच जायँगे वे सब मेरे आज्ञाकारी होकर रहेंगे और उनका सम्मतिदाता जो महाबली वासुदेव है वह तो लड़ाई को तयार ही न होगा, क्योंकि-वह मुझे ऐसा वचन देचुका है २७ यह बात हे संजय ! दुर्योधनने मुझसे बहुत बार कही थी और मैं अपनी शक्तिके अनुसार भी देखता था, कि-पाण्डव रणमें मारे जायँगे ॥ २८ ॥ (क्योंकि-मेरी ओर ग्यारह अक्षौहिणी थीं और पाण्डवोंकी ओर सात ही अक्षौहिणी थीं) परन्तु तो भी लड़ने के लिये तयार हुए मेरे पुत्र उनके बीचमें खड़े होकर मारेगये, इसको प्रारब्धके सिवाय और क्या कहाजाय ! ॥२९ ॥ जैसे गीदड़के सामने जाकर सिंह माराजाता है तैसे ही प्रतापी लोकनाथ भीष्मजी रणमें शिखण्डीके सामने जाकर मारे गये, जिस रणमें सकल शस्त्र अस्त्रोंके पारगामी ब्राह्मण द्रोणाचार्य भी पाण्डवोंके हाथसे मारेगये, ऐसा युद्ध दैवकी लीला नहीं तो और क्याहै ? ॥३०॥३१ ॥ दिव्य अस्त्रोंको जाननेवाला महाबली कर्ण भी युद्धमें मारागया और हे महाराज ! जिस

तो संख्ये दिव्यास्त्रज्ञो महाबलः । भूरिश्रवा हतो यत्र सोमदत्तश्च संयुगे । वाह्लीकश्च महाराज किमन्यद्भागधेयतः ॥३२॥ भगदत्तो हतो यत्र गजयुद्धविशारदः । जयद्रथश्च निहतः किमन्यद्भागधेयतः ॥ ३१ ॥ सुदक्षिणो हतो यत्र जलसन्धश्च पौरवः । श्रुतायुश्चायुतायुश्च किमन्यद्भागधेयतः ॥ ३४॥ महाबलस्तथा पांड्यः सर्वशस्त्रभृतां वरः । निहतः पाण्डवैः संख्ये किमन्यद्भागधेयतः ३५ बृहद्बलो हतो यत्र मागधश्च महाबलः । उग्रायुधश्च विक्रान्त मतिमानं धनुष्मताम् । ३६ ॥ आवन्त्यौ निहतौ यत्र त्रैगर्त्तश्च नराधिपः संशप्तकाश्च बहवः किमन्यद्भागधेयतः ॥ ३७ ॥ अलम्बुषस्तथा राजा राक्षसश्चाप्यलायुधः । आर्ष्यशृङ्गिश्च निहतः किमन्यद्भागधेयतः ॥३८॥ नारायणा हता यत्र गोपाला युद्धदुर्मदाः । म्लेच्छाश्च बहुसाहस्रा किमन्यद्भागधेयत ॥३९॥ शकुनिः सौबलो यत्र कैतव्य-

संग्राममें भूरिश्रवा,सोमदत्त और बाह्लीक भी मारागया यह दैवके सिवाय और क्या है?॥३२॥ जहाँ हाथियोंके युद्धमें प्रवीण भगदत्त मारा गया और जयद्रथ भी मारा गया इसको दैवके सिवाय और क्या समझाजाय ? ॥ ३३ ॥ जहाँ सुदक्षिण और पुरुवंश का जलसन्ध तथा श्रुतायु और अयुतायु भी मारागया, इसको दैवके सिवाय और क्या कहाजाय ? ॥ ३४ ॥ सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ महाबली पाण्ड्यको रणमें पाण्डवोंने मारडाला, यह दैवके सिवाय और क्या है ? ॥ ३५ ॥ जहाँ बृहद्बल, महाबली मागध और धनुषधारियोंका केतुरूप पराक्रमी उग्रायुध, अवन्तीके दोनों राजकुमार त्रिगर्त्तदेशका राजा तथा बहुतसे संशप्तक मारेगये उस संग्रामको दैवकी लीलाके सिवाय और क्या समझें?॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ राजा अलंबुष राक्षस अलायुध और आर्षशृङ्गी भी मारागया इसमें दैवके सिवाय और क्या है ? ॥३८ ॥ युद्धके मतवाले नारायण, गोपाल और सहस्रों म्लेच्छ भी मारेगये, इसमें दैवके सिवाय और क्या समझाजाय ? ॥ ३९ ॥ महाबली ज्वारी

श्च महाबलः । निहतः सौबलो वीरः किमन्यद्भागधेयतः ॥ ४० ॥ यत्र शूरा महात्मानः सर्वशास्त्रास्त्रपारगाः । बहवो निहताः सूत महेन्द्रसमविक्रमाः ॥ ४१ ॥ नानादेशसमावृत्ताः क्षत्रिया यत्र संजय । निहताः समरे सर्वे किमन्यद्भागधेयतः ॥४२ ॥ पुत्राश्च मे विनिहता पौत्राश्चैव महाबलाः । वयस्या भ्रातरश्चैव किमन्यद्भागधेयतः ॥ ४३ ॥ भागधेयसमायुक्तो ध्रुवमुत्पद्यते नरः । यस्तु भाग्यसमायुक्तः स शुभं प्राप्नुयान्नरः ॥ ४४ ॥ अहं वियुक्तः स्वैर्भाग्यैः पुत्रैश्चैवेह संजय । कथमद्य भविष्यामि वृद्धः शत्रुवशं गतः ॥ ४५ ॥ नान्यदत्र परं मन्ये वनवासादृते प्रभो । सोहं वनं गमिष्यामि निर्बन्धुर्ज्ञातिसंक्षये ॥ ४६ ॥ न हि मेन्यद्भवेच्छ्रेयो वनाय गमनादृते । इमामवस्थां प्राप्तस्य लूनपक्षस्य सञ्जय ४७

सबलपुत्र शकुनि भी जब सेना सहित मारागया तो इसमें दैवके सिवाय और क्या है ? ॥४० ॥ हे सूत संजय ! जिस रणमें अनेकों देशोंसे आये हुए अस्त्रशस्त्रोंके पारगामी, इन्द्रकी समान पराक्रमी बड़े २ वीर महात्मा क्षत्रिय सब मारे गये उस रणको दैवकी लीलाके सिवाय और क्या कहाजाय ? ॥४१॥४२॥ मेरे महाबली पुत्र और पौत्र, मित्र तथा भाई भी मारेगये, यह प्रारब्धके सिवाय और क्या है ? ॥ ४३ ॥ निश्चय मनुष्य प्रारब्धको साथ लेकर उत्पन्न होता है, जो भाग्यशाली मनुष्य होता है वही शुभफल पाता है ॥ ४४ ॥ हे संजय ! मैं भाग्यहीन ही उत्पन्न हुआ हूँ, मेरे भाग्यमें पुत्र थे ही नहीं तब ही तो मरगये, अब मैं बुढ़ापेमें शत्रुओं के वशमें पड़कर अपने जीवनको कैसे बिताऊँगा ? ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! अब मैं वनवासके सिवाय और कुछ ठीक नहीं समझता जब मेरे संबन्धी और पुत्र मारे गये तो अब मैं वनको जाऊँगा ॥ ४६ ॥ हेसंजय ! पंख कटेहुए पक्षीकी समान जब मेरी यह दशा होगई तो वनमें जाने के सिवाय और प्रकारसे मेरा कल्याण नहीं है ॥ ४७ ॥ जब संग्राममें दुर्योधन शल्य, दुःशासन, विविंश

दुर्योधनो हतो यत्र शल्यश्च निहतो युधि । दुःशासनो विविंशश्च विकर्णश्च महाबलः ॥ ४८ ॥ कथं हि भीमसेनस्य श्रोष्येहं शब्दमुत्तमम् । एकेन समरे येन हतं पुत्रशतं मम ॥ ४९ ॥ असकृद्वदतस्तस्य दुर्योधनवधञ्च तम् । दुःखशोकाभिसन्तप्तो न श्रोष्ये परुषा गिरः ॥ ५० ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं स शोकसंतप्तः पार्थिवो हतबान्धवः । मुहुर्मुहुर्मुह्यमानः पुत्राधिभिरभिप्लुतः ५१ विलप्य सुचिरं कालं धृतराष्ट्रोम्बिकासुतः । दीर्घमुष्णञ्च निश्वस्य चिन्तयित्वा पराभवम् ॥ ५२ ॥ शोकेन महताविष्टः सन्तप्तो भरतर्षभ । पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्य्यपृच्छद्यथातथम् ॥ ५३ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा सूतपुत्रञ्च पातितम् । सेनापतिं प्रणेतारं किमकुर्वत मामकाः ॥ ५४॥ यं यं सेनाप्रणेतारं युधि

और महाबली विकर्ण मारेगये तो अब मैं भीमसेनकी बड़ी भारी गर्जनाको कैसे सुनसकूँगा ? जिसने अकेले ही रणमें मेरे सौ पुत्रोंको मार डाला है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ वह वारंवार मुझसे तीखे, वचन कहेगा, दुर्योधनके मरणको याद करके दुःख और शोकसे झुलसा हुआ मैं उसकी तीखी बातोंको नहीं सहसकूँगा ॥ ५० ॥ वैशंपायन कहते हैं, कि–इसप्रकार जिसके पुत्रोंका मरण होगया है ऐसा शोकसे भस्मीभूत हुआ वह राजा पुत्रमरणके मानसिक दुःखसे वार २ मूर्छित होने लगा ॥ ५१ ॥ अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र इसप्रकार बहुत देरतक विलाप करता रहा, और अपने तिरस्कार पर ध्यान देकर लंबे और गरम साँस छोड़ता रहा ॥ ५२ ॥ हे भरतसत्तम ! वह वड़े भारी शोकमें भर कर जलनेलगा और जैसा कुछ हुआ था उसको संजयसे फिर बूझनेलगा ॥ ५३ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि–भीष्म, द्रोण मारेगये और सेनापति कर्ण भी मारागया यह सुनकर मेरे पुत्रोंने क्या किया? ॥ ५४ ॥ मेरे पुत्र रणमें जिस २ को सेनापति बनाते थे, पाण्डव थोड़े ही समयमें उसको मारडालते थे (यह क्या

कुर्वन्ति मामकाः। अचिरेणैव कालेन तं तं निघ्नन्ति पांडवाः ॥ ५५ रणमूर्ध्नि हतो भीष्मः पश्यतां वः किरीटिना। एवमेव हतो द्रोणः सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ ५६॥ एवमेव हतः कर्णः सूतपुत्रः प्रतापवान्। सराजकानां सर्वेषां पश्यतां वः किरीटिना ॥ ५७ ॥ पूर्वमेवाहमुक्तो वै विदुरेण महात्मना। दुर्योधनापराधेन प्रजेयं विनशिष्यति ॥ ५८ ॥ केचिन्न सम्यक् पश्यंति मूढाः सम्यगवेक्ष्य च। तदिदं मम मूढस्य तथा भूतं वचस्तु तत् ॥ ५९ ॥ यदब्रवीत् स धर्मात्मा विदुरः सर्वधर्मवित्। तत्तथा समनुप्राप्तं वचनं सत्यमीरितम् ॥ ६० ॥ दैवोपहतचित्तेन यन्मया न कृतं पुरा। अनयस्य फलं तस्य ब्रूहि गावल्गणे पुनः ॥ ६१ ॥ को वै मुखमनीकानामासीत् कर्णे निपातिते। अर्जुनं वासुदेवं च को वा प्रत्युद्ययौ रथी ॥ ६२ ॥ केऽरक्षन् दक्षिणञ्चक्रं मद्ररा-

---

वात ?) ॥ ५५ ॥ तुम्हारे देखते हुए अर्जुनने रणके मुहाने पर भीष्मको मारडाला, ऐसेही तुम सबोंके सामने द्रोणाचार्यको भी मारडाला ॥ ५६ ॥ ऐसे ही सब राजाओंके और तुम सबोंके देखते हुए अर्जुनने प्रतापी सूतपुत्र कर्णको मारडाला ॥ ५७ ॥ महात्मा विदुरने मुझसे पहले ही कहदिया था कि दुर्योधनके अपराधसे इस प्रजाका नाश होजायगा ॥ ५८ ॥ परन्तु कितने ही मूढ़ मनुष्य आँखोंसे देखते हुए ही अच्छे प्रकारसे नहीं देखते यही दशा मुझ मूढ़की हुई और विदुरका कहना ज्योंका त्यों फलीभूत होगया ॥ ५९ ॥ सकल धर्मोंको जाननेवाले उस धर्मात्मा विदुरने मुझसे जो कुछ कहाथा वह सत्यवादी विदुरका वचन मुझे तैसा ही फला ॥ ६० ॥ प्रारब्धवश मेरी बुद्धि मारीगयी थी इसलिये पहले मैंने विदुरका कहना नहीं मानाथा, आज मुझे उस ही अन्यायका फल मिला है हे संजय! अब तू आगेका समाचार सुना ॥ ६१ ॥ कर्णके मारेजाने पर सेनापति कौन हुआथा कौनसे रथीने धनंजय तथा कृष्णके ऊपर चढ़ाई की थी ? ॥ ६२ ॥

जस्य संयुगे । वामं वा योद्धुकामस्य को वा वीरस्य पृष्ठतः ॥६३॥ कथं च वः समेतानां मद्रराजो महाबलः । निहतः पांडवैः संख्ये पुत्रो वा मम संजय ॥ ६४ ॥ ब्रूहि सर्वं यथातत्त्वं भारतानां महाक्षयम् । यथा च निहतः संख्ये पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ६५ ॥ पंचालाश्च यथा सर्वे निहताः सपदानुगाः । धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपद्याः पंच चात्मजाः ॥ ६५ ॥ पांडवाश्च यथा मुक्तास्तथोभौ सात्वतौ युधि । कृपश्च कृतवर्मा च भारद्वाजस्य चात्मजः ६७ यद्यथा यादृशं चैव युद्धं वृत्तमभूत्ततः । अखिलं श्रोतुमिच्छामि कुशलो ह्यसि संजय ॥ ६८ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि धृतराष्ट्रविलापे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच । शृणु राजन्नवहितो यथा वृत्तो जनक्षयः ।

जूझनेकी इच्छावाले मद्रराज शल्यके रथके दाहिने पहियेकी रक्षा किसने की थी और बायें पहियेकी रक्षा किसने की थी तथा उस वीरके पीछे कौन था ? ॥ ६२ ॥ हे सञ्जय ! जब तुम सब इकट्टे होगये थे तो युद्धमें पाण्डवोंने महाबली मद्रराजको तथा मेरे पुत्रोंको कैसे मारडाला ? ॥६४॥ भरतवंशी राजाओंका महानाश जिस प्रकार हुआ हो और युद्धमें मेरे पुत्र दुर्योधनको जिसप्रकार मारा हो वह सब समाचार तू मुझे सत्य २ सुना ॥ ६५ ॥ सकल पञ्चालराजे, उनके अनुचर, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदीके पाँचों पुत्र जिस प्रकार मारे गये, तथा जैसे पाँचों पांडव, कृष्ण, सात्यकि, कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा ये दश बच रहे, सो बता ॥६६॥६७॥ हे सञ्जय ! तू कथा कहनेमें चतुर है, इस लिये जो युद्ध जिस प्रकार जैसा हुआ हो, उसको मैं ज्यों का त्यों सुनना चाहता हूँ ॥ ६८ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥छ॥

सञ्जय कहता है, कि हे राजन् ! कौरव पांडवोंका आपसमें युद्ध होनेसे जिस प्रकार उनका महान् क्षय हुआ उसको तुम साव-

कुरूणां पाण्डवानाञ्च समासाद्य परस्परम् ॥ १ ॥ निहते सूत-पुत्रे तु पाण्डवेन महात्मना । विद्रुतेषु च सैन्येषु समानीतेषु चा-सकृत् ॥२॥ घोरे मनुष्यदेहानामाजौ नरवरक्षये । यत्तत् कर्णे हते पार्थः सिंहनादमथाकरोत् ॥ ३ ॥ तदा तव सुतान्राजन् प्राविशत् सुमहद्भयम् । न सन्धातुमनीकानि न चैवाथ पराक्रमे॥४॥ आसीद्द बुद्धिर्हते कर्णे तव योधस्य कस्यचित् । वणिजो नावि भग्नायामगाधे विप्लुवा इव॥५॥अपारे पारमिच्छन्तो हते द्वीपे किरीटिना॥ सूतपुत्रे हते राजन् वित्रस्ताः शरविक्षताः ॥६॥ अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहार्दिता इव । भग्नशृङ्गा इव वृषाः शीर्णदंष्ट्रा इवोरगाः ॥७॥ प्रत्युपायाम सायान्हे निर्जिताः सव्यसाचिना । हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ता निशितैः शरैः ॥८॥ सूतपुत्रे हते राजन् पुत्रास्ते प्राद्रवन् ततः । विध्वस्तकवचाः सर्वे काम्दिशीका विचे-

धान होकर सुनो ॥१॥ भागनेवाली सेनाओंको पीछेको लौटाकर युद्ध करनेमें लगाया गया था और घोर युद्धमें मनुष्योंका बड़ा संहार होरहा था, उस समय महात्मा अर्जुन कर्णको मार कर सिंह की समान गरजा ॥ २ ॥ ३ ॥ उस समय तुम्हारे पुत्रोंके मनोंमें बड़ा भय व्याप गया, कर्णके मारे जाने पर भागती हुई सेनाओंको इकट्ठी करनेकी या पराक्रम दिखानेकी तुम्हारे योधाओंमेंसे किसीको भी नहीं सूझी,नौकामें बैठकर परले पार जाना चाहनेवाले व्यापारी नौकाके टूटजाने पर जैसे डर जाते हैं, तैसे ही हे राजन् ! जब कौरवोंके आधारभूत कर्णको अर्जुनने मार डाला तब कौरवोंके सैनिक भयभीत होगये, उनके बाणोंसे घायल होगये, और सिंहोंसे पीड़ित हुए मृगोंकी समान टूटेहुए सींगोंवाले बैलोंकी समान और डाढ़ टूटेहुए साँपोंकी समान लाचार होगये तथा रक्षक (रखाणी) की इच्छा करने लगे ॥४–७॥ अर्जुनसे हार कर जब सायङ्कालके समय छावनीमें आये,उस समय तीखे बाणोंसे विंधे हुए तथा जिनके बख्तर टूटगये थे ऐसे तुम्हारे

तसः॥६॥अन्योन्यमभिनिघ्नन्तो वीक्षमाणा भयाद्दिशः। मामेव तूर्णं बीभत्सुर्मामेव च वृकोदरः ॥ १० ॥ अभियातीति मन्वानाः पेतु-र्मम्लुश्च भारत । हयानन्ये रथानन्ये गजानन्ये महारथाः ॥ ११ ॥ आरुह्य जवसम्पन्नाः पादातान् प्रजहुर्भयात् । कुञ्जरैः स्यन्दना भग्ना सादिनश्च महारथैः ॥ १२ ॥ पदातिसंघाश्चाश्वौघैः पलाय-द्भिर्भृशं हताः । व्यालतस्करसङ्कीर्णे सार्थहीना यथा वने ॥१३॥ तथा त्वदीया निहते सूतपुत्रे तदाऽभवन् । हतारोहास्तथा नागा-श्छिन्नहस्तास्तथा नराः ॥ १४ ॥ सर्वं पार्थमयं लोकमपश्यन् वै भयातुराः । तान् प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान् ॥१५॥ दुर्योधनोऽथ स्वं सूतं हा हा कृत्वेदमब्रवीत् । नातिक्रमिष्यते पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम् ॥ १६ ॥ जघने वर्त्तमानं मां शनैरश्वान्

पुत्र और उनके सैनिक दिशाओं तक को भूलगये, उनको चेत नहीं रहा, एक दूसरेको ओरको देखकर आपसमें ही मारकाट करने लगे, ओः मेरे ऊपर धनंजय चढ़ा आता है, मेरे ऊपर भी-मसेन चढ़ा आता है, ऐसा समझकर चाहे तिस दिशामेंको भागने लगे, सब योधा निराश होगये, कितने ही महारथी घोड़ों पर, कितने ही हाथियों पर और कितने ही रथों पर बैठ कर भयके मारे पैदलोंको छोड़कर जोरसे भागने लगे, (इस घमसानमें) हा-थियोंने दौड़ते २ रथ तोड़डाले बड़े रथोंने दौड़ते २ घुड़सवारों को मारडाला, घोड़ोंकी टोलियोंने दौड़ते२ पैदलोंकी टोलियोंको कुचलडाला, सिंह आदि हिंसक प्राणी और चोरोंसे भरेहुए वन में साथियोंसे हीन मनुष्योंकी जो दशा होती है वही दशा कर्ण के मारे जाने पर तुम्हारे पुत्रोंकी तथा सेनाकी हुई थी, फिर जि-नके महावत मारे गये थे और सूंडें कटगयी थीं, ऐसे हाथी तथा अन्य योधा सब जगत्को भीमसेनमय देखने लगे और भयसे पीड़ित होकर चारों ओरको भागते ही रहे ॥ ८—१५ ॥ यह देखकर दुर्योधन हाहाकार करने लगा और अपने सारथीसे बो-

प्रचोदय। समरे युध्यमानं हि कौन्तेयो मां धनञ्जय॥१७॥ नोत्सहेदभ्यतिक्रान्तुं वेलामिव महार्णवः। अद्यार्जुनं सगोविन्दम् मानिनञ्च वृकोदरम् ॥ १८ ॥ निहत्य शिष्टान् शत्रूंश्च कर्णस्यानृण्यमाप्नुयाम्। तच्छ्रुत्वा कुरुराजस्य शूरार्य्यसदृशं वचः ॥ १९ ॥ सूतो हेमपरिच्छन्नाञ्छनैरश्वानचोदयत्। गजाश्वरथहीनाश्च पादाताश्चैव मारिष ॥ २० ॥ पञ्चविंशतिसाहस्राः प्राद्रवञ्छनकैरिव। तान् भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥२१॥ बलेन चतुरङ्गेन परिक्षिप्याहनच्छरैः। प्रत्ययुध्यन्त ते सर्वे भीमसेनं सपार्षतम् ॥ २२ ॥ पार्थपार्षतयोश्चान्ये जगृहुस्तत्र नामनी। अक्रुध्यत रणे भीमस्तैर्मृधे प्रत्युपस्थितैः ॥ २३ ॥ सोऽवतीर्य्य रथा-

---

ला, कि-जब मैं हाथमें धनुष ले प्राणों पर खेलकर युद्ध करनेको खड़ा होऊँगा तब धनंजय मुझसे आगे नहीं बढ़सकेगा, इसलिये तू मेरे घोड़ोंको झटसे रणमें ले चल, मैं जब संग्राममें लड़ूँगा तब जैसे महासागर किनारेको नहीं लाँघसकता है, तैसे ही अर्जुन भी मेरा पराजय नहीं करसकेगा, आज मैं धनंजय, कृष्ण और अभिमानी भीमको ॥१६-१८॥ तथा शेष शत्रुओंको भी मार कर कर्णके ऋणसे छूटूँगा, कुरुराज दुर्योधनके एक वीर और आर्यपुरुषको शोभा देने वाले इस वचनको सुनकर सारथीने सोनेके साजवाले घोड़ोंको धीरे २ रणभूमिमेंको हाँका, उसके पीछे २ हाथी, घोड़े और रथहीन हुए पचीस हजार पैदल योधा धीरे २ जाने लगे, उनको देखकर भीमसेन और धृष्टद्युम्नको क्रोध चढ़आया, इन्होंने चतुरङ्गिणी सेनाको लेकर उन्हें घेर लिया और बाणोंसे मारने लगे, तब तो तुम्हारे पक्षके योधा भी भीम और धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगे और इस समय कितने ही योधा तो भीम और धृष्टद्युम्नके नाम ले २ कर पुकारने लगे, इस प्रकार शत्रु युद्ध करनेके लिये सामने आकर खड़े होगये, यह देखकर भीमसेनको

सुणां गदापाणिरयुध्यत । न तान् रथस्थो भूमिष्ठान्धर्मापेक्षी वृको-
दरः॥२४॥ योधयामास कौन्तेयो भुजवीर्य्यं समाश्रितः । जातरूप-
परिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ २५ ॥ न्यवधीत्तावकान् सर्वा-
न्दण्डपाणिरिवान्तकः । पदातयोऽतिसंरब्धास्त्यक्तजीवितबान्धवाः
॥ २६ ॥ भीममभ्यद्रवन् संख्ये पतङ्गा ज्वलनं यथा । आसाद्य
भीमसेनं ते संरब्धा युद्धदुर्मदाः ॥ २७ ॥ विनेदुः सहसा दृष्ट्वा
भूतग्रामा इवान्तकम् । श्येनवद्व्यचरद्भीमः खड्गेन गदया तथा
॥ २८ ॥ पंचविंशतिसाहस्रांस्तावकानामपोथयत् । हत्वा तत् पुरु-
षानीकं भीमः सत्यपराक्रमः ॥ २९ ॥ धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य पुनस्त-
स्थौ महाबलः । धनञ्जयो रथानीकमन्वपद्यत वीर्यवान् ॥ ३० ॥
माद्रीपुत्रौ तु शकुनिं सात्यकिश्च महाबलः । जवेनाभ्यपतन् हृष्टा

ओर चढ़ आया, शत्रु भूमिपर खड़े थे, इसलिये भीम भी युद्धधर्म का आदर करता हुआ हाथमें गदा लियेहुए रथमेंसे नीचे उतर पड़ा तथा भूमिमें खड़े हुए वैरियोंके साथ युद्ध करनेलगा ॥१९-२४॥ कुन्तीनन्दन भीम अपनी भुजाओंके बलके भरोसे पर सोनेसे मँढीहुई बड़ी गदाको लेकर लड़नेलगा ॥ २५ ॥ और दण्डधारी कालकी समान तुम्हारे पक्षके योधाओंका विध्वंस करनेलगा, उस समय जैसे पतङ्गे आगमें पड़ते हों तैसे ही पैदल भी युद्धमें प्राण तथा कुटुम्बियोंको त्यागकर भीमके सामने डटगए और प्राणी जैसे कालको देखकर एकसाथ कोलाहल करनेलगें, तैसे ही भीमको देखकर एकसाथ गरजने लगे, इस समय भीमसेन तलवार और गदा लेकर शिवकी समान युद्धमें घूम रहा था, सत्यपराक्रमी भीमने तुम्हारे पचीस सहस्र योधाओंका संहार करडाला ॥ २६-२९ ॥ धृष्टद्युम्नको आगे करके महाबली भीम रणके मुहाने पर आकर खड़ा होगया,दूसरी ओर पराक्रमी धनंजय ने रथियोंको सेना पर चढाई करदी ॥ ३० ॥ माद्रीनंदन नकुल और सहदेव तथा सात्यकिने हर्षमें आकर दुर्योधनकी सेनापर

घ्नन्तो दौर्योधनं बलम् ॥ ३१ ॥ तस्याश्ववाहान् शूरवहून् ते निहत्य शितैः शरैः । तमन्वधावंस्त्वरितास्तत्र युद्धमवर्त्तत ॥ ३२ ॥ ततो धनञ्जयो राजन् रथानीकमगाहत । विश्रुतं त्रिषु लोकेषु गाण्डीवं व्याक्षिपन् धनुः ॥ ३३ ॥ कृष्णसारथिमायान्तं दृष्ट्वा श्वेतहयं रथम् । अर्जुनं चापि योद्धारं त्वदीयाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ३४ ॥ विप्रहीनरथाश्वाश्च शरैश्च परिवारिताः । पंचविंशतिसाहस्राः पार्थं प्रार्छन् पदातयः ॥३५ ॥ हत्वा तत्पुरुषानीकं पंचालानां महारथाः। भीमसेनं पुरस्कृत्य न चिरात्प्रत्यदृश्यत ॥ ३६ ॥ महाधनुर्धरः श्रीमानमित्रगणमर्दनः । पुत्रः पांचालराजस्य धृष्टद्युम्नो महायशाः ॥ ३७ ॥ पारावतसवर्णाश्वं कोविदारवरध्वजम् । धृष्टद्युम्नं रणे दृष्ट्वा त्वदीयाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ३८ ॥ गान्धारराजं शीघ्रास्त्रमनु-

---

झट चढाई करदी और उसकी सेनाका संहार करनेलगे ॥३१॥ तीखे बाणोंसे उसके अनेकों घुड़सवारोंको काटकर शीघ्र ही उस के ऊपर दौड़ पड़े, तहाँ बड़ा भारी युद्ध होने लगा ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! दूसरी ओर त्रिलोकीमें प्रसिद्ध गाण्डीव धनुष पर टङ्कार देता हुआ धनंजय रथियोंकी सेनाको घँघोलने लगा ॥ ३३ ॥ जिसके कृष्ण सारथी हैं ऐसे श्वेत घोड़ावाले रथमें बैठे योधा धनंजयको चढ़कर आया देखकर तुम्हारे योधा डरके मारे भागने लगे॥३४॥तुम्हारे पचीस हजार योधा रथ और घोड़ोंसे हीने तथा बाणोंसे घायल होगए, तब उन्होंने पैदल ही अर्जुनके रथको जाघेरा॥३५॥तब तुरन्त पंचालोंके महारथी धृष्टद्युम्नने उस सेनाका संहार किया और भीमसेनको आगे लेकर थोड़े ही समयमें सबके बीचमें आकर दीखनेलगा ॥ ३६ ॥ महाधनुषधारी पंचालकुमार श्रीमान् धृष्टद्युम्न वैरियोंके समूहका नाश करनेवाला और बड़ा यशस्वी था॥३७॥जिसके रथमें कबूतरी रङ्गके घोड़े जुतरहे थे और ध्वजामें कोविदार(कचनार)का चिह्न था उस धृष्टद्युम्नको देखते ही तुम्हारे योधा डरके मारे रणमें से भागगये ॥ ३८ ॥ कीर्त्तिमान्

स्त्य यशस्विनौ । अचिरात्मत्यदृश्येतां माद्रीपुत्रौ ससात्यकी ॥ ३९ ॥ चेकितानः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च मारिष । हत्वा त्वदीयं सुमहत् सैन्यं शंखानथाधमन् ॥ ४० ॥ ते सर्वांस्तावकान् प्रेक्ष्य द्रवतो वै पराङ्मुखान् । अभ्यधावन्त निघ्नन्तो वृषान् जित्वा वृषा इव ॥ ४१ ॥ सेनावशेषं तं दृष्ट्वा तव पुत्रस्य पाण्डवः । व्यवस्थितं सव्यसाची चुक्रोध बलवन् नृप॥४२॥ तत एनं शरैः राजन् सहसा समवाकिरत् । रजसा चोद्धतेनाथ न स्म किंचन दृश्यते ॥४३॥ अन्धकारीकृते लोके शरीभूते महीतले । दिशः सर्वा महाराज तावकाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ४४ ॥ भज्यमानेषु सैन्येषु कुरुराजो विशाम्पतिः । परेषामात्मनश्चैव सैन्ये ते समुपाद्रवत्॥४५॥ ततो दुर्योधनः सर्वानाजुहावाथ पाण्डवान् । युद्धाय भरतश्रेष्ठो

माद्रीके दोनों पुत्र तथा सात्यकीने भी शीघ्रतासे शस्त्र चलाने वाले गांधारराजके पीछे जाकर थोड़े ही समयमें सब लोगोंके मध्यमें दर्शन दिया ॥३९॥ तथा हे राजन् ! चेकितान, शिखण्डी और द्रुपदनन्दनने तुम्हारी बड़ी भारी सेनाको काटकर शङ्ख बजाया ॥ ४० ॥ इतना ही नहीं, किन्तु हे राजन् ! जैसें बैल बैलोंको जीतकर मारते २ उनके पीछे दौड़ते हैं तैसे ही वे सब तुम्हारे योधाओंको मुख फेर कर भागते देख उनके पीछे दौड़नेलगे ४१ हे नृप ! तुम्हारे पुत्रकी मरते २ शेष रही सेनाको खड़ी देखकर अर्जुनने उसके ऊपर बड़ा क्रोध किया ॥ ४२ ॥ और हे राजन्! फिर एकसाथ इस सेना पर बाणोंकी वर्षा करडाली, तब तो उस समय ऐसी धूल उड़ी, कि-कुछ दीखता ही नहीं था ॥४३॥ परन्तु हे महाराज धृतराष्ट्र ! जब सबमें अँधेरा होगया तथा पृथिवी बाणोंसे छागई तब तुम्हारे योधा चारों ओरको भागनेलगे ॥४४॥ परन्तु हे राजन् ! जब दुर्योधनने अपनी और पराई दोनों सेनाओंको भागते देखा तब वह अपनी तथा वैरीकी सेनाओं के सामनेको दौड़ा और पहले जैसे राजा बलिने देवताओंको युद्ध

देवानिव पुरा बलिः ॥४६॥ त एनमभिगर्जंतं सहिताः समुपाद्र-
वन्। नानाशस्त्रसृजः क्रुद्धा भर्त्सयंतो मुहुर्मुहुः ॥ ४७ ॥ दुर्यो-
धनोऽप्यसम्भ्रांतस्तानरीन् व्यधमच्छरैः । तत्राद्भुतमपश्याम तव
पुत्रस्य पौरुषम् ॥ ४८ ॥ यदेनं पाण्डवाः सर्वे न शेकुरतिवर्त्ति-
तुम्। नातिदूरापयातञ्च कृतबुद्धिं पलायने ॥ ४९ ॥ दुर्योधनः
स्वकं सैन्यमपश्यद्द भृशविक्षतम्। ततोऽवस्थाप्य राजेंद्र कृतबुद्धि-
स्तवात्मजः ॥ ५० ॥ हर्षयन्निव तान् योधानिदं वचनमब्रवीत्।
न तं देशं प्रपश्यामि पृथिव्यां पर्वतेषु च ॥ ५१ ॥ यत्र यातान्न
वो हन्युः पाण्डवाः किं सृतेन वः । स्वल्पं चापि बलं तेषां कृष्णौ च
भृशविक्षतौ ॥५२॥ यदि सर्वेऽत्र तिष्ठामो ध्रुवं नो विजयो भवेत् ।

के लिये पुकारा था तैसे ही उसने सब पाण्डवोंको युद्धके लिये पुकारा ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ तब तो तत्काल कोपमें भरे हुए पांडव अनेकों प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा करते तथा बार २ दुर्योधनका तिरस्कार करते हुए युद्धकेलिये गाजने वाले दुर्योधनके ऊपर इकट्ठे होकर टूटपड़े ॥ ४७॥ दुर्योधन इससे ज़राभी नहीं घब-ड़ाया किन्तु सामनेको बाण मारकर शत्रुओंका संहार करनेलगा हमने तहां तुम्हारे पुत्रका जो पराक्रम देखा ॥४८॥ वह यह था कि–सब पाण्डव मिलकर भी उसको दबा न सके, फिर दुर्योधन ने देखा, कि–मेरी सेना बहुत दूर तो नहीं गई है, परन्तु भागना चाहती है और घबड़ागई है तब उसने उस सेनाको तहांही खड़ा रक्खा और हे राजेन्द्र! तुम्हारे बुद्धिमान् पुत्रने उन सैनिकोंको उत्साह देते हुए इसप्रकार कहा, कि–हे वीरो! मैं पृथिवी पर या पहाड़ोंपर ऐसा कोई स्थान नहीं देखता, कि–जहां जाने पर पा-ण्डव तुम्हें मार न सकें, फिर भागनेसे तुम्हें क्या लाभ है? पांडवों की सेना बहुत ही थोड़ी है, कृष्ण और अर्जुन बहुत घायल हो चुके हैं ॥ ४९–५२ ॥ यदि हम सब यहां डटे रहेंगे तो निःस-

विमयातांस्तु वो भिन्नान् पाण्डवाः कृतकिल्विषान् ॥ ५३ ॥
अनुसृत्य हनिष्यन्ति श्रेयो नः समरे वधः। सुखः सांग्रामिको
मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यतः ॥५४॥ मृतो दुःखं न जानीते मेत्य चान-
न्त्यमश्नुते। शृण्वन्तु क्षत्रियाः सर्वे यावन्तो वै समागताः ॥ ५५ ॥
द्विषतो भीमसेनस्य वशमेष्यथ विद्रुताः। पितामहैराचरितं न धर्मं
हातुमर्हथ ॥ ५६ ॥ न च कर्मास्ति पापीयः क्षत्रियस्य पलायनात्।
न युद्धधर्माच्छ्रेयान् हि पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः॥५७॥ सुचिरेणा-
र्जितांल्लोकान् सद्यो युद्धात्समश्नुते। तस्य तद्वचनं राज्ञः पूजयि-
त्वा महारथाः ॥ ५८ ॥ पुनरेवाभ्यवर्त्तन्त क्षत्रियाः पांडवान् प्रति

न्देह हमारी विजय होगी,परन्तु यदि तुम रणमेंसे भागने लगोगे तो तुम्हें क्षत्रियधर्मको त्यागनेका कलङ्क लगेगा और पांडव तुम्हारे पीछे पड़कर तुम्हें मार तो डालेंगे ही, भागकर मरनेकी अपेक्षा रणमें मरजाना ही कल्याणं और सुखदायक है, इस लिये तुम क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करो ॥५३॥५४ ॥ मरजाने वाले मनुष्यको दुःखका अनुभव नहीं होता और वह मर कर अनन्त सुख पाता है, यहाँ जितने क्षत्रिय आकर इकट्ठे हुए हों तुम सब सुन लो ॥५५ ॥ यदि तुम भाग जाओगे तो द्वेषी भीमसेन तुम्हे पकड़कर अपने वशमें कर लेगा, इसलिये तुम्हें अपने दादा परदादाओंके आचरण किये हुए धर्मको नहीं त्यागना चाहिये ॥५६ ॥ हे कौरवपक्षके योधाओं! क्षत्रियके लिये युद्धमें से भाग जानेसे बढ़कर और कोई पाप नहीं है और युद्धमें प्राण देकर स्वर्गमें जानेसे बढ़कर और कोई कल्याणका मार्ग नहीं है ॥ ५७ ॥ जो उत्तम लोक दूसरोंको चिरकालमें मिलते हैं उनको क्षत्रिय युद्धसे तुरन्त पाजाता है, राजाकी इस बातका महारथियों ने आदर किया, वे अपने पराजयको न सहसके, सबने अपने २ मनमें पराक्रम करनेकी ठान ली और फिर कौरवपक्षके योधाओंने पाण्डवोंके सैनिकोंपर चढ़ाई करदी ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

॥ ५९ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं पुनरेव सुदारुणम् । तावकानां परेषां च देवासुररणोपमम् ॥ ६० ॥ युधिष्ठिरपुरोगांश्च सर्वसैन्येन पांडवान् । अन्वधावन्महाराज पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ६१ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि कौरवसैन्यापयाने तृतीयोऽध्यायः॥३॥

संजय उवाच । पतितान् रथनीडांश्च रथांश्चापि महात्मनाम् । रणे च निहतान् नागान् दृष्ट्वा पत्तींश्च मारिष ॥ १ ॥ आयोधनं चातिघोरं रुद्रस्याक्रीडसन्निभवम् । अप्रख्यातिं गतानां तु राज्ञां शतसहस्रशः ॥ २ ॥ विमुखे तव पुत्रे तु शोकोपहतचेतसि । भृशोद्विग्नेषु सैन्येषु दृष्ट्वा पार्थस्य विक्रमम् ॥ ३ ॥ ध्यायमानेषु सैन्येषु दुःखं प्राप्तेषु भारत । बलानां मथ्यमानानां श्रुत्वा निनदमुत्तमम् ॥४॥ अभिज्ञानं नरेन्द्राणां विक्षतं प्रेक्ष्य संयुगे । कृपाविष्टः कृपो राजन् वयःशीलसमन्वितः ॥ ५ ॥ अब्रवीत्तत्र तेज-

तुरन्त ही तुम्हारे और शत्रुओंके योधाओंमें देवासुरसंग्रामकी समान अतिदारुण युद्ध फिर आरम्भ होगया ॥ ६० ॥ और हे महाराज ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने सब सेनाको साथ ले युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंके ऊपर चढ़ाई करदी ॥ ६ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

संजय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! रणमें रथोंके ढाँचों को, महात्माओंके रथोंको पड़े हुए और हाथी तथा पैदलोंको मरे हुए देखकर और सैंकड़ों तथा हजारों राजाओंके मरणको देखकर तथा रुद्रके क्रीड़ास्थानकी समान महाभयानक रणभूमिको देख कर तुम्हारा पुत्र युद्धसे विमुख होगया, उसके चित्तको शोकने दबा लिया और अर्जुनके पराक्रमको देखकर तुम्हारे योधा बहुत ही घबड़ागये, घायल होनेसे सब दुःखी होकर विचारमें पड़गये, कटती हुई सेनाओंका हाहाकार सुनाई आनेलगा, बड़े २ राजाओं की पहिचानके चिह्न टूटगए, यह देखकर अवस्था और शीलवान् कृपाचार्यको दया आगई ॥१-५॥ बात करनेमें चतुर और तेजस्वी

स्त्री सोऽभिसृत्य जनाधिपम् । दुर्योधनं मन्युवशाद्वाक्यं वाक्यविशा-
रदः ॥ ६ ॥ दुर्योधन निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि कौरव । श्रुत्वा
कुरु महाराज यदि रोचेत तेऽनघ ॥ ७ ॥ न युद्धधर्माच्छ्रेयान् वै
पन्था राजेन्द्र विद्यते । यं समाश्रित्य युध्यन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ
॥ ८ ॥ पुत्रो भ्राता पिता चैव स्वस्त्रीयो मातुलस्तथा । संबंधि-
बांधवाश्चैव योध्या वै क्षत्रजीविना ॥ ९ ॥ वधे चैवं परो धर्म-
स्तथाऽधर्मः पलायने । ते स्म घोरां समापन्ना जीविकां जीविता-
र्थिनः ॥ १० ॥ तदत्र प्रतिवक्ष्यामि किंचिदेव हितं वचः । हते
भीष्मे च द्रोणे च कर्णे चैव महारथे ॥ ११ ॥ जयद्रथे च निहते तव
भ्रातृषु चानघ । लक्ष्मणे तव पुत्रे च किं शेषं पर्युपास्महे ॥ १२ ॥
येषु भारं समासाद्य राज्ये मतिमकुर्महि । ते संत्यज्य तनुं याता

कृपाचार्यको क्रोध आगया, इसलिये वह तहाँ ही दुर्योधनके पास जाकर कहने लगे, कि—॥ ६ ॥ हे कुरुवंशी निष्पाप दुर्योधन ! मैं तुझसे जो कुछ कहता हूँ उसको सुन और यदि तुझे रुचे तो ऐसा कर ॥ ७ ॥ हे राजेन्द्र ! युद्ध के सिवाय और कोई कल्याणका मार्ग नहीं है, इसलिये हे उत्तम क्षत्रिय राजन् ! क्षत्रिय धर्म-युद्धका अवलम्ब लेकर लड़ा करते हैं ॥ ८ ॥ बेटा, भाई, बाप, भानजा, मामा आदि संबन्धी तथा बांधव आदि चाहे जिसके साथ क्षत्रियधर्मसे जीनेवाला युद्ध कर सकता है ॥९॥ इस प्रकार मरजानेमें परमधर्म है और युद्धसे भागजानेमें अधर्म होता है, इस समय ये सब जीवनकी इच्छावाले जीवनके लिये बड़े भयानक संशयमें आपड़े हैं, इसलिये इस समय मैं तुझसे कुछ हितकी बात कहता हूँ, उसको सुन—महारथी भीष्म, द्रोण, कर्ण जयद्रथ, तेरे सब भाई और तेरा पुत्र लक्ष्मण ये सब मरचुके तो अब हम कौनसे बचे हुए पुरुषके लिये लड़ें ? ॥१०-१२॥ हम जिनके ऊपर राज्यका कार्यभार रखकर राज्य चलानेमें संमति दिया करते

वीरा ब्रह्मविदां गतिम् ॥ १३ ॥ वयं त्विह विनाभूता गुणवद्भि-
र्महारथैः । कृपणं वर्त्तयिष्याम पातयित्वा नृपान् बहून् ॥ १४ ॥
सवरथ च जीवद्भिर्बीभत्सुरपराजितः । कृष्णनेत्रो महाबाहुर्देवैरपि
दुरासदः ॥१५॥ इन्द्रकार्मुकतुल्याभमिंद्रकेतुमिवोच्छ्रितम् । वानरं
केतुमासाद्य संचचाल महाचमूः ॥ १६ ॥ सिंहनादाच्च भीमस्य
पांचजन्यस्वनेन च । गांडीवस्य च निर्घोषात्संहृष्यन्ति मनांसि नः
॥ १७ ॥ चरन्तीव महाविद्युन्मुष्णन्ती नयनप्रभाम् । अलातमिव
चाविद्धं गाण्डीवं समदृश्यत ॥ १८ ॥ जांबूनदविचित्रं च धूयमानं
महद्धनुः । दृश्यते दिक्षु सर्वासु विद्युदभ्रघनेष्विव ॥ १९ ॥ श्वे-
ताश्च वेगसम्पन्नाः शशिकाशसमप्रभाः । पिबन्त इव चाकाशं रथे
युक्तास्तु वाजिनः ॥ २० ॥ उह्यमानाश्च कृष्णेन वायुनेव बला-

थे वे वीर तो शरीरोंको त्याग कर ब्रह्मज्ञानियोंकी गतिको पागए
॥१३॥हम बहुतसे राजाओंको विध्वंस करके गुणवान् महारथियोंके
विना अकेले रहगए हैं,इसलिये अब हमें दीनताका वर्त्ताव करना
पड़ेगा ॥१४॥ जिसके कृष्ण सारथी हैं और जिसको देवता भी
नहीं जीतसकते ऐसे महाबाहु अर्जुनको,हमारे बचेहुए महारथियोंमें
का कोई भी नहीं जीतसकता॥१५॥यह बड़ीभारी सेना, इन्द्रधनुष
की समान कांतिवाली, इन्द्रध्वजासी ऊँची, वानरके चिह्नवाली
अर्जुनकी ध्वजाको देखकर काँपउठी है ॥ १६ ॥ भीमसेनकी
गर्जना, कृष्णके पांचजन्यकी ध्वनि और धनंजयके गाण्डीवधनुष
की टङ्कारसे मेरा मन मूढ़ बनगया है ॥ १७ ॥ बड़ीभारी बिजली
की समान चमकनेवाली गांडीवकी चमक आँखोंको चौंधाए देती
है, गांडीव धनुष उल्कासा घूमता दीखता है ॥ १८ ॥ घनघटाओं
में विजलीकी समान, सुवर्णसे चित्रित, अर्जुनका घुमायाहुआ
गाण्डीव नामका महाधनुष सब दिशाओंमें चक्कर लगाताहुआसा
दीखता है ॥ १९ ॥ अर्जुनके रथमें जुड़े हुए, वेगवान् चन्द्रमा
और काशकी समान श्वेत घोड़े आकाशको पीतेहुए से दौड़ते हैं

युक्ताः । जाम्बूनदविचित्राङ्गा वहंते चार्जुनं रणे ॥ २१ ॥ तावकं तद्बलं राजन्नर्जुनोऽस्त्रविशारदः । गहनं शिशिरं कक्षं ददाहाग्नि-रिवोल्वणः ॥ २२ ॥ गाहमानमनीकानि महेन्द्रसदृशप्रभम् । धन-ञ्जयमपश्याम चतुर्दंष्ट्रमिव द्विपम् ॥ २३ ॥ विक्षोभयन्तं सेनां ते त्रासयन्तं च पार्थिवान् । धनञ्जयमपश्याम नलिनीमिव कुञ्जरम् ॥ २४ ॥ त्रासयन्तं तथा योधान्धनुर्घोषेण पांडवम् । भूय एन-मपश्याम सिंहं मृगगणानिव ॥ २५ ॥ सर्वलोकमहेष्वासौ वृषभौ सर्वधन्विनाम् । आमुक्तकवचौ कृष्णौ लोकमध्ये विचेरतुः २६ अद्य सप्तदशाहानि वर्त्तमानस्य भारत । संग्रामस्यातिघोरस्य वध्यतां चाभितो युधि ॥ २७ ॥ वायुनेव विधूतानि तव सैन्यानि

॥ २० ॥ जैसे वायु मेघोंको उड़ाकर लेजाता है, ऐसे ही श्रीकृष्ण के हाँकेहुए, सुवर्णके साजसे विचित्र दीखनेवाले घोड़े अर्जुनको रणमें सवारी देते हैं ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जैसे भयंकर अग्नि शिशिर ऋतुमें घासके वनको जलाडालता है तैसे ही अस्त्रविद्यामें कुशल अर्जुनने तुम्हारे उस सेनादलको भस्म करडाला ॥ २२ ॥ हमने देखा तो ऐसा मालूम होता था, कि-महेंद्रकी समान कान्तिमान् अर्जुन चार दाँतोंवाले हाथीकी समान हमारी सेनामें घुस आया है और हाथी जैसे तलैयाको घँघोल डालता है, तैसे ही उसने सेनामें गड़बड़ी डालदी है और राजाओंको त्रास देरहा है तथा फिर हमने देखा तो ऐसा मालूम होता था, कि-जैसे सिंह मृगोंकी टोलीको भयभीत करता हो तैसे ही धनं-जय धनुषकी टंकारसे सैनिकोंको त्रास देरहा है ॥ २३-२५ ॥ देखो देखो, सब लोक और धनुषधारियोंमें बड़े कृष्ण और धनंजय कवच पहन कर रणभूमिमें घूमरहे हैं, ॥२६॥ हे भारत ! युद्धमें चारों ओर लोकोंका संहार करके घोर युद्ध करते हुए आज सत्रह दिन होगए ॥ २७ ॥ देखो, जैसे शरद् ऋतुके कमल वायुकी झपेटोंसे छिन्न भिन्न होजाते हैं, तैसे ही तुम्हारी सेना

सर्वतः । शरदम्भोदजालानि व्यशीर्यन्त समंततः ।। २८ ।। तां नावमिव पर्यस्तां वातधूतां महार्णवे । तव सेनां महाराज सव्यसाची व्यकम्पयत् ।। क्व नु ते सूतपुत्रोऽभूत्क्व नु द्रोणः सहानुगः। अहं क्व च क्व चात्मा ते हार्दिक्यश्च तथा क्व नु ।। ३० ।। दुःशासनश्च ते भ्राता भ्रातृभिः सहितः क्व नु । बाणगोचरसंप्राप्तं प्रेक्ष्य चैव जयद्रथम् ।। ३१ ।। संबंधिनस्ते भ्रातृंश्च सहायान्मातुलांस्तथा । सर्वान् विक्रम्य मिषतो लोकमाक्रम्य मूर्धनि ।। ३२ ।। जयद्रथो हतो राजन् किं नु शेषमुपास्महे । को हीह स पुमानस्ति यो विजेष्यति पांडवम् ।। ३३ ।। तस्य चास्त्राणि दिव्यानि विविधानि महात्मनः । गांडीवस्य च निर्घोषो धैर्याणि हरते हि नः ।। ३४ ।। नष्टचन्द्रा यथा रात्रिः सेनेयं हतनायका ।

भी चारों ओरसे छिन्न भिन्न होगई है ।। २८ ।। और महासागरमें जैसे पवन चारों ओरसे टूटीहुई नौकाको डगमगादेता है, तैसे ही चारोंओरसे छिन्नभिन्न हुई तुम्हारी सेनाको अर्जुन कम्पायमान कररहा है।।२९।। धनंजयने जब जयद्रथके सामनेको बाण ताना था उस समय कर्ण कहाँ गया था? द्रोण और उनके सहायक कहाँ गये थे ? मैं और तुम कहाँ गये थे ? हृदीकका पुत्र कृतवर्मा कहाँ गया था ? तेरा भाई दुःशासन तथा दूसरे भाई कहाँ गए थे ? सब वहाँ ही तो थे ।।३०।।३१।। हे राजन् ! धनंजयने तेरे सब संबन्धी, भाई,सहायक और मामाओंको पराक्रमसे जीत लिया और, सबके शिर पर पैर रखकर जयद्रथको मारडाला था अब ऐसा कौन बाकी रहगया है, कि-जिसको हम बड़ा बनावें? हममें ऐसा कौन है जो अर्जुनको जीतसके ? ।। ३२ ।। ३३ ।। उस महात्माके पास अनेकों प्रकारके दिव्य अस्त्र हैं और गांडीव धनुषका शब्द तो हमारे धीरजको ही नष्ट करेडालता है ।। ३४ ।। जैसे चन्द्रविहीन रात्रि निस्तेज मालूम होती है,ऐसे ही हमारी सेना

नागभग्नद्रुमा शुष्का नदीवाकुलताङ्गता ॥ ३५ ॥ ध्वजिन्यां हतनेत्रायां यथेष्टं श्वेतवाहनः । चरिष्यति महावाहुः कक्षेष्वग्निरिव ज्वलन् ॥ ३६ ॥ सात्यकेश्चैव यो वेगो भीमसेनस्य चोभयोः । दारयेच्च गिरीन् सर्वान् शोषयेच्चैव सागरान् ॥ ३७ ॥ उवाच वाक्यं यद्भीमः सभामध्ये विशांपते । कृतं तत्सफलं तेन भूयश्चैव करिष्यति ॥ ३८ ॥ प्रमुखस्थे तदा कर्णे वलं पाण्डवरक्षितम् । दुरासदं तदा गुप्तं व्यूढं गाण्डीवधन्वनः ॥ ३९ ॥ युष्माभिस्तानि चीर्णानि यान्यसाधूनि साधुषु । अकारणकृतान्येव तेषां वः फलमागतम् ॥ ४० ॥ आत्मनोऽर्थे त्वया लोको यत्नतः सर्व आहृतः । स ते संशयितस्तात आत्मा वै भरतर्षभ ॥ ४१ ॥ रक्ष दुर्योधना-

भी सेनापतिके न होनेसे निस्तेज मालूम होती है, हाथीके तोड़े हुए वृक्षके कारण जैसे सूखीहुई नदी व्याकुल दीखती है तैसे ही हमारी सेना भी व्याकुल हुई मालूम होती है ॥ ३५ ॥ जैसे अग्नि घासके ढेरमें इच्छानुसार विचरता है तैसे ही महावाहु अर्जुन भी अपनी इच्छानुसार सेनापतिविहीन हुई हमारी सेनामें घूमरहा है॥३६॥ और सात्यकी तथा भीमका वल तो सव पहाड़ोंको फाड़सकता है तथा समुद्रोंको सुखा सकता है ॥ ३७ ॥ हे राजन्! भीमसेनने वीचसभामें जो वात कही थी, उस वातको उसने सफल करके दिखादिया है और आगेको भी अवश्य करेगा ॥ ३८ ॥ कर्ण जिस समय रणके मुहाने पर खड़ा था, उस समय धनंजयने अपनी सेनाकी व्यूहरचना करके उसकी कैसी अच्छी रक्षाकी थी ? ॥३९॥ तुमने सत्पुरुष पाण्डवोंके ऊपर निष्कारण ही जो जो खोटी चालें चली हैं उनका ही फल तुम्हें मिला है ॥४०॥ और तूने अपने लिये ही इन सवोंका जान वूझ कर संहार कराया है, परन्तु हे तात दुर्योधन! अव तेरा अपना जीवन भी सन्देह में आपड़ा है ॥ ४१ ॥ हे दुर्योधन! तू अपने आत्माकी रक्षा कर

त्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम् । भिन्ने हि भाजने तात दिशो गच्छ-
ति तद्गतम् ॥ ४२ ॥ हीयमानेन वै संधिः पर्येष्टव्यः समेन वा ।
विग्रहो वर्धमानेन मतिरेषा बृहस्पतेः ॥ ४३ ॥ ते वयं पाण्डुपुत्रेभ्यो
हीनाः स्म बलशक्तितः । तदत्र पांडवैः सार्धं संधिं मन्ये क्षमं प्रभो
॥ ४४ ॥ न जानीते हि यः श्रेयः श्रेयसश्चावमन्यते । स क्षिप्रं
भ्रश्यते राज्यान्न च श्रेयोऽनुविन्दति ॥ ४५ ॥ प्रणिपत्य हि
राजानं राज्यं यदि लभेमहि । श्रेयः स्यान्न तु मौढ्येन राजन् गन्तुः
पराभवम् ॥ ४६ ॥ वैचित्रवीर्यवचनात्कृपाशीलो युधिष्ठिरः । वि-
नियुञ्जीत राज्ये त्वां गोविन्दवचनेन च ॥ ४७ ॥ यद् ब्रूयाद्धि
हृषीकेशो राजानमपराजितम् । अर्जुनं भीमसेनं च सर्वं कुर्युरसं-
शयम् ॥ ४८ ॥ नातिक्रमिष्यते कृष्णो वचनं कौरवस्य तु ।

क्योंकि–आत्मा सकल सुखोंका पात्र है । हे तात ! पात्रके फूटजाने पर उसमेंकी वस्तु चारोंओरको बिखर जाती है ॥४२॥ समान बलवाले और हीनबलवाले पुरुषको शत्रुके साथ संधि करलेनी चाहिये और अधिक बलवालेको युद्ध करना चाहिये, यह बृहस्पतिका मत है ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! हम पाण्डवोंकी अपेक्षा बलमें और शक्तिमें कम हैं, इसलिये मेरी समझमें पांडवोंके साथ संधि करलेनी चाहिये ॥ ४४ ॥ जो राजा अपने भलेको नहीं समझता और हितकारी बात कहनेवाले बड़ोंका अपमान करता है वह शीघ्र ही राज्यसे भ्रष्ट होजाता है और उसका मङ्गल नहीं होता॥४५॥ हम राजा युधिष्ठिरको प्रणाम करके यदि राज्य पाजायँ तो हमारा मङ्गल होसकता है, परन्तु मूर्खतासे हारजानेमें हमारा कल्याण नहीं है, वह धृतराष्ट्र और श्रीकृष्णके कहनेसे तुझे राजसिंहासन पर बैठाल देंगे ॥ ४७ ॥ अजेय युधिष्ठिर धनञ्जय और भीमसेनसे श्रीकृष्ण जो कुछ कहेंगे, वे सब निःसन्देह वैसा ही करेंगे ।४८। मुझे निश्चय है, कि–कृष्ण धृतराष्ट्रकी बातको नहीं टालेंगे और

धृतराष्ट्रस्य मन्येऽहं नापि कृष्णस्य पाण्डवः ॥४९॥ एतत्क्षेममहं मन्ये न च पार्थैश्च विग्रहम्। न त्वां ब्रवीमि कार्पण्यान्न प्राणपरिरक्षणात् ॥५०॥ पथ्यं राजन् ब्रवीमि त्वां तत्परासुः स्मरिष्यसि। इति वृद्धो विलप्यैतत्कृपः शारद्वतो वचः॥ दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य शुशोच च मुमोह च॥ ५१ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि कृपवाक्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सञ्जय उवाच । एवमुक्तस्ततो राजा गौतमेन तपस्विना। निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च तूष्णीमासीद्विशांपते ॥ १ ॥ ततो मुहूर्त्तं स ध्यात्वा धार्त्तराष्ट्रो महामनाः। । कृपं शारद्वतं वाक्यमित्युवाच परन्तपः ॥ २ ॥ यत्किंचित्सुहृदा वाच्यं तत्सर्वं श्रावितो ह्यहम् । कृतं च भवता सर्वं प्राणान् संत्यज्य युध्यता ॥३॥ गाहमानमनीकानि युध्यमानं महारथैः। पाण्डवैरतितेजोभिर्लोकस्त्वा-

---

मेरी समझमें युधिष्ठिर कृष्णकी बातको नहीं टालेंगे ॥४९॥ मेरी समझमें पाण्डवोंके साथ युद्ध न करनेमें ही मङ्गल है, यह बात मैं डरपोकपनेसे या अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये नहीं कहता हूँ ५० किन्तु हे राजन्! तुझसे मैं तेरे हितकी बात कहता हूँ, यदि तू आज मेरी बात नहीं मानेगा तो यह बात तुझे मरते समय याद आवेगी, वृद्ध अवस्थाके कृपाचार्यने दुर्योधनसे ऐसा कहकर लंबा और गरम साँस छोड़ा तथा शोक और मोहमें पड़गए॥ ५१ ॥ चौथा अध्याय समाप्त॥ ४ ॥

संजय कहता है, कि-हे राजन्! इसप्रकार गौतमगोत्री तपस्वी कृपाचार्यके कहने पर बड़े मनवाला दुर्योधन गहरा और गरम साँस लेकर चुपचाप बैठगया और दो घड़ी तक विचार करके परंतप दुर्योधन कृपाचार्यसे कहनेलगा कि-॥१॥२॥ हितकारीको जो कुछ कहना चाहिये, आपने वह सब मुझे सुनादिया और प्राणों की भी आशा छोड़ युद्ध करके तुमने सब काम किया है॥३॥ तुमने शत्रुओंकी सेनाओंमें घुसकर महातेजस्वी महारथी पांडवोंके

मनुदृष्टवान् ॥ ४ ॥ सुहृदा यदिदं वाक्यं भवता भाषितो ह्यहम् ।
न मां प्रीणाति तत्सर्वं मुमूर्षोरिव भेषजम् ॥ ५ ॥ हेतुकारणसं-
युक्तं हितं वचनमुत्तमम् । उच्यमानं महाबाहो न मे विप्राग्र्य
रोचते ॥ ६ ॥ राज्याद्विनिकृतोऽस्माभिः कथं सोऽस्मासु
विश्वसेत् । अक्षद्यूते च नृपतिर्जितोऽस्माभिर्महाधनः ॥ ७ ॥
स कथं मम वाक्यानि श्रद्दध्याद्भूय एव तु । तथा दौत्येन सं-
प्राप्तः कृष्णः पार्थहिते रतः ॥ ८ ॥ प्रलब्धश्च हृषीकेशस्तच्च कर्मा-
विचारितम् । स च मे वचनं ब्रह्मन् कथमेवाभिमंस्यते ॥ ९ ॥
विललाप च यत्कृष्णा सभामध्ये समेयुषी । न तन्मर्षयते कृष्णो
न राज्यहरणन्तथा ॥ १० ॥ एकप्राणावुभौ कृष्णावन्योनमभिसं-

साथ युद्ध भी किया, यह सब लोकोंने देखा है ॥ ४ ॥ परन्तु आप हितू बनकर मुझसे जो बात कह रहे हो, ये सब बातें, मरने को तयार हुएको जैसे औषध अच्छी नहीं लगती तैसे ही मुझे रुचती नहीं ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणोत्तम ! आज आप मुझसे हेतु और कारणवाली उत्तम बात कहरहे हो, परन्तु यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती ॥ ६ ॥ हमने राजा युधिष्ठिरको राज्यमेंसे निकाल दिया था, वह हमारे ऊपर विश्वास कैसे करलेंगे ? और हमने जुएमें महाधनी युधिष्ठिरका राज पाट छीन लिया था, फिर वह हमारी बातका विश्वास कैसे करलेंगे ? तथा अर्जुनके हितैषी श्रीकृष्ण हमारे यहाँ उनका संदेशा लेकर आये थे, हमने उनको भी धोखा दिया था, यह भी अविचारका ही काम था, वह कृष्ण भी मेरे कहनेका विश्वास क्यों करेंगे ? ॥ ७-९ ॥ द्रौपदी ने बीच सभामें आकर जो विलाप किया था तथा पांडवों का जो राज्य छीन लिया था, उसको कृष्ण नहीं सह सकेंगे ॥ १० ॥ क्योंकि-कृष्ण और अर्जुन दोनों एकप्राण हैं, दोनों एक दूसरेके आश्रय पर रहते हैं, यह बात पहले तो मैंने सुनी

श्रितौ। पुरा यच्छ्रुतमेवासीदद्य पश्यामि तत्प्रभो ॥ ११ ॥ स्वस्रीयं निहतं श्रुत्वा दुःखं स्वपिति केशवः। कृतागसो वयं तस्य स मदर्थं कथं क्षमेत् ॥ १२ ॥ अभिमन्योर्विनाशेन न शर्म लभतेऽर्जुनः। स कथं मद्धिते यत्नं प्रकरिष्यति याचितः ॥१३॥ मध्यमः पाण्डवस्तीक्ष्णो भीमसेनो महाबलः। प्रतिज्ञातं च तेनोग्रं भज्येतापि न संनमेत् ॥ १४ ॥ उभौ तौ बद्धनिस्त्रिंशावुभौ चावद्धकङ्कटौ। कृतवैरावुभौ वीरौ यमावपि यमोपमौ ॥ १५ ॥ धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च कृतवैरौ मया सह। तौ कथं मद्धिते यत्नं कुर्यातां द्विजसत्तम ॥ १६ ॥ दुःशासनेन यत्कृष्णा एकवस्त्रा रजस्वला। परिक्लिष्टा सभामध्ये सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ १७ ॥ तथा विवसनां दीनां स्मरन्त्यद्यापि पाण्डवाः। न निवारयितुं शक्याः संग्रामात्ते

ही थी, परन्तु अब मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ ॥ ११ ॥ जबसे अपने भानजेका रणमें मरण सुना है तबसे कृष्णको सुखकी नींद नहीं आती है, उनका यह अपराध हमने किया है, फिर वह कृष्ण मुझे क्यों क्षमा करेंगे ? ॥ १२ ॥ अभिमन्युके मारे जानेसे अर्जुनको चैन नहीं पड़ता है, वह प्रार्थना करने पर भी मेरे लिये यत्न क्यों करेगा ? ॥ १३ ॥ पाण्डुका मझला पुत्र महाबली भीमसेन कड़वे स्वभावका है, उसने पहले बड़ी उग्र प्रतिज्ञा की है, वह मारा भले ही जाय, परन्तु नमेगा नहीं॥१४॥ यमराजकी समान नकुल और सहदेव दोनों ही वीर, तलवार लगाकर हरसमय कवच पहिरे रहते हैं और दोनों ही मेरे साथ वैरभाव रखते हैं, ॥ १५ ॥ हे द्विजसत्तम ! मेरे साथ वैर करनेवाले धृष्टद्युम्न और शिखण्डी भी मेरे हितके लिये यत्न क्यों करेंगे ? ॥ १६ ॥ सभामें सब लोगोंके सामने जो दुःशासनने एकवस्त्रधारिणी रजस्वला द्रौपदीको दुःख दिया था ॥१७॥ तथा वस्त्रहीन हुई दीन द्रौपदीकी जो दशा हुई थी वह पाण्डवोंको अबतक याद है, उन परन्तप

परन्तपाः ॥ १८ ॥ यदा च द्रौपदी क्लिष्टा मद्विनाशाय दुःखिता। स्थंडिले नित्यदा शेते यावद्वैरस्य यातनम् ॥ १९ ॥ उग्रं तेपे तपः कृष्णा भर्तृणामर्थसिद्धये । निःक्षिप्य मानं दर्पञ्च वासुदेवसहोदरा ॥ २० ॥ कृष्णायाः प्रेष्यवद्भूत्वा शुश्रूषां कुरुते सदा । इति सर्वं समुन्नद्धं न निर्वाति कथञ्चन ॥ २१ ॥ अभिमन्योर्विनाशेन स संधेयः कथं मया । कथञ्च राजा भुक्त्वेमां पृथिवीं सागराम्बराम् ॥ २२ ॥ पांडवानां प्रसादेन भोक्ष्ये राज्यमहं कथम् । उपर्युपरि राज्ञां वै ज्वलित्वा भास्करो यथा ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरं कथं पश्चादनुयास्यामि दासवत् । कथं भुक्त्वा स्वयं भोगान्दत्त्वा दानांश्च पुष्कलान् ॥ २४ ॥ कृपणं वर्त्तयिष्यामि कृपणैः सह जीविकाम् । नाभ्यसूयामि ते वाक्यमुक्तं स्निग्धं हितं त्वया

पाण्डवोंको संग्रामसे हटाना कठिन है ॥१८॥ जबसे द्रौपदीने यह क्लेश पाया है वह दुःखित होकर मेरे विनाशके लिये वैरभावका बदला न लेलियाजाय तबतकको सदा भूमि पर सोया करती है ॥ १९ ॥ द्रौपदीने अपने पतियोंकी कार्यसिद्धिके लिये उग्र तप किया है और कृष्णकी बहिन सुभद्रा अभिमान और गर्वको छोड़ कर नित्य टहलनीकी समान द्रौपदीकी सेवा करती है, इसप्रकार सर्वथा जो वैर बढगया है वह किसीप्रकार भी शान्त नहीं होसकता ॥ २० ॥ २१ ॥ अभिमन्युका नाश करके मेरे साथ अर्जुनका मेल कैसे होसकता है? जब मैंने समुद्रपर्यन्तकी पृथ्वीका राजा बनकर इसको भोगा है, तो अब मैं पाण्डवोंका कृपापात्र बनकर राज्य कैसे करसकूँगा? मैं सूर्यकी समान सब राजाओंके ऊपर चमकता रहा हूँ ऐसा मैं अब एक दासकी समान युधिष्ठिरके पीछे २ कैसे फिर सकूँगा? मैंने बहुतसे ऐश्वर्य भोगे हैं और बड़े २ दान भी दिये हैं, फिर अब मैं दीनोंके साथ दीन बनकर कैसे निर्वाह करसकूँगा? मैं आपकी बातका तिरस्कार नहीं करता हूँ, क्योंकि-आपने मुझसे

॥ २५ ॥ न तु संधिमहं मन्ये प्राप्तकालं कथञ्चन । सुनीतमनुपश्यामि सुयुद्धेन परन्तप ॥ २६ ॥ नायं क्लीबयितुं कालः संयोद्धुं काल एव नः । इष्टं मे बहुभिर्यज्ञैर्दत्ता विप्रेषु दक्षिणाः ॥ २७ ॥ प्राप्ताः कामाः श्रुता वेदाः शत्रूणां मूर्ध्नि च स्थितम् । भृत्या मे सुभृतास्तात दीनश्चाभ्युद्धृतो जनः ॥ २८ ॥ नोत्सहेऽद्य द्विजश्रेष्ठ पांडवान् वक्तुमीदृशम् । जितानि परराष्ट्राणि स्वराष्ट्रमनुपालितम् ॥ २९ ॥ भुक्ताश्च विविधा भोगास्त्रिवर्गः सेवितो मया । पितॄणां गतमानृण्यं क्षत्रधर्मस्य चोभयोः ॥ ३० ॥ न ध्रुवं सुखमस्तीति कुतो राष्ट्रं कुतो यशः । इह कीर्त्तिर्विधातव्या सा च युद्धेन नान्यथा ॥ ३१ ॥ गृहे यत्क्षत्रियस्यापि निधनं तद्विगर्हितम् । अधर्मः सु-

---

हित और प्रेमसे भरी बात कही है॥ २२—२५॥ परन्तु इस समय संधि करना मुझे किसीप्रकार भी उचित नहीं मालूम होता, हे परन्तप! इस समय तो युद्ध करना ही मुझे उचित मालूम होता है ॥२६॥ हमारा यह समय भयभीत होनेका नहीं है, किंतु पराक्रम दिखाने का है, मैंने बहुतसे यज्ञ किये हैं, ब्राह्मणोंको दक्षिणायें दी हैं २७ मेरी कामनाएँ पूरी हुई हैं, मैंने वेद पढ़े हैं, मैं शत्रुओंके शिर पर चढ़ारहा हूँ, मैंने माता पिता आदिका भलेप्रकार पोषण किया है और हे तात! दुःखियोंके दुःख भी टाले हैं ॥ २८ ॥ दूसरोंके राज्य जीते हैं और अपने राज्यकी रक्षा की है,मैंनें अनेकों प्रकार के भोग भोगे हैं, धर्म, अर्थ और कामका सेवन किया है, मैंने पितरोंका तथा देवता और ऋषियोंका भी ऋण चुकाया है,क्षत्रियके धर्मको पाला है. इसलिये हे द्विजवर! आज मैं पाण्डवोंसें ऐसी लाचारीकी बात नहीं कहसकता ॥ २९-३० ॥ इस संसारमें सुख सदा नहीं रहता, फिर राज्य और यश सदा कैसे रहसकते हैं? इस जगत्में कीर्त्ति प्राप्त करनी चाहिये और वह कीर्त्ति युद्धके सिवाय और किसी प्रकार नहीं मिलसकती ।।३१॥ क्षत्रियका जो घरमें मरण होजाता है वह निन्दित मानाजाता है, घरमें खाट पर

महानेष यच्छय्यामरणं गृहे ॥३२॥ अरण्ये यो विमुच्येत संग्रामे वा तनुं नरः। क्रतूनाहृत्य महतो महिमानं स गच्छति ॥ ३३ ॥ कृपणं विलपन्नार्त्तो जरयाभिपरिप्लुतः। म्रियते रुदतां मध्ये ज्ञातीनां न स पूरुषः ॥३४॥ त्यक्त्वा तु विविधान् भोगान् प्राप्तानां परमां गतिम्। अपीदानीं सुयुद्धेन गच्छेयं यत्सलोकताम् ॥ ३५ ॥ शूराणामार्यवृत्तानां संग्रामेष्वनिवर्त्तिनाम्। धीमतां सत्यसन्धानां सर्वेषां क्रतुयाजिनाम् ॥ ३६ ॥ शस्त्रावभृथपूतानां ध्रुवं वासस्त्रिविष्टपे। मुदा नूनं प्रपश्यन्ति युद्धे ह्यप्सरसाङ्गणाः ॥ ३७ ॥ पश्यन्ति नूनं पितरः पूजितान् सुरसंसदि। अप्सरोभिः परिवृतान् मोदमानांस्त्रिविष्टपे ॥३८॥ पन्थानममरैर्यातं शूरैश्चैवानिवर्त्तिभिः। अपि तत्सङ्गतं मार्गं वयमध्यारुहेमहि ॥ ३९ ॥ पितामहेन वृद्धेन

मरजाना क्षत्रियके लिये अधर्म है ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य महायज्ञों को करके वनमें या रणमें शरीरको छोड़ता है वह गौरव पाता है ॥ ३३ ॥ परंतु जो पुरुष वृद्धावस्थासे घिर गया है और दुःखसे विलाप करता २ अपने रोनेवाले सगे संबन्धियोंके बीचमें मरता है वह बड़ा नहीं मानाजाता ॥ ३४ ॥ मैं भी, अनेकों भोगोंको त्यागकर, उत्तम प्रकारका युद्ध करके, उत्तम आचरणवाले, संग्राममें पीठ न दिखानेवाले, सत्यप्रतिज्ञ, यज्ञ करनेवाले, बुद्धिमान् और परमगतिको पायेहुए वीरोंके लोकोंमें ही जाऊँगा ॥ ३५ ॥ ॥३६॥ शस्त्रकी धारपर अवभृथ (यज्ञांतका) स्नान करनेसे अवश्य ही स्वर्गवास मिलता है और अप्सराओंके झुण्ड भी आनंदके साथ युद्धमें ऐसे पुरुषका दर्शन करते हैं ॥ ३७ ॥ इतना ही नहीं, किंतु देवसभामें देवता उस पुरुषकी पूजा करते हैं, अप्सराएँ उसको चारों ओरसे घेर लेती हैं और उसके पितर उसको आनंद भोगते हुए अपनी आँखोंसे देखते हैं ॥ ३८ ॥ देवता और रणमें पीठ न दिखानेवाले वीर जिस मार्गसे जाते हैं, उस मार्गसे ही हम भी जायँगे ॥ ३९ ॥ वृद्ध भीष्म पितामह, बुद्धिमान् द्रोणाचार्य, जय-

तथा चार्येण धीमता । जयद्रथेन कर्णेन तथा दुःशासनेन च ४०
घटमाना मदर्थेऽस्मिन् हताः शूरा जनाधिपाः । शेरते लोहिता-
क्ताङ्गाः संग्रामे शरविक्षताः ॥ ४१ ॥ उत्तमास्त्रविदः शूरा यथो-
क्तक्रतुयाजिनः । त्यक्त्वा प्राणान् यथान्यायमिन्द्रसद्मसु धिष्ठिताः
॥ ४२ ॥ तैः स्वयं रचितो मार्गो दुर्गमो हि पुनर्भवेत । सम्पतद्भि-
र्महावेगैर्यास्यद्भिरिह सद्गतिम् ॥ ४३ ॥ ये मदर्थे हताः शूरास्तेषां
कृतमनुस्मरन् । ऋणं तत्प्रतियुञ्जानो न राज्ये मन आदधे ४४
घातयित्वा वयस्यांश्च भ्रातॄनथ पितामहान् । जीवितं यदि रक्षेयं
लोको मां गर्हयेद्ध्रुवम् ॥ ४५ ॥ कीदृशं च भवेद्राज्यं मम हीनस्य
बन्धुभिः । सखिभिश्च विशेषेण प्रणिपत्य च पांडवम् ॥ ४६ ॥
सोऽहमेनादृशं कृत्वा जगतोऽस्य पराभवम् । सुयुद्धेन ततः स्वर्गं

द्रथ, कर्ण और दुःशासनने मेरे लिये यत्न करके इस युद्धमें बहुत से वीर राजाओंको मारडाला है,जो उनके बाणोंसे विंधकर लोहू-लुहान शरीरवाले राजे रणमें सोरहे हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता, शास्त्रमें लिखी विधिसे यज्ञ करनेवाले वीर उचित-रीतिसे रणमें प्राणोंको त्यागकर इंद्रलोकको चलेगये हैं ॥ ४२ ॥ उन वीरोंने इस लोकमें ही सद्गति पा बड़े वेगसे तहाँ जाकर स्वयं स्वर्गके मार्गको सुगम करलिया है,यदि मैं युद्ध नहीं करूँगा तो वह मार्ग मेरे लिये दुर्गम होजायगा ॥४३॥ जिन शूरोंने मेरे लिये प्राण दिये हैं, उनके कर्त्तव्यको स्मरण करता हुआ,उनके ऋणसे मुक्त होनेके लिये मैं राज्यका तो विचार ही नहीं करता ४४ मित्र, भाई और दादाओंको मरवा कर यदि मैं अपने प्राणोंको बचाऊँगा तो निःसंदेह लोकमें मेरी निन्दा होगी ॥४५॥ मेरे और कुटुम्बी मित्र सब मारे गये ! अब मैं पाण्डवोंको प्रणाम करके जो राज्य लूँगा वह राज्य किस कामका होगा ? ॥४६॥ इस लिये मैं तो अब इस जगत्का तिरस्कार करके, उत्तम युद्धके द्वारा स्वर्ग ही पाऊँगा,

प्राप्स्यामि न तदन्यथा ॥ ४७ ॥ एवं दुर्योधनेनोक्तं सर्वे संपूज्य तद्वचः । साधु साध्विति राजानं क्षत्रियाः संबभाषिरे ॥ ४८ ॥ पराजयमशोचन्तः कृतचित्ताश्च विक्रमे । सर्वे सुनिश्चिता योद्धुमुदग्रमनसोऽभवन् ॥ ४९ ॥ ततो वाहान् समाश्वास्य सर्वे युद्धाभिनन्दिनः । ऊने द्वियोजने गत्वा प्रत्यतिष्ठन्त कौरवाः ॥ ५० ॥ आकाशे विद्रुमे पुण्ये प्रस्थे हिमवतः शुभे। अरुणां सरस्वतीं प्राप्य पपुः सस्नुश्च ते जलम् ॥ ५१ ॥ तव पुत्रकृतोत्साहाः पर्यवर्त्तन्त ते ततः । पर्यवस्थाप्य चात्मानमन्योन्येन पुनस्तदा ॥ सर्वे राजन् न्यवर्त्तन्त क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥ ५२ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि दुर्योधनवाक्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इसके सिवाय और कुछ नहीं करूँगा ॥ ४७ ॥ दुर्योधनने ऐसा कहा और सब क्षत्रियोंने बहुत ठीक, बहुत ठीक कहकर उसकी बातका आदर किया ॥ ४८ ॥ सबने अपनी पराजयका शोक त्यागदिया, मनमें पराक्रम करनेकी ठान ली, युद्ध करनेका निश्चय किया और उनके मन खिल उठे ॥ ४९ ॥ तदनंतर युद्धकी इच्छावाले कौरवपक्षके सब योधाओंने अपनी सवारियोंको शांति देकर दो योजन (८ कोस) से कुछ एक कम दूरके स्थान पर जाकर पड़ाव डालदिया ॥ ५० ॥ फिर हिमालयके वृक्षशून्य, पवित्र और रमणीय प्रदेशमें बहतीहुई लालजलवाली सरस्वती नदीके तटपर जा उसके जलमें स्नान किया और फिर जल पिया ॥ ५१ ॥ फिर दुर्योधन की बातोंसे जिनको उत्साह हुआ था ऐसे उन क्षत्रिय योधाओंने उस स्थान पर ही निवास किया और आपसमें धीरज देकर समझाया, हे राजन् ! कालके प्रेरणा किये हुए वे सब क्षत्रिय रणसे विमुख न होकर युद्ध करनेके लिये दूसरे दिन फिर रणभूमिकी ओरको ही लौट पड़े ॥ ५२ ॥ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ छ छ छ छ

संजय उवाच । अथ हैमवते प्रस्थे स्थित्वा युद्धाभिनन्दिनः । सर्व एव महायोधास्तत्र तत्र समागताः ॥ १ ॥ शल्यश्च चित्रसेनश्च शकुनिश्च महारथः । अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ २ ॥ सुषेणोऽरिष्टसेनश्च धृतसेनश्च वीर्यवान् । जयत्सेनश्च राजानस्ते रात्रिमुषितास्ततः ॥ ३ ॥ रणे कर्णे हते वीरे त्रासिता जितकाशिभिः । नाऽलभन् शर्म ते पुत्रा हिमवन्तमृते गिरिम् ॥ ४ ॥ तेऽब्रुवन् सहितास्तत्र राजानं शल्यसन्निधौ । कृतयत्ना रणे राजन् संपूज्य विधिवत्तदा ॥ ५ ॥ कृत्वा सेनाप्रणेतारं परांस्त्वं योद्धुमर्हसि । येनाभिगुप्ताः संग्रामे जयेमासुहृदो वयम् ॥ ६ ॥ ततो दुर्योधनः स्थित्वा रथे रथवरोत्तमम् । सर्वयुद्धविधानज्ञमन्तकप्रतिमं युधि ॥ ७ ॥ स्वाङ्गं प्रच्छन्नशिरसं कम्बु-

संजय कहता है, कि—हे धृतराष्ट्र ! तदनन्तर सब बड़े २ योधा जो युद्ध करनेके अनुकूल थे, हिमालयकी तलैटीमें विश्राम लेकर जहां तहां इकट्ठे होगए ॥ १ ॥ शल्य, चित्रसेन, महारथी शकुनि अश्वत्थामा, कृपाचार्य, सात्वतवंशी कृतवर्मा, सुषेण, अरिष्टसेन, पराक्रमी धृतसेन और जयत्सेन आदि राजे तहां रातको रहे थे ॥२॥ ॥ ३ ॥ रणमें वीर कर्णके मारेजाने पर विजयी पाण्डवोंसे भयभीत हुए तुम्हारे पुत्रोंको हिमालयके सिवाय और कहीं सुख नहीं मिला ॥ ४ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर सब राजाओंने युद्धके लिये उद्योग किया और इकट्ठे होकर राजा शल्यके सामने दुर्योधनकी विधिवत् पूजा करके उससे कहा, कि—॥ ५ ॥ हे राजन् ! किसीको सेनापति बनाकर तुम्हें युद्ध करना चाहिये, सेनापति नियत होजाने पर हम उससे रक्षा पातेहुए संग्राममें शत्रुओंका पराजय करेंगे ॥६॥ दूसरे राजाओंकी इस बातको सुनकर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन रथमें सवार हो अश्वत्थामाके पास गया, अश्वत्थामा भी एक श्रेष्ठ महारथी था, युद्धकी सब कलाओंको जानता था और युद्धमें कालकी समान भयानक मालूम होताथा ॥ ७ ॥ शरीरमें दर्शनीय, शिर

शीर्षं प्रियंवदम् । व्याकोषपद्मपत्राक्षं व्याघ्रास्यं मेरुगौरवम् ॥
स्थाणोर्वृषस्य सदृशं स्कन्धनेत्रगतिस्वरैः । पृथुश्लिष्टायतभुजं सुविस्तीर्णवरोरसम् ॥ ९ ॥ जवे बले च सदृशमरुणानुजवातयोः । आदित्यस्यार्चिषा तुल्यं बुद्ध्या चोशनसा समम् ॥ १० ॥ कान्तिरूपसुखैश्वर्यैस्त्रिभिश्चन्द्रमसा समम् । कांचनोत्पलसंघातैः सदृशं श्लिष्टसंधिकम् ॥ ११ ॥ सुवृत्तोरुकटीजंघं सुपादं स्वंगुलीनखम् । स्मृत्वा स्मृत्वैव तु गुणान्धात्रा यत्नाद्विनिर्मितम् ॥ १२ ॥ सर्वलक्षणसम्पन्नं निपुणं श्रुतिसागरम् । जेतारं तरसारीणामजेयं शत्रुभिर्बलात् ॥ १३ ॥ दशाङ्गं यश्चतुष्पादमिष्वस्त्रं वेद तत्त्वतः ।

पर शिरस्त्राण पहरे, शङ्खकीसी गर्दनवाला, मधुरभाषी, खिले-हुए कमलके पत्रोंकी समान नेत्रोंवाला, व्याघ्रकी समान भयानक मुखवाला और मेरुकी समान गौरववाला था ॥ ८ ॥ उसके कंधे नेत्र, चाल और स्वर महादेवके नन्दीगणकेसे थे, उसकी भुजाएँ पुष्ट, चिपटी हुईं और लम्बी थीं, उसका वक्षःस्थल श्रेष्ठ और विशाल था ॥ ९ ॥ उसका बल और वेग गरुड़ तथा पवनकी समान था, वह सूर्यकी समान तेजस्वी, और शुक्रकी समान बुद्धिमान् था ॥ १० ॥ उसकी कांति, रूप तथा सुखका ऐश्वर्य चन्द्रमाकी समान थे, उसका शरीर सुवर्णके ढेरकी समान था, सब शरीरके जोड़ परस्पर मिलेहुए थे ॥ ११ ॥ उसकी साँथल कमर और जङ्घा सुन्दर तथा गोल थीं, चरण उत्तम थे, अंगुलियें और नख भी उत्तम थे इस प्रकार ब्रह्माने गुणोंका स्मरण कर करके बड़े उद्योग से उसको बनाया था ॥ १२ ॥ उसमें सब प्रकार के शुभ लक्षण थे, वह चतुर, वेदका समुद्र, शत्रुओं को वेगसे जीतने वाला और शत्रुओंका अजेय था ॥ १३ ॥ वह धनुर्वेदके दश अङ्ग (व्रत, शांति, धृति, पुष्टि, स्मृति, दोष, अरिभेदन, चिकित्सा, उद्दीपन, कृष्टि और इष्वस्त्र) और चार पादों को (दीक्षा, शिक्षा, आत्मरक्षा और इनके साधन युक्तिकलाको) अच्छे प्रकारसे जानता था, छः

साङ्गांश्च चतुरो वेदान् सम्यगाख्यानपंचमान् ॥ १४ ॥ आराध्य त्र्यंबकं यत्नाद् व्रतैरुग्रैर्महातपाः । अयोनिजायामुत्पन्नो द्रोणेनायोनिजेन यः ॥ १५ ॥ तमप्रतिमकर्माणं रूपेणासदृशं भुवि । पारगं सर्वविद्यानां गुणार्णवमनिन्दितम् ॥ १६ ॥ तमभ्येत्यात्मजस्तुभ्यमश्वत्थामानमब्रवीत् । यं पुरस्कृत्य सहिता युधि जेष्याम पाण्डवान् ॥ १७ ॥ गुरुपुत्रोऽद्य सर्वेषामस्माकं परमा गतिः । भवांस्तस्मान्नियोगात्ते कोऽस्तु सेनापतिर्मम ॥ १८ ॥ द्रौणिरुवाच । अयं कुलेन वीर्येण तेजसा यशसा श्रिया । सर्वैर्गुणैः समुदितः शल्यो नोऽस्तु चमूपतिः ॥ १९ ॥ भागिनेयान्निजांस्त्यक्त्वा कृतज्ञोऽस्मानुपागतः । महासेनो महाबाहुर्महासेन इवापरः ॥ २० ॥ एनं सेनापतिं कृत्वा नृपतिं नृपसत्तम । शक्यः प्राप्तुं जयोऽस्माभि-

---

अङ्गों सहित चारों वेदोंको और इतिहास पुराण नामक पाँचवें वेदको भी जानता था ॥ १४ ॥ महातपस्वी अश्वत्थामाने उग्रतप करके बड़े उद्योगसे त्रिनयन महादेवजीकी आराधना की थी, वह अयोनिज द्रोणाचार्यसे अयोनिजा मातामें उत्पन्न हुआ था १५ अनुपम पराक्रमी और भूमण्डल पर अनुपम रूपवान् था, सब विद्याओंका पारगामी गुणोंका समुद्र और पवित्रात्मा था ॥१६॥ ऐसे अश्वत्थामाके पास जाकर तुम्हारे पुत्रने कहा, कि—आप हमारे गुरुपुत्र और हम सबोंके आधार हो, इसलिये हम आपसे बूझते हैं, कि—हम सब किसको सेनापति बनाकर युद्धमें पाण्डवों को जीतसकेंगे? आप आज्ञा दीजिये, कि—मैं अपनी सेनाका अधिपति किसको बनाऊँ ॥ १७ ॥ १८ ॥ अश्वत्थामाने कहा, कि— यह शल्य कुल, रूप, तेज, यश, लक्ष्मी और सब गुणोंमें बढ़ा हुआ है, यही हमारा सेनापति बने ॥ १९ ॥ यह कृतज्ञ राजा अपने भानजोंको छोड़कर हमारे पक्षमें आया है, बड़ी भारी सेनावाला यह महाबाहु राजा दूसरे स्वामिकार्त्तिकेयकी समान पराक्रमी है ॥ २० ॥ हे राजसत्तम! इस राजाको सेनापति बना

देवैः स्कन्दमिवाजितम् ॥ २१ ॥ तथोक्ते द्रोणपुत्रेण सर्व एव नराधिपाः । परिवार्य स्थिताः शल्यं जयशब्दांश्च चक्रिरे ॥ २२॥ युद्धाय च मतिं चक्रुरावेशं च परं ययुः । ततो दुर्योधनः शल्यं भूमौ स्थित्वा रथे स्थितम् ॥ २३ ॥ उवाच प्रांजलिर्भूत्वा द्रोणभीष्म-समं रणे । अयं स कालः संप्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ॥ २४ ॥ यत्र मित्रममित्रम्वा परीक्षन्ते बुधा जनाः । स भवानस्तु नः शूरः प्रणेता वाहिनीमुखे ॥ २५ ॥ रणञ्च याते भवति पाण्डवा मन्द-चेतसः । भविष्यन्ति सहामात्याः पंचालांश्च निरुद्यमाः ॥ श्रुत्वा दुर्योधनवचः शल्यो मद्राधिपस्तदा । उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो रा-जानं राजसन्निधौ ॥ २७ ॥ शल्य उवाच । यत्तु मां मन्यसे राजन् कुरुराज करोमि तत् । त्वत्प्रियार्थं हि मे सर्वं प्राणा राज्यं

नेसे, जैसे देवताओंने अजेय स्वामिकार्त्तिकेयको सेनापति बनाकर विजय पाई थी, तैसे ही हम भी विजय पावेंगे ॥ २१ ॥ अश्व-त्थामाके इसप्रकार कहने पर सब ही राजे शल्यको घेरकर जय-घोष करने लगे ॥ २२ ॥और परम आवेशमें आकर युद्ध करने के लिये अन्तःकरणसे तयार होगए, तब दुर्योधनने भूमिपर खड़े खड़े दोनों हाथ जोड़कर उत्तम रथमें बैठे हुए, रणमें भीष्म और द्रोणकी समान पराक्रम करनेवाले शल्यसे कहा, कि–हे मित्र-वत्सल ! जिस समय पर चतुर पुरुष मित्र और शत्रुकी परीक्षा करते हैं, यह वही समय आगया है, आप वीर हैं, इसलिये हमारी सेनाके नायक बनिये ॥ २३–२५ ॥ आप रणमें चढ़कर गये कि–पाण्डवोंका उत्साह ढीला पड़जायगा और पञ्चाल राजे अपने मंत्रियों सहित हिम्मत हार बैठेंगे ॥ २६ ॥ दुर्योधनकी इस बातको सुनकर बात करनेवालोंमें चतुर मद्रदेशके स्वामी राजा शल्यने सब राजाओंके सामने उस समय दुर्योधनसे यह बात कही ॥ २७ ॥ शल्यने कहा, कि–हे कुरुराज ! यदि मुझे सेनापतिका सन्मान देते हो तो मैं ऐसा ही करूँगा, प्राण, राज्य और मेरा यह सब तुम्हारा

धनानि च ॥ २८ ॥ दुर्योधन उवाच । सैनापत्येन वरये त्वामहं मातुलातुलम् । सोऽस्मान् पाहि युधां श्रेष्ठ स्कन्दो देवानिवाहवे २९ अभिषिच्यस्व राजेंद्र देवानामिव पावकिः । जहि शत्रून् रणे वीर महेन्द्रो दानवानिव ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यदुर्योधनसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

संजय उवाच । एतच्छ्रुत्वा वचो राज्ञो मद्रराजः प्रतापवान् । दुर्योधनं तदा राजन् वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥ दुर्योधन महाबाहो शृणु वाक्यविदां वर । यावेतौ मन्यसे कृष्णौ रथस्थौ रथिनां वरौ २ न मे तुल्यावुभावेतौ बाहुवीर्ये कथञ्चन । उद्यतां पृथिवीं सर्वां ससुरासुरमानवाम् ॥ ३ ॥ योधयेयं रणमुखे संक्रुद्धः किमु पांडवान् । विजेष्ये च च रणे पार्थान् सोमकांश्च समागतान् ॥ ४ ॥

प्रिय करनेके लिये ही है ॥ २८ ॥ दुर्योधनने कहा, कि–हे योधाओंमें श्रेष्ठ मामाजी ! मैं आपको सेनापतिके पदपर नियत करता हूँ, जैसे स्वामी कार्त्तिकेयने युद्धमें देवताओंकी रक्षा की थी, तैसे ही आप हमारी रक्षा करिये ॥ २९ ॥ जैसे देवताओं ने स्वामिकार्त्तिकेयका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया था, ऐसे ही आपका हमारे सेनापतिके पद पर अभिषेक हो, हे वीर ! जैसे महेन्द्रने रणमें दानवोंका संहार किया था तैसे ही आप शत्रुओंका संहार करिये ॥ ३० ॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

संजय कहता है, कि–हे राजन् ! प्रतापी राजा दुर्योधनकी बात सुनकर मद्रराज शल्यने यह उत्तर दियाकि ॥१॥ बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ हे महाबाहु दुर्योधन ! मेरी बात सुन–तू इन दोनों रथोंमें बैठेहुए कृष्ण और अर्जुनको महारथी समझता है, परन्तु ये दोनों बाहुबलमें किसी प्रकार भी मेरी समान नहीं हैं, मैं यदि क्रोध करूँ तो देवता, दानव और मनुष्यों सहित सब पृथिवी उलटजाय ! फिर रणके मुहाने पर पाण्डवोंके साथ लड़ना कौनसी बात है ? यदि पांडव और सोमक इकट्ठे होकर रणमें आवेंगे तो भी जीत

अहं सेनाप्रणेता ते भविष्यामि न संशयः । तं च व्यूहं विधा-
स्यामि न तरिष्यन्ति यं परे ॥ ५ ॥ इति सत्यं ब्रवीम्येष
दुर्योधन न संशयः ! एवमुक्तस्ततो राजा मद्राधिपतिमंजसा ॥६॥
अभ्यषिंचत सेनायाः मध्ये भरतसत्तम । विधिना शास्त्रदृष्टेन
हृष्टरूपो विशांपते ॥ ७ ॥ अभिषिक्ते ततस्तस्मिन् सिंहनादो महा-
नभूत् । तत्र सैन्येष्ववाद्यन्त वादित्राणि च भारत ॥ ८ ॥ हृष्टा-
श्चासंस्तथा योधा मद्रकाश्च महारथाः । तुष्टुवुश्चैव राजानं शल्य-
माहवशोभिनम् ॥ ९ ॥ जय राजंश्चिरं जीव जहि शत्रून् समाग-
तान् । तव बाहुबलं प्राप्य धार्त्तराष्ट्रा महाबलाः ॥ १० ॥ नि-
खिलाः पृथिवीं सर्वां प्रशासन्तु हतद्विषः । त्वं हि शक्तो रणे जेतुं
ससुरासुरमानवान् ॥ ११ ॥मर्त्यधर्माण इह तु किमु सोमकसृ-

लूँगा ॥ २-४ ॥ मैं निःसन्देह तेरा सेनापति बनूँगा और ऐसा व्यूह बनाऊँगा, कि-शत्रु जिसका पार न पासकेंगे ॥ ५ ॥ हे दुर्योधन ! यह मैं सत्य कहता हूँ, इसमें सन्देह नहीं है, जब दुर्योधन से ऐसा कहा तब हे राजन् ! अपने पराजयका निश्चय होनेके कारण खिन्नमनवाले दुर्योधनने शास्त्रोक्त विधिसे सेनाके मध्यमें मद्र देशके राजा शल्यका सेनापतिके पद पर अभिषेक कर दिया ॥ ६ ॥ ७ ॥ हे भारत ! शल्यका सेनापतिके पद पर अभिषेक होजाने पर तुम्हारी सेनामें सिंहोंकीसी बड़ी भारी गर्जना होने लगी और बाजे भी बजनेलगे ॥ ८ ॥ मद्रदेशके महारथी योधा बड़े प्रसन्न हुए तथा संग्राममें शोभा पानेवाले राजा शल्यकी स्तुति करनेलगे कि-॥ ९ ॥ हे राजन् ! तुम्हारी जय हो, चिरकाल तक जीते रहो, इकट्ठे हुए शत्रुओंका संहार करो। तुम्हारे बाहु-बलका आश्रय पाकर धृतराष्ट्रके सब महाबली पुत्र शत्रुओंका नाश करके अखिल भूमण्डल का शासन करें, आप तो रणमें देवता दानव और मनुष्योंको भी जीत सकते हैं, ॥ १० ॥ ११ ॥ फिर इन मरणधर्मा सृंजय और सोमकोंकी तो बात ही क्या है ? इसप्रकार

ञ्जयात् ॥ एवं संपूज्यमानस्तु मद्राणामधिपो बली ॥ १२॥ हर्षं
माप तदा वीरो दुरापमकृतात्मभिः । शल्य उवाच । अद्य चाहं
रणे सर्वान् पञ्चालान् सह पांडवैः ॥ १३ ॥ निहनिष्यामि वा
राजन् स्वर्गं यास्यामि वा हतः । अद्य पश्यन्तु मां लोका विचर-
न्तमभीतवत् ॥ १४ ॥ अद्य पांडुसुताः सर्वे वासुदेवः ससा-
त्यकिः । पंचालाश्चेदयश्चैव द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥ १५ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखंडी च सर्वे चापि प्रभद्रकाः । विक्रमं मम पश्य-
न्तु धनुषश्च महद्‍ बलम् ॥ १६ ॥लाघवं चास्त्रवीर्यं च भुज-
योश्च बलं युधि । अद्य पश्यंतु मे पार्थाः सिद्धाश्च सह चारणैः १७
यादृशं मे बलं बाह्वोः संपदस्त्रेषु या च मे । अद्य मे विक्रमं
दृष्ट्वा पांडवानां महारथाः ॥ १८ ॥ प्रतीकारपरा भूत्वा चेष्टंतां
विविधाः क्रियाः । अद्य सैन्यानि पांडूनां द्रावयिष्ये समन्ततः १६

मद्रदेशके योधाओंने मद्रराजकी स्तुति की, इसलिये उस समय वीर शल्यको ऐसा हर्ष हुआ, कि-जो पुण्यहीनोंको नहीं प्राप्त होसकता। शल्य कहने लगा, कि-हे राजन् ! आज मैं रणमें या तो पांडवोंको और सब पंचालोंको ही मारडालूँगा अथवा मैं ही मारा जाकर स्वर्गको चलाजाऊँगा, आज लोक देखें, कि-मैं कैसा निडर होकर विचरता हूँ ॥ १२-१४ ॥ आज सब पांडव, सात्यकीके साथ कृष्ण, पञ्चाल और चेदि देशके राजे, द्रौपदीके सब पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा सब प्रभद्रक मेरे पराक्रम और धनुषके महाबलको देखें॥ १५॥ १६ ॥ आज रणमें सिद्ध और चारणों के साथ पाण्डव मेरे हाथकी फुरती, अस्त्रोंके पराक्रम और भुजबलको देखें ॥ १७ ॥ पांडवोंके महारथी आज मेरी भुजाओंके बलको, अस्त्रोंकी सम्पत्ति और मेरे पराक्रमको देखकर वैरका बदला लेनेकी चेष्टा करते हुए भाँति २ के उद्योग करलें, आज पांडवों की सेनाओंको चारों ओरको भगाकर छोडूँगा ॥ १८ ॥ १६ ॥

द्रोणभीष्पावति विभो सूतपुत्रं च संयुगे। विचरिष्ये रणे युध्यन्
प्रियार्थं तव कौरव ॥ २० ॥ संजय उवाच। अभिषिक्ते तदा
शल्ये तव सैन्येषु मानद। न कर्णव्यसनं किंचिन्मेनिरे भरतर्षभ २१
हृष्टाः सुमनसश्चैव बभूवुस्तत्र सैनिकाः। मेनिरे निहतान् पा-
र्थान् मद्रराजवंशगतान् ॥ २२ ॥ प्रहर्षं प्राप्य सेना तु तावकी
भरतर्षभ। तां रात्रिमुषिता सुप्ता हर्षचित्ता च साऽभवत् ॥ २३ ॥
सैन्यस्य तव तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः। वार्ष्णेयमब्रवीद्वाक्यं
सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ २४ ॥ मद्रराजः कृतः शल्यो धार्त्तराष्ट्रेण
माधवः। सेनापतिर्महेष्वासः सर्वसैन्येषु पूजितः ॥ २५ ॥ एतज्-
ज्ञात्वा यथाभूतं कुरु माधव यत् क्षमम्। भवान्नेता च गोप्ता च
विधत्स्व यदनन्तरम् ॥२६॥ तमब्रवीन्महाराज वासुदेवो जनाधि-

हे कुरुवंशी राजन्! तेरा प्रिय करने के लिये मैं रणभूमिमें भीष्म द्रोण और कर्णसे भी अधिक युद्ध करता हुआ घूमूँगा ॥ २० ॥ संजय कहता है, कि–हे मान देनेवाले भरतवंशी राजन्! जब शल्य तुम्हारी सेनाका नायक बनादिया गया तब सैनिक कर्णके दुःखको सर्वथा भूलगये, सब हर्षयुक्त और प्रसन्न मनवाले होकर समझने लगे, कि–पांडव राजा शल्यके वशमें होगए और अब मारे जाते हैं ॥ २१–२२ ॥ हे भरतवंशी राजन्! तदनन्तर तुम्हारी सेना मन ही मनमें प्रसन्न होने लगी और उसने वह रात हिमालयके समीप निद्रा लेकर बिताई ॥ २३ ॥ तुम्हारी सेनाके हर्षभरे शब्दको सुनकर राजा-युधिष्ठिरने सब क्षत्रिय राजाओंके सामने श्रीकृष्णसे बूझा, कि– ॥ २४ ॥ हे माधव! दुर्योधनने महाधनुर्धारी-मद्रदेशके राजा शल्य को सेनापति बनाया है और सब सेनाओंने उसका सत्कार किया है, इस बातको समझकर आप जो उचित समझें सो करिये, आप हमारे नेता और रक्षक हो, इस लिये अब आपको जो कुछ करना हो वह कीजिये ॥ २५ ॥ २६ ॥ यह सुनकर श्रीकृष्णजीने राजा युधि-

पम् । आर्त्तायनिमहं जाने यथातत्त्वेन भारत ॥ २७ ॥ वीर्यवांश्च महातेजा महात्मा च विशेषतः । कृती च चित्रयोधी च संयुक्तो लाघवेन च ॥ २८ ॥ यादृग्भीष्मो यथा द्रोणो यादृक्कर्णश्च संयुगे । तादृशस्तद्विशिष्टो वा मद्रराजो मतो मम ॥ २९ ॥ युध्यमानस्य तस्याहं चिन्तयन्नश्च भारत । योद्धारं नाधिगच्छामि तुल्यरूपं जनाधिप ॥३०॥ शिखण्ड्यर्जुनभीमानां सात्वतस्य च भारत । धृष्टद्युम्नस्य च तथा बलेनाभ्यधिको रणे ॥ ३१ ॥ मद्रराजो महाराज सिंहद्विरदविक्रमः । विचरिष्यत्यभीः काले कालः क्रुद्धः प्रजास्विव ॥ ३२॥ तस्याद्य न प्रपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे । त्वामृते पुरुषव्याघ्र शार्दूलसमविक्रमम् ॥ ३३ ॥ स देवलोके कृत्स्नेस्मिन्नान्यस्त्वत्तः पुमान् भवेत् । मद्रराजं रणे क्रुद्धं यो हन्यात् कुरुनन्दनः

ष्ठिरसे कहा, कि— हे भारत ! मैं आर्त्तायनके पुत्र शल्यको अच्छे प्रकारसे जानता हूँ ॥ २७ ॥ वह पराक्रमी महातेजस्वी, महात्मा पुण्यशील, युद्धकी विचित्र रीतियोंको जाननेवाला और फुरती से लड़नेवाला है ॥ २८ ॥ मेरी समझमें युद्ध करनेमें जैसे भीष्म, द्रोण और कर्ण थे यह शल्य भी वैसा ही अथवा उनसे भी बढा हुआ है ॥ २९ ॥ हे भारत ! यह जब युद्ध करने लगेगा तब इसके सामने युद्ध करनेवाला इसके समान बलवान् योधा, विचार करता हूँ तो मेरी समझमें कोई नहीं आता ३० रणमें शिखंडी, अर्जुन, भीम, सात्वतकुलके सात्यकी और धृष्टद्युम्नसे भी राजा शल्य अधिक बलवान् है ॥ ३१ ॥ सिंह और हाथी की समान पराक्रमी महाराज मद्रपति, जैसे प्रलयके समय कोपमें भरा हुआ काल प्रजामें निर्भय घूमता है ऐसे ही युद्धके समय सेनामें निर्भय घूमेगा ॥ ३२ ॥ हे पुरुषव्याघ्र राजा युधिष्ठिर ! युद्धमें शल्यके साथ लड़े ऐसा सिंहसमान पराक्रमी तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई भी प्रतिभट आज मुझे नहीं दीखता ॥३३॥ हे कुरुनन्दन ! रणमें क्रोधायमान हुए मद्रराजको मारडाले, ऐसा समग्र भूमण्डल पर

॥ ३४ ॥ अहन्यहनि युध्यन्तो क्षोभयंतं बलं तव । तस्माज्जहि रणे शल्यं मघवानिव शम्बरम् ॥ ३५ ॥ अजेयश्चाप्यसौ वीरो धार्त्तराष्ट्रेण सत्कृतः । तवैव विजयो नूनं हते मद्रेश्वरे युधि ॥ ३६ ॥ तस्मिन् हते हतं सर्वं धार्त्तराष्ट्रबलं महत् । एतत् श्रुत्वा महाराज वचनं मम साम्प्रतम् ॥ ३७ ॥ प्रत्युद्याहि रणे पार्थ मद्रराजं महारथम् । जहि चैनं महाबाहो वासवो नमुचिं यथा ॥ ३८ ॥ न चैवात्र दया कार्य्या मातुलोयं ममेति वै । क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य जहि मद्रजनेश्वरम् ॥ ३९ ॥ भीष्मद्रोणार्णवं तीर्त्वा कर्णपातालसम्भवम् । मा निमज्जस्व सगणः शल्यमासाद्य गोष्पदम् ॥४०॥ यच्च ते तपसा वीर्यं यच्च क्षात्रबलं तव । तद्दर्शय रणे सर्वं जहि

ही क्या देवलोकमें भी तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई पुरुष नहीं है ॥ ३४ ॥ वह प्रतिदिन युद्ध करके तुम्हारी सेनाको घबड़ा देता है इसलिये जैसे इन्द्रने शंबरासुरका नाश किया था तैसे ही तुम भी शल्यका नाश करो, दुर्योधनने भी इस अजेय योधाका सत्कार किया है, इसको सेनापति बनाया है, इसलिये रणमें मद्रराजको मारनेसे तुम्हारी विजय अवश्य ही होगी ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसको मारडालने पर दुर्योधनकी सब सेनाको मरी हुई समझना, हे राजा युधिष्ठिर ! मेरी इस बातको सुनकर तुम महारथी शल्यके ऊपर चढजाओ और जैसे नमुचिने इन्द्रको मारा था तैसे ही तुम भी इसको मारडालो ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ यह मेरा मामा लगता है, ऐसा समझकर इसके ऊपर दया न करना, किन्तु क्षत्रियधर्मको आगे करके मद्रराजको मारही डालना ॥३९॥ तुम द्रोण और भीष्मरूप समुद्रके पार होगये हो, कि–जो समुद्र कर्णरूप पातालमेंसे उत्पन्न हुआ था और अब शल्यरूप छोटेसे गढेको लाँघतेमें तुम सेनासहित उसमें डूबोगे नहीं ॥४० ॥ तुममें यदि तपका पराक्रम हो और यदि क्षात्रबल हो तो यह सब रणमें दिखलाओ और शल्यको

चैनं महारथम् ॥ ४१ ॥ एतावदुक्त्वा वचनं केशवः परवीरहा । जगाम शिबिरं सायं पूज्यमानोऽथ पाण्डवैः ॥ ४२ ॥ केशवे तु तदा याते धर्मराजो युधिष्ठिरः । विसृज्य सर्वान् भ्रातॄंश्च पञ्चालानथ सोमकान् ॥ ४३ ॥ सुष्वाप रजनीं तान्तु विशल्य इव कुञ्जरः । ते च सर्वे महेष्वासाः पञ्चालाः पाण्डवास्तथा ॥४४॥ कर्णस्य निधने हृष्टा सुषुपुस्तां निशान्तदा । गतज्वरं महेष्वासं तीर्णपारं महारथम् ॥ ४५ ॥ बभूव पाण्डवेयानां सैन्यं प्रमुदितं नृप । सूतपुत्रस्य निधने जयं लब्ध्वा च मारिष ॥ ४६ ॥ इति शल्यपर्वणि शल्यसैनापत्याभिषेके सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सञ्जय उवाच । व्यतीतायां रजन्यान्तु राजा दुर्योधनस्तदा । अब्रवीत्तावकान् सर्वान् सन्नह्यन्तां महारथाः ॥ १ ॥ राज्ञस्तु मतमाज्ञाय समनह्यत सा चमूः । अयोजयन् रथांस्तूर्णं पर्य्यधावं-

---

मारो ॥ ४१ ॥ ऐसा कहकर शत्रुओंका संहार करनेवाले तथा पांडवोंसे सन्मान पानेवाले श्रीकृष्ण सायङ्कालके समय अपनी छावनीमें चलेगये ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्णके अपनी छावनीमें चले जाने पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर रात होनेके कारण पंचालराजे और सोमक राजाओंको विदा करके शल्यरहित (घायल न हुए) हाथी की समान निद्रा लेनेलगे, कर्णके मरणसे आनन्द में भरे हुए महाधनुषधारी पंचालराजे और पाण्डव भी सो गए, हे राजन् कर्णके मारे जानेसे, बड़े२ धनुषधारी और महारथियोंसे भरीहुई पांडवोंकी सेना प्रसन्न होगई और शत्रुओंको जीतकर क्षेमकुशल से मानो पार उतरगई ॥ ४३--४६ ॥ सातवाँ अध्याय समाप्त ७

संजय कहता है, कि–हे राजन् ! रात बीत जाने पर दुर्योधन ने तुम्हारे सब सैनिकोंको आज्ञा दी, कि–हे महारथियों ! कवच पहर कर तयार होजाओ ॥ १ ॥ दुर्योधनके विचारको जानकर वह सब सेना कवचधारिणी होगई, कितने ही शीघ्रतासे रथोंको जोड़नेलगे और कितने ही चारों ओरको दौड़भाग करने लगे

स्तथापरे ॥ २॥ अकल्प्यन्त च मातङ्गाः समनह्यन्त पत्तयः । रथा-
नास्तरणोपेतान् चक्रुरन्ये सहस्रशः ॥ ३ ॥ वादित्राणाञ्च निनदः
प्रादुरासीद्विशाम्पते । योधनार्थं हि सैन्यानां योधानां चाप्युदीर्य्य-
ताम् ॥ ४ ॥ ततो बलानि सर्वाणि सेनाशिष्टानि भारत । प्रस्थि-
तानि व्यदृश्यन्त मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ ५ ॥ शल्यं सेनापतिं
कृत्वा मद्रराजं महारथाः । प्रविभज्य बलं सर्वमनीकेषु व्यवस्थिताः
॥ ६ ॥ ततः सर्वे समागम्य पुत्रेण तव सैनिकाः । कृपश्च कृतवर्मा
च द्रौणिः शल्योऽथ सौबलः ॥७॥ अन्ये च पार्थिवाः शेषाः समयं
चक्रिरे तदा । न न एकेन योद्धव्यं कथञ्चिदपि पाण्डवैः ॥ ८ ॥
यो ह्येकः पाण्डवैर्युध्येद्यो वा युद्ध्यन्तमुत्सृजेत् । स पञ्चभिर्भवे-
द्युक्तः पातकैश्चोपपातकैः ॥ ९ ॥ अन्योन्यं परिरक्षद्भिर्योद्धव्यं सहि-

---

॥ २ ॥ हाथियोंको युद्धके सामानसे सजा दिया गया, पैदल भी लड़ने के लिये उद्यत होने लगे, दूसरे सहस्रों पुरुष रथोंमें बिस्तर बिछाने लगे ॥ ३ ॥ बाजोंकी ध्वनि होने लगी तथा युद्धके लिये निकले हुए वीर गरजने लगे ॥ ४ ॥ हे भारत! उस समय बाकी बची हुई सब सेनायें मृत्युको न गिनकर युद्धके लिये संग्रामभूमि में जाती हुई दीखने लगीं ॥ ५ ॥ तदनन्तर महारथियोंने मद्र-राज शल्यको सेनापति बनाकर अपनी२ सेनाको विभागके अनु-सार लेजाकर लगादिया ॥ ६ ॥ और ये सब महारथी सैनिक तथा कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, शल्य, सुबलका पुत्र शकुनि और दूसरे बचे हुए राजाओंने आदरके साथ तुम्हारे पुत्रसे मिलकर यह निश्चय किया, कि-हममेंसे किसीको भी अकेला होकर पांडवोंके साथ किसीप्रकार भी नहीं लड़ना चाहिये और यदि हममेंसे किसीको अकेले ही पांडवोंसे लड़ना पड़े, तो उसको जो छोड़आवेगा उसको पाँच महापाप और उपपाप लगेंगे॥७-९॥ इसलिये हम सबोंको परस्पर एक दूसरेकी रक्षा करतेहुए साथ रहकर शत्रुके सामने लड़ना चाहिये, सब महारथी योधा इसप्रकार

तैश्च ह । एवं ते समयं कृत्वा सर्वे तत्र महारथाः ॥ १० ॥ मद्र-
राजं पुरस्कृत्य तूर्णमभ्यद्रवन् परान् । तथैव पाण्डवाः सर्वे व्यूह्य
सैन्यं महारणे ॥ ११ ॥ अभ्ययुः कौरवान् राजन् योत्स्यमानाः
शपम्बनः । तद्बलं भरतश्रेष्ठ क्षुब्धार्णवसमस्वनम् ॥ १२ ॥ समुद्र-
भूतार्णवाकारमुद्धूतरथकुञ्जरम् । धृतराष्ट्र उवाच । द्रोणस्य भीष्मस्य
च वै राधेयस्य मया श्रुतम् ॥ १३ ॥ पातनं शंस मे भूयः शल्य-
स्याथ सुतस्य मे । कथं रणे हतः शल्यो धर्मराजेन सञ्जय ॥१४॥
भीमसेनेन बलिना पुत्रो दुर्योधनो मम । संजय उवाच । क्षयं मनु-
ष्यदेहानां तथा नागाश्वसंक्षयम् ॥ १५ ॥ शृणु राजन् स्थिरो
भूत्वा संग्रामं शंसतो मम । आशा बलवती राजन् पुत्राणान्तेऽ-
भवत्तदा ॥ १६ ॥ हते द्रोणे च भीष्मे च सूतपुत्रे च पातिते । श-

निश्चय करके मद्रपति शल्यको आगे कर शीघ्रतासे शत्रुओंके ऊपर लड़नेको चढ़गए, ऐसे ही पाण्डवोंने भी महारणमें लड़नेकी इच्छासे अपनी सेनाको व्यूहके आकारमें चुनकर कौरवोंके सामनेको चढाई करदी, हे राजन् ! पाण्डवोंकी वह सेना क्षुब्ध हुए समुद्रकी समान गरज रही थी, उछलते हुए सागरसी मालूम होती थी और रथ तथा हाथियोंसे उभर रही थी, धृतराष्ट्रने पूछा कि- हे संजय ! मैंने भीष्म, द्रोण और कर्णका रणमें माराजाना सुन लिया, अब तू मुझे यह सुना, कि-युद्धमें शल्य और मेरे पुत्र कैसे मारे गये धर्मराजने शल्यका संहार कैसे किया था १०-१४ और भीमसेनने मेरे महाबाहु पुत्र दुर्योधनको कैसे मारा था, यह भी सुना, संजय कहता है, कि-हे राजन् ! मैं तुमसे मनुष्योंके, हाथियोंके और घोड़ोंके संहारकी बात कहता हूँ, उसको आप स्थिर होकर सुनिये, हे भूपते ! शल्यको सेनापति बनाया था उस समय तुम्हारे पुत्रोंके मनमें विजयकी बड़ी भारी आशा थी ॥ १५ ॥ १६ ॥ जब पाण्डवोंने भीष्म द्रोण और कर्णको

ल्यः पार्थान् रणे सर्वान्निहनिष्यति मारिष ॥ १७ ॥ तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वस्य च भारत । मद्रराजञ्च समरे समाश्रित्य महारथम् ॥ १८ ॥ नाथवन्तं तदात्मानममन्यत सुतस्तव । यदा कर्णे हते पार्थाः सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ १९ ॥ तदा राजन् धार्त्तराष्ट्रानाविवेश महद्भयम् । तान् समाश्वास्य योधांस्तु मद्रराजः प्रतापवान् ॥२०॥ व्यूह्य व्यूहं महाराज सर्वतोभद्रमृद्धिमत् । प्रत्युद्ययौ रणे पार्थान्मद्रराजः प्रतापवान् ॥ २१ ॥ विधुन्वन् कार्मुकं चित्रं वेगवद्बलवत्तरम् । रथप्रवरमास्थाय सैन्धवाश्वं महारथः २२ तस्य सूतो महाराज रथस्थोऽशोभयद्रथम् । स तेन संवृतो वीरो रथेनामित्रकर्षणः ॥ २३ ॥ तस्थौ शूरो महाराज पुत्राणान्ते भयप्रणुत् । प्रयाणे मद्रराजोऽभून्मुखं व्यूहस्य दंशितः ॥ २४ ॥ मद्र-

रणमें मारडाला, तब शल्यको सेनापतिका पद दियागया, उस समय कौरवोंके मनमें यह आशा बँधगई थी, कि-अब शल्य सब पांडवोंका नाश करडालेगा और इस ही आशाको हृदयमें रखकर धीरज धरेहुए तुम्हारे पुत्र महारथी मद्रराजका आश्रय ले अपनेको सनाथ मानने लगे, परंतु कर्णके मारेजानेपर पाण्डवोंने जब सिंहनाद किया था, उस समय तो तुम्हारे पुत्रोंके मनमें बड़ा भारी भय घुस बैठा था, हे महाराज ! प्रतापी मद्रराज शल्यने भयभीत हुए कौरवोंको और सैनिकोंको धीरज देकर शांत किया तथा सर्वतोभद्र नामका महाबलवान् व्यूह बनाया उसमें सेनाको चुन कर युद्धमें पांडवोंके ऊपर चढ़ाई करदी ॥ १७-२१ ॥ चढ़ाईके समय महारथी शल्य सिंधुदेशके घोड़ोंसे जुते हुए एक बड़े रथमें बैठा हुआ था, भारको नष्ट करनेवाले, बड़े ही वेगवान् विचित्र धनुषको हाथमें लेकर घुमारहा था हे महाराज! इसके रथ पर बैठा हुआ सारथी भी रथको शोभायमान कररहा था और शत्रुओंका संहार करनेवाला तथा तुम्हारे पुत्रोंके भयको दूर करनेवाला महारथी शल्य, ऐसे उत्तम रथमें बैठा था, चढ़ाईके समय शल्य कवच

कैः सहितो वीरैः कर्णपुत्रैश्च दुर्जयैः । सव्येऽभूत् कृतवर्मा च त्रिगर्तैः परिवारितः ॥ २५ ॥ गौतमो दक्षिणे पार्श्वे शकैश्च यवनैः सह । अश्वत्थामा पृष्ठतोऽभूत् काम्बोजैः परिवारितः ॥ २६ ॥ दुर्योधनोऽभवन्मध्ये रक्षितः कुरुपुङ्गवैः । हयानीकेन महता सौबलश्चापि संवृतः ॥ २७॥ प्रययौ सर्वसैन्येन कैतव्यश्च महारथः । पांडवाश्च महेष्वासा व्यूह्य सैन्यमरिन्दमाः ॥ २८ ॥ त्रिधा भूत्वा महाराज तव सैन्यमुपाद्रवन् । धृष्टद्युम्नः शिखंडी च सात्यकिश्च महारथः ॥ २९॥ शल्यस्य वाहिनीं तूर्णमभिदुद्रुवुराहवे । ततो युधिष्ठिरो राजा स्वेनानीकेन सम्वृतः ॥ ३० ॥ शल्यमेवाभिदुद्राव जिघांसुर्भरतर्षभः । हार्दिक्यन्तु महेष्वासमर्जुनः शत्रुपूगहा ॥३१॥

पहन कर रथमें बैठा हुआ व्यूहके मुहाने पर आपहुँचा, उसके साथ मद्रदेशके वीर योधा और कर्णके अजेय पुत्र भी आपहुँचे, कृतवर्मा व्यूहके वाम-भाग पर खड़ा होगया और त्रिगर्त्त देशके योधा कृतवर्माके चारों ओर खड़े होगये ॥ २२–२५ ॥ कृपाचार्य, शक और यवन योधाओंके साथ व्यूह के दाहिने भाग पर खड़े होगए, अश्वत्थामा कंबोज देशके योधाओंके साथ व्यूहके पिछले भागमें जाडटा ॥२६॥ कुरुकुलके बड़े २ राजाओंकी रक्षा में दुर्योधन सेनाके मध्यभागमें था शकुनि भी घुड़सवार सेनाकी बड़ी २ टोलियोंसे घिर कर रणमें चढ़ आया था ॥२७। महारथी कितवपुत्र भी अपनी सब सेनाके साथ रणमें आगया, दूसरी ओर महाधनुषधारी परन्तप पाण्डवोंने भी हे महाराज ! धृष्टद्युम्न शिखण्डी और सात्यकी इन तीनोंकी देखरेखमें अपनी सेनाको तीन भागोंमें बाँटदिया था और राजा शल्यकी सेनाका संहार करने के लिये तुम्हारे कटक पर चढ़ाई करदी थी, इसप्रकार सेनाका सङ्गठन होजाने पर राजा युधिष्ठिरने शल्यको मारनेकी इच्छासे अपनी सेनाको साथ लियेहुए शल्यके ऊपर धावा किया था, शत्रु-सेनाका संहार करने वाले अर्जुनने महाधनुषधारी हृदीककुमार

संशप्तकगणांश्चैव वेगितोभिप्रदुद्रुवे । ग्रामं भीमसेनो वै सोमकाश्च महारथाः ॥ ३२॥ अभ्यवर्त्तन्त राजेन्द्र जिघांसन्तः परान् युधि माद्रीपुत्रौ तु शकुनिमुलूकञ्च महारथम् ॥ ३३॥ ससैन्यं सहसैन्यौ तु उपतस्थतुराहवे । तथैवायुतशो योधास्तावकाः पाण्डवान् रणे ॥ ३४॥ अभ्यवर्त्तत संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः । धृतराष्ट्र उवाच । हते भीष्मे महेष्वासे द्रोणे कर्णे महारथे ॥३५॥ कुरुष्वल्पावशिष्टेषु पांडवेषु च संयुगे । सुसंरब्धेषु पार्थेषु पराक्रान्तेषु संजय ॥ ३६ ॥ मामकानां परेषां च किं शिष्टमभवद्बलम् । संजय उवाच । यथा वयं परे राजन् युद्धाय समुपस्थिताः ॥३७ ॥ यावच्चासीद्बलं शिष्टं संग्रामे तन्निबोध मे । एकादश सहस्राणि रथानां भरतर्षभ ॥ ३८॥ दश दंतिसहस्राणि सप्त चैव शतानि च ।

कृतवर्माके ऊपर चढाई करदी ॥ २८-३१ ॥ भीमसेनने और युद्ध में शत्रुओंका विध्वंस करनेवाले सोमकोंने बड़ेवेगसे संशप्तक नामवाले गणों पर और कृपाचार्यके ऊपर धावा बोलदिया, माद्री के दोनों पुत्रोंने सेनासहित महारथी शकुनि तथा उलूकके ऊपर चढाई करदी तथा तुम्हारी ओरके सहस्रों योधाओंने अनेकों प्रकार के हथियार हाथमें लेकर बड़े क्रोधके साथ रणमें पाण्डवोंके ऊपर चढ़ाई करदी । धृतराष्ट्रने बूझा कि-हे सञ्जय ! महाधनुषधारी भीष्म, महारथी द्रोण और कर्ण जब रणमें मारेगए उस समय संग्राममें कौरव तथा पाण्डवोंके योधा थोड़े ही बचे थे, पाण्डवोंने बड़े क्रोधमें आकर पराक्रम किया ॥ ३२-३६ ॥ उस समय मेरे पुत्रोंकी और पांडवोंकी कितनी २ सेना बची थी ? संजयने उत्तर दिया कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! हम और शत्रु जिस समय युद्ध करनेके लिये रण भूमिमें आये थे, उस समय अपने पक्षकी और शत्रुपक्षकी सेनाकी गिनती मैं तुम्हे बताता हूँ, आप सुनिये, हे भरतसत्तम ! उस समय हमारे पास ग्यारह

पूर्णे शतसहस्रे द्वे हयानां तत्र भारत ॥ ३९ ॥ नरकोट्यस्तथा तिस्रो बलमेतत्तवाभवत् । रथानां षट् सहस्राणि षट् सहस्राश्च कुञ्जराः ॥ ४० ॥ दश चाश्वसहस्राणि पत्तिकोटी च भारत । एतद्बलं पाण्डवानामभवत्संयुगे तदा ॥ ४१ ॥ एत एव समाजग्मुर्युद्धाय भरतर्षभ । एवं विभज्य राजेन्द्र मद्रराजवशे स्थिताः ॥ ४२ ॥ पांडवान् प्रत्युदीयाम जयगृद्धाः प्रमन्यवः । तथैव पाण्डवाः शूराः समरे जितकाशिनः ॥ ४३ ॥ उपयाता नरव्याघ्राः पञ्चालाश्च यशस्विनः । इमे ते च महाराज परस्परवधैषिणः ॥ ४४ ॥ उपयाता नरव्याघ्राः पूर्वां सन्ध्यां प्रति प्रभो । ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयानकम् । तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ॥ ४५ ॥ इति शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि व्यूहनिर्माणे अष्टमोऽध्यायः ८ ॥

सहस्र रथ थे ॥ ३७-३८ ॥ हे भारत ! दश सहस्र और सात सौ हाथी तथा पूरे दो लाख घोड़े थे ॥ ३९ ॥ और तीन करोड़ पैदल थे, इतनी तो आपकी सेना थी तथा हे भारत ! पांण्डवोंके पास छः सहस्र रथ, छः सहस्र हाथी दश सहस्र घोड़े और करोड़ पैदल इतनी सेना बची थी ॥ ४० ॥ ४१ ॥ हे भरतसत्तम ! ये ही सब युद्ध करनेको आये थे, हे राजेन्द्र ! जैसा मैंने ऊपर कहा है, ऐसा विभाग करके और मद्रराजकी अधीनतामें रहकर विजय चाहनेवाले महाक्रोधी कौरवोंने पाण्डवोंके ऊपर धावा कर दिया तथा विजय पाकर तेजस्वी दीखनेवाले वीर पांडवोंने और यश पाये हुए मनुष्योंमें व्याघ्रसमान पांचालोंने भी हमारी सेना पर चढ़ाई करदी, हे राजन् ! एक दूसरेको मारडालनेकी इच्छासे दोनों ओरके सिंहसमान योधाओंने सेनासमूहके साथ दिन निकलते ही चढ़ाई करदी और दोनोंमें भय उत्पन्न करनेवाला महाघोर युद्ध होने लगा, इस लड़ाईमें तुम्हारे पुत्र तथा शत्रुपक्ष के वीर एक दूसरेकी मारकाट करनेलगे ॥ ४२-४५ ॥ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

छ छ

सञ्जय उवाच । ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां भयवर्द्धनम् । सृ-
ञ्जयैः सह राजेन्द्र घोरं देवासुरोपमम् ॥ १ ॥ नरा रथगजौघाश्च
सादिनश्च सहस्रशः । वाजिनश्च पराक्रान्ताः समाजग्मुः परस्प-
रम् ॥ २ ॥ नागानां भीमरूपाणां द्रवतां निःस्वनो महान् । अश्रू-
यत यथा काले जलदानां नभस्तले ॥ ३ ॥ नागैरभ्याहताः केचि-
त्ससरथा रथिनोऽपतन् । अद्रवन्त रणे वीरा द्राव्यमाणा मदोत्कटैः
॥ ४ ॥ हयौघान् पादरक्षांश्च रथिनस्तत्र शिक्षिताः । शरैः सम्प्रे-
षयामासुः परलोकाय भारत ॥ ५ ॥ सादिनः शिक्षिता राजन्
परिवार्य महारथान् । विचरन्तो रणेऽभ्यघ्नन् प्रासशक्त्यृष्टिभि-
स्तथा ॥ ६ ॥ धन्विनः पुरुषाः केचित् परिवार्य महारथान् । एकं
बहव आसाद्य प्रेषयेयुर्यमक्षयम् ॥७॥ नागान् रथवरांश्चान्ये परि-

संजय कहता है, कि-हे राजेन्द्र ! तदनन्तर कौरवोंका सृञ्जयों के साथ देवासुरसंग्रामकी समान भय बढानेवाला घोर संग्राम होने लगा ॥ १ ॥ सहस्रों योधा, रथी, हाथियोंके दल और घुड़सवार आपसमें युद्ध करने लगे ॥ २ ॥ जैसे वर्षा ऋतुमें आकाशमें मेघोंकी गर्जना सुनाई आती है, ऐसे ही रणमें दौड़ते हुए विक-राल रूपवाले हाथियोंकी बड़ाभारी चिंघाड़ें सुनाई आने लगीं ॥ ३ ॥ मदोन्मत्त हुए हाथियोंकी मारसे कितने ही सारथी रथोंके साथ भूमिपर गिरनेलगे, उस समय कितने ही वीर पुरुष संग्राममें से भागने भी लगे ॥४॥ हे भारत ! कितने ही शिक्षा पायेहुए योधा बाणोंकी मारसे घुड़सवारोंको पैदलोंको और रथियोंको यमलोक में भेजनेलगे ॥ ५ ॥ शिक्षा पाएहुए घुड़सवार रणमें घूमतेहुए रथियोंको घेरकर प्रास, शक्ति और ऋष्टियोंसे मारने लगे ॥६॥ कितने ही धनुषधारी पुरुष महारथियोंको घेरनेलगे तथा बहुतसे योधा एकको ही घेरकर यमलोकमें भेजनेलगे ॥ ७ ॥ कितने ही महारथी बड़े २ हाथियोंको और बड़े २ रथियोंको घेरकर बीच

वार्य महारथाः । सान्तरायोधिनं जघ्नुर्द्रवमाणं महारथम् ॥ ८ ॥ तथा च रथिनं क्रुद्धं विकिरन्तं शरान् बहून्। नागा जघ्नुर्महाराज परिवार्य समन्ततः ॥ ९ ॥ नागो नागमभिद्रुत्य रथी च रथिनं रणे शक्तितोमरनाराचैर्निर्जघ्ने तत्र भारत ॥ १० ॥ पादातानवमृद्नन्तो रथवारणवाजिनः । रणमध्ये व्यदृश्यन्त कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥ ११ ॥ हयाश्च पर्यधावन्त चामरैरुपशोभिताः । हंसा हिमवतः प्रस्थे पिबन्त इव मेदिनीम् ।१२॥ तेषान्तु वाजिनां भूमिः खुरैश्चित्रा विशाम्पते । अशोभत यथा नारी करजैः क्षतविक्षता ॥ १३ ॥ वाजिनां खुरशब्देन रथनेमिस्वनेन च । पत्तीनाञ्चापि शब्देन नागानां बृंहितेन च ॥१४॥ वादित्राणाञ्च घोषेण शङ्खानां निःस्वनेन च । अभवन्नादिता भूमिर्निर्घातैरिव भारत ॥१५॥ धनुषां कूजमानानां शस्त्रौ-

से ही लड़ने के लिये चढकर आयेहुए महारथियोंको मारडालने लगे ॥ ८ ॥ हे महाराज ! ऐसे ही क्रोधमें भरकर बहुतसे बाण बरसानेवाले रथीको घुड़सवार चारों ओरसे घेरकर मारनेलगे ॥ ९ ॥ इस युद्धमें हाथीसवार हाथीसवारोंके सामने और रथी रथियों के सामने पहुँचकर शक्ति, तोमर तथा बाणोंसे एक दूसरे का विध्वंस करनेलगे ॥ १० ॥ ऐसे ही रणमें रथ हाथी और घोड़े पैदलोंको कुचलते तथा महाव्याकुल करते हुए दीखनेलगे॥११॥ हिमालयकी जलमयी भूमिमें रहनेवाले हंसोंकी समान, मानों भूमिको पीरहे हों ऐसे चामरोंसे शोभायमान घोड़े भी चारों ओरको दौड़भाग कर रहे थे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! जैसे नखोंसे घायल हुई स्त्री शोभा पाती है, तैसे ही घोड़ोंके खुरोंके चिन्होंसे चिह्नित हुई रणभूमि शोभा पारही थी ॥ १३ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जैसे वज्रपातके कड़ाकेसे भूमि गूँज उठती है ऐसे ही घोड़ों की टापोंकी खड़खड़ाहट, रथके पहियोंकी घरघराहट, पैदलोंकी पुकार, हाथियोंकी चिंघार तथा बाजे और शङ्खोंके शब्दोंसे पृथिवी गूँज रही थी ॥ १४ ॥ १५ ॥ धनुषों की ध्वनि हो रही

घानाञ्च दीप्यताम् । कवचानां प्रभाभिश्च न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ १६ ॥ बहवो बाहवश्छिन्ना नागराजकरोपमाः । उद्वेष्टन्ते विचेष्टन्ते वेगं कुर्वन्ति दारुणम् ॥१७॥ शिरसाञ्च महाराज पततां वसुधातले । च्युतानामिव तालेभ्यः फलानां श्रूयते स्वनः ॥१८॥ शिरोभिः पतितैर्भाति रुधिरार्द्रैर्वसुन्धरा । तपनीयनिभैः काले नलिनैरिव भारत ॥ १९ ॥ उद्वृत्तनयनैस्तैस्तु गतसत्त्वैः सुविक्षतैः व्यभ्राजत मही राजन् पुण्डरीकैरिवावृता ॥ २० ॥ बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः सकेयूरैर्महाधनैः । पतितैर्भाति वसुधा महाशक्रध्वजैरिव ॥ २१ ॥ ऊरुभिश्च नरेन्द्राणां विनिकृत्तैर्महाहवे । हस्तिहस्तोपमैरन्यैः संवृतं तद्रणाङ्गनम् ॥२२॥ कबन्धशतसङ्कीर्णं छत्रचामर-

थी, शस्त्रोंके समूह दिप रहे थे, कवच चमक रहे थे और उनकी कान्तिकी चकाचौंधमें कुछ भी नहीं दीखता था ॥ १६ ॥ हाथीकी सूँडकी समान कटेहुए बहुतसे भुजदण्ड एक दूसरेसे सटे पड़े थे और बड़े वेगसे तड़प रहे थे ॥ १७॥ जैसे ताड़के वृक्षमेंसे टूटकर गिरनेवाले फलोंका शब्द सुनाई आता है, तैसे ही हे महाराज ! पृथ्वी पर गिरते हुए योधाओंके मस्तकोंकी ध्वनि सुनाई आरही थी ॥१८॥ हे भरतवंशी राजन् ! समय पर खिले हुए सुवर्णकी समान पीले रङ्गके कमलोंसे जैसे पृथिवी शोभा पाती है तैसे ही रुधिरमें लथड़ेहुए मस्तकोंसे भूमि शोभित हो रही थी ॥१९॥ जैसे पृथिवी पुण्डरीक नामके कमलोंसे शोभा पाती है, ऐसे ही जिन की आँखें फटगई थीं और शरीर अत्यन्त घायल होरहे थे ऐसे प्राणहीन योधाओंसे भूमि शोभा पारही थी ॥२०॥हे राजेन्द्र ! भूमिपर पड़ेहुए चन्दनचर्चित, बहुमूल्य आभूषणोंसे भूषित, बड़े भारी इन्द्रध्वजकी समान शोभायमान चन्दनचर्चित, बहुमूल्य बाजूबन्दोंवाले भुजदण्डोंसे भूमि शोभा पारही थी ॥ २१ ॥ हाथी की सूँडसी राजाओंकी कटीहुई जंघाओंसे वह रणभूमि अत्यन्त भर रही थी ॥ २२ ॥ सैकड़ों धड़ छत्र और चँवरोंसे भराहुआ

सङ्कुलम् । सेनावनं तच्छुशुभे वनं पुष्पाचितं यथा ॥ २३ ॥ तत्र योधा महाराज विचरन्तो ह्यभीतवत् । दृश्यन्ते रुधिराक्ताङ्गाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ २४ ॥ मातङ्गाश्चाप्यदृश्यन्त शरतोमरपीडिताः । पतन्तस्तत्र तत्रैव छिन्नाभ्रसदृशा रणे ॥२५॥ गजानीकं महाराज वध्यमानं महात्मभिः । व्यदीर्य्यत दिशः सर्वा वातनुन्ना घना इव ॥ २६ ॥ ते गजा मेघसङ्काशाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः । वज्रनुन्ना इव बभुः पर्वता युगसंक्षये ॥ २७ ॥ हयानां सादिभिः सार्द्धं पतितानां महीतले । राशयः स्म प्रदृश्यन्त गिरिमात्रास्ततस्ततः ॥ २८ ॥ सञ्जज्ञे रणभूमौ तु परलोकवहा नदी । शोणितोदा रथावर्त्ता ध्वजवृक्षास्थिशर्करा ॥ २९॥ भुजनक्रा धनुःस्रोता

वह सेनारूप वन फूलोंसे भरेहुए वनकी समान शोभा पारहा था ॥ २३ ॥ हे महाराज ! उस युद्धमें निर्भय पुरुषकी समान घूमते हुए योधा रुधिरमें न्हायेहुए होनेके कारण फूलोंसे छायेहुए ढाक के वृक्षोंकी समान शोभा पारहे थे ॥ २४ ॥ बाणों और तोमरों से पीड़ा पायेहुए हाथी रणभूमिमें जहाँ तहाँ पड़ेहुए थे, और वे टूटकर गिरेहुए मेघसे मालूम होते थे ॥ २५ ॥ महारथी हाथियों की सेनोका संहार कररहे थे और वायुके धकेले हुए मेघ जैसे दिशाओंमेंको भागजाते हैं ऐसे ही हाथी भी सब दिशाओंमेंको भागरहे थे ॥ २६ ॥ जैसे प्रलयकालमें वज्रसे कटकर पृथिवी पर पड़ेहुए पहाड़ शोभा पाते हैं, ऐसे ही मेघोंकी समान दीखनेवाले गजराज भी कटकर पृथिवी पर पड़ेहुए शोभा पारहे थे ॥ २७ ॥ घोड़े सवारोंके सहित भूमिपर पड़े हुए थे और वे रणमें शिलाओं के ढेरसे दीखते थे ॥ २८ । रणभूमिमें परलोकमेंको लेजानेवाली रुधिररूप जलकी नदी बहनेलगी, उसमें रथरूप भँवर पड़रहे थे, ध्वजाओंके दण्डेरूप वृक्ष थे और हाड़रूप कङ्कड़ियें थीं ॥ २९ ॥ भुजारूप नाके थे, धनुषरूप स्रोत थे, हाथीरूप टापू थे, घोड़ेरूप शिलायें थीं, मेद और मज्जाकी कीच थी, छत्र ही हंस थे और

हस्तिशैला हयोपला । मेदोमज्जाकर्दमिनी छत्रहंसा गदोडुपा ३०
कवचोष्णीपसंछन्ना पताकारुचिरद्रुमा । चक्रचक्रावलीजुष्टा त्रिवे-
णुदण्डकावृता ॥ २१ ॥ शूराणां हर्षजननी भीरूणां भयवर्द्धनी ।
प्रावर्त्तत नदी रौद्रा कुरुसृञ्जयसंकुला ॥ ३२ ॥ तां नदीं पितृ-
लोकाय वहन्तीमतिभैरवाम् । तेरुर्वाहननौभिस्ते शूराः परिघबा-
हवः ॥ ३३ ॥ वर्त्तमाने तथा युद्धे निर्मर्य्यादे विशाम्पते । चतुरङ्ग-
क्षये घोरे पूर्वदेवासुरोपमे ॥ ३४ ॥ व्याक्रोशन् बान्धवानन्ये
तत्र तत्र परन्तप । क्रोशद्भिर्बान्धवैश्चान्ये भयार्त्ता न निवर्त्तिरे
॥ ३५ ॥ निर्मर्य्यादे तथा युद्धे वर्त्तमाने भयानके । अर्जुनो भीम-
सेनश्च मोहयाञ्चक्रतुः परान् ॥ ३६ ॥ सा वध्यमाना महती सेना

गदारूप डोंगे थे ॥ ३० ॥ कवच और पगड़ियें उसमें उतरा रही थीं, पताकायें सुन्दर वृक्ष मालूम होते थे, पहिये मानो चक्रवाक थे और रथके नीचेके तीन बाँस चारों ओर छा रहे थे ॥ ३१ ॥ शूरोंको आनन्द देनेवाली, डरपोकोंका भय बढ़ाने वाली, कौरव तथा सृञ्जयोंसे भरीहुई ऐसी भयानक नदी रणभूमिमें बहनेलगी ॥ ३२ ॥ यह महाभयानक नदी वीर पुरुषोंको परलोकमें पहुँचा रही थी और हाथोंमें परिघ लिये हुए वीर योधा वाहनरूप नौका के द्वारा इस नदीके पार हो रहे थे ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! पहले समयके देवासुरसंग्रामकी समान, चतुरङ्गिणी सेनाका संहार करने वाला भयङ्कर युद्ध इस समय कुरुक्षेत्रमें मर्यादाको तोड़कर चल रहा था ॥ ३४ ॥ और हे शत्रुतापन राजन् ! इस मारकाटके समय कितने ही चिल्ला २ कर अपने बान्धवोंको पुकार रहे थे, कितने ही प्रिय पुरुषोंके बुलानेपर भी भयसे घबड़ाजानेके कारण पीछेको नहीं लौटते थे ॥ ३५ ॥ इसप्रकार भयानक और मर्यादा शून्य युद्ध चल रहा था, उस समय अर्जुन और भीमने शत्रुओंको बेहाल करडाला ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! जब शत्रु तुम्हारी बड़ीभारी

तव जनाधिप । अमुह्यत्तत्र तत्रैव योषिन्मदवशादिव ॥ ३७ ॥ मोहयित्वा च तां सेनां भीमसेनधनञ्जयौ । दध्मतुर्वारिजौ तत्र सिंहनादांश्च नेदतुः ॥ ३८ ॥ श्रुत्वैव तु महाशब्दं धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ । धर्मराजं पुरस्कृत्य मद्रराजमभिद्रुतौ ॥ ३९ ॥ तत्राश्चर्य्यमपश्याम घोररूपं विशाम्पते । शल्येन सङ्गताः शूरा यदयुध्यन्त भागशः ॥४०॥ माद्रीपुत्रौ तु रभसौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ । अभ्ययातां त्वरायुक्तौ जिगीषन्तौ बलं तव ॥ ४१ ॥ ततो न्यवर्त्तत बलं तावकं भरतर्षभ । शरैः प्रणुन्नं बहुधा पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥ ४२ ॥ वध्यमाना चमूः सा तु पुत्राणां प्रेक्षतां तव । भेजे दिशो महाराज प्रणुन्ना दृढधन्विभिः ॥ ४३ ॥ हाहाकारो महान्

सेनाका विध्वंस करनेलगे, उस समय जैसे स्त्री मदके कारण मूर्छित होजाती है तैसे ही तुम्हारी सेना भी तहां मूर्छित होगई ॥ ३७ ॥ भीम और अर्जुन तुम्हारी सेनाको मूर्छित करके शङ्ख बजानेलगे और सिंहोंकी समान गरजनेलगे ॥ ३८ ॥ धृष्टद्युम्न और शिखण्डी उस बड़ीभारी गर्जनाको सुन धर्मराजको आगे करके मद्रराजके ऊपर जाचढे ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार इकट्ठे मिलकर और अलग२ होकर सब वीर शल्यके सामने लड़रहे थे वह बात आश्चर्यमें डालनेवाली और भयंकर थी ॥ ४० ॥ युद्धदुर्मद, अस्त्रविद्यामें निपुण तथा पराक्रमी माद्रीके पुत्र नकुल और सहदेव शत्रुओंको जीतनेकी इच्छासे शीघ्रता के साथ उनके सामने जापहुंचे ॥ ४१ ॥ और विजय चाहने वाले पाण्डव तुम्हारी सेना को बाणोंकी मारसे अत्यन्त घायल करनेलगे, इस लिये हे भरतवंशी राजन् ! तुम्हारी सेना तहांसे पीछेको लौट पड़ी ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! बाणोंकी वर्षासे विंधीहुई तुम्हारी सेना, तुम्हारे पुत्रोंके सामने ही चारों ओरको भागनेलगी ॥ ४३ इतना ही नहीं, किन्तु हे भरतवंशी रा-

जज्ञे योधानां तत्र भारत। तिष्ठ तिष्ठेति चाप्यासीद् द्रावितानां महात्मनाम् ॥ ४४ ॥ क्षत्रियाणां सहान्योन्यं संयुगे जयमिच्छताम्। प्राद्रवन्नेव भग्नास्ते पाण्डवैस्तव सैनिकाः ॥ ४५ ॥ त्यक्त्वा युद्धे प्रियान् पुत्रान् भ्रातृनथ पितामहान्। मातुलान् भागिनेयांश्च तथा सम्बन्धिबान्धवान् ॥ ४६ ॥ हयान् द्विपांस्त्वरयन्तो योधा जग्मुः समन्ततः। आत्मत्राणकृतोत्साहास्तावका भरतर्षभ ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

सञ्जय उवाच। तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा मद्रराजः प्रतापवान्। उवाच सारथिं तूर्णं चोदयाश्वान् मनोजवान् ॥ १ ॥ एष तिष्ठति वै राजा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः। छत्रेण ध्रियमाणेन पाण्डुरेण विराजता ॥ २ ॥ अत्र प्रापय मां क्षिप्रं पश्य मे सारथे बलम्। न समर्थो हि मे पार्थः स्थातुमद्य पुरो युधि ॥ ३ ॥ एवमुक्तस्ततः

जन्! उस रणमें परस्पर विजय चाहनेवाले और दौड़भाग करते हुए महात्मा क्षत्रिय योधा जब 'खड़े रहो, खड़े रहो, ऐसा पुकारने लगे, उस समय जिनको पाण्डवोंने रणमेंसे भगा दिया था वे तुम्हारे योधा अपने शरीरकी रक्षा करनेकी इच्छासे युद्धमें प्यारे पुत्रोंको, भाइयोंको, पितामहोंको, मामाओंको, भानजोंको, और मित्रोंको छोड़कर घोड़े तथा हाथियोंको शीघ्रतासे हाँकते हुए रणभूमिमेंसे भागनेलगे ॥ ४४-४७ ॥ नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र! प्रतापी मद्रराजने सेनामें भागड़ पड़ी देख कर तुरन्त सारथीसे कहा, कि-मेरे बड़े वेगवान् घोड़ोंको राजा युधिष्ठिरकी ओर लेचल ॥ १ ॥ देख, पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिर यह खड़ा है, इसके शिरपर स्वेत रङ्गका छत्र शोभा देरहा है ॥ २ ॥ हे सारथी! तू मुझे शीघ्र ही इसके सामने लेचल और फिर मेरा बल देख, आज युधिष्ठिर रणमें मेरे सामने खड़ा नहीं रहसकेगा॥३॥ शल्यके इतना कहते ही उसका सारथी जहाँ

भायान्मद्रराजस्य सारथिः । यत्र राजा सत्यसन्धो धर्मराजो युधि-ष्ठिरः ॥ ४ ॥ प्रापतत्तच्च सहसा पाण्डवानां महद्बलम् । दधारैको रणे शल्यो वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् ॥ ५ ॥ पाण्डवानां बलौघस्तु शल्यमासाद्य मारिष । व्यतिष्ठत तदा युद्धे सिन्धोर्वेग इवाचलम् ॥ ६ ॥ मद्रराजन्तु समरे दृष्ट्वा युद्धाय धिष्ठितम् । कुरवः संन्यवर्त्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ ७ ॥ तेषु राजन्निवृत्तेषु व्यूढानीकेषु भागशः । प्रावर्त्तत महारौद्रः संग्रामः शोणितोदकः ॥ ८ ॥ समार्च्छच्चित्रसेनन्तु नकुलो युद्धदुर्मदः । तौ परस्परमासाद्य चित्रकार्मुकधारिणौ ॥ ९ ॥ मेघाविव यथोद्वृत्तौ दक्षिणोत्तरवर्षिणौ । शरतोयैः सिषिचतुस्तौ परस्परमाहवे ॥ १० ॥ नान्तरं तत्र पश्यामि पाण्डवस्येतरस्य च । उभौ कृतास्त्रौ बलिनौ रथच-

सत्यप्रतिज्ञ राजा युधिष्ठिर खड़े थे, वहाँ ही उसके रथको लेगया ॥ ४ ॥ जैसे उछलते हुए महासागरको किनारा रोकता है, तैसे ही अकेले ही शल्यने उछलते हुए पांडवोंके महासेनादलको एक साथ रोकदिया ॥५॥ हे राजन् ! जैसे सिंधुका वेग पहाड़के पास पहुँचकर रुकजाता है, ऐसे ही उस समय युद्धमें पाण्डवोंकी सेनाका समूह, लड़ाईमें शल्यको आगे बढ़कर आयाहुआ देखते ही जहांका तहाँ रुकगया ॥ ६ ॥ संग्राममें मद्रराज लड़नेके लिये आकर खड़ा होगया, उसको देखते ही कौरव भी मृत्युके भयको त्यागकर लड़नेके लिये फिर रणकी ओरको लौट आये ॥ ७ ॥ हे राजन् ! दोनों ओरकी सेनायें व्यूहके आकारमें गठित होकर अपने२ विभागके अनुसार रणभूमिमें आडटीं और जिसमें रुधिर-रूप जल भर रहा था, ऐसे महाभयानक संग्रामका फिर आरम्भ हो गया ॥ ८ ॥ युद्धमें मतवाले हुए नकुलने चित्रसेनके ऊपर धावा किया और विचित्र प्रकारके धनुषोंको धारण करनेवाले वे दोनों योधा, बढ़ेहुए दो मेघमण्डलोंकी समान दक्षिण तथा उत्तरकी ओरको बाणोंकी वर्षा करनेलगे और बाणरूप जलको एक दूसरे के ऊपर उलीचने लगे ॥ ९ ॥ १० ॥ उस समय युद्धमें नकुल और

ऱ्याविशारदौ ॥ ११ ॥ परस्परवधे यत्तौ छिद्रान्वेषणतत्परौ चित्रसेनस्तु भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ १२ ॥ नकुलस्य महाराज मुष्टिदेशेच्छिनद्धनुः । अथैनं छिन्नधन्वानं रुक्मपुंखैः शिलाशितैः ॥१३॥ त्रिभिः शरैरसंभ्रान्तो ललाटे वै समार्पयत् । हयांश्चास्य शरैस्तीक्ष्णैः प्रेषयामास मृत्यवे ॥ १४ ॥ तथा ध्वजं सारथिञ्च त्रिभिस्त्रिभिरपातयत् । स शत्रुभुजनिर्मुक्तैर्ललाटस्थैस्त्रिभिः शरैः ॥ १५ ॥ नकुलः शुशुभे राजंस्त्रिशृंग इव पर्वतः । स छिन्नधन्वा विरथः खड्गमादाय चर्म च ॥ १६ ॥ रथादवातरद्वीरः शैलाग्रादिव केसरी । पद्भ्यामापततस्तस्य शरवृष्टिं समासृजत् ॥ १७ ॥ नकुलोऽप्यग्रसत्तां वै चर्मणा लघुविक्रमः । चित्रसेनरथं

चित्रसेनमें जरा भी अनन्तर नहीं मालूम होता था, वे दोनोंजने अस्त्रविद्यामें चतुर, बलवान् और रथयुद्धमें प्रवीण थे ॥ ११ ॥ एक दूसरेको मारडालनेका उद्योग कर रहे थे, एक दूसरेकी चूक को ताक रहे थे, चित्रसेनने पानीदार, सानपर धराहुआ भल्ल नामका बाण मारकर नकुलकी मुट्ठीमेंके धनुषको काटडाला और सोनेके पङ्खवाले तथा सान पर तेज कियेहुए तीन बाण धीरजके साथ उसके ललाटमें मारे और उसके घोड़ोंको तीखे बाण मारकर यमलोकमें भेज दिया ॥ १२-१४ ॥ तथा उसकी ध्वजा और सारथीको तीन २ बाण मारकर गिरादिया, शत्रुकी भुजाओंसे छूटे और ललाटमें चुभे हुए तीन बाणोंसे वह नकुल, हे राजन् ! तीन चोटीवाले पर्वतसा शोभा पानेलगा, जब वीर नकुल का धनुष कटगया, रथ टूटगया तब वह ढाल तलवार लेकर, जैसे केहरा सिंह पहाड़परसे नीचे उतरता हो तैसे ही वह रथपरसे उतर पड़ा, नकुलको पैदल देखकर चित्रसेन उसके ऊपर बाण बरसाने लगा ॥१५-१७॥ परन्तु नकुल फुरतीला, पराक्रमी और विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाला था, उसने चित्रसेनके बाणोंकी वर्षाको

प्राप्य चित्रयोधी जितश्रमः ॥ १८ ॥ आरुरोह महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः । सकुण्डलं समुकुटं सुनसं स्वायतेक्षणम् ॥ १९॥ चित्रसेनशिरः कायादपाहरत पाण्डवः । स पपात रथोपस्थे दिवाकरसमप्रभः ॥ २० ॥ चित्रसेनं विशस्तन्तु दृष्ट्वा तत्र महारथाः । साधुवादस्वनांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान् ॥ २१ ॥ विशस्तं भ्रातरं दृष्ट्वा कर्णपुत्रौ महारथौ । सुषेणः सत्यसेनश्च मुञ्चन्तौ निशितान्छरान् ॥२२ ॥ ततोऽभ्यधावतां तूर्णं पाण्डवं रथिनाम्वरम् । जिघांसन्तौ यथा नागं व्याघ्रो राजन् महावने ॥ २३ ॥ तावभ्यवर्षतां तीक्ष्णौ द्वावप्येनं महारथम् । शरौघान् सम्यगस्यन्तौ जीमूतौ सलिलं यथा ॥ २४॥ स शरैः सर्वतो विद्धः प्रहृष्ट इव पांडवः । अन्यत्कार्मुकमादाय रथमारुह्य वेगवान् २५ अतिष्ठत रणे वीरः क्रुद्धरूप

ढाल पर ही झेललिया और उसके पास जाकर सब सेनाके सामने उसके रथ पर चढगया और फिर कुंडल तथा मुकुटधारी, सुन्दर नासिका और विशाल नेत्रोंवाले चित्रसेनके मस्तकको उसने उतारलिया और सूर्यकी समान कान्तिवाला चित्रसेन रथकी बैठकके पास गिरपड़ा॥१८-२०॥ चित्रसेनको संग्राममें मराहुआ देखते ही पाण्डवपक्षके महारथी 'बहुत ठीक, बहुत ठीक' पुकारते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ २१ ॥ कर्णके महारथी पुत्र सुषेण और सत्यसेन अपने भाई चित्रसेनको मराहुआ देखकर अनेकों बाणोंकी मारामार करने लगे ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जैसे बड़ेभारी वनमें दो बाघ हाथीको मारनेके लिये दौड़ते हों तैसे ही वे दोनों महारथी तुरन्त महारथी नकुलके सामनेको दौड़आये ॥ २३ ॥ और जैसे दो मेघ जल बरसाते हों तैसे ही वे दोनों तीखे महारथी नकुलके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २४ ॥ उन बाणोंसे नकुलका सब शरीर बिंधगया तो भी वह बड़ा ही प्रसन्न होताहुआसा दूसरा धनुष लेकर वेगके साथ रथ पर चढ़ गया और कुपित हुए

इवान्तकः । तस्य तौ भ्रातरौ राजन् शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२६॥
रथं विशकलीकर्त्तुं समारब्धौ विशाम्पते । ततः प्रहस्य नकुलश्च-
तुर्भिश्चतुरो रणे ॥ २७ ॥ जघान निशितैस्तीक्ष्णैः सत्यसेनस्य
वाजिनः । ततः सन्धाय नाराचं रुक्मपुंखं शिलाशितम् ॥ २८॥
धनुश्चिच्छेद राजेन्द्र सत्यसेनस्य पाण्डवः । अथान्यं रथमास्थाय
धनुरादाय चापरम् ॥ २९ ॥ सत्यसेनः सुषेणश्च पाण्डवं पर्य्य-
धावताम् । अविध्यत्तावसंभ्रान्तौ माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ॥ ३० ॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां महाराज शराभ्यां रणमूर्द्धनि । सुषेणस्तु ततः
क्रुद्धः पाण्डवस्य महद्धनुः ॥ ३१ ॥ चिच्छेद प्रहसन् युद्धे क्षुरप्रेण
महारथः । अथान्यद्धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्छितः ॥ ३२ ॥ सु-
षेणं पञ्चभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे । सत्यसेनस्य च धनुर्ह-
स्तावापञ्च मारिष ॥ ३३ ॥ चिच्छेद तरसा युद्धे तत उच्चुक्रुशु-

कालकी समान वह वीर रणमें खड़ा रहा, हे राजन्! इतनेमें ही दोनों भाई सुषेण और सत्यसेन नमेहुए पर्ववाले बाण मारकर उसके रथको तोड़नेको तयार होगए, यह देखकर नकुल खूब हँसा और चार तेज बाण मारकर सत्यसेनके चारों घोड़ोंको युद्धमें मार दिया और फिर सान पर तेज कियाहुआ तथा सुनहरी परोंवाला एक बाण धनुष पर चढाकर उससे सत्यसेनके धनुषको काटडाला सत्यसेन और सुषेण दूसरा धनुष लेकर दूसरे रथमें सवार हो नकुल के सामने जाडटे, तब तो माद्रीके प्रतापी पुत्रने विना ही घबड़ाहट के उन दोनोंको रणके मुहाने पर दो दो बाण मारकर घायल कर दिआ, इससे सुषेणको क्रोध चढ आया और उस महारथीने हँसते२ क्षुरप्र नामके बाणसे नकुलके बड़े भारी धनुषको काटडाला, इससे नकुलको बड़ा क्रोध आया तब उसने भी दूसरा धनुष लेकर सुषेणके पाँच बाण मारे, एकसे उसकी ध्वजाको काटडाला, फिर तुरन्त ही युद्धमें सत्यसेनके धनुषको और उसके हाथके मोजोंको काट डाला, यह देखकर लोग बड़ा कोलाहल करनेलगे, तब सत्यसेनने

र्जनाः । अथान्यद्धनुरादाय शत्रुघ्नं भारसाधनम् ॥ ६४ ॥ शरैः संछादयामास समन्तात् पाण्डुनन्दनम् । सन्निवार्य्य तु तान् बाणान् नकुलः परवीरहा । सत्यसेनं सुषेणञ्च द्वाभ्यां द्वाभ्यामविध्यत ॥ ३५ ॥ तावेनं प्रत्यविध्येतां पृथक् पृथगजिह्मगैः ॥३६॥ सारथिञ्चास्य राजेन्द्र शितैर्विव्यधतुः शरैः । सत्यसेनो रथेषान्तु नकुलस्य धनुस्तथा ॥ ३७ ॥ पृथक् शराभ्यां चिच्छेद कृतहस्तः प्रतापवान् । स रथेऽतिरथस्तिष्ठन् रथशक्तिं परामृशन् ॥३८॥ स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां तैलधौतां सुनिर्मलाम् । लेलिहानामिव विभो नागकन्यां महाविषाम् ॥ ३९ ॥ समुद्यम्य च चिक्षेप सत्यसेनस्य संयुगे । सा तस्य हृदयं संख्ये बिभेद शतधा नृप ॥ ४० ॥ स पपात रथाद्भूमिं गतसत्त्वोऽल्पचेतनः । भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा सुषेणः

भारको सहनेवाला और वैरीका नाश करनेवाला दूसरा धनुष लिया और बाणोंकी झड़ी लगाकर नकुलको चारों ओरसे ढक दिया, परन्तु शत्रुनाशक वीर नकुलने उसके बाणोंको रोकदिया तथा सत्यसेन और सुषेण के दो दो बाण मारे, उन दोनोंने भी जुदे २ और सीधे जानेवाले बाण मारकर नकुलको बींधदिया और हे राजेन्द्र ! उसके सारथीको भी तेज किये हुए बाणोंसे बींधडाला, फिर शिक्षित हाथवाले सत्यसेनने नकुलके रथकी ईषा और धनुषको दो२ बाण मारकर काटडाला, तब तो अतिरथी नकुलने रथमें बैठे २ ही तुरन्त ही रथशक्तिको हाथमें लेलिया ॥ २५–३८ ॥ इस शक्तिका दंडा सोनेका और नोक तेज थी तथा इस शक्तिको तेल पिलाकर तयार किया था, यह अत्यन्त निर्मल, महाविषैली और जीभको लपालप करनेवाली नागकन्यासी थी, ऐसी रथशक्तिको ऊँची करके लड़ते २ सत्यसेनकी छाती पर मारा कि–उसी समय उसकी छातीके चिथड़े उड़ गए ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और सत्यसेन प्राण तथा बलरहित होकर भूमि पर गिर पडा, जब सुषेणने देखा, कि—मेरा भाई

क्रोधमूर्छितः ॥ ४१ ॥ अभ्यवर्षच्छरैस्तूर्णं पादातं पाण्डुनन्दनम्। चतुर्भिश्चतुरो वाहान् ध्वजं छित्वा च पञ्चभिः ॥ ४२ ॥ त्रिभिर्वै सारथिं हत्वा कर्णपुत्रो ननाद ह । नकुलं विरथं दृष्ट्वा द्रौपदेयो महारथम् ॥ ४३ ॥ सुतसोमोऽभिदुद्राव परीप्सन् पितरं रणे । ततोधिरुह्य नकुलः सुतसोमस्य तं रथम् ॥ ४४ ॥ शुशुभे भरतश्रेष्ठो गिरिस्थ इव केसरी । सोऽन्यत् कार्मुकमादाय सुषेणं समयोधयत् ॥ ४५ ॥ तावुभौ शरवर्षाभ्यां समासाद्य परस्परम् । परस्परवधे यत्नं चक्रतुः सुमहारथौ ॥ ४६ ॥ सुषेणस्तु ततः क्रुद्धः पाण्डवं त्रिशिखैस्त्रिभिः । सुतसोमञ्च विंशत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ४७ ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा । शरैस्तस्य दिशः सर्वा-

मारा गया तो उसको बडा क्रोध चढ़ आया और वह तुरन्त पैदल खड़े हुए नकुलके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा, चार बाणोंसे चार घोड़ोंके, पाँचसे ध्वजाके और तीनसे सारथीके ऊपर प्रहार किया और फिर क्रोधके आवेशमें आये हुए कर्णकुमारने गर्जना की, संग्राममें महारथी नकुलको रथशून्य देखकर चचाकी सहायता करनेकी इच्छासे द्रौपदीका पुत्र सुतसोम नकुलके पासको दौड गया, नकुल सुतसोमके रथपर चढ़ बैठा ॥ ४१—४४ ॥ उस समय भरतवंशमें श्रेष्ठ नकुल पहाड़ पर बैठे हुये केहरी सिंहकी समान शोभा पारहा था, फिर नकुल दूसरा धनुष लेकर सुषेण के साथ युद्ध करने लगा ॥ ४५ ॥ वे दोनों महारथी एक दूसरेके ऊपर चढ़ाई करके बाणोंको बरसाते हुए एक दूसरेका नाश करनेके लिये उद्योग करने लगे॥४६॥ तदनन्तर सुषेणको क्रोध चढ़ आया और उसने नकुलके तीन बाण मारे तथा बीस बाण सुतसोम के दोनों भुजदंडों पर और छाती पर मारे ४७ तब तो हे महाराज ! वीर शत्रुका नाश करनेवाले नकुलको क्रोध चढ़ आया और प्रतापी नकुलने बाण मारकर सुषेणको चारों ओरसे ढकदिया, फिर

रथादयायासि वेगवान् ॥ ४८ ॥ ततो गृहीत्वा तीक्ष्णाग्रमर्द्धचन्द्रं सुतेजनम् । सुवेगयुक्तं चिक्षेप कर्णपुत्राय संयुगे ॥ ४९ ॥ तस्य तेन शिरः कायाज्जहार नृपसत्तम । पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५० ॥ स हतः प्रापतद्राजन्नकुलेन महात्मना । नदीवेगादिवारुग्णस्तीरजः पादपो महान् ॥ ५१ ॥ कर्णपुत्रवधं दृष्ट्वा नकुलस्य च विक्रमम् । प्रदुद्राव भयात् सेना तावकी भरतर्षभ ॥ ५२ ॥ तान्तु सेनां महाराज मद्रराजः प्रतापवान् । अपालयद्रणे शूरः सेनापतिररिन्दमः ॥ ५३ ॥ अभीस्तस्थौ महाराज व्यवस्थाप्य च वाहिनीम् । सिंहनादं भृशं कृत्वा धनुःशब्दञ्च दारुणम् ॥ ५४ ॥ तावकाः समरे राजन् रक्षिता दृढधन्वना । प्रत्युद्ययुश्चतांस्ते तु समन्ताद्विगतव्यथाः ॥ ५५ ॥ मद्रराजं महेष्वासं परिवार्य्य समन्ततः । स्थिता राजन् महात्मानो योद्धुकामाः सम-

---

तीखी धार वाला, बड़ा ही तेज, महावेगवाला अर्धचन्द्राकार बाण मारकर नकुलने सब सेनाके सामने उसके धड़परसे मस्तक काट दिया, यह एक अद्भुतसी वात हुई ॥ ४८–५० ॥ हे राजन् ! जैसे नदीके तट पर खडाहुआ वडाभारी वृक्ष नदीके वेगकी चोटसे गिर पडता है, ऐसे ही महात्मा नकुल के प्रहारसे सुषेण भूमिपर ढहपड़ा ॥ ५१ ॥ हे भरतवंशी महाराज ! कर्णके पुत्रके नाश और नकुलके पराक्रमको देखकर तुम्हारी सेना डरके मारे भागनेलगी॥५२॥ परन्तु इस समय वीर और प्रतापी सेनापति शल्यने तुम्हारी वडीभारी सेनाकी संग्राममें रक्षा की थी ५३ हेमहाराज!शल्यने निर्भय होकर सेनाको खडी रखकर सिंहकी समान वडीभारी गर्जना करतेहुए धनुषपर भयङ्कर टङ्कार दी ५४ दृढ़ धनुषवाले राजा शल्यने तुम्हारे योधाओंकी रक्षा की और तुम्हारी सेनाके योधाओंने भी निर्भय होकर चारों ओरसे मद्रदेशके महाधनुषधारी राजा शल्यको घेर लिया और शत्रुओंके

न्ततः ॥ ५६ ॥ सात्यकिर्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ । युधिष्ठिरं पुरस्कृत्य ह्रीनिषेवमरिन्दमम् ॥ ५७ ॥ परिवार्य रणे वीराः सिंहनादं प्रचक्रिरे । बाणशंखरवांश्चोग्रान् क्ष्वेडाश्च विविधा मुहुः ॥ ५८ ॥ तथैव तावकाः सर्वे मद्राधिपतिमञ्जसा । परिवार्य सुसंरब्धाः पुनर्युद्धमरोचयन् ॥ ५९ ॥ ततः प्रववृते युद्धं भीरूणां भयवर्द्धनम् । तावकानां परेषां च मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ ६० ॥ यथा देवासुरं युद्धं पूर्वमासीद्विशाम्पते । अभीतानां तथा राजन् यमराष्ट्रविवर्द्धनम् ॥ ६१ ॥ ततः कपिध्वजो राजन् हत्वा संशप्तकान् रणे । अभ्यधावत तां सेनां कौरवीं पाण्डुनन्दन ॥ ६२ ॥ तथैव पाण्डवाः सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः । अभ्यधावन्त तां सेनां विसृजन्तः शिताञ्छरान् ॥ ६३ ॥ पांडवैरवकी-

---

सामने लड़नेकी इच्छासे चारों ओर खड़े होगये ॥ ५५-५६ ॥ दूसरी ओर सात्यकी भीमसेन और माद्रीनन्दन नकुल सहदेव आदि वीर लज्जावान् तथा शत्रुका दमन करनेवाले राजा युधिष्ठिर को आगे करके संग्राममें सिंहकी समान गर्जना करने लगे, बाणोंके और शंखोंके शब्द करने लगे तथा भांति २ की चेष्टायें करनेलगे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ऐसे ही तुम्हारे सब योधा भी अत्यन्त क्रोधमें आकर मद्रदेशके राजाको घेरकर फिर युद्धकी इच्छा करनेलगे ॥ ५९ ॥ तुरन्त ही तुम्हारे और पाण्डवोंके योधाओंमें डरपोकोंको भयभीत करनेवाला और मृत्युको पास बुलानेवाला महायुद्ध होनेलगा ॥ ६० ॥ हे राजन् ! पहले जैसा देवता और असुरोंमें युद्ध हुआ था तैसा ही निर्भीक योधाओंका यह युद्ध यमलोक को बढ़ानेवाला हुआ ॥ ६१ ॥ इस युद्धका आरम्भ होते ही जिसकी ध्वजामें वानरका चिह्न है ऐसा अर्जुन रणमें संशप्तक गणोंका नाश करके कौरवोंकी सेना पर चढ़आया ॥ ६२ ॥ उधर धृष्टद्युम्न आदि सब पांडव भी तीखे बाण छोडते हुए कौरव सेना पर चढ़ आये ॥ ६३ ॥ पांडवोंकी इस चढ़ाईसे

र्णानां सम्मोहः समजायत । न च जज्ञुरनीकानि दिशो वा विदिशस्तथा ॥ ६४ ॥ आपूर्य्यमाणाः निशितैः शरैः पांडवचोदितैः । हतप्रवीरा विध्वस्ता वार्य्यमाणा समन्ततः ॥ ६५ ॥ कौरव्यवध्यत चमूः पांडुपुत्रैर्महारथैः । तथैव पांडवी सेना शरैः राजन् समन्ततः ॥ ६६ ॥ रणेऽहन्यत पुत्रैस्ते शतशोऽथ सहस्रशः । ते सेने भृशसन्तप्ते वध्यमाने परस्परम् ॥६७॥ व्याकुले समपद्येतां वर्षासु सरिताविव आविवेश ततस्तीव्रं तावकानां महद्भयम् । पाण्डवानाञ्च राजेन्द्र तथाभूते महाहवे ॥ ६८॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

सञ्जय उवाच । तस्मिन् विलुलिते सैन्ये वध्यमाने परस्परम् । द्रवमाणेषु योधेषु निनदत्सु च दन्तिषु ॥ १ ॥ कूजतां स्तनतां चैव पदातीनां महाहवे । विद्रुतेषु महाराज हयेषु बहुधा तदा ॥ २ ॥ भक्षये दारुणे जाते संहारे सर्वदेहिनाम् । नानाशस्त्रसमावाये व्य-

---

कौरव सेना घबडागई और उसको यह भी ज्ञान नहीं रहा, कि-कौनसी दिशा या विदिशा किधर है ॥ ६४ ॥ क्योंकि-पांडवोंने तेज किये हुए बाण मारकर दिशाओं और कोनोंको ढकदिया था, महारथी पांडव तुम्हारी सेनाके वीर पुरुषोंका चारों ओरसे संहार करनेलगे, ऐसे ही तुम्हारे पुत्र भी रणमें बाणोंकी मारसे पांडव-सेनाके हजारों और सैंकड़ों योधाओंका संहार करनेलगे, इस समय परस्परका विध्वंस करनेवालीं दोनों सेनायें बड़ी व्याकुल होउठीं और वर्षाकालकी दो नदियोंकी समान उफननेलगीं, हे राजेन्द्र ! जब ऐसा युद्ध होनेलगा, तब आपके पुत्र और पांडवों को बड़ा भय लगनेलगा ॥ ६५-६८॥ दशवाँ अध्याय समाप्त १०

संजय कहता है, कि-वह सेनायें आपसमें विध्वंस करनेलगीं तब योधा तथा हाथी भागनेलगे ॥ १ ॥ हे महाराज ! उस महासंग्राममें पैदल चिल्लाने और गरजनेलगे तथा घोड़े अनेकों प्रकार से मारे जाने लगे ॥ २ ॥ सकल प्राणियोंका दारुण एवं घोर

तिपिक्तरथद्विपे ॥ ३ ॥ हर्षणे युद्धशौण्डानां भीरूणां भयवर्द्धने । गाहमानेषु योधेषु परस्परवधैषिषु ॥४॥ प्राणदाने महाघोरे वर्त्तमाने दुरोदरे । संग्रामे घोररूपे तु यमराष्ट्रविवर्द्धने ॥ ५ ॥ पाण्डवास्तावकं सैन्यं व्यधमन्त शितैः शरैः । तथैव तावका योधा जघ्नुः पांडवसैनिकान् ॥ ६ ॥ तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने युद्धे भीरुभयावहे । पूर्वाह्णे चैव संप्राप्ते भास्करोदयनं प्रति ॥ ७ ॥ लब्धलक्ष्याः परे राजन् रक्षिताश्च महात्मना । अयोधयंस्तव बलं मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ ८ ॥ बलिभिः पांडवैर्दृप्तैर्लब्धलक्ष्यैः प्रहारिभिः । कौरव्यसीदत् पृतना मृगीवाग्निसमाकुला ॥ ९ ॥ तां दृष्ट्वा सीदतीं सेनां पङ्के गामिव दुर्बलाम् । उज्जिहीर्षुस्तदा शल्यः प्रायात्

विध्वंस होने लगा, अनेकों भांतिके शस्त्रोंकी मारामार होने लगी, रथ और हाथियोंका मुचैटा होने लगा ॥ ३ ॥ युद्धकुशल प्रसन्न होनेलगे, डरपोकोंका भय बढ़ने लगा, योधा एक दूसरेका विध्वंस करनेकी इच्छासे सेनाओंमें घुसनेलगे ॥ ४ ॥ जिसमें प्राणोंकी बाजी लगरही थी ऐसा महाभयानक और यमलोकको बढानेवाला घोर संग्राम जिस समय चल रहा था, उस समय ॥ ५ ॥ पांडवोंने तीखे बाणोंसे तुम्हारी सेनाका विध्वंस करडाला, ऐसे ही आपके योधा भी पांडवोंकी सेना का विध्वंस करनेलगे ॥ ६ ॥ इसप्रकार सूर्योदय होनेपर दिनके पहले भागमें डरपोकोंको भयभीत करनेवाला बड़ा ही भयानक युद्ध हुआ ॥ ७ ॥ और महात्माओंसे रक्षित शत्रुपक्षके लक्ष्यवेधी योधा प्राणोंको कुछ न गिनकर आपकी सेनाके साथ लड़नेलगे ॥ ८ ॥ पांडव बलवान्, अभिमानी, निशानेको ताकनेवाले तथा लड़ाके थे, इसलिये आगसे घबड़ायी हुई मृगीकी समान कौरवी सेना घबड़ा उठी ॥ ९ ॥ कीचमें औंदीहुई गौकी समान कौरवोंकी सेनाको दुःखित हुई देख पांडवोंके हाथसे बचानेकी इच्छासे शल्य

पाण्डुचमूं प्रति ॥१०॥ मद्रराजस्तु संक्रुद्धो गृहीत्वा धनुरुत्तमम् ।
अभ्यद्रवत संग्रामे पाण्डवानाततायिनः ॥ ११ ॥ पाण्डवा अपि
भूपाल समरे जितकाशिनः । मद्रराजं समासाद्य विव्यधुर्निशितैः
शरैः ॥ १२ ॥ ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मद्रराजो महाबलः । अर्दया-
मास तां सेनां धर्मराजस्य पश्यतः ॥ १३ ॥ प्रादुरासन्निमित्तानि
नानारूपाण्यनेकशः । चचाल शब्दं कुर्वाणा मही चापि सपर्वता
॥ १४ ॥ सदण्डशूलदीप्ताग्रा दीर्य्यमाणाः समन्ततः । उल्का
भूमिं दिवः पेतुराहत्य रविमण्डलम् ॥ १५ ॥ मृगाश्च महिषाश्चापि
पक्षिणश्च विशाम्पते । अपसव्यं तदा चक्रुः सेनां ते बहुशो नृप
॥ १६ ॥ भृगुसूनुधरापुत्रौ शशिजेन समन्वितौ । चरमं पाण्डु-
पुत्राणां पुरस्तात् सर्वभूभुजाम् ॥ १७ ॥ शस्त्राग्रेष्वभवज्ज्वाला
नेत्राण्याहत्य वर्षती । शिरःस्वलीयन्त भृशं काकोलूकाश्च केतुषु

पांडवोंके ऊपर जाचढ़ा ॥ १० ॥ मद्रराजको बड़ा क्रोध आरहा था, उसने उत्तम धनुष ले संग्राममें आततायी पांडवोंके ऊपर चढाई करदी ॥ ११ ॥ हे राजन् ! पांडव भी युद्धमें विजय पानेसे दिप रहे थे, वे शल्यके पास आकर तेज बाणोंसे बींधनेलगे ॥ १२ ॥ और महारथी शल्य भी युधिष्ठिरके सामने उनकी सेनाको सैंकड़ों बाण मार कर पीड़ा देने लगा ॥ १३ ॥ परन्तु इस समय भांति भांतिके अपशकुन होनेलगे, पहाड़ोंके साथ पृथिवी शब्द करती हुई डगमगानेलगी ॥१४ ॥ जिसका अग्रभाग जलरहा था, जिस में दण्डे और शूल चमक रहे थे ऐसी चारों ओरको फैली हुई उल्का सूर्यमण्डल पर चोट मारकर आकाशमेंसे भूमि पर गिरने लगी ॥ १५ ॥ हे राजन् ! मृग, भैंसे और पक्षी प्रायः सेनाकी दाहिनी ओरको जानेलगे ॥ १६ ॥ शुक्र, मङ्गल और बुध नाम वाले ग्रह युधिष्ठिरके सप्तम स्थानमें बलवान् होकर पड़े थे ।१७। शस्त्रोंके अग्रभागमें ऐसी आगसी निकल रही थी कि—उसकी ओर को देखना भी कठिन था, पताकाओंके ऊपरके भागोंमें बार २

॥ १८ ॥ततस्तद्युद्धमत्युग्रमभवत् सहचारिणाम् । ततः सर्वाण्य-
नीकानि सन्निपत्य जनाधिप ॥ १९ ॥ अभ्ययुः कौरवा राजन्
पाण्डवानामनीकिनीम् । शल्यस्तु शरवर्षेण वर्षन्निव सहस्रदृक्
॥ २० ॥ अभ्यवर्षददीनात्मा कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् । भीमसेनं शरै-
श्चापि रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ २१ द्रौपदेयांस्तथा सर्वान् माद्री-
पुत्रौ च पाण्डवौ । धृष्टद्युम्नञ्च शैनेयं शिखंडिनमथापि च ॥२२॥
एकैकं दशभिर्बाणैर्विव्याध च महाबलः । ततोऽसृजद्बाणवर्षं घर्मा-
न्ते मघवानिव २३ ॥ ततः प्रभद्रका राजन् सोमकाश्च सहस्रशः
पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्ते शल्यसायकैः ॥ २४ ॥ भ्रमराणामिव
व्राताः शलभानामिव व्रजाः । ह्रादिन्य इव मेघेभ्य शल्यस्य न्य-
पतन् शराः ॥ २५ ॥ द्विरदास्तुरगाश्चार्त्ताः पत्तयो रथिनस्तथा ।
शल्यस्य बाणैर्न्यपतन् व्यभ्रमन् व्यनदंस्तथा ॥ २६ ॥ आविष्ट

कौए और उल्लू आकर बैठते थे ॥ १८ ॥ हे राजन् ! ऐसे अव-
सरमें सब सेनाएँ इकट्ठी होकर लड़नेलगीं तथा उनमें अतिउग्र
युद्ध होनेलगा ॥ १९ ॥ हे भूपते ! कौरव पांडवोंकी सेना पर जा
डटे तथा धर्मात्मा शल्य इन्द्रकी समान कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर और
भीमके ऊपर सान पर तेज किएहुए और सोनेके पङ्खवाले बाण
बरसानेलगा ॥२०—२१ ॥ द्रौपदीके सब पुत्रोंके, माद्रीके दोनों
पुत्रोंके, धृष्टद्युम्नके, शिनिपुत्र सात्यकीके और शिखंडीके क्रम २से
दश २ बाण मारे तथा जैसे इन्द्र वर्षा ऋतुमें जल बरसाता है,
ऐसे ही महाबली शल्य बाणोंकी वर्षा करके सहस्रों प्रभद्रक और
सोमकवंशके राजाओंको भूमिपर गिराने लगा, यह सब लोग
देख रहे थे ॥ २२—२४ ॥ जैसे भौंरोंके झुंड नीचेको गिरते हों,
जैसे टीड़ियोंके दल नीचेको आते हों और जैसे मेघोंमेंसे बिजलियें
गिररही हों, ऐसे ही शल्यके बाण पड़ रहे थे ॥ २५ ॥ शल्यके
बाण लगनेसे हाथी, घोड़े, पैदल और रथी घबड़ा कर चीखें
मारतेहुए भूमिमें पड़नेलगे ॥ २६ ॥ मेघकी समान गर्जना करने

इव मद्रेशो मन्युना पौरुषेण च । प्राच्छादयदरीन् संख्ये कालसृष्ट इवान्तकः ॥ २७ ॥ विनर्दमानो मद्रेशो मेघह्रादो महाबलः । सा वध्यमाना शल्येन पांडवानामनीकिनी ॥ २८ ॥ अजातशत्रुं कौन्तेयमभ्यधावद्युधिष्ठिरम् । तां संमर्द्य ततः संख्ये लघुहस्तः शितैः शरैः ॥ २९ ॥ शरवर्षेण महता युधिष्ठिरमपीडयत् । तमापतन्तं पत्त्यश्वैः क्रुद्धो राजा युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥ अवारयच्छरैस्तीक्ष्णैर्मत्तं द्विपमिवांकुशैः । तस्य शल्यः शरं घोरं मुमोचाशीविषोपमम् ॥ ३१ ॥ स निर्भिद्य महात्मानं वेगेन न्यपतच्च गाम् । ततो वृकोदरः क्रुद्धः शल्यं विव्याध सप्तभिः ॥ ३२ ॥ पञ्चभिः सहदेवस्तु नकुलो दशभिः शरैः । द्रौपदेयाश्च शत्रुघ्नं शूरमार्त्तायनिं शरैः ॥ ३३ ॥ अभ्यवर्षन्महावेगं मेघा इव महीधरम् । ततो दृष्ट्वा तुद्य-

---

वाला महाबली मद्रराज दहाड़ने लगा और क्रोध तथा पौरुषके आवेशमें आकर युद्धमें प्रकट हुए कालकी समान सब शत्रुओंको बाणोंसे ढकनेलगा और पांडवोंकी सेनाका संहार करनेलगा, तब तो पाण्डवोंकी सेना अजातशत्रु युधिष्ठिरके पास रक्षाके लिये दौड़ीहुई गई, इसप्रकार शल्यने युद्धमें हलके हाथसे तेज कियेहुए बाण मारकर युधिष्ठिरकी सेनाका विध्वंस करडाला ॥२७-२९॥ फिर बाणोंकी बड़ीभारी वर्षासे युधिष्ठिरको मारना आरम्भ किया पैदल और घुड़सवारोंके साथ राजा शल्य चढ़ आया, यह देख कर युधिष्ठिरने जैसे अंकुश मारकर बड़ेभारी हाथको रोकदेते हैं तैसे ही तीखे बाण मारकर शल्यको रोक दिया, तब तो शल्यने युधिष्ठिरके ऊपर विषैले सर्पकी समान घोर बाण छोड़ा, वह महात्मा युधिष्ठिरको फोड़कर वेगके साथ पृथिवीमें जाघुसा, यह देख कर भीमको बड़ा क्रोध आया, उसने शल्यके सात बाण मारे, सहदेवने पाँच नकुलने दश बाणमारे तथा हे भूपते ! जैसे मेघ पहाड़ पर जलकी वर्षा करते हैं, तैसे ही द्रौपदीके पुत्र शत्रुनाशक वीर शल्यके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे, ऐसे ही कुन्तीके पुत्र

मानं शल्यं पार्थैः समन्ततः ॥ ३४ ॥ कृतवर्मा कृपश्चैव संक्रुद्धा-
वभ्यधावताम् । उलूकश्च महावीर्य्यः शकुनिश्चापि सौबलः ३५
समागम्याथ शनकैरश्वत्थामा महारथः । तव पुत्राश्च कात्स्न्र्येन
जुगुपुः शल्यमाहवे ॥ ३६ ॥ भीमसेनं त्रिभिर्विध्वा कृतवर्मा शिली-
मुखैः । बाणवर्षेण महता क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ३७ ॥ धृष्टद्युम्नं
ततः क्रुद्धो बाणवर्षैरताडयत् । द्रौपदेयांश्च शकुनिर्यमौ च द्रौणि-
रभ्ययात् ॥ ३८ ॥ दुर्य्योधनो युधां श्रेष्ठ आहवे केशवार्जुनौ । सम-
भ्ययादुग्रतेजाः शरैश्चाप्यहनद्बली ॥ ३९ ॥ एवं द्वन्द्वशतान्यासं-
स्त्वदीयानां परैः सह । घोररूपाणि चित्राणि तत्र तत्र विशाम्पते
॥ ४० ॥ ऋक्षवर्णान् जघानाश्वान् भोजो भीमस्य संयुगे । सोऽव-
तीर्य्य रथोपस्थाद्धताश्वः पांडुनन्दनः ॥ ४१ ॥ कालो दंडमिवोद्य-

चारों ओरसे शल्यको आगे बढनेसे रोकनेलगे, यह देखकर ॥३०—॥ ३४ ॥ कृतवर्मा तथा कृपाचार्य क्रोधमें भरकर शल्यकी रक्षा करनेको आये, महापराक्रमी उलूक, सुबलनन्दन शकुनि, महाबली अश्वत्थामा तथा आपके सब पुत्र धीरे२ इकट्ठे होकर युद्धमें शल्य की रक्षा करने लगे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ कृतवर्माने तीन बाण मार कर भीमसेनको बींधदिया तथा बाणोंकी महावर्षा करके क्रोधी भीमको आगे बढ़नेसे रोकदिया। ॥ ३७ ॥ फिर क्रोध करके बाणों की वर्षासे धृष्टद्युम्नको पीड़ा देने लगा, शकुनि द्रौपदीके पुत्रोंको बाण मारकर बींधने लगा, अश्वत्थामा नकुल और सहदेव के सामने जाडटा ॥ ३८ ॥ योधाओंमें श्रेष्ठ उग्र, तेजस्वी दुर्योधन संग्राममें धनञ्जय और कृष्णके बाण मारनेलगा ॥ ३९ ॥ हे भूपते ! इसप्रकार आपके पुत्रोंके शत्रुओंके साथ भयानक और विचित्र सैंकड़ों द्वन्द्वयुद्ध हुए थे ॥ ४० ॥ तदनन्तर भोजराजने युद्धमें भीमसेनके रीछकी समान रङ्गके घोड़ोंको मारडाला, जिसके घोड़े मारे गए ऐसा भीमसेन रथमेंसे उतरकर जैसे काल दण्डको

म्य गदापाणिरयुध्यत । प्रमुखे सहदेवस्य जघानाश्वांश्च मद्रराट् ॥ ४२ ॥ ततः शल्यस्य तनयं सहदेवोऽसिनाऽवधीत् । गौतमः पुनराचार्यो धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ ४३ ॥ असम्भ्रान्तमसम्भ्रान्तो यत्नवान् यत्नवत्तरम् । द्रौपदेयांस्तथा वीरानेकैकं दशभिः शरैः ॥४४॥ अविध्यदाचार्य्यसुतो नातिक्रुद्धः स्मयन्निव । पुनश्च भीमसेनस्य जघानाश्वांस्तथाहवे ॥ ४५॥ सोऽवतीर्य्य रथात्तूर्णं हताश्वः पांडुनन्दनः । कालो दंडमिवोद्यम्य गदां क्रुद्धो महाबलः ॥ ४६ ॥ पोथयामास तुरगान् रथञ्च कृतवर्मणः । कृतवर्मा त्ववप्लुत्य रथात्तस्मादपाक्रमत् ॥ ४७ ॥ शल्योऽपि राजन् संक्रुद्धो निघ्नन् सोमकपांडवान् । पुनरेव शितैर्बाणैर्युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ ४८ ॥ तस्य भीमो रणे क्रुद्धः संदष्टदशनच्छदः । विनाशायाभिसन्धाय गदा-

उठाता है तैसे हाथमें गदा उठाकर उसके साथ युद्ध करने लगा, परन्तु इतनोंमें ही मद्रराजने सहदेवके सामने जा उसके घोड़ोंको मारडाला ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ यह देख सहदेवने तलवारसे शल्यके पुत्रको मारडाला, कृपाचार्य धृष्टद्युम्नकेसाथ लड़ने लगे ॥४३॥ युद्धके समय उन दोनोंमेंसे किसीको घबड़ाहट नहीं थी और बड़े यत्नसे लड़रहे थे. महाबली अश्वत्थामाने कुछएक क्रोधमें आकर मुसकुराते हुए द्रौपदीके पुत्रोंमेंसे हरएकके दश २ बाण मारे तथा संग्राम में फिर भीमसेनके घोड़ोंको काटडाला ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ भीमसेन उस रथमेंसे फिर नीचे उतरपड़ा और जैसे काल दण्डको उछाल रहा हो तैसे महावली भीमने क्रोधसे गदा मारकर कृतवर्माके घोड़ेको मारडाला तथा रथको तोड़दिया, तब कृतवर्मा उस रथमेंसे उतरकर भागगया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे भूपते ! शल्यको भी क्रोध चढ रहा था, उसने सोमक और पांडवोंके ऊपर प्रहार करना आरम्भ करदिया तथा तेज कियेहुए बाण मारकर युधिष्ठिरको पीड़ा देनेलगा ॥ ४८ ॥ यह देख भीमसेनको शल्यके ऊपर क्रोध आगया, उसने दाँतोंसे होठोंको काटते हुए शल्यके

मादत्त वीर्यवान् ॥ ४८ ॥ यमदंडप्रतीकाशां कालरात्रिमिवोद्य
ताम् । गजवाजिमनुष्याणां प्राणान्तकरणीमिति ॥५०॥ हेमपट्ट-
परिक्षिप्तामुल्कां प्रज्वलितामिव । शैक्यां व्यालीमिवात्युग्रां वज्रक-
ल्पामयोमयीम् ॥ ५१ ॥ चन्दनागुरुपङ्काक्तां प्रमदामीप्सितामिव
वसामेदोसृदिग्धाङ्गीं जिह्वां वैवस्वतीमिव ॥ ५२ ॥ पटुघंटाशतरवां
वासवीमशनीमिव । निर्मुक्ताशीविषाकारां पृक्तां गजमदैरपि ।५३।
त्रासनीं सर्वभूतानां स्वसैन्यपरिहर्षिणीम् । मनुष्यलोके विख्यातां
गिरिशृङ्गविदारणीम् ॥ ५४ ॥ यया कैलासभवने महेश्वरसखं
वली । आह्वयामास कौन्तेयः संक्रुद्धमलकाधिपम् ॥ ५५ ॥ यया
मायामयान् दृप्तान् सुवहून् धनदालये । जघान गुह्यकान् क्रुद्धो-

नाशके लिये, यमके उठे हुए दंडकी समान अपनी कालरात्रिकी समान गदाको उठाया, जो गदा हाथी, घोड़े तथा मनुष्योंका विध्वंस करनेवाली थी ॥ ४६ ॥ ५० ॥ जो गदा सोनेके पत्तरसे जड़ी हुई जलतीहुई उल्काकी समान, पिटारीमें बन्द कीहुई नागन की समान अति उग्र, वज्रसी भारी, लोहेकी वनी हुई ॥ ५१ ॥ चन्दन और अगरसे लिप्त, इच्छित स्त्रीकी समान, चावी और मेदसे सनी हुई, यमकी जीभसी, ॥ ५२ ॥ सुन्दर सौ घंटोंकेसा शब्द करने वाली, इन्द्रके वज्रसी, छोड़े हुए विषधर सर्पसी, हाथियोंके मदोंमें वसी हुई ॥ ५३ सकल प्राणियोंको त्रासदेने वाली और अपनी सेनाको हर्ष उत्पन्न करने वाली, मनुष्यलोकमें प्रसिद्ध और पर्वतोंके शिखरोंको फाड़ने वाली थी ॥ ५४ ॥ और जिस गदाके भरोसे पर महावली भीमने कैलासवासी शिवके मित्र कुवेरको युद्धके लिये बुलाया था ॥ ५५ ॥ और महावली भीमने उस समय वहुतोंके मना करने परभी द्रौपदीका प्रियकाम करनेके लिये क्रोधके साथ गर्जना करके कुवेरके राज भवनमें रहने वाले, मायावी, गर्वीले गुह्यकोंको गदासे मारडाला था, उस हीरे, मणि

नदन्पार्थो महाबलः ॥ ५६ ॥ वार्य्यमाणोपि बहुभिर्द्रौपद्याः प्रियमास्थितः । तां वज्रमणिरत्नौघकल्माषां वज्रगौरवाम् ॥ ५७ ॥ समुद्यम्य महाबाहुः शल्यमभ्यद्रवद्रणे । गदया युद्धकुशलस्तया दारुणनादया ॥ ५८ ॥ पोथयामास शल्यस्य चतुरोऽश्वान्महाजवान् । ततः शल्यो रणे क्रुद्धः पीने वक्षसि तोमरम् ॥ ५९ ॥ निचखान नदन् वीरो वर्म भित्त्वास्य सोऽभ्यगात् ॥ ६० ॥ वृकोदरस्त्वसम्भ्रान्तस्तमेवोद्धृत्य तोमरम् ॥ ६० ॥ यन्तारं मद्रराजस्य निर्बिभेद ततो हृदि । स भिन्नमर्मा रुधिरं वमन् वित्रस्तमानसः ॥ ६१ ॥ पपाताभिमुखो दीनो मद्रराजस्त्वपाक्रमत् । कृतप्रतिकृतं दृष्ट्वा शल्यो विस्मितमानसः ॥ ६२ ॥ गदामाश्रित्य धर्मात्मा प्रत्यमित्रमवैक्षत । ततः सुमनसः पार्था भीमसेनमपूजयन् । ते दृष्ट्वा कर्म

और रत्नोंसे जड़ी होनेके कारण विचित्र दीखने वाली, वज्रकी समान भारी गदाको उठाकर युद्धमें शल्यके ऊपर चढ़ गया और गदायुद्धमें चतुर भीमने दारुण शब्द करनेवाली उस गदा को मारकर शल्यके बड़े वेगवाले चारों घोड़ोंको मारडाला, इससे शल्य बड़े क्रोधमें भरगया, उसने गरजकर भीमकी विशाल छाती में, तोमर मारा, यह तोमर भीमके कवचको फोडकर उसकी छाती में घुसगया, परन्तु इससे भीमसेन घबड़ाया नहीं और उसने उस को खेंचकर मद्रराजके सारथीकी छातीमें मारदिया, वह तत्काल कवचको फोड़कर उसकी छातीमें घुसगया, जिससे सारथी रुधिर ओकने लगा और उसके मनको बड़ा ही त्रास हुआ वह सारथी दीन होकर रथके सामने आपड़ा, उस समय मद्रराज मनमें दुःखी होकर सारथिहीन रथमेंसे नीचे उतर पड़ा तथा भीमसेनने सामने आकर बदला लेलिया, यह देखकर उसके मनमें आश्चर्य हुआ ॥ ५६ ॥ ६२ ॥ फिर धर्मात्मा शल्य हाथमें गदा लेकर शत्रु भीमसेनकी ओरको देखनेलगा, उधर पांडव संग्राममें उत्तमकर्मा भीम-

संग्रामे घोरमक्लिष्टकर्मणः ॥ ६३॥ इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि शल्यभीमसेनयुद्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सञ्जय उवाच । पतितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम् । आदाय तरसा राजंस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ तं दीप्तमिव कालाग्निं पाशहस्तमिवान्तकम् । सशृंगमिव कैलासं सवज्रमिव वासवम् ॥ २ ॥ सशूलमिव हर्य्यक्षं वने मत्तमिव द्विपम् । जवेनाभ्यपतद्भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ३ ॥ ततः शंखप्रणादश्च तूर्य्याणाञ्च सहस्रशः । सिंहनादश्च सञ्जज्ञे शूराणां हर्षवर्द्धनः ॥४॥ प्रेक्षन्तः सर्वतस्तौ हि योधा योधमहाद्विपौ । तावकाश्च परे चैव साधुसाध्वित्यपूजयन् ॥ ५ ॥ न हि मद्राधिपादन्यो रामाद्वा यदुनन्दनात् । सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे ॥ ६ ॥ तथा मद्राधि-

---

सेनके इस भयानक कर्मको देखकर मनमें प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ६३ ॥ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ११

संजय कहता है, कि–हे राजन् ! अपने सारथीको रणमें गिरा देखकर राजा शल्यने एकसाथ पूर्ण लोहेकी गदा उठाली और पहाड़की समान अचल होकर खड़ा होगया ॥ १ ॥ भीम भी शीघ्र ही बड़ीभारी गदा लेकर वेगसे प्रदीप्त कालाग्निकी समान, पाशधारी कालकी समान, शिखरवाले कैलासकी समान, वज्रधारी इन्द्रकी समान, शूलधारी शिवकी समान और वनमें मदमत्त हुए हाथीकी समान खड़ेहुए राजा शल्यके सामने लड़नेके लिये तत्काल आगया॥२॥३॥तब तो सहस्रों शंख और तुरही बजनेलगीं वीरोंका हर्षवर्धक सिंहनाद होनेलगा ॥ ४ ॥ तुम्हारी ओरके तथा शत्रुपक्ष के सब योधा,उन दोनों योधारूप बड़े २ हाथियोंको देखनेलगे और उनको बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहकर बढ़ाने लगे ॥५॥ मद्रराज और यदुवंशी बलरामके सिवाय ऐसा और कोई नहीं था जो भीमसेनके वेगको सहसके ॥ ६ ॥ ऐसे ही महात्मा मद्रराजकी

यस्यापि गदावेगं महात्मनः । सोढुमुत्सहते नान्यो योधा युधि वृकोदरात् ॥७॥ तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः । आवर्तितगदाहस्तौ मद्रराजवृकोदरौ ॥ ८ ॥ मण्डलावर्त्तमानेषु गदाविहरणेषु च । निर्विशेषमभूद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ ९ ॥ तप्तहेममयैः शुभ्रैर्बभूव भयवर्द्धिनी । अग्निज्वालैरिवाविद्धा पट्टै शल्यस्य सा गदा ॥ १० ॥ तथैव चरतो मार्गान् मण्डलेषु महात्मनः। विद्युदभ्रप्रतीकाशा भीमस्य शुशुभे गदा ॥ ११ ॥ ताडिता मद्रराजेन भीमस्य गदया गदा । दह्यमानेव खे राजन् ससृजे पावकार्चिषः ॥ १२ ॥ तथा भीमेन शल्यस्य ताडिता गदया गदा । अङ्गारवर्षं मुमुचे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १३ ॥ दन्तैरिव महानागौ शृंगै-

गदाके वेगको भी युद्धमें भीमके सिवाय दूसरा कोई नहीं सह सकता था ॥ मद्रराज और भीमसेन दोनों बैलोंकी समान दहाड़ते हुए हाथमें गदा लेकर मण्डलाकार घूम रहे थे ॥८॥ इस मण्डलाकार फिरनेमें और गदाके हाथ दिखानेमें दोनों पुरुषसिंहोंमें कुछ अन्तर नहीं मालूम होता था ॥ ९॥ तपाये-हुए सोनेकी चमकदार रङ्गकी पत्तर जो अग्निकी ज्वालासी दीखती थी उससे मढ़ी हुई होनेके कारण शल्यकी वह गदा बड़ी डरावनी मालूम होती थी, ऐसे ही भाँति २ के मंडलोंके मार्गोंमें विहार करनेवाले महात्मा भीमकी बिजली और मेघकी समान कान्तिवाली गदा भी उस समय शोभा पा रही थी ॥ १० ॥ ११ ॥ हे राजन् ! मद्रदेशके स्वामी राजा शल्यने जब अपनी गदा भीमकी गदाके ऊपर मारी उस समय गदा मानो जल रही हो इस प्रकार आकाशमें चिनगारियें झाड़ने लगी ॥ १२ ॥ उधर जब भीमने अपनी गदासे शल्यकी गदाके ऊपर प्रहार किया तब वह गदा भी अङ्गारे बरसानेलगी यह देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य मालूम हुआ ॥ १३ ॥ जैसे दो बड़े २ हाथी दाँतोंसे युद्ध कररहे हों, जैसे दो बड़े बैल सींगों

रिव महर्षभौ । तोत्रैरिव तदाऽन्योन्यं गदाग्राभ्यां निजघ्नतुः १४
तौ गदाभिहतैर्गात्रैः क्षणेन रुधिरोक्षितौ । प्रैक्षणीयतरावास्तां पुष्पि-
ताविव किंशुकौ ॥ १५ ॥ गदया मद्रराजस्य सव्यदक्षिणमाहतः ।
भीमसेनो महाबाहुर्न चचालाचलोपमः ॥ १६ ॥ तथा भीमगदा-
वेगैस्ताड्यमानो मुहुर्मुहुः । शल्यो न विव्यथे राजन् दन्तिनेव
महागिरिः १७ शुश्रुवे दिक्षु सर्वासु तयोः पुरुषसिंहयोः । गदानिपात-
संह्रादो वज्रयोरिव निःस्वनः १८ निवृत्य तु महावीर्यौ समुच्छ्रि-
गदावुभौ । पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥१९॥ अथाभ्ये-
त्य पदान्यष्टौ सन्निपातोऽभवत्तयोः । उद्यम्य लोहदण्डाभ्यामति-
मानुषकर्मणोः ॥ २० ॥ पोथयन्तौ तदान्योऽन्यं मण्डलानि विचे-

से लड़रहे हों और जैसे दो पुरुष लाठियोंसे लड़ रहे हों, ऐसे ही शल्य और भीम आपसमें उत्तम गदाओंसे लड़रहे थे ॥ १४ ॥ गदाकी मारसे क्षणभरमें उन दोनोंके शरीर लोहूलुहान होगए, तब दोनों वीर फूलोंसे छायेहुए ढाकके वृक्षोंसे दीखनेलगे ॥१५॥ मद्रराजने भीमसेनकी बाईं और दाहिनी भुजा पर गदा मारी तो भी महाबाहु भीमसेन पहाड़की समान अचल खड़ा रहा ॥१६ ॥ ऐसे ही हे राजन्! भीमसेनने वेगके साथ बार २ गदाकी चोटकी तो भी जैसे हाथीसे महागिरि चलायमान नहीं होता है तैसे ही राजा शल्य भी अटल रहा ॥ १७ ॥ वे दोनों पुरुषसिंह जब गदाका प्रहार करते थे तो उसका शब्द वज्रपातकेसा होता था और वह सब दिशाओंमें सुनाई आता था ॥ १८ ॥वे दोनों महापराक्रमी फिर बड़ी२ गदाओंको ऊँची उठाकर रणभूमिमें मण्डलाकार घूमनेलगे ॥ १९ । और अमानुषी कर्म करनेवाले वे दोनों आठ पग सामने आकर लोहदण्ड उठा युद्ध करनेलगे ॥ २० ॥ इस समय शल्य भीम एक दूसरेके ऊपर प्रहार करतेहुए मण्डलाकार फिर रहे थे तथा अपने काममें विजय पानेवाले दोनों अपने

स्कृताः । विजये धृतसंकल्पाः समरे त्यक्तजीविताः ॥ ३७ ॥
प्राविशंस्तावकाः राजन् हंसा इव महत् सरः । ततो युद्धमभूद्धोरं
परस्परवधैषिणाम् ॥ ४८ ॥ अन्योऽन्यवधसंयुक्तमन्योन्यप्रीति-
वर्द्धनम् । तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे राजन् वीरवरक्षये ॥ ३६ ॥ अ-
निलेनेरितं घोरमुत्तस्थौ पार्थिवं रजः । श्रवणान्नामधेयानां पांड-
वानां च कीर्त्तनात् ॥ ४० ॥ परस्परं विजानीमो ये चायुध्यन्नभी-
तवत् । तद्रजः पुरुषव्याघ्र शोणितेन प्रशामितम् ॥ ४१ ॥ दिशश्च
विमला राजंस्तस्मिंस्तमसि नाशिते । तथा प्रवृत्ते संग्रामे भीमरूपे
भयानके ॥ ४२ ॥ तावकानां परेषाञ्च नासीत् कश्चित् परांमुखः
ब्रह्मलोकपरा भूत्वा प्रार्थयन्तो जयं युधि ॥ ४३ ॥ सुयुद्धेन परा-
क्रान्ता नराः स्वर्गमभीप्सवः । भर्त्तृपिण्डविमोक्षार्थं भर्तृकार्य्य-

करके विजय (अर्जुन) के साथ युद्ध करने लगे ॥३२–३७॥ और जैसे हंस बड़े भारी सरोवरमें घुसते हों तैसे तुम्हारे पुत्रोंने पांडवोंकी सेनामें प्रवेश किया, उसी समय एक दूसरेका संहार करनेकी इच्छासे परस्परमें युद्ध होने लगा ॥ ३८ ॥ यह युद्ध एक दूसरेका वध करने और एक दूसरेकी प्रीतको बढाने वाला था, हे राजन् बड़े२वीरोंका संहार करने वाले उस युद्धके चलने पर पवनसे भयानक धूलि उड़ने लगी, (जिसके कारणसे कोई किसीको पहिचान नहीं सकता था) जब कौरव और पांडव एक दूसरेके नाम लेते थे तब हम एक दूसरे को जान सकते थे योधा निर्भय होकर आपसमें लड़ने लगे, उनके रुधिरसे भीग जानेके कारण धूलि उड़ना बंद होगई और धूलिके पटलोंके कारण जो अन्धेरा हो रहा था वहभी दूर होगया-दिशाओं में उजाला होने लगा, इस प्रकार भयानक घोर संग्राम होने पर भी आपके और पांडवोंके योधाओंमेंसे कोई भी पीछे न हटा उस समय महारथी योधा ब्रह्मलोकमें जानेको तयार होगए, युद्धमें विजयकी प्रार्थना करने लगे, स्वर्गगति चाहने लगे अपने स्वामीके ऋणमेंसे मुक्त होनेके लिये उनका काम करनेका निश्चय कर लिया, वे अनेकों

तदनीकमभिप्रेक्ष्य ततस्ते पाण्डुनन्दनाः ॥ २९ ॥ प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनपुरोगमान्। तेषामापततां तूर्णं पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ ३० ॥ प्रासेन चेकितानं वै विव्याध हृदये भृशम्। स पपात रथोपस्थे तत्र पुत्रेन ताडितः ॥ ३१ ॥ रुधिरौघपरिक्लिन्नः प्रविश्य विपुलं तमः। चेकितानं हतं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथाः ३२ असक्तमभ्यवर्षन्त शरवर्षाणि भागशः। तावकानामनीकेषु पांडवा जितकाशिनः ॥ ३३ ॥ व्यचरन्त महाराज प्रेक्षणीयाः समन्ततः। कृपश्च कृतवर्मा च सौबलश्च महारथः ॥ ३४ ॥ अयोधयन् धर्मराजं मद्रराजपुरस्कृताः। भारद्वाजस्य हन्तारं भूरिवीर्यपराक्रमम् ॥ ३५॥ दुर्योधनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत्। त्रिसाहस्रा रथा राजंस्तव पुत्रेण चोदिताः ॥ ३६ ॥ अयोधयन्त विजयं द्रोणपुत्रपुर-

---

शस्त्रोंको ऊँचे करके बड़े२शब्द करते हुए पाण्डवोंकी सेना पर चढ आए, कौरवोंकी सेनाको देखकर पांडव भी सिंहोंकी समान गरज२ कर दुर्योधन आदि योधाओंके ऊपर चढ आए, और हे भरतसत्तम राजन्! इस प्रकार पाण्डवोंने चढाई की, कि-तुरन्त ही तुम्हारे पुत्रने प्रास मार कर चेकितानके हृदयको अत्यन्त घायल करदिया, तुम्हारे पुत्रके प्रहारसे वह रथकी बैठकमें गिर पड़ा ॥ २५-३१ ॥ रुधिरकी धारासे न्हा गया और फिर मरगया, पाण्डवोंकी ओरके महारथी चेकितानको मरा हुआ देखकर विभागके अनुसार कौरवोंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे और विजयसे शोभायमान दीखते तथा दर्शनीय पांडव तुम्हारी सेनाओंमें चौतरफा घूमनेलगे, कृपाचार्य, कृतवर्मा और महारथी सुबलपुत्र शकुनि मद्रराजको आगे करके युधिष्ठिरके साथ युद्ध करनेलगे, हे महाराज! दुर्योधन, द्रोणको मारनेवाले महापराक्रमी धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगा और उसकी आज्ञासे तीन सहस्र योधा अश्वत्थामाको अगुआ बनाकर प्राणोंकी परवाह न करते हुए विजयके लिये सङ्कल्प

स्कृताः । विजये धृतसंकल्पाः समरे त्यक्तजीविताः ॥ ३७ ॥
प्रविविशुस्तावकाः राजन् हंसा इव महत् सरः । ततो युद्धमभूद्धोरं
परस्परवधैषिणाम् ॥ ४८ ॥ अन्योऽन्यवधसंयुक्तमन्योन्यप्रीति-
वर्द्धनम् । तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे राजन् वीरवरक्षये ॥ ३९ ॥ अ-
निलेनेरितं घोरमुत्तस्थौ पार्थिवं रजः । श्रवणान्नामधेयानां पांड-
वानां च कीर्त्तनात् ॥ ४० ॥ परस्परं विजानीमो ये चायुध्यन्नभी-
तवत् । तद्रजः पुरुषव्याघ्र शोणितेन प्रशामितम् ॥ ४१ ॥ दिशश्च
विमला राजंस्तस्मिंस्तमसि नाशिते । तथा प्रवृत्ते संग्रामे भीमरूपे
भयानके ॥ ४२ ॥ तावकानां परेषाञ्च नासीत् कश्चित् पराङ्मुखः
ब्रह्मलोकपरा भूत्वा प्रार्थयन्तो जयं युधि ॥ ४३ ॥ सुयुद्धेन परा-
क्रान्ता नराः स्वर्गमभीप्सवः । भर्त्तृपिण्डविमोक्षार्थं भर्तृकार्य्य-

करके विजय (अर्जुन) के साथ युद्ध करने लगे ॥३२-३७॥ और जैसे हंस बड़े भारी सरोवरमें घुसते हों तैसे तुम्हारे पुत्रोंने पांडवोंकी सेनामें प्रवेश किया, उसी समय एक दूसरेका संहार करनेकी इच्छासे परस्परमें युद्ध होने लगा ॥ ३८ ॥ यह युद्ध एक दूसरेका वध करने और एक दूसरेकी प्रीतको वढाने वाला था, हे राजन् बड़े२वीरोंका संहार करने वाले उस युद्धके चलने पर पवनसे भयानक धूलि उड़ने लगी, (जिसके कारणसे कोई किसीको पहिचान नहीं सकता था) जब कौरव और पांडव एक दूसरेके नाम लेते थे तब हम एक दूसरे को जान सकते थे योधा निर्भय होकर आपसमें लड़ने लगे, उनके रुधिरसे भीग जानेके कारण धूलि उड़ना वंद होगई और धूलिके पटलोंके कारण जो अन्धेरा हो रहा था वहभी दूर होगया-दिशाओं में उजाला होने लगा, इस प्रकार भयानक घोर संग्राम होने पर भी आपके और पांडवोंके योधाओंमेंसे कोई भी पीछे न हटा उस समय महारथी योधा ब्रह्मलोकमें जानेको तयार होगए, युद्धमें विजयकी प्रार्थना करने लगे, स्वर्गगति चाहने लगे अपने स्वामीके ऋणमेंसे मुक्त होनेके लिये उनका काम करनेका निश्चय कर लिया, वे अनेकों

विनिश्चयाः ॥ ४४ ॥ स्वर्गसंसक्तमनसो योधा युयुधिरे तदा ।
नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः ॥ ४५ ॥ अन्योऽन्यम-
भिगर्ज्जन्तः प्रहरन्तः परस्परम् । हत विध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृ-
न्तत ४६ इति स्म वाचः श्रूयन्ते तव तेषाञ्च वै बले । ततो शल्यो महा-
राज धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ४७ ॥ विव्याध निशितैर्बाणैर्हन्तुकामो
महारथम् । तस्य पार्थो महाराज नाराचान् वै चतुर्दश ॥ ४८ ॥
मर्माण्युद्दिश्य मर्मज्ञो निचखान हसन्निव । आवार्य्य पाण्डवं
बाणैर्हन्तुकामो महाबलः ॥ ४९ ॥ विव्याध समरे क्रुद्धो बहुभिः
कङ्कपत्रिभिः । अथ भूयो महाराज शरेणानतपर्वणा ॥ ५० ॥
युधिष्ठिरं समाजघ्ने सर्वसैन्यस्य पश्यतः । धर्मराजोऽपि संक्रुद्धो मद्र-
राजं महायशाः ॥ ५१ ॥ विव्याध निशितैर्बाणैः कंकबर्हिणवा-
जितैः । चन्द्रसेनञ्च सप्तत्या सूतञ्च नवभिः शरैः ॥ ५२ ॥ द्रुम-

प्रकारके शस्त्र छोड़कर लड़ने लगे, एक दूसरेके सामने गर्जना कर-
ने लगा और एक दूसरेके ऊपर प्रहार करने लगा हे राजन् !
उस समय आपकी और पाण्डवोंकी सेनामें मारो, बींध डालो,
पकड़लो, प्रहार करो काटडालो, इसप्रकार चिल्लाहट पड़रही थी,
इस प्रकार युद्ध चल रहा था, उस समय हे महाराज ! शल्यने
महारथी धर्मपुत्र युधिष्ठिरको मरनेकी इच्छासे तेज कियेहुए
बाण मारकर उनको बींधडाला, हे महाराज ! मर्मस्थानोंके
विभागको जानने वाले युधिष्ठिरने भी मर्मस्थानोंको ताक कर मुस-
कुराते हुए चौदह बाण मार कर शल्यके मर्मस्थानोंको बींधदिया,
महाबली शल्य क्रोधमें भरगया, उसने भी सब सेनाके देखते हुए
बाण मार कर राजा युधिष्ठिरको बाण छोड़नेसे रोकदिया और
फिर कङ्कके पर तथा नमी हुई गांठवाले बाण मारकर युधिष्ठिरको
बींधडाला, तब तो महायशस्वी राजा युधिष्ठरको भी बड़ा क्रोध
चढ़आया, उन्होंने कङ्क और मोरके परोंवाले तेज बाण मारकर
शल्यको बींध दिया फिर चन्द्रसेनके सत्ताईस, सारथीके नौ तथा

सेनञ्चतुःषष्ट्या निजघान महारथः । चक्ररक्षो हते शल्यः पांडवेन महात्मना ॥ ५३ ॥ निजघान ततो राजंश्चेदीन् व पञ्चविंशतिम् । सात्यकिं पञ्चविंशत्या भीमसेनञ्च पञ्चभिः ॥ ५४ ॥ माद्रीपुत्रौ शतेनाजौ विव्याध निशितैः शरैः । एवं विचरतस्तस्य संग्रामे राजसत्तम ॥ ५५ ॥ संप्रैषयच्छितान् पार्थः शरानाशीविषोपमान् । ध्वजाग्रञ्चास्य समरे कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५६ ॥ प्रमुखे वर्त्तमानस्य भल्लेनापाहरद्रथात् । पाण्डुपुत्रेण वै तस्य केतुं छिन्नं महात्मना ॥ ५७ ॥ निपतन्तमपश्याम गिरिशृंगमिवाहतम् । ध्वजं निपतितं दृष्ट्वा पाण्डवञ्च व्यवस्थितम् ॥ ५८ ॥ संक्रुद्धो मद्रराजोऽभूच्छरवर्षं मुमोच ह । शल्यः सायकवर्षेण पर्ज्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ ५९ ॥ अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः । सात्यकिं भीमसेनञ्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ६० ॥ एकैकं पञ्चभिर्विध्वा युधिष्ठिरमपीडयत् । ततो बाणमयं जालं विततं पांड-

द्रुमसेनके चौंसठ बाण मारे और शल्यके रथके पहियेकी रक्षा करनेवाले को महात्मा युधिष्ठिरने मारडाला, शल्यने पचीस बाण चेदिराजाओंके, पचीस सात्यकीके, पांच भीमके और सौ, तेज बाण माद्रीके दोनों पुत्रोंके मारे, हे महाराज! इसप्रकार राजा शल्य रणमें लड़रहा था ॥३६॥५५॥ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर रणके मुहानेपर खड़े हुए शल्यके ऊपर विषैले सर्पसमान बाण छोड़नेलगे, उसके रथके ऊपरकी ध्वजाके अग्रभागको भल्लनामक बाणसे काटडाला, फिर महात्मा युधिष्ठिरने उसकी ध्वजाको भी काटडाला, वह तोड़ कर गिराए हुए पहाड़के शिखरकी समान पृथिवी पर गिरती हुई हमने देखी, अपनी ध्वजाको गिरी हुई और युधिष्ठिरको रणमें निर्भय खड़ा हुआ देखकर मद्रराज शल्यको क्रोध चढ़आया और जैसे मेघ जल बरसाता है तैसे ही क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ महात्मा शल्य क्षत्रियोंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगा, उसने सात्यकी, भीम, नकुल और सहदेव इनमेंसे हरएकके पांच २ बाण मारे तथा बाणोंकी

वोरसि ॥ ६१ ॥ अपश्याम महाराज मेघजालमिवोद्गतम् । तस्य शल्यो रणे क्रुद्धो बाणैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६२ ॥ दिशः प्रच्छादयामास प्रदिशश्च महारथः । ततो युधिष्ठिरो राजा बाणजालेन पीडितः । बभूवाद्भुतविक्रान्तो जम्भो वृत्रहणा यथा ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि शल्ययुधिष्ठिरयुद्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सञ्जय उवाच । पीडिते धर्मराजे तु मद्रराजेन मारिष । सात्यकिर्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १ ॥ परिवार्य्य रथैः शल्यं पीडयामासुराहवे । तमेकं बहुभिर्दृष्ट्वा पीडयमानं महारथैः ॥ २ ॥ साधुवादो महान् जज्ञे सिद्धाश्चासन् प्रहर्षिताः । आश्चर्य्यमित्यभाषन्त मुनयश्चापि संगताः ॥ ३ ॥ भीमसेनो रणे शल्यं शल्य-

---

मारसे युधिष्ठिरको पीड़ित करडाला, उनकी छाती पर चारों ओर से बाणोंका जाल फैलादिया ॥ ५६—६१ ॥ हे महाराज ! हमने देखा, कि—जैसे आकाश में मेघ उठाहुआ हो ऐसे ही बाणों का जाल फैल रहाथा, युधिष्ठिरको बाणोंमें फांसनेके अनंतर महारथी शल्यने क्रोधमें भरकर रणमें नमेहुए पर्ववाले बाणोंसे दिशा और विदिशाओं को छादिया और जैसे अद्भुत पराक्रमी जंभासुर इन्द्रसे पीड़ित हुआ था, तैसे ही अद्भुतपराक्रमी राजा युधिष्ठिर भी बाणोंके जालसे विकल होगए ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ बारहवां अध्याय समाप्त ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय कहता है, कि—हे राजन् ! ज्योंही मद्रराजने धर्मराज को दबाया; कि—उसी समय सात्यकी, भीमसेन, नकुल और सहदेव रणमें रथोंसे शल्यको घेरकर पीड़ित करने लगे, बहुतसे महारथी एकको दबारहे हैं, यह देखकर पाण्डवोंके पक्षवाले पुकार २ कर बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहनेलगे, सिद्ध-पुरुष प्रसन्न होनेलगे और मुनि इकट्ठे होकर आश्चर्य आश्चर्य कहनेलगे ॥ १—३ ॥ फिर भीमसेनने पराक्रममें शल्यरूप राजा

भूतं पराक्रमे । एकेन विध्वा वाणेन पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ४ ॥ सात्यकिश्च शतेनैनं धर्मपुत्रपरीप्सया । मद्रेश्वरमवाकीर्य्य सिंहनादमथानदत् ॥ ५ ॥ नकुलः पञ्चभिश्चैनं सहदेवश्च सप्तभिः । विध्वा तन्तु ततस्तूर्णं पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ६ ॥ स तु शूरो रणे यत्तः पीडितस्तैर्महारथैः । विकृष्य कार्मुकं घोरं वेगवद्भारसाधनम् ॥ ७ ॥ सात्यकिं पञ्चविंशत्या शल्यो विव्याध मारिष। भीमसेनं त्रिसप्तत्या नकुलं सप्तभिस्तथा ॥ ८ ॥ ततः स विशिखं चापं सहदेवस्य धन्विनः । छित्वा भल्लेन समरे विव्याधैनं त्रिसप्तभिः ॥ ६ ॥ सहदेवस्तु समरे मातुलं भूरिवर्च्चसम् । सज्यमन्यद्धनुः कृत्वा पञ्चभिः समताडयत् ॥ १० ॥ शरैराशीविषाकारैर्ज्वलज्ज्वलनसन्निभैः । सारथिञ्चास्य समरे शरेणानतपर्वणा ॥ ११ ॥ विव्याध भृशसंक्रुद्धस्तञ्च भूयस्त्रिभिः शरैः । भीमसेन-

शल्यके पहले एक और फिर सात वाण मारे ॥ ४ ॥ सात्यकी ने धर्मराजको सहायता देनेके लिये मद्रराज के सौ वाण मारकर सिंहकी समान गर्जना की ॥ ५ ॥ नकुल और सहदेवने पांच २ वाण मारकर फिर तुरंत ही सात वाण मारे ॥ ६ ॥ इसप्रकार महारथियोंसे पीड़ित होने पर भी शूर शल्यने युद्धके लिये डटे रह कर हे राजन् ! भारको सहसकनेवाले और शत्रुके वेगका नाश करनेवाले भयानक धनुषको खेंचकर सात्यकीके पचीस, भीमसेनके सत्तर और नकुलके सात वाण मारे ॥ ७ ॥ ८ ॥ फिर भल्ल नामक वाण मार कर धनुषधारी सहदेवके वाणसहित धनुषके टुकड़े करडाले और उस को इक्कीस वाणोंसे बींधडाला, सहदेव ने दूसरा धनुष तयार करके महातेजस्वी मामाके पांच वाण मारे ॥६॥१०॥ वे वाण विषधर सर्पकी समान और बलतेहुए अग्निकी समान थे, फिर नमेहुए पर्ववाला एक वाण उसके सारथीके मारा, फिर शल्यके भी क्रोधमें भरेहुए सहदेवने तीन भीमसेनने सत्तर,

स्तु सप्तत्या सात्यकिर्नवभिः शरैः । धर्मराजस्तथा षष्ट्या गात्रे शल्यं समार्पयत् । ततः शल्यो महाराज निर्विद्धस्तैर्महारथैः ।१३। सुस्राव रुधिरं गात्रैर्गैरिकं पर्वतो यथा । तांश्च सर्वान् महेष्वासान् पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ १४ ॥ विव्याध तरसा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् । ततोऽपरेण भल्लेन धर्मपुत्रस्य मारिष ॥ १५ ॥ धनुश्चिच्छेद समरे सज्यं स हि महारथः । अथान्यद्धनुरादाय धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १६ ॥ साश्वसूतध्वजरथं शल्यं प्राच्छादयच्छरैः । सच्छाद्यमानः समरे धर्मपुत्रस्य सायकैः ॥ १७ ॥ युधिष्ठिरमथाविध्यद्दशभिर्निशितैः शरैः । सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धर्मपुत्रे शरार्दिते॥१८॥ मद्राणामधिपं शूरं शरैर्विव्याध पञ्चभिः । स सात्यकेः प्रचिच्छेद क्षुरप्रेण महद्धनुः ॥ १९ ॥ भीमसेनमुखांस्तांश्च त्रिभि-

---

सात्यकीने नौ और धर्मराजने आठ वाण मारे, इसप्रकार महारथियों ने शल्यके शरीरको वाणोंसे बींधडाला, तवतो जैसे पहाड़के शिखरों मेंसे गेरूका पानी वहता है तैसे ही शल्यके अङ्गोंमेंसे रुधिर वहने-लगा, हे राजन्! शल्यने भी तुरन्त ही उनमें से हरएक धनुपधारी के पांच२ वाण मारे, उसका यह काम बड़े आश्चर्यमें डालनेवाला हुआ, इस कार्यके वाद महारथी शल्यने भल्ल नामका वाण मार कर धर्मपुत्रके तयार कियेहुए धनुपको रणमें काटडाला, तव धर्मपुत्र युधिष्ठिरने दूसरा धनुप लिया ॥ ११–१६ ॥ और वाण मारकर राजा शल्य, उसके घोड़े, सारथी, रथ और ध्वजा को ढकदिया, जव शल्य रणमें युधिष्ठिरके वाणोंसे ढकगया तव उसने भी युधिष्ठिरके तेज किये हुए दश वाण मारे, राजा युधिष्ठिर वाणोंसे पीड़ा पानेलगे, यह देख सात्यकीको क्रोध आगया१७।१८ उसने वीर मद्रराजके पाँच वाण मारे, शल्यने क्षुरप्र नामके वाणों से सात्यकीके वड़े धनुपको काटडाला ॥ १९ ॥ और भीमसेन आदिके तीन २ वाण मारे, तव तो सत्यपराक्रमी सात्यकी क्रोध

स्त्रिभिरताडयत् । तस्य क्रुद्धो महाराज सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ २० ॥ तोमरं प्रेषयामास स्वर्णदण्डं महाधनम् । भीमसेनोऽथ नाराचं ज्वलन्तमिव पन्नगम् ॥ २१ ॥ नकुलः समरे शक्तिं सहदेवो गदां शुभाम् । धर्मराजः शतघ्नीन्तु जिघांसुः शल्यमाहवे २२ तानापतत एवाशु पञ्चानां वै भुजच्युतान् । वारयामास समरे शस्त्रसंघैः स मद्रराट् ॥२३ ॥ सात्यकिप्रहितं शल्यो भल्लैश्चिच्छेद तोमरम् । भीमेन प्रहितं चापि शरं कनकभूषणम् ॥ २४ ॥ द्विधा चिच्छेद समरे कृतहस्तः प्रतापवान् । नकुलप्रेषितां शक्तिं हेमदंडां भयावहाम् ॥ २५ ॥ गदाञ्च सहदेवेन शरौघैः समवारयत् । शराभ्याञ्च शतघ्नीं तां राज्ञश्चिच्छेद भारत ॥ २६ ॥ पश्यतां पाण्डुपुत्राणां सिंहनादं ननाद च । नामृष्यत्तत्र शैनेयः शत्रोर्विजयमाहवे

में भरगया, उसने शल्यको मारनेकी इच्छासे बहुमूल्य और सोने के दंडेवाला तोमर मारा, भीमसेनने विषसे जलते हुए सर्पसा बाण मारा ॥ २० ॥ २१ ॥ नकुलने उस संग्राममें शक्ति मारी, सहदेवने उत्तम गदा तथा धर्मराजने शल्यको मारनेकी इच्छासे शल्यके ऊपर शतघ्नीका प्रहार किया ॥ २२ ॥ इसप्रकार पाँचों योधाओंके हाथोंमेंसे पाँच शस्त्र एकसाथ शल्यकी ओरको आये, परन्तु मद्रराजने शस्त्र मारकर उनको पीछेको हटा दिया ॥२३॥ सात्यकीने जो तोमर मारा था उसको शल्यने भल्लसे काटडाला, भीमसेनने सोनेसे जड़ाहुआ बाण मारा था, उसको प्रतापी शल्य ने शिक्षित हाथसे युद्धमें काटडाला, नकुलने सोनेके दंडेवाली भयङ्कर शक्ति मारी थी और सहदेवने गदा मारी थी, उनको शल्यने बहुतसे बाण मारकर हटादिया और हे भरतवंशी राजन्! दो बाण मारकर राजा युधिष्ठिरकी शतघ्नीके टुकड़े करडाले, यह सब काम पाण्डवोंके देखते हुए करके शल्यने सिंहकी समान गर्जना की, परन्तु इसप्रकार शत्रुकी विजयको सात्यकी न सह-

॥ २७ ॥ अथान्यद्धनुरादाय सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः । द्वाभ्यां मद्रेश्वरं विध्वा सारथिञ्च त्रिभिः शरैः ॥ २८ ॥ ततः शल्यो महाराज सर्वांस्तान् दशभिःशरैः । विव्याध सुभृशं क्रुद्धस्तोत्त्रैरिव महाद्विपान् ॥ २६ ॥ ते वार्य्यमाणाः समरे मद्रराजेन भारत । न शेकुः प्रमुखे स्थातुं तस्य शत्रुनिसूदनाः ॥ ३० ॥ ततो दुर्य्योधनो राजा दृष्ट्वा शल्यस्य विक्रमम् । निहतान् पाण्डवान् मेने पञ्चालानथ सृञ्जयान् ॥ ३१ ॥ ततो राजन्महाबाहुर्भीमसेनः प्रतापवान् । संत्यज्य मनसा प्राणान् मद्राधिपमयोधयत् ॥ ३२ ॥ नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महाबलः । परिवार्य्य तदा शल्यं समन्ताद्व्यकिरञ्छरैः ॥३३॥ स चतुर्भिर्महेष्वासैः पाण्डवानां,महारथैः । वृतस्तान् योधयामास मद्रराजः प्रतापवान् ॥ ३४ ॥ तस्य धर्मसुतो राजन्

सका, वह क्रोधमें भरगया और दूसरा धनुष लेकर दो बाण शल्यके और तीन बाण उसके सारथीके मारे ॥ २४—२८ ॥ तब शल्यको भी क्रोध आगया और जैसे बड़े २ हाथियोंको भालोंसे मारा करते हैं तैसे ही शल्यने उनमेंसे हरएकके दश २ बाण मारे ॥ २६ ॥ और उन महारथियोंको रणमें आगे बढ़ने से रोकदिया, इससे वे शत्रुओंका संहार करनेवाले होकर भी शल्यके सामने खड़े न रहसके ॥ ३० ॥ शल्यका ऐसा पराक्रम देखकर राजा दुर्योधनने समझ लिया कि—अब पाण्डव पञ्चालराजे और सृञ्जयोंका नाश होजायगा ॥ ३१ ॥ फिर महाबाहु प्रतापी भीमसेन अपने मनमें मरने या मारनेका निश्चय करके शल्यके सामने युद्ध करनेलगा और नकुल,सहदेव महारथी सात्यकी शल्यको चारों ओरसे घेरकर उसके ऊपर बाण बरसाने लगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ पाण्डवोंके चारों महाधनुषधारी महारथियोंने शल्यको घेरलिया और वह प्रतापी मद्रराज उनके साथ युद्ध करने लगा ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! युद्ध करते २ धर्मराजने उस संग्राम

क्षुरमेण महाहवे । चक्ररक्षं जघानाशु मद्रराजस्य पार्थिवः ॥३५॥ तस्मिंस्तु निहते शूरे चक्ररक्षे महारथे । मद्रराजोपि बलवान् सैनिकानवृणोच्छरैः ॥ ३६ ॥ समाच्छन्नांस्ततस्तांस्तु राजन् वीक्ष्य स्वसैनिकान् । चिन्तयामास समरे धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३७ ॥ कथं नु समरे शक्यं तन्माधववचो महत् । न हि क्रुद्धो रणे राजन् क्षपयेत बलं मम ॥ ३८ ॥ ततः सरथनागाश्वाः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज । मद्रेश्वरं समासेदुः पीडयन्तः समन्ततः ॥ ३९॥ नानाशस्त्रौघबहुलां शरवृष्टिं समुत्थिताम् । व्यधमत् समरे राजा महाभ्राणीव मारुतः ॥ ४० ॥ ततः कनकपुंखां तां शल्यक्षिप्तां वियद्गताम् । शरवृष्टिमपश्याम शलभानामिवायतिम् ॥ ४० ॥ ते शरा मद्रराजेन प्रेषिता रणमूर्द्धनि । सम्पतन्तः स्म दृश्यन्ते शलभानां

में क्षुरप्र नामका बाण मारकर शल्यके चक्ररक्षकको तुरन्त मारडाला ॥ ३५ ॥ महारथी वीर चक्ररक्षकके मारेजाने पर मद्रराज भी बलवान् था, उसने बाण मारकर पाण्डवोंके योधाओंको ढक दिया ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! अपने सैनिकोंको बाणोंसे ढकाहुआ देखकर राजा युधिष्ठिर विचारने लगे कि– ॥ ३७ ॥ श्रीकृष्णकी कहीहुई वह बड़ी भारी बात किसप्रकार सत्य की जा सकेगी ? यदि कोपमें भराहुआ राजा शल्य रणमें हमारी सेनाका संहार न करे तो वह बात पूरी होय ॥ ३८ ॥ हे पांडुके बड़े भाई ! राजा युधिष्ठिर ऐसा विचार कर रहे थे, इतनेमें ही घोड़े हाथी आदि चतुरङ्गिणी सेनाके साथ पाण्डव मद्रराजके ऊपर चढ़ आये और चारों ओरसे उसको पीड़ित करने लगे ॥ ३९ ॥ और उसके ऊपर अनेकों प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, परन्तु जैसे पवन बड़े २ बादलोंको बखेर देता है तैसे ही राजा शल्यने युद्धमें पाण्डवोंके योधाओंकी की हुई भांति २ की अस्त्रोंकी वर्षाका नाश करडाला ॥ ४० ॥ और शल्यने उलटी सोनेको पंखवाले बाणोंकी वर्षा की, वह आकाशमें उड़ते हुए

व्रजा इव ॥ ४१ ॥ मद्रराजधनुर्मुक्तैः शरैः कनकभूषणैः । निरन्तरमिवाकाशं सम्बभूव जनाधिप ॥ ४३ ॥ न पाण्डवानां नास्माकं तत्र किञ्चित् व्यदृश्यत । बाणान्धकारे महति कृते तत्र महाहवे ॥ ४४ ॥ मद्रराजेन बलिना लाघवाच्छरवृष्टिभिः । चाल्यमानं तु तं दृष्ट्वा पाण्डवानां बलार्णवम् ॥ ४५ ॥ विस्मयं परमं जग्मुर्देवगन्धर्वदानवाः । स तु तान् सर्वतो यत्नाच्छरैः सम्पीड्य मारिष ॥ ४६ ॥ धर्मराजमवच्छाद्य सिंहवद्व्यनदन्मुहुः । ते छन्ना समरे तेन पाण्डवानां महारथाः ॥४७॥ नाशक्नुवंस्तदा युद्धे प्रत्युद्यातुं महारथम् । धर्मराजपुरोगास्तु भीमसेन मुखा रथाः ॥ न जहुः समरे शूरं शल्यमाहवशोभिनम् ॥ ४७ ॥

इति शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

टीडियोंके दलसी हमने देखी ॥ ४१ ॥ और टीड्डिदल जैसे नीचेको उतर पडते हैं तैसे ही शल्यकी की हुई बाणोंकी वर्षा रणके मुहाने पर पडती हुई देखी ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! मद्रराजके धनुषमेंसे छूटेहुए सोनेके भूषणवाले बाणोंकी वर्षासे सब आकाश छागया ॥ ४३ ॥ और इसकारणसे उस महायुद्धमें इतना गहरा अन्धकार होगया, कि—पांडवोंके या हमारे कोई योधा नहीं दीखते थे ॥४४॥ मद्रराज बली था, उसने शीघ्रतासे बाणों की मारामार करके पांडवोंके सेनासागरको उथलपुथल करदिया यह देखकर देवता, गन्धर्व और दानवोंको बडा विस्मय हुआ, मद्रराजने चारोंओरसे सावधान होकर खड़ेहुए सब महारथियोंको बाणोंसे ढकदिया और धर्मराजको भी ढककर वारम्वार सिंहकी समान गरजने लगा, इसप्रकार राजा शल्यने युद्धमें पांडवोंके महारथियोंको बाणोंकी वर्षासे ढकदिया, इसकारण वे युद्धमें महारथी शल्यका मुचैटा लेनेको आगे न बढ़सके, परन्तु धर्मराज और भीमसेन आदि महारथियोंने युद्धमें शोभा पाने वाले वीर शल्यको छोडा नहीं अर्थात् उसके ऊपर चढ़ाई करते ही रहे ॥४५—४८॥ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । अर्जुनो द्रौणिना विद्धो युद्धे बहुभिरायसैः । तस्य चानुचरैः शूरैस्त्रिगर्त्तानां महारथैः ॥ १ ॥ द्रौणिं विव्याध समरे त्रिभिरेव शिलीमुखैः । तथेतरान्महेष्वासान् द्वाभ्यां द्वाभ्यां धनञ्जयः ॥ २ ॥ भूयश्चैव महाराज शरवर्षैरवाकिरत् । शरकण्टकितास्ते तु तावका भरतर्षभ ॥ ३ ॥ न जहुः पार्थमासाद्य वध्यमानाः शितैः शरैः । तेऽर्जुनं रथवंशेन द्रोणपुत्रपुरोगमाः ॥४॥ अयोधयन्त समरे परिवार्य्य महारथाः । तैस्तु क्षिप्ताः शरा राजन् कार्त्तस्वरविभूषिताः ॥ ५ ॥ अर्जुनस्य रथोपस्थं पूरयामासुरञ्जसा । तथा कृष्णौ महेष्वासौ वृषभौ सर्वधन्विनाम् ॥ ६ ॥ शरैर्वीक्ष्य विनुन्नाङ्गौ प्रहृष्टा युद्धदुर्मदाः । कूबरं रथचक्राणि ईषायोक्त्राणि चा विभो ॥ ७ ॥ युगं चैवानुकर्षञ्च शरभूतमभूत्तदा । नैतादृशं दृष्टपूर्वं राजन्नैवापि च श्रुतम् ॥ ८ ॥ यादृशं तत्र पार्थस्य

सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् ! दूसरी ओर युद्धमें अश्वत्थामाने और उसके अनुचर त्रिगर्त्तके वीर महारथियोंने लोहेके बहुतसे बाण मारकर अर्जुनको घायल करदिया ॥१॥ तब अर्जुनने भी तीन बाण अश्वत्थामाके और अन्य महाधनुषधारी योधाओंके दो दो बाण मारे ॥२॥ हे महाराज ! फिर अर्जुनने उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करी, उससे आपके पक्षके योधा बिंध गये, अर्जुनके तेज बाणोंकी मार खाकर भी अश्वत्थामा आदि महारथी युद्धमें रथोंके समूहसे धनञ्जयको घेरकर उसके सामने युद्ध करने लगे और उन्होंने सोनेसे शोभायमान बाण मार कर अर्जुनके रथकी बैठकको भरदिया और सब धनुष धारियोंमें श्रेष्ठ तथा महाधनुषधारी कृष्ण और अर्जुनके शरीर बाणोंसे बिंधगए, यह देखकर आपकी सेनाके युद्धदुर्मद योधा बड़े ही प्रसन्न हुए और हे राजन् ! रथका ढांच, पहिये, ईषा, आँकड़े जुआ और नीचेका भाग ये सब बाणोंसे भर गए, हे राजन् ! ऐसा युद्ध न कभी पहले देखा था, न सुना था ३-८ आप

तावकाः संप्रचक्रिरे । स रथः सर्वतो भाति चित्रपुंखैः शितैः शरैः ॥ ९ ॥ उल्काशतैः संप्रदीप्तं विमानमिव भूतले । ततोऽर्जुनो महाराज शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १० ॥ अवाकिरत्तां पृतनां मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् । ते वध्यमानाः समरे पार्थनामाङ्कितैः शरैः ॥ ११ ॥ पार्थभूतममन्यन्त प्रेक्षमाणास्तथाविधम् । कोपोद्धतशरज्वालो धनुःशब्दानिलो महान् ॥ १२ ॥ सैन्येन्धनं ददाहाशु तावकं पार्थ पावकः । चक्राणां पततां चापि युगानाञ्च धरातले ॥ १३ ॥ तूणीराणां पताकानां ध्वजानाञ्च रथैः सह । ईषाणामनुकर्षाणां त्रिवेणूनाञ्च भारत ॥ १४ ॥ अक्षाणामथ योक्त्राणां प्रतोदानां च सर्वशः । शिरसां पतताञ्चैव कुण्डलोष्णीषधारिणाम् ॥ १५ ॥ भुजानाञ्च महाराज स्कंधानां च समन्ततः । छत्राणां व्यजनैः सार्द्धं मुकुटानां च राशयः ॥ १६ ॥ समदृश्यन्त पार्थस्य रथमार्गेषु

की ओरके योधाओंने धनञ्जयकी जो दशा की, उसके रथमें चारों ओरसे विचित्र परोंवाले तेज बाण घुभगए, उससे धनञ्जयका रथ मानो भूतल पर सैकड़ों मशालोंसे दमकता हुआ विमान हो, ऐसा शोभा पारहा था, तदनन्तर जैसे मेघ पहाड़ पर पानी बरसाता है, तैसे ही धनंजय नमेहुए पर्ववाले बाणोंको कुरुसेना पर बरसाने लगा और कौरव रथमें पांडवोंके नामोंके अक्षरोंसे चिन्हित बाणों की मार खाने लगे ॥९–११॥ कौरव चारों ओरको दृष्टि डालने पर सब रणभूमिको पांडवमयी पाते थे, अर्जुनरूप अग्नि, आपकी सेनारूप ईंधनको शीघ्रतासे जलानेलगा, धनंजयके कोपसे बाणरूप लपटें धकधका रही थीं, उसके धनुषका बड़ाभारी शब्दरूप पवन सायँ २ कर रहा था, हे राजन् ! इस समय रणभूमिमें रथों के पहिये, जुए, बाणोंके भाथे, पताकाएं, ध्वजाएँ ईषा, अनुकर्ष, रथके आगेके भाग, नीचे रहनेवाले बाँसके तीन दण्डे, धुरी, जोत, चाबुक, कुंडल और पगड़ी धारण करेहुए मस्तक, भुजा, कंधे, छत्र, चँवर और मुकुटोंके ढेर टूटी फूटी दशामें अर्जुनके रथके

भारत । ततः क्रुद्धस्य पार्थस्य रथमार्गे विशाम्पते ॥ १७ ॥ अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा।भीरूणां त्रासजननी शूराणां हर्षवर्द्धनी । बभूव भरतश्रेष्ठ रुद्रस्याक्रीडनं यथा ॥ १८ ॥ हत्वा तु समरे पार्थः सहस्रे द्वे परन्तपः ॥ १६ ॥ रथानां सवरूथानां विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् । यथा हि भगवानग्निर्जगद् दग्ध्वा चराचरम् ॥ २० ॥ विधूमो दृश्यते राजंस्तथा पार्थो महारथः । द्रौणिस्तु समरे दृष्ट्वा पाण्डवस्य पराक्रमम् ॥ २१ ॥ रथेनातिपताकेन पाण्डवं प्रत्यवारयत् । तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ तावुभौ धन्विनां वरौ ॥ २२ ॥ समीयतुस्तदाऽन्योन्यं परस्परवधैषिणौ । तयोरासीन्महाराज बाणवर्षं सुदारुणम् ॥ २३ ॥ जीमूतयोर्यथा

मार्गमें पड़े हुए दीखते थे, हे राजन् ! अर्जुन भी क्रोधमें भरगया था रणमें उसके रथके जानेके मार्गमें मांस और रुधिरकी कीच हो रही थी, इस कारणसे रणभूमिमें एक पग चलना भी कठिन होरहा था, उस समय रणभूमि डरपोकोंके डरको और शूरोंके हर्षको बढ़ा रही थी ॥ १२–१८ ॥ हे भरतवंशी राजा धृतराष्ट्र! उस समय रणभूमि रुद्रके क्रीड़ा करनेका स्थानसा बनगई थी, शत्रुओंको ताप देनेवाले धनंजयने उस समय दो सहस्र आवरण वाले रथोंका कनरधांस करडाला और धूमरहित अग्निकी समान प्रज्वलितसा दीख रहा था, हे महाराज ! जैसे भगवान् अग्निदेव स्थावर जङ्गम सब जगत्को जलाकर भस्म करनेके अनन्तर धूमरहित हो दमकने लगते हैं, ऐसे ही अर्जुन भी सबका संहार कर के दिपनेलगा ॥ १६–२० ॥ फिर अश्वत्थामा रणमें पांडुपुत्र का पराक्रम देख, पताकावाले रथमें बैठकर उनके सामने आया और उनको आगे बढ़नेसे रोका, वे दोनों पुरुषसिंह बड़े धनुषधारी थे, तथा एक दूसरेको मारडालना चाहते थे, हे महाराज ! उन दोनों योधाओंमें महादारुण बाणवर्षा होनेलगी २१–२३ हे

वृष्टिस्तपान्ते भरतर्षभ । अन्योऽन्यशरार्षिनौ तौ तु शरैः सन्नत-
पर्वभिः ॥२४॥ ततस्ततुस्तदान्योऽन्यं शृङ्गाभ्यां वृषभाविव । तयो-
र्युद्धं महाराज चिरं सममिवाभवत् ॥ २५ ॥ अस्त्राणां सङ्गमश्चैव
घोरस्तत्राभवत् पुनः । ततोऽर्जुनं द्वादशभी रुक्मपुङ्खैः सुतेजनैः २६
वासुदेवञ्च दशभिर्द्रौणिर्विव्याध भारत । ततः प्रहस्य बीभत्सुर्व्या-
क्षिपद्गाण्डिवं धनुः ॥२७॥ मानयित्वा मुहूर्त्तं तु गुरुपुत्रं महाहवे ।
व्यश्वसूतरथञ्चक्रे सव्यसाची महारथः ॥ २८ ॥ मृदुपूर्वं ततश्चैनं
पुनः पुनरताडयत् । हताश्वे तु रथे तिष्ठन् द्रौणपुत्रस्त्वयस्म-
यम् ॥ २९ ॥ मुसलं पाण्डुपुत्राय चिक्षेप परिघोपमम् । तमाप-
तन्तं सहसा हेमपट्टविभूषितम् ॥ ३० ॥ चिच्छेद सप्तधा वीरः

हे भरतसत्तम राजन् ! गरमीकी ऋतु बीतजाने पर जैसे दो मेघ वर्षा करते हों या जैसे दो बैल एक दूसरेको सींगोंसे मार रहेहों तैसे ही वे दोनों योधा एक दूसरे पर बलवान् पड़जानेकी इच्छासे नमे हुए पर्ववाले बाणोंसे एकदूसरेको मारनेलगे, उन दोनोंमें बहुत देर तक एकसमान द्वन्द्वयुद्ध चलता रहा ॥ २४—२५ ॥ फिर तहाँ शस्त्रोंका भयङ्कर समागम हुआ, कुछ देरके बाद अश्वत्थामाने सोनेके पंखवाले अतितीखे बारह बाण धनंजयके और दश बाण श्रीकृष्णके ऊपर मारे, तब परन्तप सव्यसाची धनञ्जयने बड़े ही आवेशमें आकर गांडीव धनुष पर टङ्कार दी और उस महासंग्राममें दो घड़ी तक गुरुपुत्र अश्वत्थामाका सन्मान करके उसके रथके घोड़े तथा सारथिको मारडाला ॥२६—२८॥ और फिर कोमलताके साथ बारम्बार अश्वत्थामाके ऊपर बाणोंका प्रहार करनेलगा, उस समय जिसके घोड़े मरगए थे ऐसे रथ पर बैठे २ ही अश्वत्थामाने सोनेकी पट्टीसे जड़ाहुआ परिघसा दीखनेवाला लोहेका मूसल अर्जुनके ऊपर फेंका, शत्रु-नाशी अर्जुनने उस मूसलको अपने ऊपर आता देखकर एक ही झपाटे में उसके सात टुकड़े करडाले, अश्वत्थामा मूसलको

पार्थः शत्रुनिबर्हणः । स छिन्नं मुसलं दृष्ट्वा द्रौणिः परसंक्षेपणः ॥ २१ ॥ आददे परिघं घोरं नगेन्द्रशिखरोपमम् । चिक्षेप चैव पार्थाय द्रौणिर्युद्धविशारदः ॥ २२ ॥ तमन्तकमिव क्रुद्धं परिघं प्रेक्ष्य पाण्डवः । अर्जुनस्त्वरितो जघ्ने पञ्चभिः सायकोत्तमैः ॥ २३ ॥ स छिन्नः पतितो भूमौ पार्थबाणैर्महामृधे । दारयन् पृथिवीन्द्राणां मनांसीव च भारत ॥ २४ ॥ ततोऽपरैस्त्रिभिर्भल्लैर्द्रौणिं विव्याध पाण्डवः । सोऽतिविद्धो बलवता पार्थेन सुमहात्मना ॥ २५ ॥ न संभ्रान्तस्तदा द्रौणिः पौरुषे स्वव्यवस्थितः । सुरथञ्च ततो राजन् भारद्वाजो महारथम् ॥ २६ ॥ अवाकिरच्छरव्रातैः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः । ततस्तु सुरथो ह्यासीत् पञ्चालानां महारथः ॥ २७ ॥ रथेन मेघघोषेण द्रौणिमेवाभ्यधावत । विकर्षन् वै धनुःश्रेष्ठं सर्वभारसहं दृढम् ॥ २८ ॥ ज्वलनाशीविषनिभैः शरैश्चैनम-

---

कटाहुआ देखकर बड़े क्रोधमें भरगया और उसने पहाड़के बड़े शिखरकी समान भयानक परिघ हाथमें लिया तथा युद्ध करनेमें चतुर अश्वत्थामाने वह परिघ अर्जुनके मारा, क्रोधमें भरे काल की समान उस परिघको आता देखकर अर्जुनने पाँच उत्तम बाण मार उसके भी टुकड़े करडाले और हे भरतवंशी राजन्! अर्जुनके बाणोंसे टुकड़े २ हुआ परिघ राजाओंके मनोंको विदीर्ण करताहुआ पृथिवी पर जापड़ा ॥ २६—३४ ॥ अश्वत्थामा के परिघके टुकड़े करनेके अनन्तर अर्जुनने भल्ल नामके तीन बाण मारकर अश्वत्थामाको बींधदिया, बलवान् महात्मा अर्जुन ने आवेशमें आकर अश्वत्थामाके ऊपर प्रहार किया था, तो भी उस समय अश्वत्थामा विचलित न होकर अपने पुरुषार्थसे अटल खड़ा रहा और हे राजन्! सब क्षत्रियोंके सामने अश्वत्थामा महारथी सुरथके ऊपर बाण बरसाने लगा, पंचालदेशके महारथी सुरथने मेघकी समान घरघराहटवाले रथमें बैठकर अश्वत्थामाका सामना किया और सब प्रकारके भारको सहनेवाले दृढ

वाकिरत् । सुरथं वीक्ष्य संक्रुद्धमापतन्तं महारथम् ॥ ३९ ॥ चु-
क्रोध समरे द्रौणिर्दण्डाहत इवोरगः । त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा
सृक्कणी परिसंलिहन् ॥ ४० ॥ तं वीक्ष्य सुरथं रोषाद्धनुर्ज्यामव-
मृज्य च । मुमोच तीक्ष्णं नाराचं यमदण्डोपमद्युतिम् ॥ ४१ ॥
स तस्य हृदयं भित्त्वा प्रविवेशातिवेगतः । शक्राशनिरिवोत्सृष्टो
विदार्य्य धरणीतलम् ॥ ४२ ॥ ततः स पतितो भूमौ नाराचेन
समाहतः । वज्रेणच यथा शृंगं पर्वतस्य विदारितम् ॥४३॥तस्मिन्
विनिहते वीरे द्रोणपुत्रः प्रतापवान् । आरुरोह रथं तूर्णं तमेव रथिनां
वरः ॥ ४४ ॥ ततः सज्जो महाराज द्रौणिराहवदुर्मदः । अर्जुनं
योधयामास संशप्तकवृतो रणे॥४५॥ तत्र युद्धं महच्चासीदर्जुनस्य

धनुषको खेंचकर अश्वत्थामाके ऊपर अग्नि और विषैले सर्पोंकी
समान बाण फेंकनेलगा, महारथी सुरथ क्रोधमें भरकर मेरे ऊपर
चढ़आया है, यह देख अश्वत्थामा लाठीसे मारे हुए सांपकी
समान क्रोधमें भरगया,वह भृकुटीमें तीन बल डालकर दोनों गल-
फुओंको चाटनेलगा ॥ ३५-४० ॥ फिर क्रोधके आवेशसे सुर-
थके सामने जा, धनुषकी डोरीको साफ कर और यमके दंडकी
समान कान्तिवाला तीखा बाण धनुष पर चढ़ाकर सुरथके ऊपर
छोड़ा, इन्द्रके वज्रकी समान बड़े वेगसे मारा हुआ वह बाण
सुरथके हृदयको चीरता हुआ पृथिवीको फोड़कर घुसगया॥४१॥
॥४२॥ जैसे वज्रका तोड़ा हुआ पर्वतका शिखर पृथिवी पर ढह
पड़ता है तैसे ही अश्वत्थामाके बाणोंकी मारसे राजा सुरथ भी
पृथिवी पर ढहपड़ा ॥ ४३ ॥ संग्राममें वीर सुरथके गिरजाने पर
प्रतापी, युद्धदुर्मद महारथी अश्वत्थामा तुरन्त उसके ही रथमें जा
बैठा और तयार हुए संशप्तकोंसे घिरकर फिर रणमें अर्जुनके
साथ युद्ध करनेलगा ॥ ४४-४५ ॥ समय ठीक मध्यान्हका था,
उस समय अर्जुनका शत्रुओंके साथ यमराजके देशको बढानेवाला

परैः सह । मध्यन्दिनगते सूर्ये यमराष्ट्रविवर्द्धनम् ॥ ४६ ॥ तत्राश्चर्यमपश्याम दृष्ट्वा तेषां पराक्रमम् । यदेको युगपद्वीरान् समयोधयदर्जुनः ॥ ४७ ॥ विमर्दस्तु महानासीदेकस्य बहुभिः सह । शतक्रतोर्यथा पूर्वं महत्या दैत्यसेनया ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि संकुलयुद्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

सञ्जय उवाच । दुर्योधनो महाराज धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । चक्रतुः सुमहद्युद्धं शरशक्तिसमाकुलम् ॥ १ ॥ तयोरासन्महाराज शरधाराः सहस्रशः । अम्बुदानां यथा काले जलधाराः समन्ततः ॥ २ ॥ राजा तु पार्षतं विध्वा शरैः पञ्चभिराशुगैः । द्रोणहन्तारमुग्रेषुं पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ३ ॥ धृष्टद्युम्नस्तु समरे बलवान् दृढविक्रमः । सप्तत्या विशिखानां वै दुर्योधनमपीडयत् ॥४॥ पीडितं

महायुद्ध होनेलगा ॥ ४६ ॥ उन योधाओंके पराक्रमको देखकर तथा अर्जुनको अकेला एक ही समयमें सब वीरोंके साथ युद्ध करतेहुए देखकर हमें आश्चर्य मालूम हुआ था ॥ ४७ ॥ पहले जैसा इन्द्रका दैत्योंकी महासेनाके साथ युद्ध हुआ था, तैसे ही अकेले अर्जुनका बहुतसे योधाओंके साथ महासंहारकारक युद्ध हुआ ॥ ४८ ॥ चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥

संजयने कहा कि—हे महाराज धृतराष्ट्र ! दूसरी ओर पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्न और राजा दुर्योधन बाणों और शक्तियोंसे बड़ा भारी युद्ध करने लगे ॥ १ ॥ जैसे वर्षा ऋतुमें बादलोंमेंसे अनगिनती जलधाराएँ गिरती हैं तैसे ही युद्धमें वे सहस्रों बाणधाराओंको बरसा रहे थे॥ २॥ दुर्योधनने पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्नको शीघ्र जानेवाले पाँच बाणोंसे बींधडाला, फिर उग्र धनुर्धवाले द्रोणके घातक धृष्टद्युम्नके और सात बाण मारे॥३॥ तब समरमें दृढतासे पराक्रम करने वाले बलवान् धृष्टद्युम्नने सत्तर बाण मारकर दुर्योधनको दुःखी करडाला॥४॥ हे भरतर्षभ! राजा दुर्योधनको दबा हुआ देखकर उसके

प्रेक्ष्य राजानं सोदर्य्या भरतर्षभ । महत्या सेनया सार्द्धं परिवव्रुः स्म पार्षतम् ॥ ५ ॥ स तैः परिवृतः शूरः सर्वतोऽतिरथैर्भृशम् । व्यचरत् समरे राजन् दर्शयन्नस्त्रलाघवम् ॥६ ॥ शिखण्डी कृतवर्माणं गौतमञ्च महारथम् । प्रभद्रकैः समायुक्तो योधयामास धन्विनौ ॥ ७ ॥ तत्रापि सुमहद्युद्धं घोररूपं विशाम्पते । प्राणान् सन्त्यज्यतां युद्धे प्राणद्यूताभिदेवने ॥ ८ ॥ शल्यस्तु शरवर्षाणि विमुञ्चन् सर्वतो दिशम् । पाण्डवान् पीडयामास ससात्यकिवृकोदरान् ॥९॥तथा तौ च यमौ युद्धे यमतुल्यपराक्रमौ । योधयामास राजेन्द्र वीर्य्येणास्त्रबलेन च॥१०॥ शल्यसायकनुन्नानां पांडवानां महामृधे । त्रातारं नाध्यगच्छन्त केचित्तत्र महारथाः ॥ ११ ॥ ततस्तु नकुलः शूरो धर्मराजे मपीडिते । अभिदुद्राव वेगेन मातुलं

भाइयोंने बड़ी सेनाको ले धृष्टद्युम्नको घेर लिया॥५॥ हे राजन् ! अतिरथी योधाओंने उसे चारों ओरसे घेरलिया तो भी वह धृष्टद्युम्न अपनी अस्त्र छोड़नेकी फुरती दिखाता हुआ युद्धमें घूमनेलगा ॥ ६ ॥ प्रभद्रकोंको साथमें लेकर शिखण्डी धनुर्धर कृतवर्मा और महारथी कृपाचार्यसे युद्ध करने लगा ॥ ७ ॥ हे राजन् ! इस स्थानमें भी युद्धरूपी जुएमें प्राणरूपी दाँवको लगा कर योधा प्राणोंकी परवाह न कर युद्ध करने लगे ॥८॥ दूसरी ओर शल्य भी चारों ओर बाण बरसाकर सात्यकी तथा भीमसेन आदि पाण्डवोंको पीड़ित करने लगा ॥ ९ ॥ और हे राजेन्द्र ! यमकी समान पराक्रम करनेवाले नकुल और सहदेवसे भी अपने पराक्रम तथा बलसे युद्ध करनेलगा ॥ १० ॥ उस समय महायुद्धमें शल्य के बाणोंसे घायल हुए पाण्डवोंके महारथियोंको कोई रक्षक नहीं दीखा ॥११॥ जब राजा शल्य धर्मराजको दबाने लगा तब माता को आनन्द देनेवाला शूर नकुल वेगके साथ मामाके ऊपर चढ़

भागनन्दनः ॥ १२ ॥ आच्छाद्य समरे शल्यं नकुलः परवीरहा । विव्याध चैनं दशभिः स्मयमानः स्तनान्तरे ॥ १३ ॥ सर्वपारशवैर्बाणैः कर्मारपरिमार्जितैः । स्वर्णपुंखैः शिलाधौतैर्धनुर्यन्त्रप्रचोदितैः ॥ १४ ॥ शल्यस्तु पीडितस्तेन स्वस्रीयेण महात्मना । नकुलं पीडयामास पत्रिभिर्नतपर्वभिः ॥ १५ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनोऽथ सात्यकिः । सहदेवश्च माद्रेयो मद्रराजमुपाद्रवन् ॥ १६ ॥ तानापतत एवाशु पूरयाणान् रथस्वनैः । दिशश्च विदिशश्चैव कम्पयानांश्च मेदिनीम् ॥ १७ ॥ प्रतिजग्राह समरे सेनापतिरमित्रजित् । युधिष्ठिरं त्रिभिर्विध्वा भीमसेनञ्च पञ्चभिः १८ सात्यकिञ्च शतेनाजौ सहदेवं त्रिभिः शरैः । ततस्तु सशरं चापं नकुलस्य महात्मनः १९ मद्रेश्वरः क्षुरप्रेण तदा चिच्छेद मारिष । तदशीर्यत विच्छिन्नं धनुः शल्यस्य सायकैः ॥ २० ॥ अथान्य-

---

दौड़ा ॥ १२ ॥ और शत्रुके वीर पुरुषोंको मारनेवाले नकुलने हँसकर शूरवीर शल्यको बाणोंसे ढक दिया और फौलादके बने हुए लुहारके तेज किए हुए, सुवर्णकी पूँछ वाले और शिला पर रगड़ कर साफ किये हुए दश बाणोंसे शल्यकी छातीको चीर डाला ॥ १३ –१४ ॥ राजा शल्य अपने महात्मा भान्जे से पीड़ित होकर उसको नमीं हुई गांठवाले बाणोंसे मारने लगा ॥ १५ ॥ यह देखकर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, सात्यकि और माद्रीपुत्र सहदेव शल्यके ऊपर झपटे ॥ १६ ॥ अपने रथोंकी झनकारसे, दिशा -विदिशाओंको गुंजारते हुए और पृथ्वीको लरजाते हुए ये उसके पास पहुँचे, कि–तुरत ही शत्रुओंको जीतने वाला सेनापति शल्य इनके सामने आगया और युधिष्ठिरके तीन, भीमसेनके पाँच, सात्यकीके सौ और सहदेवके तीन बाण मारे, फिर शल्यने क्षुरप्र नामक बाण मारकर महात्मा नकुलके धनुष बाणको काट डाला ॥ शल्यके बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर उस धनुषके टुकड़े २ होगये ॥ १७—२०॥ तो माद्रीपुत्र नकुल

द्धनुरादाय माद्रीपुत्रो महारथः। मद्रराजरथं तूर्णं पूरयामास पत्रिभिः ॥ २१ ॥ युधिष्ठिरस्तु मद्रेशं सहदेवश्च मारिष । दशभिर्दशभिर्बाणैरुरस्येनमविध्यताम् ॥ २२ ॥ भीमसेनस्तु तं षष्ट्या सात्यकिर्दशभिः शरैः । मद्रराजमभिद्रुत्य जघ्नतुः कङ्कपत्रिभिः॥२३ मद्रराजस्ततः क्रुद्धः सात्यकिं नवभिः शरैः । विव्याध भूयः सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ २४ ॥ अथास्य सशरञ्चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष । हयांश्च चतुरः संख्ये प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २५ ॥ विरथं सात्यकिं कृत्वा मद्रराजो महारथः । विशिखानां शतेनैनमाजघान समन्ततः ॥२६ ॥ माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ भीमसेनञ्च पाण्डवम् । युधिष्ठिरञ्च कौरव्य विव्याध दशभिः शरैः ॥ २७ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम मद्रराजस्य पौरुषम् । यदेनं सहिताः पार्था नाभ्यवर्त्तन्त संयुगे ॥ २८ ॥ अथान्यं रथमास्थाय सात्यकिः सत्यविक्रमः ।

ने दूसरा धनुष उठाकर शीघ्र ही बाणोंसे शल्यके रथको भरदिया ॥ २१॥ और हे राजन् ! राजा युधिष्ठिर और सहदेवने शल्यकी छातीमें दश २ बाण मारे ॥ २२ ॥ और भीमसेनने साठ तथा सात्यकिने दश कंकपत्रवाले बाण मद्रराजके मारे ॥२३ ॥ तब शल्य ने क्रोधमें भर कर सात्यकिको नौ बाणोंसे घायल किया फिर नमी हुई गाँठ वाले सत्तर बाणोंसे बींधडाला ॥२४ ॥ फिर हे राजन् ! मुट्ठीमें थमे हुए सात्यकिके धनुषको मय बाणोंके काटडाला और युद्धमें चारों घोड़ोंको भी यमराजके घर भेज दिया ॥२५॥ महारथी शल्यने सात्यकिको रथहीन करके उसको चारों ओरसे सौ बाणोंसे घायल किया ॥२६॥ उसने क्रोधमें भरे नकुल, सहदेव, भीमसेन और हे कौरव्य ! युधिष्ठिरके भी दश बाण मारे ॥२७ ॥ उस समय हमने मद्रराजका अद्भुत बल देखा कि–इकट्ठे हुए सब पांडव भी उसको पहुँच न सके ॥२८॥ सत्यपराक्रमी सात्यकि पांडवोंको पीडित देखकर दूसरे रथमें बैठ शल्यके ऊपर

पीडितान् पांडवान् दृष्ट्वा मद्रराजवशङ्गतान् ॥ २९ ॥ अभिदुद्राव वेगेन मद्राणामधिपं वली । आपतन्तं रथं तस्य शल्यः समितिशोभनः । प्रत्युद्ययौ रथेनैव मत्तो मत्तमिव द्विपम् । स सन्निपातस्तुमुलो वभूवाद्भुतदर्शनः ॥३१॥ सात्यकेश्चैव शूरस्य मद्राणामधिपस्य च । यादृशो वै पुरा वृत्तः शम्बरामरराजयोः ॥ ३२ ॥ सात्यकिः प्रेक्ष्य समरे मद्रराजं व्यवस्थितम् । विव्याध दशभिर्बाणैस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३३ ॥ मद्रराजस्तु सुभृशं विद्धस्तेन महात्मना । सात्यकिं प्रतिविव्याध चित्रपुंखैः शितैः शरैः ॥३४॥ ततः पार्था महेष्वासाः सात्त्वताभिसृतं नृपम् । अभ्यद्रवन् रथैस्तूर्णं मातुलं वधकांक्षया ॥ ३५ ॥ तत आसीत् परामर्दस्तुमुलः शोणितोदकः । शूराणां युध्यमानानां सिंहानामिव नर्दताम् ३६ तेषामासीन्महाराज व्यतिक्षेपः परस्परम् । सिंहानामामिषेप्सूनां

झपटा, जैसे मतवाला हाथी खूनी हाथीके ऊपर झपटे तैसे ही सभामें शोभा पानेवाला राजा शल्य भी अपने ऊपर रथमें बैठ कर आते हुए सात्यकिके सामने रथ लेकर पहुँच गया, पहिले हुए इन्द्र और शम्बरासुरके युद्धकी समान उन सात्यकि और शूर शल्यका अद्भुत दीखनेवाला घोर युद्ध हुआ॥ २९-३२ ॥ शल्यको रणमें खड़ा हुआ देखकर सात्यकिने उसके दश बाण मारे और कहा खड़ा रहा ! खड़ा रहा ! ३३ ॥ शल्य भी महात्मा सात्यकिके बाणोंसे बहुत ही घायल हो गया था, अतः वह विचित्र पूँछों वाले तेज बाणोंसे सात्यकिको घायल करने लगा ॥ ३४ ॥ इतनेमें ही बड़े २ धनुषोंवाले पांडव रथोंमें बैठ मामाको मारनेकी इच्छासे, जिसके ऊपर सात्यकिने चढाईकी थी, उस शल्यके ऊपर चढ आए ॥३५॥ तदनन्तर सिंहोंकी समान दहाड़कर लड़ते हुए शूरोंकी भयंकर टक्कर हुई इस युद्धमें रक्त का प्रवाह बहता था ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! जैसे मांसके लिए

कूजतामिव संयुगे॥३७॥ तेषां वाणसहस्रौघैराकीर्णा वसुधाभवत् । अन्तरिक्षञ्च सहसा वाणभूतमभूत्तदा ॥३८॥ शरा धकारं सहसा कृतं तेन समन्ततः । अभ्रच्छायेव सञ्जज्ञे शरैर्मुक्तैर्महात्मभिः ३९ तत्र राजञ्छरैर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः । स्वर्णपुङ्खैः प्रकाशद्भिर्व्यरोचन्त दिशस्तदा ॥ ४० ॥ तत्राद्भुतं परञ्चक्रे शल्यः शत्रुनिवर्हणः । यदेकः समरे शूरो योधयामास वै बहून् ॥ ४१ ॥ मद्रराजभुजोत्सृष्टैः कङ्कवर्हिणवाजितैः । सम्पतद्भिः शरैर्घोरैरवाकीर्यत मेदिनी ॥ ४२ ॥ तत्र शल्यरथं राजन् विचरन्तं महाहवे । अपश्याम यथा पूर्वं शक्रस्यासुरसंक्षये ॥ ४३ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि संकुलयुद्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सञ्जय उवाच । ततः सैन्य स्तव विभो मद्रराजपुरस्कृताः ।

सिंह गर्ज २ कर युद्ध करते हैं, तैसे ही वे (राज्यके लिये) युद्ध करने लगे ॥ ३७ ॥ उनके वाणोंके सहस्रों झुंडोंसे पृथ्वी पटगई और आकाश भी वाणमय होगया ॥ ३८ ॥ तब वाणोंके छाजाने से चारों ओर अंधेरा होगया, और महात्माओंके छोड़े हुए वाणोंसे जैसे वादलोंकी छाया हो तैसी छाया होगई ।३९। हे राजन् ! तहाँ सुवर्णकी पूँछवाले, कैंचुली रहित सर्पोंकी समान छूटे हुए वाणोंसे दशों दिशाएँ प्रकाशित होरही थीं ॥ ४० ॥ उस समय शत्रुओंका संहार करनेवाले शल्यने वड़े ही अचरज का काम किया कि—अकेला ही अनेक शूरोंसे लड़ता था ॥४१॥ कंक तथा मोरके पंखवाले वाणोंकी घोर वर्षा कर रहा था, जिस से पृथ्वी ढक गई ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! पहिले असुरोंका संहार करते समय जैसे इन्द्रका रथ महासंग्राममें घूम रहा था तैसे ही हमने इस महायुद्धमें सब जगह रथको घूमता हुआ देखा ।४३॥ पंद्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ छ छ

संजय कहता है कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! तदनन्तर पाण्डवोंसे

पुनरभ्यद्रवन् पार्थान् वेगेन महता रणे ॥ १ ॥ पीडितास्तावकाः सर्वे प्रधावन्तो रणोत्कटाः। क्षणेन चैव पार्थास्ते बहुत्वात् समलोडयन् ॥ २ ॥ ते वध्यमानाः कुरुभिः पाण्डवानवतस्थिरे । निवार्यमाणा भीमेन पश्यतो कृष्णपार्थयोः ॥ ३ ॥ ततो धनञ्जयः क्रुद्धः कृपं सह पदानुगैः। अवाकिरच्छरौघेण कृतवर्माणमेव च ॥४॥ शकुनिं सहदेवश्च ससैन्यं समवाकिरत् । नकुलः पार्श्वतः स्थित्वा मद्रराजमवैक्षत ॥५ ॥ द्रौपदेया नरेन्द्रांश्च भूयिष्ठान् समवारयन् । द्रोणपुत्रञ्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी समवारयत् ॥ ६ ॥ भीमसेनस्तु राजानं गदापाणिरवारयत् । शल्यन्तु सह सैन्येन कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ७ ॥ ततः समभवद्युद्धं संसक्तं तत्र तत्र ह । तावकानां परेषाञ्च संग्रामेष्वनिवर्त्तिनाम् ॥ ८ ॥ तत्र पश्यामहं

दुःख पाए हुए आपकी ओरके सब योधाओंने मद्रराजको अग्रणी बना कर पांडवोंके ऊपर फिर बड़े वेगसे चढ़ाई की, उन्होंने संख्यामें अधिक होनेके कारण पांडवोंके ऊपर प्रहार करके उनको घबड़ा दिया, उस समय भीमसेनके रोकने पर भी पांडवपक्षके योधा युद्धमें खड़े न रह सके और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके देखते हुए भागने लगे ॥ १—३ ॥ इस कारण अर्जुनको क्रोध चढ़ आया और वह कृपाचार्य, कृतवर्मा, तथा उनकी पैदल सेनाके ऊपर बाणोंका प्रहार करने लगा ॥ ४ ॥ सहदेवने शकुनि और उसकी सेनाके ऊपर बाणोंकी मारामार कर डाली नकुल एक ओरको खड़ा होकर मद्रराज पर दृष्टि रखने लगा, द्रौपदीके पुत्रोंने अनेकों राजाओंको आगे बढ़नेसे रोक दिया, पञ्चालनन्दन शिखण्डीने अश्वत्थामाको रोका ॥ ५—६ ॥ गदाधारी भीमसेन दुर्योधनके सामने जा डटा, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने सेनाके साथ चढ कर आए हुए शल्यको रोक दिया ॥७ ॥ तदनन्तर युद्धमें पीठ न दिखाने वाले आपके और पांडव पक्षके योधा एक दूसरेके सामने डट गए और उनमें घोर युद्ध होने लगा ॥ ८॥ इस महासंग्राम

कर्म शल्यातिमहद्रणे। यदेकः सर्वसैन्यानि पाण्डवानामयोधयत् ९
व्यदृश्यन्त तदा शल्यो युधिष्ठिरसमीपतः। रणे चन्द्रमसोऽभ्यासे
शनैश्चर इव ग्रहः॥ १०॥ पीडयित्वा तु राजानं शरैराशीवि-
षोपमैः। अभ्यधावत् पुनर्भीमं शरवर्षैरवाकिरत्॥ ११॥ तस्य
तल्लाघवं दृष्ट्वा तथैव च कृतास्त्रताम्। अपूजयन्ननीकानि परेषां
तावकानि च॥१२॥ पीड्यमानास्तु शल्येन पाण्डवा भृशविक्षताः।
प्राद्रवन्त रणं हित्वा क्रोशमाने युधिष्ठिरे॥ १३॥ वध्यमानेष्व-
नीकेषु मद्रराजेन पाण्डवः। अमर्षवशमापन्नो धर्मराजो युधि-
ष्ठिरः॥ १४॥ ततः पौरुषमास्थाय मद्रराजमपीडयत्। जयो वास्तु
वधो वेति कृतबुद्धिर्महारथः॥ १५॥ समाहूयाब्रवीत् सर्वान्

में मैंने शल्यका बड़ाभारी पराक्रम देखा, वह अकेला ही पाडवों के सब सैनिकोंके साथ युद्ध कर रहा था॥ ९॥ इस प्रकार युद्ध चल रहा था, उस समय शल्यने युधिष्ठिरके पासमें आकर दर्शन किया, मानों चन्द्रमाके पास शनैश्चर ग्रहका उदय होगया॥ १०॥ राजा शल्यने विषैले साँपोंकी समान बाण मार कर युधिष्ठिरको पीड़ित किया और फिर भीमसेनके ऊपर चढ़ाई कर के बाणोंकी वर्षा कर डाली॥ ११॥ राजा शल्यकी उस फुर्ती को तथा शस्त्र चलानेकी चतुराईको देखकर शत्रुपक्षके और आप की ओरके योधाओंने भी उसकी प्रशंसाकी॥१२॥ राजा शल्यने पाण्डवोंके योधाओंको बहुत ही घायल करके दुःखी कर डाला, इस कारण राजा युधिष्ठिरके शांत करने पर भी वे रणभूमिमेंसे भाग गए॥१३॥ मद्रराज पांडवोंकी सेनाका संहार करने लगा, इस बातको राजा युधिष्ठिर न सह सके, वह महारथी रणमें जय हो चाहे पराजय हो, परन्तु लड़ूँगा अवश्य ही ऐसा मनमें निश्चय कर अपने पुरुषार्थके भरोसे पर शल्यके बाण मारने लगे॥१४॥ ॥ १५॥ और सब भाइयोंको तथा कृष्णको बुला कर कहा कि-

भ्रातृन् कृष्णञ्च माधवम् । भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च ये चान्ये पृथिवीक्षितः ॥ १६ ॥ कौरवार्थे पराक्रान्ताः संग्रामे निधनं गताः यथाभागं यथोत्साहं भवन्तः कृतपौरुषाः ॥ १७ ॥ भागोऽवशिष्ट एकोऽयं मम शल्यो महारथः । सोऽहमद्य युधा जेतुमाशंसे मद्रकेश्वरम्॥ १८॥ तत्र यन्मानसं मह्यं तत् सर्वं निगदामि वः । चक्ररक्षाविमौ शूरौ मम माद्रवतीसुतौ ॥ १९ ॥ अजेयौ वासवेनापि समरे वीरसम्मतौ । साध्विमौ मातुलं युद्धे क्षत्रधर्मपुरस्कृतौ ॥ २० ॥ मदर्थे प्रतियुध्येतां मानार्हौ सत्यसंगरौ । मां वा शल्यो रणे हन्ता तं वाहं भद्रमस्तु वः ॥ २१ ॥ इति सत्यामिमां वाणीं लोकवीरा निबोधत । योत्स्येऽहं मातुलेनाद्य क्षत्रधर्मेण पार्थिवाः ॥ २२ ॥ स्वयं समभिसन्धाय विजयायेतराय च । तस्य मेऽभ्यधिकं शस्त्रं

भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा भूमंडलपरके बहुतसे राजे कौरवोंके लिए पराक्रम करके संग्राममें मर चुके हैं,तुम सब भी उत्साह दिखाकर और पराक्रम करके अपने विभागके अनुसार युद्धमें विजय पा चुके हो अब मेरे भागमें एक महात्मा राजा शल्य रहा है,आज मैं युद्धमें इसको जीतने की आशा रखता हूं॥१६–१८॥ इस विषयमें मेरा जो कुछ अभिप्राय है,वह मैं आप सबोंको सुनाता हूं माद्रीके पुत्र नकुल और सहदेव वीर हैं उनको इन्द्र भी नहीं जीत सकता,उन्होंने शूरमंडलीमें अच्छी प्रतिष्ठा पाई है और वे कभी झूठी प्रतिज्ञा भी नहीं करते हैं,वे दोनों भाई मेरे रथके दोनों पहियोंके रक्षक बनें और क्षत्रियके धर्मके अनुसार मेरे लिए अपने मामाके साथ युद्ध करें, यदि ऐसा होजाय तो आज मैं शल्यको रणमें मार डालूँगा या वह ही मुझे मार डालेगा।हे वीर पुरुषो! अब आपका कल्याण हो,यह बात मैंने आपसे सत्य कही है सो तुमने सुन ही ली,हे राजाओं! मैं आज क्षत्रियके धर्मके अनुसार मामाके साथ युद्ध करूँगा, उस में मेरी विजय हो चाहे पराजय हो, अब रथको जोतने वाले सेवक

सर्वोपकरणानि च ।। २३ ।। संयुज्यन्तु रथे क्षिप्रं शास्त्रवद्रथयोजकाः । शैनेयो दक्षिणं चक्रं धृष्टद्युम्नस्तथोत्तरम् ॥ २४ ॥ पृष्ठगोपो भवत्वद्य मम पार्थो धनञ्जयः । पुरःसरो ममाद्यास्तु भीमः शस्त्रभृतां वरः ॥ २५ ॥ एवमभ्यधिकः शल्याद्भविष्यामि महामृधे । एवमुक्तास्तथा चक्रुः सर्वे राज्ञः प्रियैषिणः ॥ २६ ॥ ततः प्रहर्षः सैन्यानां पुनरासीत् तदा मृधे । पञ्चालानां सोमकानां च मत्स्यानाञ्च विशेषतः ॥२७॥प्रतिज्ञां तां तदा राजा कृत्वा मद्रेशमभ्ययात् । ततः शङ्खांश्च भेरीश्च शतशश्चैव पुष्कलान् ॥२८॥ अवादयन्त पञ्चालाः सिंहनादांश्च नेदिरे। तेऽभ्यधावन्त संरब्धा मद्रराजन्तरस्विनः ।। २९ ।। महता हर्षजेनाथ नादेन कुरुपुङ्गवाः ह्रादेन गजघण्टानां शंखानां निनदेन च ।। ३० ।। तूर्यशब्देन

मेरे रथमें शस्त्र और युद्धकी सामग्री भरदें शास्त्रमें लिखी हुई रीति से मेरे रथको शीघ्र ही जोत कर तयार करो, सात्यकि रथकी दाहिनी ओरके पहिये की रक्षा करें, धृष्टद्युम्न बाएँ ओरके पहिये की रक्षा करें अर्जुन पीछेके भागमें खड़ा रह कर मेरी रक्षा करै और शस्त्रधारी पुरुषोंमें श्रेष्ठ भीमसेन आज मेरे आगे खड़ा होकर मेरी रक्षा करै ।। १९–२५ ।। ऐसा करनेसे मैं महासंग्राममें शल्य से बहुत अधिक हो जाऊँगा, राजा युधिष्ठिरके ऐसा कहतेही उनका प्रिय करनेकी इच्छासे सबने ऐसा ही किया ।। २६ ।। उस समय रणभूमिकी सेनामें और विशेष कर पञ्चाल देशके राजे, सोमक देशके राजे, और मत्स्य देशके योधाओंमें बड़ा ही हर्ष दीखने लगा ॥२७॥ राजा युधिष्ठिर ऐसी प्रतिज्ञा कर रथमें बैठकर ज्यों ही मद्रराजके ऊपर चढ़कर गए कि उसी समय पञ्चाल राजे सैंकड़ों शंख और भेरी बजाते हुए सिंहनाद करने लगे और क्रोध में भरकर वेगवाले मद्रराजके सामने लड़ने को दौड़गए ।। २८ ।। ।।२९।। जैसे उदयाचल और अस्ताचल पर्वत बहुतसे महामेघोंके सामने खड़े हों ऐसे हाथियोंके घण्टेके शब्दसे शंखोंकी ध्वनियों

महता नादयन्तश्च मेदिनीम् । तान् प्रत्यग्रहणात् पुत्रस्ते मद्रराजश्च वीर्यवान् ॥ ३१ ॥ महामेघानिव बहून् शैलावस्तोदयावुभौ । शल्यस्तु समरश्लाघी धर्मराजमरिन्दमम् ॥ ३२ ॥ ववर्ष शरवर्षेण शम्बरं मघवानिव । तथैव कुरुराजोऽपि प्रगृह्य रुचिरं धनुः ॥ ३३ ॥ द्रोणोपदेशान् विविधान् दर्शयानो महामनाः । ववर्ष शरवर्षाणि चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥३४॥ न चास्य विवरं कश्चिददर्श चरतो रणे । तावुभौ विविधैर्बाणैस्ततक्षाते परस्परम् ॥ ३५ ॥ शार्दूलावामिषप्रेप्सू पराक्रान्ताविवाहवे । भीमस्तु तव पुत्रेण युद्धशौण्डेन संगतः ॥३६ ॥ पाञ्चाल्यः सात्यकिश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ । शकुनिप्रमुखान् वीरान् प्रत्यगृह्णन् समन्ततः ॥ ३८ ॥ तदासीत्तुमुलं युद्धं पुनरेव जयैषिणाम् । तावकानां परेषाञ्च राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ३८ ॥ दुर्योधनस्तु भीमस्य शरेणानतपर्वणा । चिच्छे-

से तूर्योंके वड़े भारी शब्दोंसे और वड़ेभारी हर्षनाद करके चढ़कर आतेहुए पाँडवोंके सामने तुम्हारे पुत्र और शल्य खड़े होगए ॥ जैसे शम्बरासुरके ऊपर इन्द्रने बाण वरसाये थे, ऐसे ही समर में प्रशंसनीय शल्यने अरिंदमन युधिष्ठिरके ऊपर बाण वरसाए तैसे ही महामना कुरुराज दुर्योधन भी धनुषले द्रोण की सिखाई हुई रीतियोंको दिखाता हुआ शीघ्रतासे और अनेक प्रकारकी चालाकियोंसे शत्रुओं पर बाण वरसानेलगा ॥ ३०-३३ ॥ रणमें घूमतेहुए दुर्योधनकी चूक किसीको नहीं दीखतीथी, माँसके लिए लड़नेवाले सिंहोंकी समान वे दोनों युद्धमें नाना प्रकारके बाणों से एक दूसरे पर प्रहार करनेलगे, इस प्रकार युद्धचतुर तुम्हारे पुत्र के साथ भीमसेन युद्ध करनेलगा ॥ ३५-३६॥ पञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्न,सात्यकी, नकुल और सहदेवने शकुनि आदि वीरोंको चारों ओरसे घेर लिया ।३७। फिर हे राजन्! तुम्हारे अन्यायके कारण जयकी इच्छावाले तुम्हारे पुत्रोंमें और पाण्डवोंमें फिर घोर युद्ध हुआ ॥ ३८ ॥ दुर्योधनने ताककर नमी हुई गांठवाले बाणसे

दादिश्य संग्रामे ध्वजं हेमविभूषितम् ॥ ३९ ॥ सकिङ्किणीकजा-
लेन महता चारुदर्शनः । पपात रुचिरः संख्ये भीमसेनस्य पश्यतः
४०पुनश्चापि धनुश्चित्रं गजराजकरोपमम् । क्षुरेण शितधारेण
प्रचकर्त्त नराधिपः ॥४१॥ स छिन्नधन्वा तेजस्वी रथशक्त्या सुतं
तव । बिभेदोरसि विक्रम्य स रथोपस्थ आविशत् ॥४२॥ तस्मिन्
मोहमनुप्राप्ते पुनरेव वृकोदरः । यन्तुरस्य शिरः कायात् क्षुरप्रेणा-
हरत्तदा ॥ ४३ ॥ हतसूता हयास्तस्य रथमादाय भारत । व्यद्रवन्त
दिशो राजन् हाहाकारस्ततोऽभवत् ॥४४ ॥ तमभ्यधावन् त्राणार्थं
द्रोणपुत्रो महारथः । कृपश्च कृतवर्मा च पुत्रं तेऽपि परीप्सवः
॥ ४५॥ तस्मिन् विलुलिते सैन्ये त्रस्तास्तस्य पदानुगाः । गाण्डी-
वधन्वा विस्फार्य धनुस्तानहनच्छरैः ॥४६॥ युधिष्ठिरस्तु मद्रेशमभ्य-

भीमसेनकी सुवर्णसे मढीहुई ध्वजा को काटडाला ॥ ३९ ॥ बहुत
से घुँघरुओंसे समरमें सुन्दर दीखने वाली वह ध्वजा भीमसेनके
देखते हुए ही गिर पड़ी॥४०॥फिर दुर्योधनने तीक्ष्ण धारवाला
क्षुरप्र नामक बाण मारकर भीमसेन के हाथीकी सूँड़की समान
धनुषको काटडाला ॥४१॥ टूटेहुए धनुषवाले तेजस्वी भीमसेनने
दुर्योधनकी छातीमें रथमें पड़ी हुई एक शक्ति मारा उससे वह रथ
के दण्डेको पकड़कर बैठगया ॥ ४२ ॥ राजा दुर्योधनके मूर्च्छित
होने पर भीमसेनने क्षुरप्रनामक बाणसे दुर्योधनके सारथीका शिर
उतारलिया ॥ ४३ ॥ सारथीके मरने पर घोड़े रथको लेकर दि-
शाओंमें इधर उधर भागनेलगे तब बड़ा हाहाकार होनेलगा ॥४४॥
उस समय तुम्हारे पुत्रको बचाने की इच्छा से महारथी अश्वत्थामा
कृपाचार्य और कृतवर्मा तुम्हारे पुत्रकी ओर दौड़े ४५ इसप्रकार
सेनामें गड़बड़ी मचने पर दुर्योधनके अनुयायी डरगए और अर्जुन
शत्रुपक्षके योधाओंको गाण्डीवको खेंच बाणोंसे बींधने लगा ४६
क्रोधमें भरे हुए युधिष्ठिर भी दाँतोंकी समान श्वेत वर्णके मनो

धावद्भर्मानिः। स्वयं संचोदयन्नश्वान् दन्तवर्णान्मनोजवान् ॥४७॥ तत्राश्चर्यमपश्याम कुन्तीपुत्रे युधिष्ठिरे। पुरा भूत्वा मृदुर्दान्तो यत्तदा दारुणोऽभवत् ॥ ४८ ॥ विवृताक्षस्तु कौन्तेयो वेपमानश्च मन्युना। चिच्छेद योधान्निशितैर्भल्लैः शतसहस्रशः ॥ ४९ ॥ यां यां प्रत्युद्ययौ सेनां तां तां ज्येष्ठः स पाण्डवः। शरैरपातयद्राजन् गिरीन् वज्रैरिवोत्तमैः ॥५०॥ साश्वसूतध्वजरथान् रथिनः पातयन् बहून्। आक्रीडदेको बलवान् पवनस्तोयदानिव ॥ ५१ ॥ साश्वारोहांश्च तुरगान् पत्तींश्चैव सहस्रशः। व्यपोथयत संग्रामे क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ ५२ ॥ शून्यमायोधनं कृत्वा शरवर्षैः समन्ततः। अभ्यद्रवत मद्रेशं तिष्ठ शल्येति चाब्रवीत् ॥ ५३ ॥ तस्य तच्चरितं दृष्ट्वा संग्रामे भीमकर्मणः। वित्रेसुस्तावकाः सर्वे शल्यस्त्वेनं समभ्ययात्

वेगी घोड़ोंको अपने आप हाँकते हुए शल्यके ऊपर झपटे ४७ उस समय हमने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरमें यह अद्भुत बात देखी कि-वह पहले कोमल होकर भी पीछेसे दारुण होगए ॥४८॥ क्रोधसे काँपते हुए आँखोंको फैलाए हुए युधिष्ठिर सैकड़ों और सहस्रों बाणोंसे योधाओंको मारने लगे ॥ ४९ ॥ युधिष्ठिर जिस२ सेना की ओर निकल जाते थे उस २ सेनाका वज्रोंसे पर्वतोंकी समान बाणोंसे पटरा कर देते थे ॥ ५०॥ बलवान् युधिष्ठिर घोड़े, सारथी ध्वजा और रथसहित रथियोंको अकेले ही पवन जैसे मेघों को तित्तर बित्तर कर डालता है तैसे ही नष्ट भ्रष्ट करने लगे ॥ ५१ ॥ जैसे क्रोधमें भरे हुए शिव पशुओंका संहार करैं तैसे ही सवार सहित सब घोड़ोंका और पैदलोंका संहार करने लगे ॥५२॥ चारों ओर बाण बरसा युद्धस्थलको खाली करके युधिष्ठिर शल्यकी ओर झपटे और बोले खड़ा रह ! ॥५३॥ संग्राममें भयंकर कर्म करने वाले युधिष्ठिरके ऐसे पराक्रमको देख तुम्हारे सब योधा भयभीत होगए तब शल्य युधिष्ठिरकी ओर झपटा ५४

॥ ५४ ॥ ततस्तौ तु सुसंरब्धौ प्रध्माप्य सलिलोद्भवौ । समाहूय तदान्योन्यं भर्त्सयन्तौ समीयतुः ॥ ५५ ॥ शल्यस्तु शरवर्षेण युधिष्ठिरमवाकिरत् । मद्रराजञ्च कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ॥५६॥ व्यदृश्येतां तदा राजन् कङ्कपत्रिभिराहवे । चिन्नौ उद्भिन्नरुधिरौ मद्रराजयुधिष्ठिरौ ॥ ५७ ॥ पुष्पिताविव रेजाते वने शाल्मलिकिंशुकौ । दीप्यमानौ महात्मानौ देवतुर्युद्धदुर्मदौ ॥५८॥ दृष्ट्वा सर्वाणि सैन्यानि नाध्यवस्यस्तयोर्जयम् । हत्वा मद्राधिपं पार्थो भोक्ष्यतेऽद्य वसुन्धराम् ॥ ५९ ॥ शल्यो वा पाण्डवं हत्वा दद्याद् दुर्योधनाय गाम् । इतीव निश्चयो नाभूद्योधानां तत्र भारत ॥ ६० ॥ प्रदक्षिणमभूत् सर्वं धर्मराजस्य युध्यतः । ततः शरशतं शल्यो मुमोचाग्र्यं युधिष्ठिरे ॥ ६१ ॥ धनुश्चास्य शिताग्रेण बाणेन निरकृन्तत । सोऽन्यत् कार्मुकमादाय शल्यं शरशतै-

---

तब वे दोनों बड़े क्रोधमें भर शंखोंको बजा एक दूसरेको बुला तिरस्कार करते हुए आमिले ॥ ५५ ॥ शल्यने बाण वर्षा कर युधिष्ठिरको पीड़ित किया और कुन्तीपुत्रने शल्यको बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ ५६ ॥ इस युद्धमें शल्य और युधिष्ठिर के शरीरमें कंकपत्तकी पूँछ वाले बाण घुस गए थे, इससे वे दोनों शूरवीर वसन्त ऋतुमें फूलोंसे लदे टेसूके वृक्षोंकी समान प्रतीत होते थे, वे दोनों दुर्मद महात्मा युद्धरूपी जुआ खेल रहे थे ५७ ॥ ५८॥ उस समय सब योधा देखकर भी यह निश्चय नहीं कर सके कि–किसकी जय होगी हे भारत ! राजा युधिष्ठिर शल्यको मारकर पृथ्वीको भोगेंगे अथवा शल्य युधिष्ठिरको मारकर पृथ्वी दुर्योधनको देगा । हे भारत! इस बातका योधा निश्चय नहीं कर सके ॥ ५९–६० ॥ युद्ध करते हुए धर्मराजके दाहिनी ओर सब (शुभशकुन) होते थे, फिर युधिष्ठिरके ऊपर शल्यने सौ बाण बरसाए ॥६१॥ और तीखी नोक वाले बाणसे युधिष्ठिरके धनुष

स्त्रिभिः ॥ ६२ ॥ अविध्यत् कार्मुकञ्चास्य क्षुरप्रेण निरकृन्तत ।
अथास्य निजघानाश्वांश्चतुरो नतपर्वभिः ॥ ६३ ॥ द्वाभ्यामतिशि-
ताग्राभ्यामुभौ च पार्ष्णिसारथी । ततोऽस्य दीप्यमानेन पीतेन नि-
शितेन च ॥६४॥ प्रमुखे वर्त्तमानस्य भल्लेनापाहरद्ध्वजम् ।
ततः प्रभग्नं तत् सैन्यं दौर्योधनमरिन्दम ॥ ६५ ॥ ततो मद्राधिपं
द्रौणिरभ्यधावत्तथाकृतम् । आरोप्य चैनं स्वरथे त्वरमाणः प्रदुद्रुवे
६६ मुहूर्त्तमिव तौ गत्वा नर्दमाने युधिष्ठिरे । स्थित्वा ततो मद्रपतिरन्यं
स्यन्दनमास्थितः ॥ ६७ ॥ विधिवत् कल्पितं दिव्यं महाम्बुदनिना-
दिनम् । सज्जयन्त्रोपकरणं द्विषतां लोमहर्षणम् ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि शल्ययुधिष्ठिरयुद्धे
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

को भी काट डाला, तब युधिष्ठिरने दूसरा धनुष ले तीनसौ तीखे बाणोंसे शल्यको बींधडाला और क्षुर नामक बाणसे उसके धनुष को काट डाला और नमी हुई गांठ वाले बाणोंसे शल्यके चारों घोड़ाको मार डाला ॥ ६२-६३ ॥ और दो तीखे अग्रभागवाले बाणोंसे उसके पार्श्वरक्षक और सारथीको मार डाला तदनन्तर प्रकाशवान् पानी पिलाए हुए तीखे भालेसे मद्रराजके सामने ही उसकी ध्वजाको काट डाला, यह देख दुर्योधनकी सेनामें भग्गी पड़ गई, इतनेमें ही अश्वत्थामा मद्रराजके पास दौड़ आया और रथहीन मद्रराजको अपने रथमें बैठा कर शीघ्रतासे भागा चला गया ॥ ६४-६६ ॥ उन दोनोंको गए मुहूर्त भर बीता कि-युधिष्ठिर सिंहकी समान गरजने लगे तब मद्रराज भी सावधान हो शास्त्रानुसार तयार किए हुए श्वेत वर्णके, महामेघकी समान घहराते हुए शस्त्रों, फेंकनेके यंत्रोंसे तथा युद्धके पदार्थोंसे भरे हुए और शत्रुओंके रोंगटे खड़े करनेवाले रथमें बैठा ॥ ६७-६८ ॥
सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

सञ्जय उवाच। अथान्यद्धनुरादाय बलवान् वेगवत्तरम्। युधि-
ष्ठिरं मद्रपतिर्विद्ध्वा सिंह इवानदत् ॥१॥ ततः स शरवर्षेण पर्जन्य
इव वृष्टिमान्। अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियं क्षत्रियर्षभः॥२॥सात्यकिं
दशभिर्विद्ध्वा भीमसेनं त्रिभिस्तथा। सहदेवं त्रिभिर्विध्वा युधिष्ठिरम-
पीडयत् ॥ ३ ॥ तांस्तानन्यान्महेष्वासान् साश्वान् सरथकुञ्जरान्।
अर्द्दयामास विशिखैरुल्काभिरिव कुञ्जरान् ॥ ४ ॥ कुञ्जरान्
कुञ्जरारोहानश्वानश्वप्रयाथिनः। रथांश्च रथिभिः सार्द्धं जघान
रथिनाम्वरः ॥ ५ ॥ बाहूंश्चिच्छेद च तथा सायुधान् केतनानि
च। चकार वै महीं योधैस्तीर्णां वेदीं कुशैरिव ॥ ६ ॥ तथा तम-
रिसैन्यानि घ्नन्तं मृत्युमिवान्तकम्। परिवव्रुर्भृशं क्रुद्धाः पाण्डु-
पाञ्चालसोमकाः ॥ ७ ॥ तं भीमसेनश्च शिनेश्च नप्ता माद्र्याश्च
पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ। समागतं भीमबलेन राज्ञा पर्य्यासमन्योन्यमथा-

संजयने कहा कि– हे धृतराष्ट्र! तदनन्तर बली मद्रराज बड़े वेग वाले दूसरे धनुपको ले युधिष्ठिर राजाको मार कर सिंहकी समान गरजने लगा ॥ १ ॥ तदनन्तर क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ मद्रराज जल बरसाते हुए मेघकी समान बाणोंकी बौछार करने लगा ॥ २ ॥ वह सात्यकिको दश बाणोंसे घायल कर, भीमसेनको तीन और सहदेवको तीन बाणोंसे बींध युधिष्ठिरको पीड़ित करने लगा ॥ ३ ॥ तथा दूसरे घोड़े सवार और रथोंमें बैठे हुए योधाओंको जैसे हाथिओं को मशालों से दागा किया जाय तिस प्रकार बाणोंसे जलाने लगा॥ ४ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ मद्रराज। हाथी हाथीसवार, घोड़े घड़सवार और रथियोंका तथा रथोंका चूरा करनेलगा ॥ ५ ॥ आयुध सहित भुजाओं और ध्वजाओंको काटकर कुशोंसे छाई हुई वेदी की समान पृथ्वीको योधाओंसे पाटदिया ॥ ६ ॥ इस प्रकार यमराजकी समान सेनाका संहार करते हुए उसको देखकर क्रोधमें भर पाण्डव और पांचालोंके सैनिकोंने उसको घेर लिया ॥७॥ भीमसेन शिनिका पोता सात्यकी, माद्रीके पुत्र पुरुषोंमें वीर नकुल सहदेव, मद्रराजको, भयंकर

ह्वयन्त ॥ ८ ॥ ततस्तु शूराः समरे नरेन्द्र नरेश्वरं प्राप्य युधाम्वरिष्ठम् । आवार्य चैनं समरे नृवीरं जघ्नुः शरैः पत्रिभिरुग्रवेगैः ९ संरक्षितो भीमसेनेन राजा माद्रीसुताभ्यामथ माधवेन । मद्राधिपं पत्रिभिरुग्रवेगैःस्तनान्तरे धर्मसुतो निजघ्ने ॥१० ॥ ततो रणे तावकानां रथौघाः संवीक्ष्य मद्राधिपतिं शरार्त्तम् । नराः सर्वे परिवव्रुः सुसज्जा दुर्योधनस्यानुमते समन्तात् ॥ ११ ॥ ततो द्रुतं मद्रजनाधिपो रणे युधिष्ठिरं सप्तभिरभ्यविध्यत् । तञ्चापि पार्थो नवभिः पृषत्कैर्विव्याध राजंस्तुमुले महात्मा ॥ १२ ॥ आकर्णपूर्णायतसंप्रयुक्तैः शरैस्तथा संयति तैलधौतैः । अन्योन्यमाच्छादयतां महारथौ मद्राधिपस्चापि युधिष्ठिरश्च ॥ १३ ॥ ततस्तु तूर्णं समरे महारथौ परस्परस्यान्तरमीक्षमाणौ । शरैर्भृशं विव्यधतुर्नृपोत्तमौ महाबलौ शत्रुभिरप्रधृष्यौ ॥ १४ ॥ तयोर्धनुर्ज्यातलनिस्वनो

बलवाले राजासे लड़नेको चढ़ा हुआ देखकर एक दूसरेको बुलाने लगे॥८॥ तदनन्तर सब शूर पुरुषोंमें श्रेष्ठ शल्यको आगे बढनेसे अटका कर हे नरेन्द्र ! उसके उग्र वेगवाले बाण मारनेलगे ॥९॥ तदनन्तर रणमें मद्रराज को बाणोंसे व्याकुल देख कर तुम्हारे रथी पुरुष दुर्योधनकी आज्ञासे सुसज्जित हो मद्रराजके चारों ओर आकर इकट्ठे होगये॥ १० ॥ तदन्तर भीम, नकुल, सहदेव और श्रीकृष्णसे रक्षित धर्मराजने मद्रराजकी छातीमें तीखे बाण मारे ॥ १० ॥ हे राजन् ! फिर मद्रराजने रणमें युधिष्ठिरके सात बाण मारे और महात्मा युधिष्ठिरने उस घोर संग्राममें मद्रराजके नौ बाण मारे ॥१२ ॥ तदन्तर महारथी मद्रराज और युधिष्ठिर रणमें धनुषको कान तक खेंचकर तेलसे साफ कर सफेद किये हुए बाणों से एक दूसरेको ढकने लगे ॥ १३ ॥ उस समय महारथी राजाओंमें श्रेष्ठ महाबली, शत्रुओंके दबावमें न आने वाले मद्रराज और युधिष्ठिर एक दूसरेके छिद्रको देखते हुए एक दूसरेको घायल करने लगे ॥१४॥ बाण बरसाते हुए मद्राधिपति शल्य

महान् महेन्द्रवज्राशनितुल्यनिस्वनः । परस्परं बाणगणैर्महात्मनोः प्रवर्षतोर्मद्रपपाण्डुवीरयोः ॥ १५ ॥ तौ चेरतुर्व्याघ्रशिशुप्रकाशौ महावनेष्वामिषगृद्धिनाविव । विषाणिनौ नागवराविवोत्कटौ ततक्षतुः संयुगजातदर्पौ ॥ १६ ॥ ततस्तु मद्राधिपतिर्महात्मा युधिष्ठिरं भीमबलं प्रसह्य । विव्याध वीरं हृदयेऽतिवेगं शरेण सूर्याग्निसमप्रभेण ॥ १७ ॥ ततोऽतिविद्धोऽथ युधिष्ठिरोऽपि सुसंप्रयुक्तेन शरेण राजन् । जघान मद्राधिपतिं महात्मा मुदञ्च लेभे ऋषभः कुरूणाम् १८ ततो मुहूर्त्तादिव पार्थिवेन्द्रो लब्ध्वा संज्ञां, क्रोधसंरक्तनेत्रः शतेन पार्थं परितो जघान सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावः १९ त्वरंस्ततो धर्मसुतो महात्मा शल्यस्य क्रुद्धो नवभिः पृषत्कैः । भित्त्वा ह्युरस्तपनीयञ्च

और पाण्डवोंमें वीर महात्मा युधिष्ठिरकी धनुषकी प्रत्यञ्चाका शब्द इन्द्रके वज्रके कड़कनेकी समान होता था॥ १५ ॥ महावनोंमें मांसके लिये जैसे दो व्याघ्रके बच्चोंमें युद्धहो, तैसे व्याघ्रके बच्चों की समान दीखते हुए वे रणमें घूमते थे और गर्वमें भर दाँतोंसे लड़ते हुए दो हाथियोंकी समान रणमें एक दूसरेको घायल करने लगे ॥ १६ ॥ तदनन्तर महात्मा मद्रराजने बड़े वेग और भयंकर पराक्रम वाले युधिष्ठिरके हृदयमें सूर्य और अग्निकी समान प्रकाश वाला बाण जोरसे मारा ॥ १७ ॥ तब तो बहुत घायल होने पर युधिष्ठिरने भी बाणको अच्छी तरह चलाकर मद्रराजको भी वींध डाला और कौरवोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर मद्रराजको वींध हर्षमें भर गए ॥ १८ ॥ उस बाणसे मद्रराज मूर्च्छित होगया, तब थोड़ी देर बाद मूर्छा टूटने पर राजाओंमें इन्द्रसमान मद्रराजके नेत्र क्रोधसे लालचोल होगए, तब इन्द्र की समान प्रभाव वाले मद्रराजने शीघ्रतासे युधिष्ठिरके सौ बाण मारे ॥ १९ ॥ तदनन्तर कोपमें भरे हुए महात्मा युधिष्ठिरने नौ बाणोंसे मद्रराजकी छातीको वींध, दूसरे छः बाणोंसे उसके कवच

वर्म जघान षडिभस्त्वपरैः पृषत्कैः ॥ २० ॥ ततस्तु मद्राधिपतिः प्रकृष्टं धनुर्विकृष्य व्यसृजत् पृषत्कान् । द्वाभ्यां शराभ्यां च तथैव राज्ञश्चिच्छेद चापं कुरुपुङ्गवस्य ॥ २१ ॥ नवं ततोऽन्यत् समरे प्रगृह्य राजा धनुर्घोरतरं महात्मा । शल्यं हि विव्याध शरैः समन्तात् यथा महेन्द्रो नमुचिं शिताग्रैः ॥२२॥ ततस्तु शल्यो नवभिः पृषत्कैर्भीमस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य । निकृत्य रौक्मे पटुवर्मणी तयोर्विदारयामास भुजौ महात्मा ॥ २३ ॥ ततोऽपरेण ज्वलनार्कतेजसा क्षुरेण राज्ञो धनुरुन्ममाथ । कृपश्च तस्यैव जघान सूतं षड्भिः शरैः सोऽभिमुखं पपात ॥ २४ ॥ मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरस्य शरैश्चतुर्भिर्निजघान वाहान । वाहांश्च हत्वा व्यकरोन्महात्मा योधक्षयं धर्मसुतस्य राज्ञः ॥ २५ ॥ तथा कृते राजनि

को काट डाला २० तव मद्रराजने धनुषको जोरसे खींचकर वाण छोड़े और कौरवोंमें श्रेष्ठ राज युधिष्ठिरके धनुषको दो वाणोंसे काट डाला २१ महात्मा राजा युधिष्ठिरने तुरन्त दूसरा भयंकर धनुष हाथमें लिया और इन्द्रने जैसे तीक्ष्ण धारवाले वाण नमुचिके मारे थे तैसे युधिष्ठिर चारों ओरसे शल्यको मारने लगे ॥२२॥ महात्मा शल्यने नौ वाणोंसे राजा युधिष्ठिर और भीमके सुन्दर कवचोंको काट डाला और फिर उन दोनोंकी भुजाओंको चीर डाला ॥ २३ ॥ फिर अग्नि और सूर्यकी समान तेजवाले वाण से युधिष्ठिरके धनुषको काट डाला, तदनन्तर कृपाचार्यने छः वाण मारकर युधिष्ठिरके सारथीको मार डाला, वह युधिष्ठिरके सामने आगिरा ॥ २४ ॥ तव शल्यने भी चार वाणोंसे युधिष्ठिरके घोड़ोंको मार डाला, घोड़ोंको मारकर महात्मा शल्य राजा युधिष्ठिरके सैनिकोंका संहार करने लगा ॥ २५ ॥ शल्यने धर्मराजकी ऐसी दशा करडाली तब महात्मा भीमसेनने एक वेग वाले वाणसे शल्यके धनुषको काट डाला फिर दो वाण मारकर

भीमसेनो मद्राधिपस्याशु ततो महात्मा । छित्वा धनुर्वेगवता शरेण द्वाभ्यामविध्यत् सुभृशं नरेन्द्रम् ॥ २६ ॥ अथापरेणास्य जहार यन्तुः कायाच्छिरः संहनहलीयमध्यात् । जघान चाश्वांश्चतुरः स शीघ्रं ततो भृशं कुपितो भीमसेनः ॥ २७ ॥ तमग्रणीः सर्वधनुर्धराणामेकञ्चरतं समरेऽतिवेगम् । भीमः शतेन व्यकिरच्छराणां माद्रीपुत्रः सहदेवस्तथैव ॥२८॥ तैः सायकैर्मोहितं वीक्ष्य शल्यं भीमः शरैरस्य चकर्त्त वर्म । स भीमसेनेन निकृत्तवर्मा मद्राधिपश्चर्म सहस्रतारम् ॥ २९ ॥ प्रगृह्य खड्गञ्च रथान्महात्मा प्रस्कन्द्य कुन्तीसुतमभ्यधावत् । छित्त्वा रथेषां नकुलस्य सोथ युधिष्ठिरं भीमबलोऽभ्यधावत् ॥ ३० ॥ तञ्चापि राजानमथोत्पतन्तं क्रुद्धं यथैवान्तकमापतन्तम् । धृष्टद्युम्नो द्रौपदेयाः शिखण्डी शिनेश्च नप्ता सहसा परीयुः ॥ ३१ ॥ अथास्य चर्माप्रतिमं न्यकृन्तद्भीमो महात्मा नवभिः पृषत्कैः । खड्गञ्च भल्लेन चकर्त्त मुष्टौ नदन् प्रहृष्ट-

---

राजा शल्यको बहुत घायल कर डाला ॥ २६ ॥ फिर एक बाण मारकर मजबूत बंधन वाले सारथिके शिरको उड़ा दिया, तदनन्तर क्रोधमें भरे भीमसेनने शीघ्र ही उसके घोड़ोंको मारडाला ॥ २७ ॥ समरमें बड़े वेगसे अकेले घूमते हुए शल्यको धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ भीम, और माद्रीपुत्र सहदेवने सौ बाणोंसे छादिया२८ उन बाणोंसे शल्यको मोहित हुआ देखकर भीमने बाणोंके प्रहार से शल्यके कवचको काट डाला, भीमसेननें कवचको काट डाला तब शल्य सौ फुल्लियों वाली ढाल और तलवार ले रथमेंसे कूदपड़ा और कुन्तीपुत्रकी ओर दौडा और नकुलके रथकी ईषाको तोड़कर भीमबल वाला शल्य युधिष्ठिरकी ओर दौड़ा २९-३० राजा शल्यको कोपायमान यमराजकी समान युधिष्ठिर पर दौड़ते देख धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र शिखण्डी और सात्यकि उस पर टूट पड़े ॥३१॥ फिर महात्मा भीमने नौ बाणोंसे शल्य की ढालको काट डाला और हाथमेंकी तलवारको भालोंसे काट

रात्र सैन्यमध्ये ॥ ३२ ॥ तत् कर्म भीमस्य समीक्ष्य हृष्टास्ते पाण्डवानां प्रवरा रथौघाः। नादं प्रचक्रुर्भृशमुत्स्मयन्तः। शंखांश्च दध्मुः शशिसन्निकाशान् ॥ ३३ ॥ तेनाथ शब्देन विभीषणेन तवाभिपन्नं बलमप्रधृष्यं। कांदिग्भूतं रुधिरोक्षिताङ्गं विसंज्ञकल्पश्च तदा विषण्णम् ॥ ३४ ॥ स मद्रराजः सहसावकीर्णो भीमाग्रगैः पाण्डवयोधमुख्यैः युधिष्ठिरस्याभिमुखं जवेन सिंहो यथो मृगहेतोः प्रयातः ॥ ३५ ॥ स धर्मराजो निहताश्वसूतः क्रोधेन दीप्तज्वलन-प्रकाशः। दृष्ट्वा च मद्राधिपतिं स्म तूर्णं समभ्यधावत्तमरिं बलेन ॥ ३६ ॥ गोविन्दवाक्यं त्वरितं विचिन्त्य दध्रे मतिं शल्यविनाश-नाय। स धर्मराजो निहताश्वसूते रथे तिष्ठन् शक्तिमेवाभिकांक्षन् ॥ ३७ ॥ तच्चापि शल्यस्य निशम्य कर्म तच्चात्मनो भागमथाव-

डाला, फिर हर्षमें भर कर तुम्हारी सेनामें गाजने लगा॥३२॥ पाण्डवोंके रथी भीम के इस कामको देख बड़े प्रसन्न हुए और वे बड़े आनन्दमें भर चन्द्रमाकी समान स्वेत शंखोंको बजाने लगे ॥ ३३ ॥ तुम्हारी किसीके दवावमें न आने वाली सेना उस भयङ्कर शङ्खनादसे खिन्न हो मूर्छित होगई उसके शरीर रुधिर से न्हा गए तथा उसे दिशाओंका भान न रहा ॥ ३४ ॥ भीम को आगे करके युद्ध करने वाले पाण्डवोंके मुख्य मुख्य योधाओं ने शल्यको बाणोंसे एक दम ढक दिया और सिंह जैसे मृगको पकड़नेको दौड़े तैसे शल्य भी वेगसे युधिष्ठिरके सामने दौडा ॥ ३५ ॥ जिनके घोड़े और सारथि मर गये थे ऐसे युधिष्ठिर शल्यको देखकर क्रोधमें भर गये और अग्निकी समान प्रकाश वाले युधिष्ठिर बड़े वेगसे उसके उपर झपटे ३६ और श्रीकृष्ण के वचनको स्मरण कर शीघ्र ही शल्यको मारनेकी इच्छा करनेलगे फिर जिनका सारथि और घोड़े मारे गये हैं वे युधिष्ठिर शल्य को मारनेके लिये शक्तिका उपयोग करनेकी इच्छा करनेलगे ३७ महात्मा युधिष्ठिरने महात्मा शल्यका युद्ध देखा और शल्यका

शिष्टम् । स्मृत्वा मनः शल्यवधे यमहत्मा यथोक्तमिन्द्रावरजस्य चक्रे ॥ ३८ ॥ स धर्मराजो मणिहेमदण्डां जग्राह शक्तिं कनकप्रकाशाम् । नेत्रे च दीप्ते सहसा विवृत्य मद्राधिपं क्रुद्धमना निरैक्षत् ॥ ३९ ॥ निरीक्षितोऽसौ नरदेवराज्ञा पूतात्मना निर्हृतकल्मषेण अभून्न यद्भस्मसान्मद्रराजस्तदद्भुतं मे प्रतिभाति राजन् ॥ ४० ॥ ततस्तु शक्तिं रुचिरोग्रदण्डां मणिप्रवालोज्ज्वलितां प्रदीप्ताम् । चिक्षेप वेगात् सुभृशं महात्मा मद्राधिपाय प्रवरः कुरूणाम् ॥ ४१ ॥ दीप्तामथैनां महता बलेन सविस्फुलिङ्गां सहसा पतन्तीम् । प्रैक्षन्त सर्वे कुरवः समेता दिवो युगान्ते महतीमिवोल्काम् ॥ ४२ ॥ तां कालरात्रीमिव पाशहस्तां यमस्य धात्रीमिव चोग्ररूपाम् । स ब्रह्मदंडप्रतिमाममोघां ससर्ज यत्तो युधि धर्मराजः ॥ ४३ ॥ ईशान-

---

वध करना मेरे हिस्सेमें है यह भी विचारा, फिर मद्रराजको मारनेका मनमें निश्चय करके श्रीकृष्णके कथनानुसार कार्य करनेका निश्चय किया ॥ ३८ ॥ तब धर्मराजने मणि और सुवर्णके दण्डे वाली सुवर्णकी समान कान्तिमती शक्ति हाथमें ली और क्रोधमें भर कर मद्रराजको देखा ॥ ३९ ॥ हे राजन् ? निष्पाप पवित्र राजाओंके स्वामी युधिष्ठिरके कड़ी दृष्टिसे देखने पर भी मद्रराज भस्म नहीं हुआ इसका हमें आश्चर्य हुआ ॥ ४० ॥ इसके पीछे कौरवोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने मनोहर और उग्र दंडे वाली मणियों के जडावसे उज्वल और प्रदीप्त दीखती हुई शक्ति वेगमें भर मद्रपतिके मारी ॥ ४१ ॥ जोरसे फेंकनेके कारण उस प्रदीप्त शक्तिमें से चिनगारियें निकलने लगी, एकाएक आती हुई वह शक्ति प्रलय कालमें आकाशसे गिरती हुई बड़ी भारी उल्काकी समान कौरवों को मालूम हुई ॥ ४२ ॥ हाथमें पाश लिये हुए, कालरात्रिकी समान उग्ररूप वाली यमकी धाईकी समान और ब्रह्मदंडकी उस अमोघ शक्तिको धर्मराजने युद्धमें सावधान होकर छोड़ा था

गन्धस्रगग्र्यासनपानभोजनैरभ्यर्च्चितां पांडुसुतैः प्रयत्नात्। सम्वर्त्तकाग्निप्रतिमां ज्वलन्तीं कृत्यामथर्वाङ्गिरसीमिवोग्राम् ॥ ४४ ॥ ईशानहेतोः प्रतिनिर्मितान्तां त्वष्ट्रा रिपूणामसुदेहभक्ष्याम्। भूम्यन्तरिक्षादिजलाशयानि प्रसह्य भूतानि निहन्तुमीशाम् ॥ ४५ ॥ घंटापताकामणिवज्रनालां वैदूर्य्यचित्रां तपनीयदंडाम्। त्वष्ट्रा प्रयत्नान्नियमेन क्लृप्तां ब्रह्मद्विषामन्तकरीममोघाम्। बलप्रयत्नादधिरूढवेगां मन्त्रैश्च घोरैरभिमन्त्र्य यत्नात्। ससर्ज्ज मार्गेण सतां परेण वधाय मद्राधिपतेस्तदानीम् ॥ ४७ ॥ हतोऽसि पापेत्यभिर्ज्जगानो रुद्रोऽधकायान्तकरं यथेषुम्। प्रसार्य्य बाहुं सुदृढं सुपाणिं क्रोधेन नृत्यन्निव धर्मराजः ॥ ४८ ॥ तां सर्वशक्त्या प्रहितां स्वशक्तिं युधिष्ठिरेणाप्रतिवार्य्यवीर्य्याम्। प्रतिग्रहायाभिननर्द

॥ ४३ ॥ पांडवोंसे सदा गंध, माला, श्रेष्ठ आसन और भोजनों से सत्कृत, प्रलयाग्निकी समान जलती हुई अथर्वाङ्गिराकी कृत्या की समान उग्र, विश्वकर्मासे ईशानदेवके लिए बनी हुई, शत्रुओंके देह तथा प्राणको खाजाने वाली आकाश पृथ्वी और जलाशयोंमें भी बल पूर्वक प्राणियोंका नाश करनेमें समर्थ, घण्टा, पताकाओंसे सुशोभित मणि हीरे और वैदूर्योंसे जड़ी हुई सुवर्णके दण्ड वाली, विश्वकर्मा से ब्रह्मचर्यपालन करने के बाद बनीहुई, ब्रह्मद्वेषियोंका अन्त करनेमें अमोघ, घोर मंत्रोंसे अभिमंत्रित होनेके कारण और बलपूर्वक प्रयोगमें आनेके कारण बढेहुए वेगवाली शक्तिको धर्मराजने मद्रराजको मारनेके लिए आकाशमें छोड़ा ॥ ४४—४७ ॥ फिर रुद्रने गर्जना करके संहार करनेवाला बाण जैसे अन्धकासुरके मारा था तिस प्रकार धर्मराजभी क्रोधपूर्वक अपने बड़े लम्बे हाथको लम्बा करके मानो नाच रहे हो इस प्रकार रणमें घूमने लगे और "अरे पापी! अब तू मारा गया,, ऐसा कह कर गर्ज उठे ॥४८ ॥ पर-

शल्यः सम्यग्घुतामग्निरिवाज्यधाराम् ॥ ४६ ॥ सा तस्य मर्माणि विदार्य्य शुभ्रमुरो विशालञ्च तथैव भित्त्वा । विवेश गां तोयमिवाप्रसक्ता यशो विशालं नृपतेर्वहन्ती ॥ ५० ॥ नासाक्षिकर्णास्य विनिःसृतेन प्रस्यन्दता च व्रणसम्भवेन । संसिक्तगात्रो रुधिरेण सोऽभूत् क्रौञ्चो यथा स्कन्दहतो महाद्रिः ॥ ५१ ॥ प्रसार्य्य बाहू च रथाद्गतो-गां स छिन्नवर्मा कुरुनन्दनेन । महेन्द्रवाहप्रतिमो महात्मा वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥ ५२ ॥ बाहू प्रसार्य्याभिमुखो धर्मराजस्य मद्रराट् । ततो निपतितो भूमाविन्द्रध्वज इवोच्छ्रितः ॥ ५३ ॥ स तथा भिन्नसर्वाङ्गो रुधिरेण समुक्षितः । प्रत्युद्गत इव प्रेम्णा भूम्या स नरपुङ्गवः ॥ ५४ ॥ प्रियया कांतया कांतः पतमान इवोरसि । चिरं भुक्त्वा वसुमतीं प्रियां कान्तामिव

न्तु अच्छी प्रकार होमी हुई घी की धारको जैसे अग्नि ग्रहण करता है, तैसे ही युधिष्ठिरके द्वारा पूरे वेगमें भरकर फैंकी गई, अप्रतिहत वीर्य वाली शक्तिको झेलनेके लिए शल्य गर्जना करता हुआ तयार होगया ॥ ४६ ॥ वह शक्ति शल्यके बड़े भारी यश को नष्ट करतीहुई मर्मस्थलोंको वींध उसके स्वेत उरःस्थल को फाड़कर जैसे जलमें घुसती हो तैसे, पृथ्वीमें घुस गई ॥५०॥ नाक आंख, कान और मुखसे टपकतेहुए और घावोंसे वहतेहुए रुधिरसे सनेहुए शरीर वाला शल्य स्वामिकार्तिकेयसे मारे हुए क्रौंचपर्वतकी समान रुधिरसे न्हा रहाथा ॥ ५१ ॥ ऐरावत हाथी की समान शरीरवाला टूटे हुए कवचवाला महात्मा मद्रराज वज्र से तोड़ेहुए पर्वतके शिखर की समान भुजा फैलाकर पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥ ५२ ॥ उन्नत इन्द्रध्वज जैसे पृथ्वी पर गिरे तैसे ही मद्रराज भी भुजाओंको फैला धर्मराजके सामने गिरपड़ा ॥ ५३ ॥ अंग प्रत्यंग टूट जानेके कारण लोहूलुहान हुआ नरोंमें श्रेष्ठ राजा शल्य प्रेमसे पृथ्वीको आलिंगन करता हुआ सा ढह पड़ा ॥ ५४ ॥ बहुत समय तक प्रिय पत्नीकी समान पृथ्वी पर राज्य करके जब

प्रभुः ॥ ५५ ॥ सर्वैरङ्गैः समाश्लिष्य प्रसुप्त इव सोऽभवत् । धर्म्ये धर्मात्मना युद्धे निहतो धर्मसूनुना ॥ ५६ ॥ सम्यग्घुत इव स्विष्टः प्रशान्तोऽग्निरिवाध्वरे । शक्त्या विभिन्नहृदयं विप्रयुक्तायुधध्वजम् ॥ ५७ ॥ प्रशान्तमपि मद्रेशं लक्ष्मीर्नैव व्यमुञ्चत । ततो युधिष्ठिरश्चापमादायेन्द्रधनुः प्रभम् ॥ ५८ ॥ व्यधमत् द्विषतः संख्ये खगराडिव पन्नगान् । देहांश्च निशितैर्भल्लै रिपूणां नाशयत् क्षणात् ॥ ५९ ॥ ततः पार्थस्य बाणौघैरावृतास्सैनिकास्तव । निमीलिताक्षाः क्षिण्वन्तो भृशमन्योन्यमर्दिताः ॥६०॥ स्यन्दन्तो रुधिरं देहैर्विशस्त्रायुधजीविताः । ततः शल्ये निपतिते मद्रराजानुजो युवा ६१ भ्रातुः सर्वगुणैस्तुल्यो रथी पांडवमभ्ययात् । विव्याध

शल्य पृथ्वी पर गिरा उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि-प्रिय स्त्रीने प्रियतमको अपनी छातीपर लेलिया है ॥ ५५॥ धर्मात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिरके द्वारा धर्मयुद्धमें मारा हुआ शल्य सब अङ्गोंसे आलिंगन करकेसोएहुएकी समान दीखता था॥५६॥घृतसे अच्छी तरह होमकर वड़ी उपासना करनेके वाद जैसे अग्नि शांत होजाय तैसे ही शांत हुआ राजा मद्रराज भी दीखता था इस युद्धमें मद्रराज का हृदय फटगया था ध्वजा आयुध टूटगए थे तव भी उसके शरीर की शोभा विगड़ी नहीं थी ५७-५८ तदनन्तर राजा युधिष्ठिर इन्द्र धनुषकी समान प्रभाववाले धनुषको ले गरुड़ जैसे सर्पोंका संहार करते हैंतैसे भल्लजातिके तीक्ष्ण किएहुए वहुतसे वाणोंसे क्षणभर में शत्रुओंके देहोंको नष्ट करनेलगे ॥ ५९ ॥ फिर युधिष्ठिरके वाणोंकी वौछारोंसे घिरेहुए तुम्हारे सैनिकोंने आंखें मींचलीं और आपसमें ही एक दूसरे पर गिर कर एक दूसरे को मारने लगे ६० उनके आयुध टूटगए और वे रुधिरमें लथड़ पथड़ होगए थे. मद्रराजके मारे जाने पर मद्रराजके सम्पूर्ण गुणोंवाला उसका छोटा भाई युधिष्ठिरके ऊपर दौड़ा और मरेहुए भाईका सत्कार करने

च नरश्रेष्ठो नाराचैर्बहुभिस्त्वरन् ॥६२॥ हतस्यापचितिं भ्रातुश्चि-
कीर्षुर्युद्धदुर्मदः । तं विव्याधाशुगैः षड्भिर्धर्मराजस्त्वरन्निव ६३
कार्मुकञ्चास्य चिच्छेद क्षुराभ्यां ध्वजमेव च । ततोस्य दीप्यमानेन
सुदृढेन शितेन च ॥ ६४ ॥ प्रमुखे वर्त्तमानस्य भल्लेनापाहरच्छिरः
सकुण्डलम् तद्ददृशे पतमानं शिरो रथात् ॥ ६५ ॥ पुण्यक्षयमिव
प्राप्य पतन् स्वर्गादिव च्युतः । तस्यापकृत्तशीर्षन्तु शरीरं पतितं
रथात् ॥ ६६ ॥ रुधिरेणावसक्ताङ्गं दृष्ट्वा सैन्यमभज्यत । विचि-
त्रकवचे तस्मिन् हते मद्रनृपानुजे ॥ ६७ ॥ हाहाकारं विकुर्वाणा
कुरवो विप्रदुद्रुवुः । शल्यानुजं हतं दृष्ट्वा तावकास्त्यक्तजीविताः
॥ ६८ ॥ वित्रेसुः पाण्डवभयाद्रजोध्वस्तास्तथा भृशम् । ताँस्तथा
भज्यमानांस्तु कौरवान् भरतर्षभः ॥ ६९ ॥ शिनेर्नप्ता किरन् बा-
णैरभ्यवर्त्तत सात्यकिः । तमायान्तं महेष्वासमप्रसह्यं दुरासदम् ७०

की इच्छा वाला युद्धदुर्मद मद्रराजका छोटा भाई बहुतसे बाणोंसे धर्मपुत्रको बींधने लगा तब धर्मराजने त्वराके साथ उसको छः बाणोंसे घायल करडाला ॥६१-६३॥ फिर क्षुर नामके दो बाण मार कर उसकी ध्वजा और धनुषको काटडाला, फिर सामने खड़े हुए उसके शिरको दीप्त सुदृढ़ और पानी पिलाए हुए भालेसे उतार लिया रथसे गिरता हुआ कुण्डल वाला उसका शिर पुण्यक्षय होने पर स्वर्गसे गिरते हुए जीवसा दीखता था कटेहुए शिर वाले रुधिरसे उसके धडको रथसे नीचे गिरते देख सेनामें भग्गी पड़गई। शल्यके छोटेभाई विचित्र कवच वाले उस तरुण पुरुषके मारे जाने पर कौरव हाहाकार कर भागनेलगे मद्रपतिके भाईको मरा हुआ देख तुम्हारे योधा जीवनसे निराश हो धूलमें सने हुए त्रस्त हो भागने लगे, हे भरतर्षभ कौरवोंके योधाओंको इसप्रकार भागते हुए देख कर शिनिपौत्र सात्यकि उन पर बाण बरसाने लगा। महाधनुर्धर असह्य और दुरासद सात्यकिको चढ़तेहुए देखकर, हे राजन्! कृत-

हार्दिक्यस्त्वरितो राजन् प्रत्यगृह्लादभीतवत् । तौ समेतौ महात्मानौ वार्ष्णेयावपराजितौ ॥ ७१ ॥ हार्दिक्यः सात्यकिश्चैव सिंहाविव मदोत्कटौ । इषुभिर्विमलाभासैश्छादयन्तौ परस्परम् ॥ ७२ ॥ अर्चिर्भिरिव सूर्य्यस्य दिवाकरसमप्रभौ । चापमार्गबलोद्धूतान् मार्गणान् वृष्णिसिंहयोः ॥ ७३ ॥ आकाशगानपश्याम पतङ्गानिव शीघ्रगान् । सात्यकिं दशभिर्विध्वा हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः ७४ चापमेकेन चिच्छेद हार्दिक्यो नतपर्वणा । तन्निकृत्तं धनुःश्रेष्ठमपास्य शिनिपुङ्गवः ॥ ७५ ॥ अन्यदादत्त वेगेन वेगवत्तरमायुधम् । तदादाय धनुःश्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम् ॥ ७६ ॥ हार्दिक्यं दशभिर्वाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे । ततो रथं युगेषाञ्च छित्त्वा भल्लैः सुसंयतैः ॥ ७७ ॥ अश्वांस्तस्यावधीत्तूर्णमुभौ च पार्ष्णिसारथी । ततस्तं विरथं दृष्ट्वा कृपः शारद्वतः प्रभो ॥ ७८ ॥ अपोवाह

वर्मा निर्भय हो उसके सामने चढ़ गया, वे दोनों महात्मा श्रेष्ठ घोड़ोंवाले वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुए सिंहकी समान उग्र बलवाले चमकती हुई कांतिवाले थे।सूर्यकी समान कांतिवाले वे दोनों सात्यकी और कृतवर्मा सूर्यकी किरणों की समान विमल कान्तिवाले वाणोंसे एक दूसरे को ढकनेलगे, धनुषको वेगसे खेंचनेपर छोड़े हुए वाण आकाशमें शीघ्रतासे उड़ते हुए पत्तियोंसे दीखते थे कृतवर्माने दश वाणोंसे सात्यकी को घायलकर तीन वाणोंसे उसके घोड़ों को घायल करडाला फिर नमी हुई गाँठ वाले वाणसे सात्यकीके धनुषको काटडाला सात्यकीने उस टूटे हुए श्रेष्ठ धनुषको फेंककर शीघ्रतासे दूसरे बड़े वेगवाले धनुषको ले लिया फिर सकल धनुषधारियोंमे श्रेष्ठ सात्यकीने दश वाण कृतवर्माकी छाती में मारे, फिर भल्ल नामक वाणोंको वेगसे मारकर उसके रथ और जुएकी ईषा को काटडाला ॥ ६४-७७ ॥ फिर शीघ्रतासे उसके घोड़े और पार्श्वरक्षक तथा सारथीको मारडाला,हे राजन् !

ततः क्षिप्रं रथमारोप्य वीर्य्यवान् । मद्रराजे हते राजन् विरथे कृत-
वर्मणि ॥ ७६ ॥ दुर्य्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम् । तत्
परे नान्वबुध्यन्त सैन्येन रजसावृते ॥ ८० ॥ बलन्तु हतभू-
यिष्ठं तत्तदासीत् परांमुखम् । ततो मुहूर्त्तात्तेऽपश्यन् रजो भौमं
समुत्थितम् ॥ ८१ ॥ विविधैः शोणितस्रावैः प्रशान्तं पुरुषर्षभ ।
ततो दुर्य्योधनो दृष्ट्वा भग्नं स्वबलमन्तिकात् ॥ ८२ ॥ जवेनापततः
पार्थानेकः सर्वानवारयत् । पाण्डवान् सरथान् दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नञ्च
पार्षतं ॥ ८३ ॥ आनर्त्तं च दुराधर्षं शितैर्वाणैरवाकिरत् । तं परे
नाभ्यवर्त्तन्त मर्त्त्या मृत्युमिवागतम् ॥ ८४ ॥ अथान्यं रथमास्थाय
हार्दिक्योपि न्यवर्त्तत । ततो युधिष्ठिरो राजा त्वरमाणो महारथः
॥ ८५ ॥ चतुर्भिर्निजघानाश्वान् पत्रिभिः कृतवर्मणः । विव्याध
गौतमञ्चापि षड्भिर्भल्लैः सुतेजनैः ॥ ८६ ॥ अश्वत्थामा ततो
राज्ञा हताश्वं विरथीकृतम् । तमपोवाह हार्दिक्यं स्वरथेन युधि-

कृतवर्माको रथहीन देखकर वीर्यवान् शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य अपने
रथमें बैठाकर लेगए, हेराजन् ! शल्यके मारे जाने पर और कृपा-
चार्यके रथहीन होनेपर दुर्योधनकी सेना फिर भागने लगी परन्तु
सेनाके भागनेसे धूल उड़रही थी अतः इस बातको शत्रु जान न
सके ॥७८–८० ॥ सेनाके बहुतसे योधा मरगए थे और बहुतसे
भाग रहे थे, हे राजन् ! क्षण भरमें उड़तीहुई धूल रुधिरके प्रवाहोंसे
शांत होगई तब हे पुरुषश्रेष्ठ ! राजा दुर्योधनने समीपमें ही सेनाको
भागती हुई देखकर ८१–८२ और रथमें बैठ वेगपूर्वक आते हुए
धृष्टद्युम्न आनर्त और पाण्डवोंको देखकर अकेले दुर्योधनने उन
को आगे बढ़नेसे रोक दिया और वाण वरसाने लगा॥८३–८४॥
तदनन्तर कृतवर्मा भी दूसरे रथमें बैठकर लौट आया, तब महारथी
युधिष्ठिरने फुर्तीसे चार वाणोंसे उसके घोड़ोंको मारडाला और
तेज छः भल्लनामक बाणोंसे कृपाचार्यको वींधडाला॥८५–८६॥
जब अश्वत्थामाने देखा कि युधिष्ठिरने कृतवर्माके घोड़े मारकर उस

ष्ठिरात् ॥ ८७ ॥ ततः शारद्वतो षड्भिः प्रत्यविध्यद्युधिष्ठिरम् । विव्याध चाश्वान्निशितैस्तथाष्टाभिः शिलीमुखैः ॥८८ ॥ एवमेतन्महाराज युद्धशेषमवर्त्तत । तव दुर्मन्त्रिते राजन् सह पुत्रस्य भारत ॥८९॥ तस्मिन्महेष्वासवरे विशस्ते संग्राममध्ये कुरुपुङ्गवेन । पार्थाः समेताः परमप्रहृष्टाः शंखान् प्रदध्मुर्हतमीक्ष्य शल्यम् ॥ ९०॥ युधिष्ठिरञ्च प्रशशंसुराजौ पुरा सुरा वृत्रवधे यथेन्द्रम् । चक्रुश्च नानाविधवाद्यशब्दान् निनादयन्तो वसुधां समन्तात् ॥ ९१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि शल्यवधे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

सञ्जय उवाच । शल्ये तु निहते राजन् मद्रापदानुगाः । रथाः सप्तशता वीरा निर्ययुर्महतो बलात् ॥ १ ॥ दुर्य्योधनस्तु द्विरदमारुह्याचलसन्निभम् । छत्रेण ध्रियमाणेन वीज्यमानश्च चामरैः ॥२॥

को रथहीन करदिया तब वह उसको अपने रथमें बैठा युधिष्ठिरके पाससे भगा लेगया॥८७॥तब छः बाणोंसे कृपाचार्यने युधिष्ठिरको घायल करडाला, फिर तेज आठ बाणोंसे घोड़ोंको घायल किया ॥ ८८ ॥ हे भरतवंशी महाराज ! तुम्हारे तथा तुम्हारे पुत्रके अन्यायके कारण इस प्रकार शेष युद्ध हुआ था ॥८९॥ युधिष्ठिरने जब महाधनुर्धर शल्यको संग्राम में मारडाला, तब सब पांडव परमप्रसन्न हो शंखोंको बजानेलगे ॥ ९० ॥ और पहिले वृत्रासुरका नाश करने पर देवताओंने जैसे इन्द्रकी प्रशंसा की थी तैसे उन इकट्ठे हुए सब राजाओंने युधिष्ठिरकी प्रशंसाकी और नाना प्रकारके बाजे बजा पृथ्वीको गुञ्जारने लगे ॥ ९१ ॥ सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

सञ्जयने कहा कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! शल्यके मारे जाने पर उसके अनुयायी सातसौ वीर बड़ीभारी सेनाले युधिष्ठिरसे लड़ने को चले ॥ १ ॥ उस समय राजा दुर्योधन पर्वताकार हाथी पर बैठा, उस समय छत्र उस पर लगा रहा था, चमरोंसे हवाभी जा

न गन्तव्यं न गन्तव्यमिति मद्रानवारयत् । दुर्य्योधनेन ते वीरा वार्य्यमाणाः पुनः पुनः ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरं जिघांसन्तः पाण्डूनां प्राविशन् बलम् । ते तु शूरा महाराज कृतचित्ताः सुयोधने ॥ ४ ॥ धनुःशब्दं महत् कृत्वा सहायुध्यन्त पाण्डवैः। श्रुत्वा च निहतं शल्यं धर्मपुत्रञ्च पीडितम् ॥ ५ ॥ मद्रराजप्रियासक्तैर्मद्रकानां महारथैः । आजगाम ततः पार्थो गांडीवं विक्षिपन् धनुः ॥ ६ ॥ पूरयन् रथघोषेण दिशः सर्वा महारथः । ततोऽर्जुनश्च भीमश्च माद्रीपुत्रौ च पांडवौ ॥ ७ ॥ सात्यकिश्च नरव्याघ्रो द्रौपदेयाश्च सर्वशः धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पञ्चालाः सहसोमकैः ॥ ८ युधिष्ठिरं परीप्सन्तः समन्तात् पर्य्यवारयन् । ते समन्तात् परिवृता पांडवाः पुरुषर्षभाः ॥ ९ ॥ क्षोभयन्ति स्म तां सेनां मकराः सागरं यथा । वृक्षानिव महावाताः कम्पयन्ति स्म तावकान् ॥ १० ॥ पुरावातेन गंगेव क्षोभ्यमाणा महानदी । व्यक्षोभत तदा राजन् पांडूनां

रही थी, उसने शल्यके योधाओंको पाँडवोंसे युद्ध करनेसे वारम्वार रोका परन्तु वे वीर दुर्योधनके मना करने पर भी युधिष्ठिरको मारनेकी इच्छासे पांडवोंके सेनादलमें घुस पड़े, हे महाराज ! वे योधा युद्ध करनेकी मनमें ठान धनुषा पर टंकार दे पांडवोंसे युद्ध करनेलगे, अर्जुन ने सुना कि-शल्य मारागया और उसके प्रिय चाहनेवाले महारथी युधिष्ठिरको पीड़ित कर रहे हैं, तब वह महारथी गांडीव धनुषको टंकारता हुआ और अपने रथकी झनकारसे दिशाओंको गुँजारता हुआ वहाँ आपहुंचा, युधिष्ठिरको बचाने की इच्छासे अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव नरव्याघ्र, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखंडी और सोमकों सहित पाञ्चाल उनके आस पास आगए; जैसे नाके समुद्र को आलोड़ित करें और जैसे आँधी वृक्षों को झकझाड़े तैसेही इकट्ठे हुए पाण्डवों में श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारे सैनिकोंका क्षोभ,करने लगे ॥ ३-१० ॥ जैसे पुरवाई वायुके कारण गंगा हिलोर ले तैसे ही पाण्डवोंकी सेना

ध्वजिनी पुनः ॥ ११ ॥ प्रस्कन्द्य सेनां महतीं महात्मानो महारथाः
मद्रेश्वरचुकुशुस्तत्र क्व स राजा युधिष्ठिरः ॥१२॥भ्रातरः पांडवाः
शूरा दृश्यन्ते नेह केचन । धृष्टद्युम्नोऽथ शैनेयो द्रौपदेया महारथाः
॥ १३ ॥ पञ्चालाश्च महावीर्य्याः शिखण्डी च महारथाः । एवं
तान् वादिनः शूरान् द्रौपदेया महारथाः ॥१४॥ अभ्यघ्नन् युध्य-
मानांश्च मद्रराजपदानुगान् । रथैर्विमर्दिताः केचित् केचिच्छिन्नै-
र्महाध्वजैः॥१५॥प्रत्यदृश्यन्त समरे तावका निहताः शरैः । आलो-
क्य पांडवान् युद्धे वीरान् शतसहस्रशः ॥१६॥ वार्य्यमाणा ययु-
र्वीरास्तव पुत्रेण भारत।दुर्य्योधनस्तु तान् वीरान् वारयामास सान्त्व
यन् ॥ १७ ॥ न चास्य शासनं कश्चित्तत्र चक्रे महारथः । ततो
गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत् ॥ १८ ॥ दुर्योधनं महाराज
वचनं वचनक्षमः॥ किन्च नः प्रेक्षमाणानां मद्राणां हन्यते बलम् ।

हिलोरें लेने लगी ॥ ११ ॥ ऐसा होने पर भी महात्मा मद्रदेशी बहुत से योधा पाण्डवोंकी सेनामें आ चिल्लाने लगे कि-राजा युधिष्ठिर कहां हैं॥ १२ ॥ और इसके शूर भाई, धृष्टद्युम्न,सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, महावीर्य पञ्चाल और महारथी शिखण्डी कहां हैं ? वे यहां दीखते नहीं । इस प्रकार बकवाद करते हुए मद्रपतिके अनुयायियोंको शूर महारथी द्रौपदीके पुत्र और सात्यकि मारने लगे, उस समय तुम्हारी सेनामें शत्रुओंके प्रहारसे किन्हीं योधाओंके रथके पहिये टूटे हुए, किन्हीं की ध्वजाएँ टूटी हुई दिखाई देती थीं, पाण्डवोंको देखकर हे भारत ! तुम्हारे पुत्रके मना करने पर भी योधा पांडवोंकी ओर झपटे चले गए, दुर्योधनने उनको फिर भी लौटनेके लिए समझाया, परन्तु उस समय उन महारथियोंमेंसे किसीने भी उसकी आज्ञाको नहीं माना, हे राजन् ! उस समय बात चीत करनेमें चतुर गांधारराजका पुत्र शकुनि दुर्योधनसे कहने लगा कि—हे भारत ! हम खड़े२ देखें और मद्रोंकी सेना पिटती रहे ? क्या यह

॥१९॥ न युक्तमेतत् समरे त्वयि तिष्ठति भारत। सहितैश्चापि योद्धव्य-
मित्येवं समयः कृतः ॥ २० ॥ अथ कस्मात् परानेवं घ्नतो मर्षयसे
नृप । दुर्योधन उवाच । वार्य्यमाणा मया पूर्वं नैते चक्रुर्वचो मम
॥ २१ ॥ एते हि सहिता सर्वे प्रस्कन्नाः पाण्डुवाहिनीम् । शकुनि-
रुवाच । न भर्त्तुः शासनं वीरा रणे कुर्वन्त्यमर्षिताः ॥ २२ ॥ अलं
क्रोद्धुं तवैतेषां नायं काल उपेक्षितुम्। यामः सर्वेऽत्र संभूय सवाजिर-
थकुञ्जराः ॥२३॥ परित्रातुं महेष्वासान् मद्रराजपदानुगान् अन्यो-
न्यं परिरक्षामो यत्नेन महता नृप ॥ २४ ॥ एवं सर्वेऽनुसञ्चिन्त्य
प्रययुस्तत्र सैनिकाः । एवमुक्तस्ततो राजा बलेन महता वृतः ॥२५॥
प्रययौ सिंहनादेन कम्पयन्निव मेदिनीम् । हत विध्यत गृह्णीत प्रह-
रध्वं निकृन्तत ॥२६॥ इत्यासीत्तुमुलः शब्दस्तव सैन्यस्य भारत ।
पांडवास्तु रणे दृष्ट्वा मद्रराजपदानुगान् ॥२७॥ सहितानभ्यवर्त्तन्त

उचित है ? कि-तुम्हारे खड़े होने पर भी ऐसा हो आपने पहले प्रतिज्ञा की थी कि-हम सब मिलकर लड़ेंगे॥१९-२०॥फिर, अब शत्रुओंको अपनी ओरके योधाओंको मारते देखकर कैसे सहन कर रहे हो, दुर्योधनने उत्तर दिया कि-मेरे रोकने पर भी ये मेरे कथनको न मान कर पाण्डवोंकी फौजमें घुस कर उनसे पिट रहे हैं ? शकुनिने कहा कि-क्रोधमें भरे वीर सैनिक रणमें स्वामी की आज्ञा नहीं मानते हैं अतः इनके ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिये यह समय लापरवाही करनेका नहीं है, हेराजन् ! अतः महाधनुर्धर मद्रराजके अनुचरोंकी रक्षा करनेके लिए हम सब हाथी, रथ और घोड़ोंको ले इकट्ठे होकर चलें और बड़ा भारी यत्न करके एक दूसरेकी रक्षा करें ॥ २१-२४ ॥ ऐसा विचार कर योधा तहां पर दौड़ गए, सञ्जयने कहा कि-हे भारत ! शकुनिके ऐसा कहने पर राजा दुर्योधन बड़ी भारी सेनाको साथ ले सिंहनाद कर पृथ्वीको कँपाता हुआ पाण्डवोंकी ओर चलदिया

गुल्ममास्थाय मध्यमम् । ते मुहूर्त्ताद्रणे वीरा हस्ताहस्ति विशांपते
॥ २८ ॥ निहताः मत्यदृश्यन्त मद्रराजपदानुगाः । ततो नः सम्प्र-
यातानों हतमद्रास्तरस्विनः ॥२९॥ हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन्
सहिताः परे । अथोत्थितोनि रुण्डानि समदृश्यन्त सर्वशः ॥३०॥
पपात महती चोल्का मध्ये चादित्यमंडलात् । रथैर्भग्नैर्युगाक्षैश्च
निहतैश्च महारथैः ॥ ३१ ॥ अश्वैर्निपतितैश्चैव संछन्नाभूद्वसु-
न्धरा । वातायमानैस्तुरगैर्युगासक्तैस्ततस्ततः ॥ ३२ ॥ अदृश्यन्त
महाराज योधास्तत्र रणाजिरे। भग्नचक्रान् रथान् केचिदवहंस्तुरगा
रणे ॥ ३३॥ रथार्द्धं केचिदादाय दिशो दश विबभ्रमुः । तत्र तत्र
व्यदृश्यन्त योक्त्रैः क्लिष्टा स्म वाजिनः ॥३४॥ रथिनः पतमा-

उस समय तुम्हारी सेनामें मारो, घायल करो, पकड़ लो, पीट डालो और काट डालो का तुमुल शब्द होने लगा। दूसरी ओर पाण्डव मद्रराजके सैनिकोंको इकट्ठे होकर लड़नेको आते देख मध्यमाकार व्यूह बना कर खड़े होगए हे राजन्! मुहूर्त भरमें ही वे मद्रराजके अनुचर हस्ताहस्ती युद्ध कर मरे हुए दिखाई देने लगे, हम पहुंचने भी न पाए थे कि— शत्रु इकट्ठे हो मद्रराजके सैनिकों को मारकर हर्षमें भर किल किल शब्द करने लगे, उस समय चारों ओर धड़ उठते हुए दीखते थे ॥ २५—३० ॥ और रणमें सूर्य मण्डलमेंसे जलती हुईं उल्का गिरने लगीं, टूटे हुए रथ जुए, मरे हुए महारथी और गिरे हुए घोड़ोंसे पृथ्वी पट गई, हे महाराज! योधा पवनकी समान दौड़ते हुए घोड़ोंके जुएमें हिलभ कर खिचड़ते हुए दीख रहे थे, बहुतसे घोड़े टूटे हुए पहियों का ही लेकर भाग रहे थे ॥ ३१—३२ ॥ बहुतसे टूटे हुए पहिये वाले रथमें बैठे योधाओंको ले घोडे भाग रहे थे॥३३॥कोई घोड़े टूटे हुए आधे रथको लेकर ही दशों दिशाओंमें भाग रहे थे, कहीं रासोंको ही लिए घोडे भाग रहे थे ॥ ३४ ॥ पुण्यक्षय होने

नाश्च व्यदृश्यन्त नरोत्तमाः। गगनात् प्रच्युताः सिद्धाः पुण्यानामिव संक्षये ॥ ३५ ॥ निहतेषु च शूरेषु मद्रराजानुगेषु वै। अस्मानापततश्चैव दृष्ट्वा पार्था महारथाः ॥ ३६ ॥ अभ्यवर्त्तन्त वेगेन जयगृद्धाः प्रहारिणः। बाणशब्दरवांश्चैव विमिश्रान् शंखनिःस्वनैः ३७ अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्ष्याः प्रहारिणः।शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादान् प्रचुक्रुशुः ॥ ३८ ॥ ततो हतमभिप्रेक्ष्य मद्रराजबलं महत्। मद्रराजञ्च समरे दृष्ट्वा शूरं निपातितम् ३९ दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम् ॥ वध्यमानं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः। दिशो भेजेऽथ सम्भ्रान्तं त्रासितं दृढधन्विभिः ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि दुर्योधनसैन्यापयानेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सञ्जय उवाच। पतिते युधि दुर्द्धर्षे मद्रराजे महारथे। तावकास्तव पुत्राश्च प्रायशो विमुखा भवन् ॥ १ ॥ वणिजो नावि भ-

---

पर आकाशसे गिरते हुए सिद्धोंकी समान नरश्रेष्ठ रथी रथमेंसे गिर रहे थे ॥ ३५ ॥ शूर मद्रराजके योधाओंके मारे जाने पर हमको आते देख कर जयकी अभिलाषा वाले आयुधधारी पाण्डव शंखोंकी ध्वनियोंसे मिले बाणोंके शब्द करके वेगपूर्वक हम पर टूट पडे ॥ ३६-३७ ॥ अचूक निशाने वाले पाण्डव फिर हमें सामने पाकर धनुषोंको घुमा सिंहनाद करने लगे ॥ ३८ ॥ उस समय काशीको जीतने वाले और दृढ धनुष वाले पाण्डवों से त्रस्त हुई दुर्योधनकी सब सेना मद्रराजके सेनादल और मद्रराजको मारा गया देखकर फिर भागने लगी ॥ ३९-४० ॥ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! युद्धमें दुर्धर्ष शल्यको जब पाण्डवोंने मारडाला तब तुम्हारे सैनिक और पुत्र अधिकतर विमुख--उदास होगए ॥ १ ॥ अपार समुद्रके पार जाना चाहते

ग्नानां यथागाधेर्णवे प्लवे। अपारे पारमिच्छन्तो हते शूरे महात्मना।
मद्रराजे महाराज वित्रस्ताः शरविक्षताः ॥ २ ॥ अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहार्दिता इव। वृषा यथा भग्नशृंगा शीर्णदन्ता गजा इव॥ ३ ॥ मध्यान्हे प्रत्यपायाम निर्ज्जिता जातशत्रुणा। न सन्धातुमनीकानि न च राजन् पराक्रमे ॥ ४ ॥ आसीद्ध बुद्धिर्हते शल्ये तव योधस्य कस्यचित्। भीष्मे द्रोणे च निहते सूतपुत्रे च भारत ॥ ५ ॥ यद् दुःखं तव योधानां भयञ्चासीद्विशांपते। तद्भयं स च नः शोको भूय एवाभ्यवर्त्तत॥ ६ ॥ निराशाश्च जये तस्मिंन् हते शल्ये महारथे। हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ताश्च शितैः शरैः ॥ ६ ॥ मद्रराजे हते राजन् योधास्ते प्राद्रवन् भयात्। अश्वानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः॥ ८ ॥ आरुह्य जवसम्पन्नाः पदाताः प्राद्रवन् भयात्। द्विसाहस्राश्च मातङ्गा गिरिरूपाः

वाले वनिये बीच समुद्रमें नाव टूटने पर जैसे पार जानेके लिए नावको खोजते हैं तैसे ही शल्यके मारे जाने पर डरे हुए घायल कौरव, सिंहोंसे घबड़ाए हुए मृगोंकी समान, दांत टूटने पर हाथियोंकी समान, और सींग टूटनेपर बैलोंकी समान, अनाथ हो युधिष्ठिर से हार कर सेनापतिकी इच्छा करते हुए मध्यान्हके समय रणमें से भाग चले, हे राजन्! शल्यके मारे जाने पर किसी योधाकी भी फौजोंको इकट्ठा करने या स्वयं पराक्रम करने की हिम्मत नहीं पडी, हे भरतवंशी राजन्! भीष्म, द्रोण और कर्ण के मारे जाने पर जो दुःख और भय तुम्हारे सैनिकोंको हुआ था वह ही दुःख हमको (शल्यके मरने पर) फिर हुआ २—६ महारथी शल्यके मारे जाने पर तीक्ष्ण शस्त्रोंसे घायल हुए पिटे हुए और मरे हुए योधाओंको जीतनेकी आशा न रही ॥ ७ ॥ हे राजन्! मद्रराज शल्यके मारे जाने पर तुम्हारे योधा डरके मारे भागने लगे कोई घोडों पर चढ़कर, कोई हाथी पर कोई रथोंमें बैठकर तथा कोई पैदल ही वेगसे भागने लगे, पर्वता-

प्रहारिणः ॥ ६ ॥ संप्राद्रवन् हते शल्ये अंकुशांगुष्ठचोदिताः । ते रणाद्भरतश्रेष्ठ तावकाः प्राद्रवन् दिशः ॥ १० ॥ धावन्तश्चाप्यपश्याम श्वसमानान् शराहतान् । तान् प्रभग्नान् द्रुतान् दृष्ट्वा हतोत्साहान् पराजितान् ॥ ११ ॥ अभ्यद्रवन्त पञ्चालाः पाण्डवाश्च जयैषिणः । बाणशब्दरवाश्चापि सिंहनादाश्च पुष्कलाः ॥ १२ ॥ शंखशब्दश्च शूराणां दारुणः समपद्यत । दृष्ट्वा तु कौरवं सैन्यं भयत्रस्तं प्रविद्रुतम् ॥ १३ ॥ अन्योन्यं समभाषन्त पाञ्चालाः पाण्डवैः सह । अद्य राजा सत्यधृतिर्जिजतामित्रो युधिष्ठिरः ॥ १४॥ अद्य दुर्योधनो हीनो दीप्तायाः नृपतिश्रिया । अद्य श्रुत्वा हतं पुत्रं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ॥ १५ ॥ विह्वलः पतितो भूमौ किल्विषं प्रतिपद्यताम् । अद्य जानातु कौन्तेयं समर्थं सर्वधन्विनाम् ॥ १६ ॥ अद्यात्मानञ्च दुर्मेधा गर्हयिष्यति पापकृत् । अद्य क्षत्तुर्वचः सत्यं

कार दो सहस्र हाथी महावतोंके अंकुश अँगूठोंसे ताड़ित हो भागने लगे हे राजन् ! शल्यके मारे जाने पर तुम्हारी सेना दशों दिशाओंमेंको भागने लगी ॥ ८–१० ॥ उनको हतोत्साह हो छिन्न भिन्न हो भागते हुए देख कर जय चाहने वाले पाण्डव और पाञ्चालोंने उनके ऊपर धावा किया, तुम्हारे सैनिक भागते हुएभी साँस खैंचते हुए दीखते थे उस समय शूर पाण्डव पांञ्चालोंने बाणोंका शब्द किया और सिंह की समान गरजने लगे वह शब्द हारे हुए कौरवोंको बड़ा दारुण लगा, पाञ्चाल और पाण्डव कौरवोंकी सेनाको भयभीत होकर भागती हुई देख कर आपसमें कहने लगे कि—आज सत्य धैर्यसम्पन्न राजा युधिष्ठिर शत्रुरहित होगए ॥ ११–१४॥ प्रदीप्त राज्यलक्ष्मीसे दुर्योधन आज भ्रष्ट होगया, आज धृतराष्ट्र पुत्रको मारागया सुनकर विह्वल हो भूमिमें गिर कर दुःख भोगेंगे आज पापकर्म करने वाला दुर्बुद्धि धृतराष्ट्र अपनी निन्दा करेगा और अर्जुनको सकल धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ समझेगा और आज ही धृतराष्ट्र

स्मरतां ब्रुवतो हितम् ॥ अद्य प्रभृति पार्थश्च प्रेष्यभूय उपाचरन्।
विज्ञानातु नृपो दुःखं यत् मासं पाण्डुनन्दनैः ॥ १८ ॥ अद्य कृ-
ष्णस्य माहात्म्यं जानातु स महीपतिः। अद्यार्जुनधनुर्घोषं
घोरं जानातु संयुगे ॥१६॥ अस्त्राणाञ्च बलं सर्वं बाह्वोश्च बल-
माहवे। अद्य ज्ञास्यति भीमस्य बलं घोरं महात्मनः ॥ २० ॥ हते
दुर्योधने युद्धे शक्रेणेवासुरे बले। यत् कृतं भीमसेनेन दुःशासनवधे
च यत् २१ नान्यः कर्तास्ति लोकेऽस्मिन्नृते भीमं महाबलम्। जानी-
तामद्य ज्येष्ठस्य पाण्डवस्य पराक्रमम् ॥ २१ ॥ मद्रराजं हतं श्रुत्वा
देवैरपि दुरासदम्। अद्य ज्ञास्यति संग्रामे माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ
॥ २२ ॥ निहते सौबले शूरे गान्धारेषु च सर्वशः। कथं तेषां
जयो न स्याद्येषां योधा धनञ्जयः ॥ २४ ॥ सात्यकिर्भीम-
सेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः। द्रौपदीतनयाः पञ्च माद्रीपुत्रौ च

विदुरके सत्य और हितकारी वचनोंका स्मरण करेगा ।१५-१७।
आजसे धृतराष्ट्र एक सेवककी समान रह कर पाण्डवोंने जो दुःख
भोगा है उसका अनुभव करेगा ॥ १८ ॥ आज राजा कृष्णके
माहात्म्यको समझेगा, अर्जुनके धनुषकी भयंकर ध्वनिको भी जा-
नेगा और उसके अस्त्रोंके बल तथा भुजाओंके बलका भी उसको
परिचय मिलेगा और आज ही वह महात्मा भीमके घोर बलको
जानेगा ॥१६-२०॥ इन्द्र जैसे असुरोंकी सेनाका नाश करें तैसे
युद्धमें दुर्योधनका नाश होनेपर धृतराष्ट्र भीमके बलको जानेगा
दुःशासनको मारनेके समय भीमने जैसा कर्म किया तैसा कर्म
इस लोकमें भीमके सिवाय औरकोई नहीं कर सकता आज देवता
ओंको भी दुःसह शल्यको मराहुआ सुन धृतराष्ट्र पाण्डवोंमें बड़े
युधिष्ठिरके पराक्रमको समझेगा आज युद्धमें वीरोंमें इकड़ शकुनिके
मारेजाने पर धृतराष्ट्र नकुल सहदेवको रणमें दुःसह समझेगा जिन
का योधा धनञ्जय है तथा सात्यकि, भीमसेन, पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्न
द्रौपदीके पांच पुत्र, सहदेव, नकुल, शिखण्डी, और महाधनुर्धर

पाण्डवौ ॥ २५ ॥ शिखण्डी च महेष्वासो राजा चैव युधिष्ठिरः। येषाञ्च जगतो नाथः नाथः कृष्णो जनार्दनः ॥ २६ ॥ कथं तेषां जयो न स्याद्येषां धर्मो व्यापाश्रयः । भीष्मं द्रोणञ्च कर्णञ्च मद्रराजानमेव च ॥ २७ ॥ अथान्यान्नृपतीन् सर्वान् शतशोथ सहस्रशः । कोन्यः शक्तो रणे जेतुमृते पार्थात् युधिष्ठिरात् ॥ २८ ॥ यस्य नाथो हृषीकेशः सदा धर्मयशोनिधिः । इत्येवं वदमानास्ते हर्षेण महता वृताः ॥ २९ ॥ प्रणुन्नांस्तावकान् युद्धे सृञ्जयाः पृष्ठतोन्वयुः । धनञ्जयो रथानीकमभ्यवर्त्तत वीर्य्यवान् ॥ ३० ॥ माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महारथः । तान् प्रेच्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान् ॥ ३१ ॥ दुर्य्योधनस्तदा सूतमब्रवीद्विस्मयन्निव । मामतिक्रमते पार्थो धनुष्पाणिरवस्थितम् ॥ ३२ ॥ जघने सर्वसैन्यानां ममाश्वान् प्रतिपादय । जघने वर्त्तमानं हि कौन्तेयो मां धनञ्जयः ॥ ३३ ॥ नोत्सहेदभ्यतिक्रान्तुं वेलामिव

राजा युधिष्ठिर से जिनके योधा हैं, उनकी जय क्यों न हो जगत् के नाथ जनार्दन श्रीकृष्ण जिनके रक्षक हैं और जो धर्म पर हैं उनकी जय कैसे न होगी, भीष्म, द्रोण, कर्ण, और शल्य तथा दूसरे सैंकड़ों और सहस्रों वीर नृपतियोंको राजा युधिष्ठिरके सिवाय रणमें और कौन जीत सकता है ॥ २१-२८ ॥ सत्य और यशके खजाने श्रीकृष्ण पांडवोंके रक्षक हैं इसप्रकार बात चीत करते हुए वे प्रसन्न होकर भग्न हुए कौरवोंके पीछे दौडे पराक्रमी अर्जुनने रथसेना पर चढ़ाईकी ॥ २९-३० ॥ नकुल सहदेव और महारथी सात्यकीने शकुनि पर चढ़ाई की राजा दुर्योधन भीमसेनके भयसे सैनिकोंको भागतेहुए देखकर अर्जुनके सम्बन्धमें सारथिसे कहनेलगाकि—हाथमें धनुष लेकर खड़ेहुए भी मुझे अर्जुन जीतना चाहता है अतः तू सब सेनाओंके पीछे घोड़ोंको लेचल, मैं सकल सेनाओंके पिछले भागमें रहूंगा तो अर्जुन, जैसे समुद्र किनारेको नहीं लाँघ सकता तैसे ही मेरा

महोदधिः । पश्य सैन्यं महत् सूत पाण्डवैः समभिद्रुतम् ॥ ३४ ॥ सैन्यरेणुं समुद्धूतं पश्यस्वैनं समन्ततः । सिंहनादांश्च बहुशः शृणु घोरान्महाभयान् ॥ ३५ ॥ तस्माद्याहि शनैः सूत जघनं परिपालयन् । मयि स्थिते च समरे निरुद्धेषु च पांडुषु ॥ ३६ ॥ पुनरावर्तते सूत मामकं बलमोजसा । तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्य शूरार्य्यसदृशं वचः ॥ ३७ ॥ सारथिर्हेमसंछन्नान् शनैरश्वानचोदयत् । गजाश्वरथिभिर्हीनास्त्यक्तात्मानः पदातयः ॥ ३८ ॥ एकविंशतिसाहस्रा संयुगायावतस्थिरे । नानादेशसमुद्भूता नानानगरवासिनः ॥ ३९ ॥ व्यवस्थितास्तदा योधाः प्रार्थयन्तो महद्यशः । तेषामापततां तत्र संहृष्टानां परस्परम् ॥४० ॥ संमर्दः सुमहान् जज्ञे घोररूपो भयानकः । भीमसेनस्तदा राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥४१॥ बलेन चतुरङ्गेन नानादेश्यानवारयत् । भीममेवाभ्यवर्त्तन्त रणेऽन्ये

किसी प्रकारभी पराजय नहीं कर सकेगा, हे सूत! पाँडवोंसे भगाई जाती हुई बडी भारी सेनाकी ओर देख ॥ ३१–३४ ॥ चारों ओर से सेनासे उड़ती हुई धूलको देख और डरानेवाले बहुतसे सिंहनादोंको भी सुन॥३५॥ इसलिए हे सूत! सेनाके पिछले भाग की रक्षा करताहुआ, शनैः२ रथको हांक, मेरे समरमें खड़े होजाने से जब पाण्डव आगे बढ़जानेसे रुकजावेंगे तब हमारी सेना फिर शीघ्र ही लौटआवेगी तुम्हारे पुत्रके शूर और श्रेष्ठ पुरुषोंके योग्य वचनको सुनकर सारथी सुवर्णसे ढकेहुए घोड़ोंको धीरे २ हांकने लगा उसी समय हाथी घोड़े और रथोंसे शून्य इक्कीससहस्र योधा प्राणोंका मोह छोड़ पैदल ही युद्धस्थलमें युद्धके लिए आडटे, नाना देशोंमें उत्पन्न हुए और नाना देशोंमें रहने वाले वे बड़ा भारी यश पानेकी इच्छासे तहां आकर डटगए हर्षमें भर कर इकट्ठे हो धावा करनेवाले उनमें और पांडवोंमें बड़ी भयंकर टक्कर हुई हे राजन्! उस समय भीमसेन और धृष्टद्युम्न चतुरङ्गिनी सेनासे अनेक देशवासी उन वीरोंको हटाने लगे, दूसरे पैदल भीमसेनसे ही

तु पद्मातयः ॥ ४२ ॥ मच्वेडास्फोटसंहृष्टा वीरलोकं यियासवः । आसाद्य भीमसेनन्तु संरब्धा युद्धदुर्मदाः ॥४३॥ धार्त्तराष्ट्रा विने-दुर्हि नान्यां वै कथयन् कथाम् । परिवार्य्य रणे भीमं निजघ्नुस्ते समन्ततः ॥ ४४ ॥ स वध्यमानः समरे पद्मातिगणसंवृतः । न च-चाल ततः स्थानान्मैनाक इव पर्वतः ॥ ४५ ॥ ते तु क्रुद्धा महा-राज पांडवानां महारथम् । निगृहीतुं प्रचक्रुर्हि योधांश्चान्यानवा-रयन् ॥ ४६ ॥ अक्रुध्यत रणे भीमस्तैः रथैः पर्य्युपस्थितैः । सो-ऽवतीर्य्य रथात्तूर्णं पदातिः समुपस्थितः ॥ ४७ ॥ जातरूपपरि-च्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम् । अवधीत्तावकान् योधान् दंडपाणि-रिवान्तकः ४८ रथाश्वद्विपहीनांस्तु तान् भीमो गदया बली । एक-विंशतिसाहस्रान् पदातीनवपोथयत्४९ हत्वा तत् पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः । धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य नचिरात् प्रत्यदृश्यत ॥ ५० ॥

अड़ पड़े ३९-४२ शूरवीरोंके लोकमें जानेकी इच्छा वाले युद्धमें मदमत्त, क्रोधमें भरे कौरव पक्षके योधा सिंहनाद करने लगे तालियें बजाने लगे और खमे ठोकने लगे और बडे भारी हर्षमें भर और किसी बातको न कर गर्जने लगे, वे रणमें भीमको चारों ओरसे घेर प्रहार करने लगे, युद्धमें पैदलोंसे चारों ओरसे घिराहुआ भीमसेन चारों ओरसे उनसे पिटता हुआ भी मैनाक पर्वतकी समान अचल खड़ा रहा ॥ ४३-४५ ॥ वे क्रोधमें भर कर पाण्डवोंके महारथी भीमको पकड़नेका यत्न करने लगे, तथा पाण्डवोंके अन्य योधा-ओंको दूरको धकेलने लगे ॥ ४६ तब उनके बीचमें घिरा हुआ भीमसेन क्रोधमें भरकर रथमें से कूद पड़ा और पैदल ही खड़ा होगया ॥ ४७ ॥ और सुवर्णसे मढ़ी हुई गदाको हाथमें ले, दण्ड-धारी यमकी समान तुम्हारे योधाओंको मारने लगा ॥ ४८ ॥ उस पुरुषश्रेष्ठने घोड़े और रथोंसे हीन तुम्हारे इक्कीस सहस्र योधाओंको मार डाला ॥ ४९ ॥ उस पुरुषसेनाको मार सत्य-पराक्रमी भीम बहुत शीघ्र ही धृष्टद्युम्नके साथमें दीखने लगा ५०

पादाता निहता भूमौ शिश्यिरे रुधिरोक्षिताः । संभग्ना इव वातेन कर्णिकाराः सुपुष्पिताः ॥ ५१ ॥ नानापुष्पस्रजोपेता नानाकुंडलधारिणः । नानाजात्या हतास्तत्र नानादेशसमागताः ॥ ५२ ॥ पताकाध्वजसंछन्नं पदातीनां महद्बलम् । निकृत्तं विबभौ रौद्रं घोररूपं भयानकम् ॥ ५३ ॥ युधिष्ठिरपुरोगास्तु सहसैन्या महारथाः। अभ्यधावन् महात्मानं पुत्रं दुर्योधनं तव ॥ ५४ ॥ ते सर्वे तावकान् दृष्ट्वा महेष्वासान् परांमुखान् । नाभ्यवर्त्तन्त ते पुत्रं वेलेव मकरालयम् ॥ ५५ ॥ तदद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् । यदेकं सहिताः पार्था न शेकुरतिवर्त्तितुम् ॥ ५६ ॥ नातिदूरापयातन्तु कृतबुद्धिं पलायने । दुर्योधनः स्वकं सैन्यमब्रवीद्भृशविक्षतम्५७ न तं देशं प्रपश्यामि पृथिव्यां पर्वतेषु वा । यत्र यातान्न वो हन्युः पाण्डवाः किं सृतेन वः ॥ ५८ ॥ अल्पञ्च बलमेतेषां कृष्णौ

रुधिरसे लथड़ पथड़ हो भूमिमें पड़े हुए वे योधा आंधीसे तोड़े हुए खिले हुए फूलों वाले कनेरके वृक्षों से प्रतीत होते थे ५१ अनेक अस्त्रों वाले भिन्न २ देशोंसे आए हुए अनेक प्रकारके कुण्डलधारी नाना जातिके पुरुष तहां मारे गए॥ ५२ ॥ पताका और ध्वजाओंसे व्याप्त पैदलोंकी बडीभारी सेना कटनेके बाद घोर और भयानक दीखने लगी ॥५३॥ तुम्हारे महाधनुर्धर सैनिकोंको भागते देख युधिष्ठिर आदि महारथी तुम्हारे पुत्र पर टूटपड़े, परन्तु किनारा जैसे समुद्रको न लांघसके तैसे तुम्हारे पुत्रके पास न पहुंच सके ५४-५५ हमने उस समय तुम्हारे पुत्रका अद्भुत पराक्रम देखा कि पांडव सब मिलकर भी उस अकेले को न दबा सके ॥ ५६ ॥ उस समय दुर्योधन बहुत दूर न गई हुई भागने का विचार करती हुई घायल हुई अपनी सेनासे कहने लगा ॥५७॥ कि—अरे ! भागनेसे क्या है ? मुझे पृथिवी या पर्वतों पर कहीं भी ऐसा स्थान नहीं दीखता कि—जहाँ जाने पर तुम्हें पाण्डव मार न सके ॥ ५८ ॥ और इनकी सेना भी बहुत थोड़ी रहगई है

च भृशविक्षतौ। यदि सर्वेऽत्र तिष्ठामो ध्रुवं नो विजयो भवेत् ५६
विप्रयातांस्तु वो भिन्नान् पाण्डवाः कृतकिल्बिषाः। अनुसृत्य
हनिष्यन्ति श्रेयो नः समरे वधः॥ ६०॥ शृणुध्वं क्षत्रियाः
सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः। यदा शूरञ्च भीरुञ्च मारयन्तकः
सदा॥ ६१॥ को नु मूढ़ो न युध्येत पुरुषः क्षत्रियब्रुवः। श्रेयो
नो भीमसेनस्य क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थितम्॥६२॥ सुखः सांग्रामिको
मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम्। मर्त्येनावश्यमर्तव्यं गृहेष्वपि कदा-
चन॥ ६३॥ युध्यतः क्षत्रधर्मेण मृत्युरेषः सनातनः। जित्वेह
सुखमाप्नोति हतः प्रेत्य महाफलम्॥ ६४॥ न युद्धधर्माच्छ्रेयान्
वै पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः। अचिरेणैव तान् लोकान् हतो युद्धे
समश्नुते॥ ६५॥ श्रुत्वा तु वचनं तस्य पूजयित्वा च पार्थिवाः।

तथा श्रीकृष्ण और अर्जुन भी बहुत घायल होगये हैं, अतः हम सब यहाँ डट जावेगें तो हमारी विजय-अवश्य ही होगी॥ ५६॥ और यदि तुम सेनामें भग्गी डाल भागोगे तो तुमने जिनकी बुराई की है वे पाण्डव तुम्हें पीछे पड़कर मार डालेंगे, इससे तो युद्धमें युद्ध करके मरना ही श्रेयस्कर है॥ ६०॥ यहाँ आए हुए सब क्षत्रियों सुनो, जब यमराज डरपोक और शूर किसीको नहीं छोड़ता॥ ६१॥ फिर क्षत्रिय होकर ऐसा कौन मूढ़ होगा जो न लड़े, इसलिये भीमसेनके सामने खड़े हो क्षत्र-धर्मसे युद्ध करते हुए ही हमारा मरना अच्छा है, घरमें रह कर प्राणीको अवश्य ही मरना पड़ेगा॥ ६२–६३॥ क्षत्रियका लड़ते हुए मरना सनातनधर्म है, युद्धमें मरकर परलोकमें (स्वर्ग) को पाता है और यदि शत्रुओंको मार डालता है तो यहाँ सुख पाता है॥ ६४॥ अरे कौरवों! युद्धसे श्रेष्ठ स्वर्गका दूसरा मार्ग नहीं है युद्धमें मारा जाकर शीघ्र ही उन (उत्तम) लोकोंको पाता है॥ ६५॥ दुर्योधनके वचन सुन कर राजाओंने उसकी प्रशंसा

पुनरेवाभ्यवर्त्तन्त पाण्डवानाततायिनः ॥ ६६ ॥ तानापतत एवाशु व्यूढानीकाः प्रहारिणः । प्रत्युद्ययुरुदात्ताः पार्था जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥ ६७ ॥ धनञ्जयो रथेनाजावभ्यवर्त्तत वीर्यवान् । विश्रुतं त्रिषु लोकेषु गाण्डीवं व्याक्षिपन्धनुः ॥ ६८ ॥ माद्रीपुत्रौ तु शकुनिं सात्यकिश्च महाबलः । जवेनाभ्यपतन् हृष्टा यतो वै तावकं बलम् ॥ ६९ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि

संकुलयुद्धे ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सञ्जय उवाच । सन्निवृत्ते जनौघे तु शाल्वो म्लेच्छगणाधिपः । अभ्यधावत संक्रुद्धः पाण्डूनां सुमहद्बलम् ॥ १ ॥ आस्थाय सुमहानागं प्रभिन्नं पर्वतोपमम् । दृप्तमैरावतप्रख्यममित्रगणमर्दनम् २ योऽसौ महान् भद्रकुले प्रसूतः सुपूजितो धार्त्तराष्ट्रेण नित्यम् । सुकल्पितः शास्त्रविनिश्चयज्ञैः सदोपवाह्यः समरेषु राजन् ॥ ३ ॥

की ओर आततायी पाण्डवोंके ऊपर वे फिर टूट पड़े ॥६६॥ उन को आता देख पाण्डव व्यूहरचनासे खड़े हो जयकी इच्छासे क्रोध में भर उनका सामना करनेको तयार होगये ॥ ६७ ॥ वीर्यवान् अर्जुन रथमें बैठ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध गाण्डीव धनुषको घुमाता हुआ युद्धकी ओर पहुंच गया ॥ ६८ ॥ नकुल और सहदेव शकुनिके सामने चढ़गये तथा महारथी सात्यकि हर्षमें भर तुम्हारी सेना पर टूट पड़ा ॥ ६९ ॥ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥

सञ्जयने कहा कि—सब सेनाओंके भाग जाने पर म्लेच्छोंकी टोलियोंका स्वामी शाल्व क्रोधमें भर शत्रुओंके समूहोंको पीस डालनेवाले पर्वताकार, मद झरते हुए, ऐरावतकी समान घमण्डी बड़े भारी कुलमें उत्पन्न हुए, दुर्योधनसे सर्वदा पूजित, शास्त्रों (हस्तिविद्या) में कुशल पुरुषोंसे चतुर किये हुए, समरमें सदा काममें लाये जाने वाले बड़े भारी हाथी पर बैठ पांडवोंकी बड़ी भारी सेना पर चढ़ आया ॥ १—३ उस हाथी पर बैठा हुआ

तमास्थितो राजवरो बभूव यथोदयस्थः सविता क्षपान्ते । स तेन नागप्रवरेण राजन्नभ्युद्ययौ पाण्डुसुतान् समेतान् । शितैः पृषत्कैर्विददार वेगैः महेन्द्रवज्रप्रतिमैः सुघोरैः ॥ ४ ॥ ततः शरान् वै सृजतो महारणे योधांश्च राजन्नयतो यमालयम् ॥ ५ ॥ नास्यान्तरं ददृशुः स्वे परे वा यथा पुरा वज्रधरस्य दैत्याः । ऐरावणस्थस्य चमूविमर्दे दैत्या पुरा वासवस्येव राजन् ॥ ६ ॥ ते पाण्डवाः सोमकाः सृञ्जयाश्च तमेकनागं ददृशुः समंतात् । सहस्रशो वै विचरन्तमेकं यथा महेन्द्रस्य गजं समीपे ॥ ७ ॥ संद्राव्यमाणन्तु बलं परेषां परीतकल्पं विबभौ समन्ततः । नैवावतस्थे समरे भृशं भयाद्विमृद्यमानन्तु परस्परं तदा ८ ततः प्रभग्ना सहसा महाचमूः सा पाण्डवी तेन नराधिपेन । दिशश्चतस्रः सहसा विधाविता गजेन्द्र-

राजाओंमें श्रेष्ठ शाल्व रात्रि बीतने पर उदयाचल पर स्थित सूर्य की-समान दिपने लगा, हे राजन्! उस श्रेष्ठ हाथी पर बैठ कर वह इकट्ठे हुए पांडवोंके ऊपर झपटा ॥ ४ ॥ और इन्द्रके वज्रकी समान घोर तीक्ष्ण बाणोंसे सैनिकोंको विदारने लगा ॥ ५ ॥ ऐरावत पर स्थित दैत्यों पर बाण बरसाता हुआ इन्द्र जैसे कब बाण लेता है कब छोड़ता है यह दैत्य नहीं जान सके थे, तैसे ही महारणमें बाण बरसाता हुआ शाल्व कब बाण छोड़ता है और कब लेता है यह कौरव या पांडव कोई भी न जान सके ॥ ६ ॥ जैसे देवासुर -युद्धमें घूमते हुए एक ऐरावतके दैत्योंको चारों दिशाओंमें सहस्रों ऐरावत दीखते थे तैसे ही रणमें घूमते हुए उस अकेले हाथीके स्थानमें पांडव, सृञ्जय और सोमकोंको सैंकड़ो हाथी घूमते हुए दीखते थे ॥ ७ ॥ इस प्रकार शाल्वके हाथीने पांडवोंकी सेनाको चारों ओरसे घेर लिया तब वह सेना (डरकर) रणमें खड़ी न हो भागने लगी और एक दूसरे पर गिरने लगी ॥ ८ ॥ उस समय हाथीके वेगको न सहती हुई उस सेनामें शाल्वने भगदड़ डाल दी, तब वह महासेना चारों दि-

वेगं तमपारयन्ती ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा च तां वेगवतीं प्रभग्नां सर्वे त्व-
दीया युधि योधमुख्याः । सम्पूजयन्तश्च नराधिपं ते शंखान्
प्रदध्मुः शशिसन्निकाशान् ॥ १० ॥ श्रुत्वा निनादं त्वथ कौरवा-
णां हर्षाद्विमुक्तं सह शंखशब्दैः । सेनापतिः पाण्डवसृञ्जयानां
पञ्चालपुत्रो ममृषे न कोपात् ॥११॥ ततस्तु तं वै द्विरदं महात्मा
प्रत्युद्ययौ त्वरमाणो जयाय । जंभो यथा शक्रसमागमे वै नागेन्द्रमैराव-
णमिन्द्रवाह्यम् ॥ १२ ॥ तमापतन्तं सहसा तु दृष्ट्वा पञ्चालराजं
युधि राजसिंहः । तं वै द्विपं प्रेषयामास तूर्णं वधाय राजन् द्रुपदा-
त्मजस्य ॥ १३ ॥ स तं द्विपेंद्रं सहसाभ्यापतन्तमविध्यदग्निप्रतिमैः
पृषत्कैः । कर्मारधौतैर्निशितैर्ज्वलद्भिर्नाराचमुख्यैस्त्रिभिरुग्रवेगैः १४
ततोऽपरान् पञ्च शतान् महात्मा नाराचमुख्यान् विससर्ज कुम्भे।
स तैस्तु विद्धः परमद्विपो रणे तदा परावृत्य भृशं प्रदुद्रवे ॥ १५॥

शाल्वोंमेंको सहस्रों टूक हो भागने लगी ॥ ९ ॥ उस वेगवती सेना
को भागती देख तुम्हारे सेनाओंके मुख्य २ योधा रणमें उस
राजाकी प्रशंसा करने लगे और चन्द्रमाकी समान श्वेत शंखोंको
बजाने लगे१०शंखोंके बजाना हर्षनाद करतेहुए कौरवोंकी गर्जनाको
पांडव, सृञ्जय और सोमकोंका सेनापति धृष्टद्युम्न क्रोधके कारण
सह न सका ॥११॥ जैसे जम्भासुर युद्धमें इन्द्रके हाथी ऐरावत पर
दौड़ा था, तैसे ही महात्मा धृष्टद्युम्न भी उसके हाथी पर झपटा
॥ १२ ॥ हे राजन् ! राजसिंह शाल्वने धृष्टद्युम्नको झपटते देख
उसको मारनेके लिये अपने हाथीको उसके ऊपर दौड़ाया ॥१३॥
धृष्टद्युम्नने हाथीको सहसा अपने ऊपर झपटता देख कारीगरों
से घिस कर स्वेत किये हुए, तीक्ष्ण, चमकीले भयंकर वेगवाले
अग्निकी समान तीन बाण उसके मारे ॥ १४ ॥ फिर महात्मा
धृष्टद्युम्नने उस हाथीके मस्तकमें पांचसौ बाण मारे, वह बड़ा
भारी हाथी उन बाणोंके लगते ही लौट कर भागा ॥ १५ ॥

तं नागराजं सहसा प्रणुन्नं विद्राव्यमाणं विनिवर्त्य शाल्वः। तोत्रांकुशैः प्रेषयामास तूर्णं पंचालराजस्य रथं प्रदिश्य ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा पतन्तं सहसा तु नागं धृष्टद्युम्नः स्वरथाच्छीघ्रमेव । गदां प्रगृह्योग्रजवेन वीरो भूमिं प्रपन्नो भयविह्वलाङ्गः ॥ १७ ॥ स तं रथं हेमविभूषिताङ्गं साश्वं ससूतं सहसा विगृह्य । उत्क्षिप्य हस्तेन महाद्विपो नदन्विपोथयामास वसुन्धरातले ॥ १८ ॥ पञ्चालराजस्य सुतं च दृष्ट्वा तदार्दितं नागवरेण तेन । तमन्वधावत् सहसा जवेन भीमः शिखण्डी च शिनेश्च नप्ता ॥ १९ ॥ शरैश्च वेगं सहसा निगृह्य तस्याभितो ह्यापततो गजस्य । स संगृहीतो रथिभिर्गजो वै चचाल तैर्वार्यमाणश्च संख्ये ॥ २० ॥ ततः पृषत्कान् प्रववर्ष राजा सूर्यो यथा रश्मिजालं समन्तात् । तैराशुगैर्वध्यमाना रथौघाः प्रदुद्रुवुस्सहितास्तत्र तत्र ॥ २१ ॥ तत् कर्म शाल्व-

घायल हो सहसा भागते हुए उस नागराजको शाल्यने अंकुशों से मारकर लौटाया और धृष्टद्युम्नके रथकी ओर दौड़ाया ॥१६॥ उस नागको एकाएकी आते देख धृष्टद्युम्न भयसे विह्वल होगया और वह वीर गदाको पकड़ वेगसे रथमेंसे कूद पड़ा ॥ १७ ॥ तब उस हाथीने सुवर्णसे भूषित धृष्टद्युम्नके रथको घोड़ों और सारथी सहित मसल कर सूँडसे पकड़ ऊपरको उठा पृथ्वीपर फैंक दिया ॥ १८ ॥ धृष्टद्युम्नको उस हाथीसे पीड़ित देखकर भीम, शिखंडी और सात्यकि एक दम बड़े वेगसे दौड़ उसके पास आगए ॥ १९ ॥ और बाण मार कर चारों ओर घूमते हुए उस हाथीके वेगको रोक दिया उन महारथियोंने बाण बरसाकर हाथी को रोका फिर भी वह हाथी रणमें घूमता रहा ॥ २० ॥ उस समय सूर्य जैसे किरणोंको फैलाये तैसे ही वह राजा शल्य बाण बरसाने लगा, तब उसके बाणोंसे घायल होते हुए रथियोंके समूह इधर उधरको भागने लगे ॥ २१ ॥ हे राजन् ! पञ्चालराज

स्य समीक्ष्य सर्वे पञ्चालपुत्रा नृप सृञ्जयाश्च । हाहाकारैर्नादयन्ति स्म युद्धे द्विपं समन्ताद्रुरुधुर्नराग्रयाः ॥ २२ ॥ पञ्चालराजस्त्वरितस्तु शूरो गदां प्रगृह्याचलशृङ्गतुल्याम् । ससम्भ्रमं भारत शत्रुघाती जवेन वीरोऽनुससार नागम् ॥ २३ ॥ ततस्तु नागं धरणीधराभं मदं स्रवन्तं जलदप्रकाशम् । गदां समाविध्य भृशं जघान पञ्चालराजस्य सुतस्तरस्वी ॥ २४ ॥ स भिन्नकुम्भः सहसा विनद्य मुखात् प्रभूतं क्षतजं विमुञ्चन् । पपात नागो धरणीधराभः क्षितिप्रकम्पाच्चलितो यथाद्रिः ॥ २५ ॥ निपात्यमाने तु तदा गजेन्द्रे हाहाकृते तव पुत्रस्य सैन्ये । स शाल्वराजस्य शिनिप्रवीरो जहार भल्लेन शिरः शितेन ॥ २६ ॥ हृतोत्तमाङ्गो युधि सात्वतेन पपात भूमौ सह नागराज्ञा । यथाद्रिशृङ्गं सहसा प्रणुन्नं वज्रेण देवाधिपचोदितेन ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि

के सकल पुत्र और सृञ्जय शाल्वके ऐसे पराक्रमको देख हाहाकार करने लगे फिर उन धनुर्धरोंमें श्रेष्ठोंने हाथीको घेर लिया ॥ २२ ॥ हे भारत ! उस समय शत्रुघाती वीर धृष्टद्युम्न पर्वतके शिखरकी समान गदाको ले वेगसे उस हाथी पर दौड़ा ॥ २३ ॥ और पर्वतकी समान आभावाले, मद टपकाते हुए मेघकी समान श्यामवर्ण हाथीके बड़े वेगसे फेंककर गदा मारी ॥२४॥ उससे उस हाथीका कुम्भस्थल फट गया और वह चिंघाड़ता हुआ रक्त ओकने लगा, तथा हाले चालेसे जैसे पर्वत गिरे तैसे ही वह पर्वताकार हाथी पृथ्वी पर ढह पड़ा ॥ २५ ॥ उस हाथीको गिरानेके बाद तुम्हारे पुत्रकी सेना हाहाकार कर उठी, उसी समय सात्यकिने तीक्ष्ण भालेसे शाल्वके मस्तकको काट डाला ॥ २६ ॥ सात्यकिके शिर काट लेने पर राजा शाल्व हस्तिराजके साथ इन्द्रके द्वारा वज्रसे काटे हुए पर्वतके बड़े भारी शिखरकी समान भूमि पर गिर पड़ा ॥ २७ ॥ बीसवाँ अ-

शाल्ववधे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

सञ्जय उवाच । तस्मिंस्तु निहते शूरे शाल्वे समितिशोभने । तवाभज्यद्बलं वेगाद्वातेनेव महाद्रुमः ॥ १ ॥ तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कृतवर्मा महारथः । दधार समरे शूरः शत्रुसैन्यं महाबलः ॥ २ ॥ सन्निवृत्तास्तु ते वीरा दृष्ट्वा सात्वतमाहवे । शैलोपमं स्थितं राजन् कीर्यमाणं शरैर्युधि । ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह । निवृत्तानां महाराज मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ ४ ॥ तत्राश्चर्यमभूद्युद्धं सात्वतस्य परैः सह । यदेको वारयामास पाण्डुसेनां दुरासदाम् ॥ ५ ॥ तेषामन्योन्यसुहृदां कृते कर्मणि दुष्करे । सिंहनादः प्रहृष्टानां दिवस्पृक् सुमहानभूत् ॥ ६ ॥ तेन शब्देन वित्रस्तान् पञ्चालान् भरतर्षभ । शिनेर्नप्ता महाबाहुरन्वपद्यत सात्यकिः ॥७॥ स समासाद्य राजानं क्षेमधूर्तिं महाबलम् । सप्तभिर्निशितैर्बाणैरन-

ध्याय समाप्त ॥ २० ॥ ❀ ❀ ❀ ❀

सञ्जयने कहा कि-समरमें शोभा पानेवाले शाल्वके मारेजाने पर तुम्हारी सेना आँधीसे झकझोड़े जाते हुए वृक्षकी समान भागने लगी॥१॥ महारथी कृतवर्माने उस फौजको भागते देख शत्रुसेनाको अकेले ही रोकना आरम्भ कर दिया ॥ २ ॥ हे राजन्! बाणोंसे छिदने पर भी पर्वतकी समान कृतवर्माको अचल खड़ा हुआ देखकर वे शूर योधा लौटने लगे ॥३॥ हे महाराज! उस समय मृत्युका भय त्याग कर लौटे हुए कौरवोंका पांडवोंके साथ युद्ध होने लगा ॥ ४ ॥ उस समय कृतवर्माने अद्भुत रीतिसे युद्ध करा कि-अकेले ही उसने दुरासद पांडवसेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ५ ॥ कृतवर्माके दुष्कर कर्म करने पर एक दूसरेके मित्र कौरवोंने ऐसा सिंहनाद किया कि-वह आकाश तक पहुंचा ॥ ६ ॥ हे भरतर्षभ! उस शब्दसे पञ्चालराजे थर्रा गए यह देख शिनिपुत्र सात्यकि तहां आगया ॥ ७ ॥ और उसने क्षेमधूर्ति राजाके सामने जा सात तीक्ष्ण बाण मार उसको यमलोकमें

यशमसादनम् ॥८॥ तमायान्तं महाबाहुं प्रकिरन्तं शिताञ्छरान्।
जवेनाभ्यपतद्धीमान् हार्दिक्यः शिनिपुङ्गवम् ॥ ९ ॥ तौ सिंहाविव
नर्दन्तौ धन्विनौ रथिनांवरौ । अन्योन्यमभिधावेतां शस्त्रप्रवरधा-
रिणौ ॥ १० ॥ पांडवाः सह पंचालैर्योधाश्चान्ये नृपोत्तम ।
प्रेक्षकाः समपद्यन्त तयोर्घोरे समागमे ॥ ११ ॥ नाराचैर्वत्सदन्तैश्च
वृष्ण्यन्धकमहारथौ । अभिजघ्नतुरन्योन्यं प्रहृष्टाविव कुञ्जरौ १२
चरन्तौ विविधान्मार्गान् हार्दिक्यशिनिपुंगवौ । मुहुरार्दयतामेतौ
बाणवृष्ट्या परस्परम् ॥ १३ ॥ चापवेगबलोद्धूतान्मार्गणान् वृ-
ष्णिसिंहयोः। आकाशे समपश्याम पतंगानिव शीघ्रगान् ॥ १४ ॥
तमेकं सत्यकर्माणमासाद्य हृदिकात्मजः । अविध्यन्निशितैर्बाणैश्चतु-
र्भिश्चतुरो हयान् ॥ १५ ॥ स दीर्घबाहुः संक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव

भेज दिया ॥ ८ ॥ तीक्ष्ण बाणोंको बरसाकर आते हुए सात्यकि
के सामने हार्दिक्य वेगसे दौड़ गया ॥ ९ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ, श्रेष्ठ
शस्त्रोंको धारण करनेवाले महाबली सात्वतवंशी सात्यकि और
कृतवर्मा एक दूसरे के ऊपर चढाई करके युद्ध करने लगे ॥ १० ॥
उन दोनोंकी भयंकर टक्कर होने पर पाण्डव, पाञ्चालराज आदि
योधा दर्शक बन तमाशा देखने लगे ॥ ११ ॥ वृष्णि और अन्धक-
वंशी महारथी हर्षमें भरे हुए हाथियोंकी समान नाराच और वत्स-
दन्त नामक बाणोंसे एक दूसरे को घायल करने लगे ॥ १२ ॥
हार्दिक्य और सात्यकि नाना प्रकारसे बाण बरसा बारम्बार एक
दूसरेको ढकने लगे ॥ १३ ॥ धनुषके वेगसे बलमें भर कर उडते
हुए वृष्णिसिंहोंके बाण आकाश में शीघ्रगामी पक्षियोंकी समान
उडते हुए दीखते थे ॥ १४ ॥ कृतवर्माने सत्य कर्म करने वाले
सात्यकिके पास जा उसको बाणोंसे घायल किया और चार
तीक्ष्ण बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको बींध डाला ॥ १५ ॥ तब
महाभुज सात्यकिने अंकुश से ताड़ित हुए हाथीकी समान क्रुद्ध

द्विपः । अष्टभिः कृतवर्माणमविध्यत् परमेषुभिः ॥ १६ ॥ ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः कृतवर्मा शिलाशितैः । सात्यकिं त्रिभिराहत्य धनुरेकेन चिच्छिदे ॥ १७ ॥ निकृत्तं तद्धनुःश्रेष्ठमपास्य शिनिपुङ्गवः। अन्यदादत्त वेगेन शैनेयः सशरं धनुः ॥ १८ ॥ तदादाय धनुःश्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम् । आरोप्य च महावीर्यो महाबुद्धिर्महाबलः ॥१९॥ अमृष्यमाणो धनुषश्छेदनं कृतवर्मणा । कुपितोऽतिरथः शीघ्रं कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ २० ॥ ततस्तु निशितैर्बाणैर्दशभि शिनिपुंगवः । जघान सूतमश्वांश्च ध्वजञ्च कृतवर्मणः ॥ २१ ॥ ततो राजन् महेष्वासः कृतवर्मा महारथः । हताश्वसूतं संप्रेक्ष्य रथं हेमपरिष्कृतं ॥ २२ ॥ रोषेण महताविष्टः शूलमुद्यम्य मारिष । चिक्षेप भुजवेगेन जिघांसुः शिनिपुङ्गवम् ॥ २३ ॥ तच्छूलं सात्वतो ह्याजौ निर्भिद्य निशितैः शरैः । चूर्णितं पातया-

---

हो आठ बाणों से कृतवर्मा को घायल किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर कृतवर्मा ने शिला पर तेज किए हुए तीन बाणों को कानतक धनुष खेंच सात्यकिके बाण मारे और एक बाणसे उसके धनुष को काट डाला ॥१७॥ शिनिपुंगव सात्यकिने कटेहुए श्रेष्ठ धनुष को फेंककर दूसरे वेगवान् धनुष बाणको उठालिया ॥ १८॥ सब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ सात्यकि उस श्रेष्ठ धनुष को ले उसे खेंच कृतवर्मा के धनुष काटने को सहन न कर क्रोध में भर उस के ऊपर चढ़ गया ॥ १९ ॥ — २० ॥ तदनन्तर सात्यकि ने दश तीक्ष्ण बाणों से कृतवर्मा के सारथी , रथ घोड़े और ध्वजा को काट डाला ॥२१॥ हे राजन् ! तब महारथी धनुर्धर कृतवर्माने सुवर्णसे मढ़े हुए रथके घोड़े और सारथिको मरा हुआ देख बड़े भारी क्रोधमें भर सात्यकि को मारनेकी इच्छासे शूल हाथमें ले बड़े वेगसे मारा ॥२३॥ परन्तु सात्यकिने युद्धमें तीक्ष्ण बाणोंसे उस शूलको काट कृतवर्माको हक्का बक्कासा कर उस शूलको चूरा २

मास मोहयन्निव माधवम् ॥ २४ ॥ ततोऽपरेण भल्लेन हृद्येनं सम-
ताडयत् स युद्धे युयुधानेन हताश्वो हतसारथिः। ॥ २५ ॥ कृतवर्मा
कृतस्तेन धरणीमन्वपद्यत तस्मिन्। रणे सात्यकिना वीरे द्वैरथे वि-
रथीकृते ॥ २६ ॥ समपद्यत सर्वेषां सैन्यानां सुमहद्भयम् । पुत्रस्य
तत्र चात्यर्थं विषादः समपद्यत ॥ २७ ॥ हतसूते हताश्वे तु विरथे
कृतवर्मणि । हताश्वञ्च समालक्ष्य हतसूतमरिन्दम ॥ २८ ॥
अभ्यधावत् कृपो राजन् जिघांसुः शिनिपुङ्गवम्। तञ्चारोप्य रथो-
पस्थे मिपतां सर्वधन्विनाम् ॥ २९ ॥ अपोवाह महाबाहुस्तूर्णमा-
योधनादपि । शैनेयेधिष्ठिते राजन् विरथे कृतवर्म्मणि ॥ ३० ॥
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् परांमुखम् । तत् परे नावबुध्यन्त
सैन्ये तु रजसावृते ॥ ३१ ॥ तावकाः प्रद्रुता राजन् दुर्य्योधनमृते

कर पृथ्वी पर डालदिया ॥२४॥ फिर दूसरा भाला मार कर
उसके हृदयको घायल कर दिया जब सात्यकिने रणमें कृतवर्माके
रथके घोड़े और सारथिको मार डाला तब कृतवर्मा पृथ्वीमें कूद
पड़ा द्वैरथ युद्धमें जब सात्यकिने कृतवर्मा को रथहीन कर दिया
तब सब सेनाओंको बड़ा भय लगने लगा और हे अरिंदमन !
दुर्योधन को भी कृतवर्मा के घोड़े सारथि के मारे जानेसे
रथहीन होजानेके कारण बड़ा विषाद हुआ जिसके घोड़े मारे गए
हैं ऐसे कृतवर्माको देख कृपाचार्य क्रोधमें भर सात्यकिको मार-
नेकी इच्छासे झपटे और सब धनुषधारियोंके सामने ही महाभुज
कृतवर्माको अपने रथमें बैठा शीघ्र ही रण से बाहर ले गए, हे
राजन् ! कृतवर्माके रथहीन होने पर भी सात्यकिको खड़ा देख
दुर्योधन की सकल सेनाने फिर भागना आरंभ कर दिया परन्तु
उस समय धूल उड़ रही थी अतः शत्रु इस बातको न जान सके
॥२५-३१॥ हे राजन! उस समय दुर्योधनके सिवाय और सब युद्ध

नृपम् । दुर्य्योधनस्तु संप्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात् ॥ ३२ ॥ ज-
वेनाभ्यपतत्तूर्णं सर्वांश्चैको न्यवारयत् । पाण्डूंश्च सर्वान् संक्रु-
द्धो धृष्टद्युम्नञ्च पार्षतम् ॥ ३३ ॥ शिखण्डिनं द्रौपदेयान् पंचा-
लानां च ये गणाः । कैकेयान् सोमकांश्चैव सृञ्जयांश्चैव मारिष
॥ ३४ ॥ असम्भ्रमं दुराधर्षः शितैः शस्त्रैरताडयत् । अतिष्ठदाह-
वे यत्नात् पुत्रस्तव महाबलः ॥ ३५ ॥ यथा यज्ञे महानग्निर्मन्त्र-
पूतः प्रकाशवान् । तथा दुर्य्योधनो राजा संग्रामे सर्वतोऽभवत् ३६
तं परे नाभ्यवर्तन्त मर्त्या मृत्युमिवाहवे । अथान्यं रथमास्थाय
हार्दिक्यः समपद्यत ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि संकुलयुद्धे
एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

सञ्जय उवाच । पुत्रस्तु ते महाराज रथस्थो रथिनांवरः । दु-

मेंसे भाग गए, दुर्योधन अपनी सेनामें भग्गी पड़ी देख भागा
नहीं, परन्तु वह अकेला ही तुरन्त पाण्डवोंके ऊपर धावा कर
उनको रोकने लगा, तथा क्रोधमें भर धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदी
के पुत्र पाञ्चाल योधा, केकय राजे, सोमकराजे और सृञ्जय
राजाओंको जरा घबड़ाए बिना तीक्ष्ण किए हुए बाणोंसे मारने
लगा, इस प्रकार तुम्हारा बली पुत्र दुर्योधन तयार हो रण-
भूमिमें खड़ा होगया ॥ ३२-३५ ॥ मंत्रोंसे पवित्र हुआ पूज्य
अग्नि जैसे यज्ञमें प्रकाशित हो तैसे ही दुर्योधन रणमें खड़ा हो
चारों ओर प्रकाश फैलाने लगा ॥ ३६ ॥ और मनुष्य जैसे
मृत्युके सामने न जा सके, तैसे ही उस समय युद्धमें शत्रु दुर्यो-
धनके सामने चढ़ाई न कर सके कुछ देर बाद कृतवर्मा दूसरे रथ
में बैठ रणमें युद्ध करनेके लिए आ डटा ॥ ३७ ॥ इक्कीसवां
अध्याय समाप्त॥ २१ ॥ * ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा कि—हे धृतराष्ट्र ! रथमें बैठा हुआ रथियोंमें

रुत्साहो रणे युद्धे यथा रुद्रः प्रतापवान् ॥ १ ॥ तस्य बाणसहस्रै-
स्तु प्रच्छन्ना ह्यभवन्मही । परांश्च सिषिचे बाणैर्धाराभिरिव पर्व-
तान् ॥ २ ॥ न च सोऽस्ति पुमान् कश्चित् पाण्डवानां महाहवे ।
हयो गजो रथो वापि यः स्याद्बाणैरविक्षतः ॥३॥ यं यं हि समरे
योधं प्रपश्यामि विशाम्पते । स तु बाणैश्चितोऽभूद्वै पुत्रेण तव भारत
॥ ४ ॥ यथा सैन्येन रजसा समुद्धूतेन वाहिनी । प्रत्यदृश्यत सं-
छन्ना तथा बाणैर्महात्मनः ॥ ५ ॥ बाणभूतामपश्याम पृथिवीं
पृथिवीपते । दुर्य्योधनेन प्रकृतां क्षिप्रहस्तेन धन्विना ॥ ६ ॥ तेषु
योधसहस्रेषु तावकेषु परेषु च । एको दुर्य्योधनश्चासीत् स पुमा-
निति मे मतिः ॥ ७ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य विक्रमम् ।
यदेनं सहिताः पार्था नाभ्यवर्त्तन्त भारत ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरं शते-
नाजौ विव्याध भरतर्षभ । भीमसेनञ्च सप्तत्या सहदेवञ्च पञ्च-

श्रेष्ठ दुःसह प्रतापी तुम्हारा पुत्र युद्धमें प्रतापी रुद्रकी
समान दीखता था ॥ १ ॥ मेघ जैसे धाराओंसे पर्वतको सींचैं
तैसे ही वह शत्रुओं पर बाणधाराएँ बरसाने लगा उस समय
उसके सहस्रों बाणोंसे पृथ्वी पट गई ॥ २ ॥ पाण्डवोंके सेनारूपी
समुद्रमें ऐसा एक भी हाथी, घोड़ा या रथी नहीं था जो बाणों
से घायल न हुआ हो ॥ ३ ॥ हे भारत ! मैं जिस २ योधा पर
दृष्टि डालता था उसको बाणोंसे व्याप्त पाता था ॥ ४ ॥ महात्मा
दुर्योधनके बाणोंसे सेना ऐसी अट गई जैसे धूलसे अट गई हो
॥ ५ ॥ फुर्तीले हाथ वाले धनुर्धर दुर्योधनने पृथ्वीको बाणमय
करदिया, यह हमने देखा ॥ ६ ॥ तुम्हारे और शत्रुओंके सहस्रों
योधाओंमें एक दुर्योधन ही पुरुष था, यह मेरा विचार है ॥७॥
हे भारत ! उस समय हमने तुम्हारे पुत्रका अद्भुत पराक्रम देखा
कि– सब पाण्डव भी उस अकेलेको न दबा सके ॥८॥ हे भरत-
र्षभ ! उसने युद्धमें युधिष्ठिरको सौ भीमको सत्तर, सहदेवको

भिः ॥ ९ ॥ नकुलञ्च चतुः षष्ट्या धृष्टद्युम्नञ्च पञ्चभिः । सप्तभिर्द्रौपदेयांश्च त्रिभिर्विव्याध सात्यकिम् । धनुश्चिच्छेद भल्लेन सहदेवस्य मारिष ॥ १० ॥ तदपास्य धनुश्छिन्नं माद्रीपुत्रः प्रतापवान् । अभ्यधावत् राजानं प्रगृह्यान्यन्महद्धनुः ॥ ११ ॥ ततो दुर्य्योधनं संख्ये विव्याध दशभिः शरैः । नकुलस्तु ततो वीरो राजानं नवभिः शरैः । घोररूपैर्महेष्वासो विव्याध च ननाद च ॥ १३ ॥ सात्यकिश्चापि राजानं शरेणानतपर्वणा । द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः ॥ १४ ॥ अशीत्या भीमसेनश्च शरैः राजानमार्दयत्। समन्तात् कीर्य्यमाणस्तु बाणसंघैर्म्महात्मभिः ॥ १५ ॥ न चचाल महाराज सर्वसैन्यस्य पश्यतः । लाघवं सौष्ठवञ्चापि वीर्य्यञ्चैव महात्मनः ॥ १६ ॥ अतिसर्वाणि भूतानि ददृशुः सर्वमानवाः । धार्त्तराष्ट्रा हि राजेन्द्र यात्वा तु स्वल्पमन्तरम् ॥ १७ ॥ अपश्यमाना राजानं पर्य्यवर्त्तन्त दंशिताः । तेपा-

---

पाँच, नकुलको चौंसठ, धृष्टद्युम्नको पाँच, द्रौपदीके पुत्रोंको पाँच और सात्यकिको तीन बाणोंसे घायल कर डाला ॥ ९-१० ॥ हे राजन् ! सहदेवके धनुषको भल्ल नामक बाणसे काटडाला, तब प्रतापी माद्रीपुत्र उस कटे हुए धनुषको फेंक दूसरा धनुष ले दुर्योधनके ऊपर दौड़ा और रणमें दुर्योधनके दश तीक्ष्ण बाण मारे ॥ ११-१२ ॥ उसी समय महाधनुर्धर वीर नकुलने नौ घोर बाण दुर्योधनके मारे और गर्जने लगा ॥ १३ ॥ सात्यकिने नमी गाँठ वाला बाण दुर्योधनके मारा द्रौपदीके पुत्रोंने तिहत्तर धर्मराजने पांच और भीमसेनने अस्सी बाण दुर्योधनके मारे, हे महाराज ! महात्माओंके बाणोंकी बौछारें पड़ने पर भी दुर्योधन सब सेनाओंके सामने अपने स्थान परसे नहीं हिला, उस समय महात्मा दुर्योधनकी अलौकिक फुर्ती, अलौकिक सौष्ठव और वीर्य सब पुरुषोंने देखा, हे राजेन्द्र ! तुम्हारे योधाओंको जब कुछ समय तक दुर्योधन न दीखा, तब वे कवच पहन दुर्योधनकी

मा ग्रतता घोरस्तुमुलः समजायत ॥ १८ ॥ क्षुब्धस्य हि समुद्रस्य प्रावृट्काले यथा स्वनः । समासाद्य रणे ते तु राजानमपराजितम् ॥ १६ ॥ प्रत्युद्ययुर्म्महेष्वासाः पाण्डवानाततायिनः । भीमसेनं रणे क्रुद्धं द्रोणपुत्रो न्यवारयत् ॥ २० ॥ ततो बाणैर्म्महाराज प्रमुक्तैः सर्व्वतो दिशम् । प्राज्ञायन्त रणे वीरा न दिशः प्रदिशः कुतः ॥२१॥ तावुभौ क्रूरकर्माणावुभौ भारत दुःसहौ घोररूपमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ २२ ॥ त्रासयन्तौ जगत् सर्वं ज्याक्षेपकठिनत्वचौ । शकुनिस्तु रणे वीरो युधिष्ठिरमताडयत् ॥ २३ ॥ तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सुबलस्य सुतो विभो । नादञ्चकार बलवान् सर्व्वसैन्यानि कोपयन् ॥ २४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरं राजानमपराजितम् । अपोवाह रथेनाजौ सहदेवः प्रतापवान् ॥ २५ ॥ अथान्यं रथमास्थाय धर्मराजो युधिष्ठिरः । शकुनिं नवभिर्विध्वा पुनर्वि-

---

खोजमें चले, वर्षाऋतुमें क्षुब्ध हुए समुद्रका जैसे शब्द हो तैसे उन आते हुए योधाओंका तुमुल शब्द हुआ, कुछ समय बाद अपराजितको पाकर वे महाधनुर्धर आततायी पाण्डवों पर टूट पड़े । रणमें क्रोधमें भरे भीमसेनको अश्वत्थामा रोकने लगा १४ २० ॥ सब दिशाओंमें अनेक बाणोंके छूटनेसे बाणोंकी आंधी के कारण योधा दिशाओंको न पहचान सके, प्रदिशा (कोणों) को तो कहाँसे पहिचानते ॥ २१ ॥ क्रूर कर्म करने वाले दुःसह वे दोनों हे भारत ! घोररूपसे युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥ प्रत्यञ्चा के खेंचनेसे जिनकी खाल कड़ी हो गई है ऐसे वे दोनों सब दिशाओंमें (योधाओंको) त्रस्त करने लगे, उस समय शकुनि युधिष्ठिरको छेड़ने लगा ॥२३॥ हे प्रभो ! सुबलपुत्र शकुनिने युधिष्ठिरके चारों घोड़ोंको मार सब सेनाको कुपित कर बड़ी भारी गर्जना की ॥ २४ ॥ इसी समय प्रतापी सहदेव अपराजित राजा को अपने रथमें बैठा रणमेंसे बाहर लेगया ॥ २५ ॥ थोड़ी ही

व्याध पञ्चभिः २६ ननाद च महानादं प्रवरः सर्वधन्विनाम् ।
तद्युद्धमभवच्चित्रं घोररूपं च मारिष ॥२७॥ प्रेक्षकप्रीतिजननं सिद्ध-
चारणसेवितम् । उलूकस्तु महेष्वासं नकुलं युद्धदुर्मदम् ॥ २८ ॥
अभ्यद्रवदमेयात्मा शरवर्षैः समन्ततः । अथैनं नकुलः शूरः सौ
बलस्य सुतं रणे ॥ २९ ॥ शरवर्षेण महता समन्तात् पर्य्यवारयत् ।
तौ तत्र समरे वीरौ कुलपुत्रौ महारथौ ॥ ३० ॥ योधयन्तावप-
श्येतां परस्परकृतैषिणौ । तथैव कृतवर्माणं शैनेयः शत्रुतापनः ३१
योधयन् शुशुभे राजन् बलं शक्र इवाहवे । दुर्य्योधनो धनुश्छित्त्वा
धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ॥ ३२ ॥ अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध नि-
शितैः शरैः । धृष्टद्युम्नोऽपि समरे प्रगृह्य परमायुधम् ॥ ३३ ॥
राजानं योधयामास पश्यतां सर्वधन्विनाम् । तयोर्युद्धं महच्चासीत्
संग्रामे भरतर्षभ ॥३४॥ प्रभिन्नयोर्यथा सक्तं मत्तयोर्वनहस्तिनोः ।

देरमें युधिष्ठिर दूसरे रथमें बैठ कर आगए और उन्होंने शकुनि को नौ और पांच बाणोंसे घायल कर डाला ॥ २६ ॥ फिर सकल धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर बड़ी गर्जना करने लगे हे राजन् ! वह युद्ध बड़ा विचित्र हुआ सिद्ध तथा चारणोंने उसको बड़े प्रेमसे देखा था, अमेयात्मा उलूक चारों ओर बाण बरसाता हुआ महाधनुर्धर युद्धमें दुर्मद नकुलके ऊपर दौड़ा, तब शूर नकुलने भी शकुनिपुत्र उलूकको चारों ओरसे बाणोंसे छादिया वैरका बदला लेनेकी इच्छा वाले महारथी वे दोनों कुलीन पुत्र हमको युद्ध करते हुए दीखे दूसरी ओर कृतवर्मासे लड़ता हुआ शत्रुतापी सात्यकि बलिसे लड़ते हुए इंद्रकी समान शोभा पाने लगा, दुर्योधन ने रणमें धृष्टद्युम्नके धनुषको काट उस टूटे हुए धनुष वाले धृष्टद्युम्नको तीक्ष्ण बाणोंसे वींध डाला, तब धृष्टद्युम्न भी बड़ा भारी आयुध ले सकल धनुर्धरोंके देखते हुए ही दुर्योधनसे युद्ध करने लगा, हे भरतर्षभ ! उन दोनोंका, मद झरते हुए श्रेष्ठ हाथियों की बड़ीभारी टक्करकी समान युद्ध हुआ, दूसरी ओर शूर

गौतमस्तु रणे क्रुद्धो द्रौपदेयान् महाबलान् ॥ ३५ ॥ विव्याध बहुभिः शूरो शरैः सन्नतपर्वभिः । तस्य तैरभवद्युद्धमिन्द्रियैरिव देहिनः ॥ ३६ ॥ घोररूपमसम्वार्यं निर्मर्यादमवर्त्तत ते च तं पीडयामासुरिन्द्रियाणीव वालिशम् ॥ ३७ ॥ स च तान् प्रतिसंरब्धः प्रत्ययोधयदाहवे । एवञ्चित्रमभूद्युद्धं तस्य तैः सह भारत ॥३८॥ उत्थायोत्थाय च यथा देहिनामिन्द्रियैर्विभो । नराश्चैव नरैः सार्द्धं दन्तिनो दन्तिभिस्तथा ॥ ३९ ॥ हया हयैः समायुक्ता रथिनो रथिभिस्तथा । संकुलञ्चाभवद्भूयो घोररूपं विशाम्पते ॥ ४० ॥ इदञ्चित्रमिदं घोरमिदं रौद्रमिति प्रभो । युद्धान्यासन्महाराज घोराणि च बहूनि च ॥ ४१ ॥ ते समासाद्य समरे परस्परमरिन्दमाः । व्यनदंश्चैव जघ्नुश्च समासाद्य महाहवे ॥ ४२ ॥ तेषां शस्त्रस-

---

कृपाचार्यने क्रोधमें भर बहुतसे तीक्ष्ण नमी हुई गांठ वाले बाणोंसे महाबली द्रौपदीके पुत्रोंको घायल करडाला, आत्माका जैसे इन्द्रियोंके साथ युद्ध हो तैसे ही कृपाचार्यका उनके साथ युद्ध हुआ ॥ २७–३६ ॥ उनका युद्ध महाभयङ्कर, बंद न होने वाला तथा मर्यादाको छोड़कर होने लगा, वे भी जैसे इन्द्रियें अज्ञानीको पीड़ा दें वैसे कृपाचार्यको दवाने लगे॥३७॥ वे भी क्रोधमें भर उन से लड़ने लगे, हे भारत ! जैसे इन्द्रियें वार वार प्रबल हो मूढ़ को दुःखित करें तैसे ही हे भारत ! द्रौपदीके पुत्रोंका कृपाचार्यके साथ युद्ध होने लगा, हे राजन् ! उस समय मनुष्योंका मनुष्योंके साथ रथियोंका रथियोंके साथ संकुल और घोर युद्ध होने लगा३८–४० यह विचित्र युद्ध होरहा है, वह घोर युद्ध होरहा है, यह रौद्र युद्ध होरहा है इस प्रकार हे राजन् ! जहां तहां बहुतसे घोर युद्ध होरहे थे ॥ ४१ ॥ वे शत्रुदमन योधा एक दूसरेसे अड़ कर एक दूसरेका संहार कर गर्जने लगे॥४२॥ हे राजन् ! उनके वाहनों के कारण तहां बड़ी धूल दिखाई देने लगी, दौड़ते हुए घुड़सवारों

मुद्धूतं रजस्तीव्रमदृश्यत । वातेनेचोद्धतं राजन् धावद्भिश्चाश्वसा-सादिभिः ॥ ४३ ॥ रथनेमिसमुद्भूतं निश्वासैश्चापि दन्तिनाम् । रजः सन्ध्याभ्रकलिलं दिवाकरपथं ययौ ॥ ४४ ॥ रजसा तेन संपृक्ते भास्करे निष्प्रभीकृते । संछादिताभवद्भूमिस्ते च शूराः महारथाः ४५ मुहूर्त्तादिव संवृत्तं नीरजस्कं समन्ततः । वीरशोणितसिक्तायां भूमौ भरतसत्तम ॥४६॥ उपशाम्यत्ततस्तीव्रं यद्रजो घोरदर्शनम् । ततोऽपश्यं महाराज द्वन्द्वयुद्धानि भारते ॥ ४७ ॥ यथा प्राणं यथा श्रेष्ठं मध्यान्हे वै सुदारुणम् । वर्मणां तत्र राजेन्द्र व्यदृश्यन्तोज्ज्वलाः प्रभाः ॥ ४८ ॥ शब्दः सुतुमुलः संख्ये नराणां पततामभूत् । महावेणुवनस्येव दह्यमानस्य सर्वतः ॥४६॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि संकुल-
युद्धे द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

सञ्जय उवाच । वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयानके । अभ-

के कारण, और रथोंकी लीकमेंसे और हाथियोंकी फुंकारोंसे उडीहुई संध्याके बादलोंसी धूल सूर्यके मार्गतक पहुंच गई॥४३॥ ॥ ४४ ॥ उस धूलके कारण सूर्य धुंधला सा दीखने लगा और भूमि तथा वे वीर उस धूलसे अट गए ॥ ४५ ॥ हे भरतसत्तम ! थोड़ी ही देरमें वीरोंके खूनसे सीचीगई भूमिमें समा जानेके कारण तहां धूलका नाम भी न रहा ॥ ४६ ॥ भयङ्कर दीखने वाली वह धूल जब शान्त होगई, तब फिर तहाँ द्वन्द्व युद्ध होते हुए दिखाई देने लगे ॥४७॥ हे राजेन्द्र ! बल और श्रेष्ठताके अनुसार युद्ध करते हुए योधाओंके कवचोंकी उज्वल प्रभा मध्याह्न में चमकने लगी ॥ ४८ ॥ युद्धमें गिरते हुए बाणोंका ऐसा तुमुल शब्द हुआ जैसे पर्वत पर जलते हुए बाँसके वनका हो ॥४६॥ बाईसवां अध्याय समाप्त ॥२२॥ ॥

सञ्जयने कहा कि हे धृतराष्ट्र ! इस प्रकार भयानक घोर

ज्यत वलं तत्र तव पुत्रस्य पाण्डवैः ॥ १ ॥ तांस्तु यत्नेन महता सन्निवार्य्य महारथान् । पुत्रस्ते योधयामास पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २ ॥ निवृत्ताः सहसा योधास्तव पुत्रप्रियैषिणः। सन्निवृत्तेषु तेष्वेव युद्धमासीत् सुदारुणम् ॥ ३ ॥ तावकानां परेषाञ्च देवासुररणोपमम् । परेषां तत्र सैन्ये वा नासीत् कश्चित् पराङ्मुखः ॥ ४ ॥ अनुमानेन युध्यन्ते संज्ञाभिश्च परस्परम् । तेषां क्षयो महानासीत् युध्यतामितरेतरम् ॥ ५ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा क्रोधेन महता युतः । जिगीषमाणः संग्रामे धार्त्तराष्ट्रान् सराजकान् ॥६॥ त्रिभिः शारद्वतं विध्वा रुक्मपुंखैः शिलाशितैः । चतुर्भिर्निजघानाश्वान्नाराचैः कृतवर्मणः ॥ ७ ॥ अश्वत्थामा च हार्दिक्यमपोवाह यशस्विनम् । अथ शारद्वतोऽष्टाभिः प्रत्यविध्यद्युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥

संग्राम चल रहा था कि—पाण्डवोंने तुम्हारी सेनामें भग्गी डाल दी ॥ १ ॥ तब तुम्हारे पुत्रने बड़ी भारी कोशिशसे उन महारथियोंको लौटाला और पाण्डवोंकी सेनासे युद्ध करने लगा ॥ २ ॥ कौरव पक्षके महारथी भी तुम्हारे पुत्रकी जीतकी इच्छासे एक दम लौट पड़े फिर तुम्हारे और पाण्डवोंके दलमें देवासुर संग्रामकी समान दारुण युद्ध होने लगा, उस समय तुम्हारी तथा पांडवोंकी सेनामेंसे किसीने भी लड़नेसे मुख नहीं मोड़ा ॥ ३–४ ॥ योधा अनुमानसे तथा एक दूसरेके चिन्होंसे लड़ते थे उस समय परस्पर लड़ते हुए योधाओंका बड़ा संहार हुआ ॥ ५ ॥ तब राजा युधिष्ठिरने बड़े क्रोधमें भर तुम्हारे पक्षके राजाओं सहित योधाओंको जीतनेकी इच्छासे शिलापर तेज किए हुए सुवर्णकी पूँछवाले तीन बाणोंसे कृपाचार्य को बींध चार बाणोंसे कृतवर्माके घोड़ोंको मारडाला ॥६।७॥ उस समय अश्वत्थामा यशस्वी कृतवर्माको रथमेंसे लेगया, तब कृपाचार्यने आठ बाण युधिष्ठिरके मारे ॥ ८ ॥ तब राजा दुर्योधनने जहां युधिष्ठिर थे तहां

ततो दुर्य्योधनो राजा रथान् सप्त शतान् रणे । प्रैषयद्यत्र राजा वै धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥ ते रथा रथिभिर्युक्ता मनोमारुतरंहसः। अभ्यद्रवन्त संग्रामे कौन्तेयस्य रथं प्रति ॥ १० ॥ ते समन्तात् महाराज परिवार्य युधिष्ठिरम् । अदृश्यं सायकैश्चक्रुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ ११ ॥ ते दृष्ट्वा धर्मराजानं कौरवेयैस्तथाकृतम्। नामृष्यन्त सुसंरब्धाः शिखण्डिप्रमुखा रथाः ॥ १२ ॥ रथैरश्ववरैर्युक्तैः किङ्किणीजालसंवृतैः । आजग्मुरभिरक्षन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ १३ ॥ ततः प्रववृते रौद्रः संग्रामः शोणितोदकः । पाण्डवानां कुरूणाञ्च यमराष्ट्रविवर्द्धनः ॥ १४ ॥ रथान् सप्त शतान् हत्वा कुरूणामाततायिनाम् । पाण्डवाः सह पञ्चालैः पुनरेवाभ्यवारयन् ॥ १५ ॥ तत्र युद्धं महाच्चासीत्तव पुत्रस्य पाण्डवैः न च नस्तादृशं दृष्टं नैव चापि परिश्रुतम् ॥ १६ ॥ वर्त्तमाने तथा युद्धे

पर सातसौ रथियोंको भेजा ॥ ९ ॥ मन और पवनकेसे वेगवाले जिनमें रथी बैठे हुए हैं ऐसे रथ संग्राममें युधिष्ठिरके रथकी ओर झपटे ॥ १० ॥ और मेघ जैसे सूर्यको छिपादें, तैसे उन्होंने बाण बरसाकर युधिष्ठिरको छिपादिया ॥ ११ ॥ शिखण्डी आदि रथी, कौरवोंने धर्मराजका घेरलिया है, यह देखकर सह न सके और क्रोधमें भर कर ॥ १२ ॥ श्रेष्ठ घोड़ोंसे जुते, घूँघरूवाले रथोंमें बैठ कुन्तीपुत्रकी रक्षा करते हुए तहां आपहुँचे ॥ १३ ॥ उस समय पांडव और कौरवोंमें यमराजके राजको बढ़ाने वाला रक्तरूपी जल वाला घोर युद्ध आरम्भ होगया ॥ १४ ॥ पञ्चालों सहित पाण्डवोंने आततायी कौरवोंके सात सौ रथी मार डाले और (तुम्हारे पुत्रोंको) आगे बढ़नेसे रोकने लगे ॥ १५ ॥ उस समय तुम्हारे पुत्र पाण्डवोंसे ऐसे लड़े कि-ऐसी लड़ाई न हमने देखी न सुनी ॥ १६ ॥ चारों ओर मर्यादाको छोड़ युद्ध हो रहा था, तुम्हारी ओरके तथा शत्रुओंके योधा परस्पर संहार कर

निर्मर्य्यादे समन्ततः । वध्यमानेषु योधेषु तावकेष्वितरेषु च ॥१७॥ निनदत्सु च योधेषु शंखवर्य्यैश्च पूरितैः । उत्कृष्टैः सिंहनादैश्च गर्ज्जितेन च धन्विनाम् ॥ १८ ॥ अतिप्रवृद्धे युद्धे च छिद्यमानेषु मर्मसु । धावमानेषु योधेषु जयगृद्धिषु मारिष ॥ १९ ॥ संहारे सर्वतो जाते पृथिव्यां शोकसम्भवे । बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां सीमन्तोद्धरणे तदा ॥ २० ॥ निर्मर्य्यादे ततो युद्धे वर्त्तमाने सुदारुणे । प्रादुरासन् विनाशाय तदोत्पाताः सुदारुणाः ॥ २१ ॥ चचाल शब्दं कुर्वाणा सपर्वतवना मही । सदण्डाः सोल्मुका राजन् कीर्य्यमाणाः समन्ततः ॥ २२ ॥ उल्काः पेतुर्दिवो भूमावाहत्य रविमण्डलम् । विष्वग्वाताः प्रादुरासन् नीचैः शर्करवर्षिणः ॥ २३ ॥ अश्रूणि मुमुचुर्नागा वेपथुश्चाद्भवद्भृशम् । एतान् घोराननादृत्य समुत्पातान् सुदारुणान् ॥ २४ ॥ पुनर्युद्धाय सम्मन्त्र्य क्षत्रियास्तस्थुरव्यथाः । रमणीये कुरुक्षेत्रे पुण्ये स्वर्गं यियासवः ॥ २५॥

रहे थे, कोई योधा गर्जना करते थे, कोई शंख बजा रहे थे, कोई धनुर्धर सिंहगर्जन कर रहे थे ॥ १७-१८ ॥ और हे राजन् ! योधा विजयकी इच्छासे एक दूसरेके मर्मस्थानोंको काट रणमें दौड़ते थे ॥ १९ ॥ इसप्रकार श्रेष्ठ स्त्रियोंको विधवा बनानेवाला, पृथ्वीमें शोक उत्पन्न करनेवाला, मर्यादाशून्य दारुण युद्ध होने लगा और इसी समय भारतीय सेनाके संहारके सूचक दारुण उत्पात होने लगे, और वनों सहित पृथ्वी शब्द कर काँपने लगी दण्डोंके साथ उल्काएँ सूर्यमण्डलसे टकरा आकाशमेंसे पृथ्वीपर गिरने लगीं धूल उड़ानेवाली आंधी बड़े वेगसे चलनेलगी २०-२३ हाथी रोने और थर२ कांपनेलगे, ऐसे दारुण भयंकर उत्पातोंको देख कर भी क्षत्रिय उनको कुछ न गिन स्वर्गमें जानेकी इच्छासे रमणीय और पवित्र कुरुक्षेत्रमें जरा भी डरे विना फिर युद्ध करनेके लिए तयार होकर खड़े होगए थे ॥ २४-२५ ॥ उस समय गांधारराज

ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत् । युध्यध्वमग्रतो यावत् पृष्ठतो हन्मि पाण्डवान् ॥ २६ ॥ ततो नः संप्रयातानां मद्रयोधास्तरस्विनः । हृष्टा किलकिलाशब्दमकुर्वन्तापरे तथा ॥ २७ ॥ अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्ष्या दुरासदाः । शरासनानि धुन्वन्तः शरवर्षैरवाकिरन्। २८। ततो हतं परैः राजन् मद्रराजबलं तदा। दुर्योधनबलं दृष्ट्वा पुनरासीत् पराङ्मुखम् ॥ २९ ॥ गान्धारराजस्तु पुनर्वाक्यमाह ततो बली। निवर्त्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ॥ ३० ॥ अनीकं दशसाहस्रमश्वानां भरतर्षभ । आसी द्गान्धारराजस्य विमलप्रासयोधिनाम् ॥ ३१ ॥ बलेन तेन विक्रम्य वर्त्तमाने जनक्षये । पृष्ठतः पाण्डवानीकमभ्यघ्नन्निशितैः शरैः ३२ तदभ्रमिव वातेन क्षिप्यमाणं समन्ततः । अभज्यत महाराज पाण्डूनां सुमहद्बलम् ॥ ३३ ॥ ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलम-

---

के पुत्र शकुनिने कहा कि–तुम आगेसे लड़ो मैं तब तक पीछेकी ओर से पाण्डवोंका संहार करूँगा ॥ २६ ॥ हम जैसे चले कि-तरस्वी मद्रदेशी योधा और पाण्डव हर्षमें भर किलकारने लगे ॥ २७ ॥ लक्ष्यभेदी दुरासद पांडव हमें फिर अपने सामने पा धनुषोंको हिला बाण बरसाने लगे ॥२८॥ और मद्रराजकी फौजको मारडाला यह देखकर दुर्योधनकी सेना फिर भागनेलगी ॥ २९ ॥ तब बली शकुनि कहनेलगा कि–अरे ! अधर्मियों लौट आओ युद्ध करो ! किस लिए भागते हो ॥ ३० ॥ हे भरतर्षभ उस समय विशाल प्रासोंसे लड़ने वाली दश सहस्र घुड़सवार फौज शकुनिके पास थी ॥३१॥ संहारके समय शकुनि उस फौजको ले पीछेकी ओर से पांडवसेना पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगा ॥३२॥ हे महाराज! उस समय वायुसे जैसे बादल तित्तर बित्तर होजावें तैसे पांडवों की बड़ी भारी सेना चारों ओर तित्तर बित्तर होगई ॥ ३३ ॥ राजा युधिष्ठिरने सेनाको अपने पाससे भागती देख महाबली सह-

न्तिकात् । अभ्यचोदयदव्यग्रः सहदेवं महाबलम् ॥ ३४ ॥ असौ सुबलपुत्रो नो जघनं पीड्य दंशितः । सेनां निसूदयत्येष पश्य पाण्डव दुर्मतिम् ॥ ३५ ॥ गच्छ त्वं द्रौपदेयैश्च शकुनिं सौबलं जहि। रथानीकमहं धक्ष्ये पाञ्चालसहितोऽनघ ३६ गच्छन्तु कुञ्जरा सर्वे वाजिनश्च सह त्वया । पादाताश्च त्रिसाहस्राः शकुनिं तैर्वृतो जहि ॥ ३७ ॥ ततो गजाः सप्तशताश्चापपाणिभिरावृताः । पञ्च चाश्वसहस्राणि सहदेवश्च वीर्य्यवान् ॥ ३८ ॥ पादाताश्च त्रिसाहस्रा द्रौपदेयाश्च सर्वशः । रणे ह्यभ्यद्रवंस्ते तु शकुनिं युद्धदुर्मदम् ३९ ततस्तु सौबलो राजन्नभ्यतिक्रम्य पाण्डवान् । जघान पृष्ठतः सेनां जयगृद्धः प्रतापवान् ॥ ४० ॥ अश्वारोहास्तु संरब्धाः पांडवानां तरस्विनाम् । प्राविशन् सौबलानीकमभ्यतिक्रम्य तान्रथान् ४१ ते तत्र सादिनः शूरा सौबलस्य महद्बलम्।गजमध्ये च तिष्ठन्तः शर-

---

देवको प्रेरणा कीकि–॥३४॥ यह कवचधारी शकुनि हमारी सेना को पीछेकी ओरसे मार रहा है, हे पाँडव ! तुम इस दुर्मति की ओर दृष्टि दो !॥ ३५ ॥ तुम द्रौपदीके पुत्रोंको साथमें लेजाकर इस शकुनिको समाप्त करो और हे अनघ ! पाञ्चाल और मैं रथसेनाका सँहार करेंगे ॥ ३६ ॥ सब हाथी घोड़े और तीनसहस्र पैदल तुम्हारे साथ जावेंगे तुम उनसे घिरकर शकुनि को मार डालो ॥ ३७ ॥ इतना कहते ही धनुर्धर सात सौ हाथी सवार, पाँचहजार घुड़सवार, तीन हजार पैदल और द्रौपदीके पुत्र तथा महाबली सहदेवने युद्धदुर्मद शकुनि पर धावा किया ॥ ३८-३९ ॥ परन्तु जयाभिलाषी प्रतापी शकुनि पाण्डवोंको दबाकर सेनाके पिछले भागको पीडित करता रहा ॥ ४० ॥ इसी समय क्रोधमें भरे पांडवोंके फुर्तीले घुड़सवार उन रथियोंको हटा सुबलपुत्र शकुनिकी फौजमें घुस गए ॥४१॥ वे शूर सवार शकुनिकी सेनाके बीचमें पहुँच बाण बरसाने लगे ॥ ४२ ॥ हे

पैरवाकिरन् ॥४२॥ तदुग्रतगदाप्रासमहापुरुषसेवितम्।प्रावर्त्तत मह-
द्युद्धं राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ४३ ॥ उपारमन्त ज्याशब्दाः प्रेक्षका
रथिनोऽभवन् । न हि स्वेषां परेषां वा विशेषः प्रत्यदृश्यत ॥४४॥
शूरबाहुविसृष्टानां शक्तीनां भरतर्षभ । ज्योतिषामिव सम्पातमप-
श्यन् कुरुपांडवाः ॥ ४५ ॥ ऋष्टिभिर्विमलाभिश्च तत्र तत्र विशा-
म्पते । सम्पतन्तीभिराकाशमावृतं बह्वशोभत ॥ ४६ ॥ प्रासानां
पततां राजन् रूपमासीत् समन्ततः । शलभानामिवाकाशे तदा भ-
रतसत्तम ॥ ४७ ॥ रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा विप्रविद्धैर्नियन्तृभिः ।हयाः
परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः ॥४८ ॥ अन्योन्यं सन्निविष्टा-
श्च समासाद्य परस्परम् । आविक्षताः स्म दृश्यन्ते वमन्तो रुधिरं
मुखैः ॥ ४९ ॥ ततोऽभवत्तमो घोरं सैन्ये तु रजसा वृते । तान-

राजन् ! उस समय तुम्हारे अन्यायके कारण जिसमें कायर न घुस सकें ऐसा घोर युद्ध होने लगा उसमें गदा और प्रास उठते हुए दीखने लगे ॥ ४३ ॥ उस समय धनुषकी प्रत्यञ्चाकी टंकार बन्द होगई, रथी दर्शक बन गए और अपनी तथा दूसरी सेनाओंमें कुछभी भेद प्रतीत नहीं होता था ॥ ४४ ॥ और हे भरतर्षभ ! शूरोंकी भुजाओंसे छोड़ी हुई शक्तियोंको नक्षत्रोंकी समान गिरती हुई कौरव पाण्डव देखते थे ॥ ४५ ॥ इधर उधर गिरती हुई विमल ऋष्टियोंसे घिरा हुआ आकाश बहुत ही खिलने लगा ॥ ४६ ॥ हे भरतसत्तम उस समय प्रास आकाशसे गिरते हुए टीड़ीदलसे गिरते हुए देखते थे ॥ ४७ ॥ सारथियों से पीटे जानेसे घायल हुए रुधिरसे न्हाएहुए सहस्रों और सैंकड़ों घोड़े तहां गिरने लगे ॥ ४८ ॥ और एक दूसरेसे टकरा कर घायल हो मुखसे रुधिर ओकते हुए दिखाई देने लगे ॥ ४९ ॥ सेनाके कारण धूल उड़नेसे तहां अन्धेरा छा गया तब हे राजन् ! घोड़े तथा मनुष्य तहांसे भागने लगे और हमने देखा कि-वे पर-

पाक्रमतोऽद्रात्तं तस्मादेशादरिन्दम ॥ ५० ॥ अश्वान् राजन्मनुष्यांश्च तमसा संवृते सति । भूमौ निपतिताश्चान्ये वमन्तो रुधिरं बहु ॥ ५१ ॥ केशाकेशि समालग्ना न शेकुश्चेष्टितुं नरा । अन्योन्यमश्वपृष्ठेभ्यो विकर्षन्तो महाबलाः ॥ ५२ ॥ मल्ला इव समासाद्य निजघ्नुरितरेतरम् । अश्वैश्च व्यपकृष्यन्त बहवोऽत्र गतासवः ॥ ५३ ॥ भूमौ निपतिताश्चान्ये बहवो विजयैषिणः । तत्र तत्र व्यदृश्यन्त पुरुषाः शूरमानिनः ॥ ५४ ॥ रक्तोक्षितैश्छिन्नभुजैरपकृष्टशिरोरुहैः । व्यदृश्यत मही कीर्णा शतशोथ सहस्रशः ५५ दूरं न शक्यं तत्रासीद्गन्तुमश्वेन केनचित् । साश्वारोहैर्हतैरश्वैरावृते वसुधातले ॥ ५६ रुधिरोक्षितसन्नाहैरात्तशस्त्रैरुदायुधैः । नानाप्रहरणैर्घोरैः परस्परवधैषिभिः॥ सुसन्निकृष्टैः संग्रामे हतभूयिष्ठसैनिकैः । स मुहूर्त्तं ततो युध्वा सौबलोऽथ विशाम्पते ॥ ५७ ॥ पट्-

---

स्पर टक्कर खाकर रुधिर ओकते हुए भूमिमें लोटने लगे ॥५०-५१ ॥ घोड़ोंकी पीठ पर बैठ कर एक दूसरे के बाल खसोटते हुए वे वीर इधर उधर को जरा भी न हट सकते थे ५२ वे मल्लों की समान लड़ कर परस्पर प्रहार करने लगे उस समय तहाँ बहुतसे मुरदे घोड़ोंसे खुँदले जाते हुए दीखते थे ॥ ५३ ॥ और जगह २ शूरमानी विजयाभिलाषी पुरुष पृथ्वीमें पड़े हुए दीखते थे ॥५४ ॥ रुधिरसे भीगी हुई कटी भुजाओंसे और छिन्न भिन्न शिरोंसे पृथ्वी जहाँ तहाँ पट रही थी ॥५५ ॥ घोड़ों सहित घुड़सवारा की ल्हाशोंसे पृथ्वीके पट जाने के कारण कोई भी घोड़ा तहाँसे दूरको नहीं जासकता था ॥ ५६ ॥ लोहू लुहान कवचों वाले, हाथमें अनेक शस्त्रोंको लिए हुए, एक दूसरे को मारने की इच्छा करने वाले,पाण्डवोंके भयंकर योधाओंने जब हमारे समीपमें खड़े हुए बहुतसे सैनिकों को मार डाला, तब शकुनि थोड़ी ही देर युद्ध कर बचे हुए छः हजार घुड़सवारों समेत भाग गया

साहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छकुनिस्तलः । तथैव पांडवानीकं रुधिरेण समुक्षितम् ॥ ५६ ॥ षट्साहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छ्रान्तवाहनम् । अश्वारोहास्तु पांडूनामब्रुवन् रुधिरोक्षिताः ॥ ६० ॥ सुसन्निविष्टा संग्रामे भूयिष्ठे त्यक्तजीविताः । नेह शक्यं रथैर्योद्धुं कुत एव महागजैः॥ ६१ ॥ रथानेव रथा यान्तु कुञ्जराः कुञ्जरानपि । प्रतियातो हि शकुनिः स्वमनीकमवस्थितः ॥ ६२ ॥ न पुनः सौवलो राजा युद्धमभ्यागमिष्यति । ततस्तु द्रौपदेयाश्च ते च मत्ता महाद्विपाः ॥६३॥ प्रययुर्यत्र पांचाल्यो धृष्टद्युम्नो महारथः । सहदेवोपि कौरव्यो रजोमेघे समुत्थिते ॥ ६४ । एकाकी प्रययौ तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः । ततस्तेषु प्रयातेषु शकुनिः सौवलः पुनः ६५ पार्श्वतोभ्यहनत् क्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य वाहिनीम् । तत् पुनस्तुमुलं

पाण्डवोंकी फौजके वाहन भी लोहूलुहान हो थक गए थे, अतः मरनेसे वाकी वचे हुए पाण्डवों के छः सहस्र घुड़सवारोंके साथ पांण्डवोंकी सेना भी रणभूमिसे लौटने लगी, संग्राममें मरने मारने वाले हो लड़ने वाले घायल हुए पाण्डवसेनाके घुड़सवार बोल उठे कि— शत्रु जव रथियोंके साथ भी न लड़ सके तो हाथियों से कैसे लड़ेंगे ॥ ५७ ॥ – ६१ ॥ अतः अव रथी रथियों की सेनामें और हाथीसवार हाथीसवारोंकी सेनामें लौट जावें, राजा शकुनि अब अपनी सेनामें जा पहुँचा है अतः वह अब युद्धमें लौटेगा नहीं, तदनन्तर द्रौपदी के पुत्र और मतवाले हाथी पाञ्चाल देशी महारथी धृष्टद्युम्नके पास पहुँच गए ॥ इतनेमें धूलिका वादलसा उठा तव हे कौरव्य !सहदेव जहाँ राजा युधिष्ठिर थे तहाँ अकेला ही दौड़ गया, उनके चले जाने पर सुलवपुत्र शकुनि क्रोधमें भर फिर पाण्डवों की सेनाको पिछले हिस्सेमें धुँगलने लगा, उस समय तुम्हारे तथा पाण्डवोंके योधा प्राणोंका मोह छोड़ एक दूसरे को वध करने का इच्छासे फिर तुमुल युद्ध करने लगे॥

युद्धं त्वक्तमाणानवर्त्तत ॥ ६६ ॥ तावकानां परेषाञ्च परस्परवधैषिणाम् । तं गन्योऽन्यमवैक्षन्त तस्मिन् वीरसमागमे ॥ ६७ ॥ योधाः पर्य्यपतन् राजन् शतशोऽथ सहस्रशः । असिभिश्छिद्यमानानां शिरसां लोकसंक्षये ॥ ६८ ॥ प्रादुरासीन्महाशब्दस्तालानां पतनामिव । विमुक्तानां शरीराणां भिन्नानां पततां भुवि ॥ ६९ ॥ सायुधानाञ्च बाहूनामूरूणाञ्च विशाम्पते । आसीच्चटचटाशब्दः सुमहाँल्लोमहर्षणः ॥ ७० ॥ निघ्नन्तो निशितैः शस्त्रैर्भ्रातॄन् पुत्रान् पितॄनपि । योधाः परिपतन्ति स्म यथामिषकृते खगाः ७१ अन्योऽन्यं प्रतिसंरब्धाः समासाद्य परस्परम् । अहंपूर्वमहं पूर्वमिति निघ्नन् सहस्रशः ॥ ७२ ॥ संघातेनासनभ्रष्टैरश्वारोहैर्गतासुभिः । हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७३ ॥ स्फुरतां प्रतिपिष्टानामश्वानां शीघ्रचारिणाम् । स्तनताञ्च मनु-

---

और लड़ते २ एक दूसरे की ओर देखने लगे, हे राजन्! वीरोंके उस समागममें सहस्रों और सैकड़ों योधा टपाटप गिरने लगे, और संहारके समय तलवारसे कट कर गिरते हुए शिरोंकी आवाज गिरते हुए तालके फलोंकी समान होरही थी, काटे हुए शरीर आयुध सहित भुजायें, और जंघाओंके पृथ्वीमें गिरनेका लोमहर्षण धमाधम शब्द हो रहा था ॥ ६२ - ७० ॥ पक्षी जैसे मांस के ऊपर तला ऊपर टूट पड़ते हैं तैसे ही योधा भी भाई पुत्र और मित्रोंको तीक्ष्ण बाणोंसे मारने के लिये उनके ऊपर टूट रहे थे ॥ ७१ ॥ और योधा परस्पर क्रोधमें भर "मैं पहिले मारूँगा मैं पहिले मारूँगा" ऐसा कहते हुए सहस्रों योधाओंको मार रहे थे ॥ ७२ ॥ प्रहारके कारण बहुतसे घुड़सवारोंके घोड़ा की पीठ परसे गिरकर मरनेके कारण लाखों घोड़े रणमेंसे भागे चले जाते थे ॥७३॥ हे राजन् ! तुम्हारी दुर्मतिके कारण शीघ्र चलने वाले भड़कते हुए और दूसरोंसे टकराते हुए

व्याणां सन्नद्धानां विशाम्पते ॥ ७४ ॥ शक्त्यृष्टिप्रासशब्दस्तु तुमुलः समजायत । भिन्दतां परमर्माणि राजन् दुर्मन्त्रिते तव ७५ श्रमाभिभूताः संरब्धाः श्रान्तवाहाः पिपासिताः । विक्षताश्च शितैः शस्त्रैरभ्यवर्त्तन्त तावकाः ॥ ७६ ॥ मत्ता रुधिरगन्धेन बहवोऽत्र विचेतसः । जघ्नुः परान् स्वकांश्चैव प्राप्तान् प्राप्ताननन्तरान् ७७ बहवश्च गतप्राणाः क्षत्रिया जयगृद्धिनः । भूमौ चाभ्यपतन् राजन् शरवृष्टिभिराहताः ॥ ७८ ॥ वृकगृद्ध्रशृगालानां तुमुले मोदनेऽहनि आसीद्बलक्षयो घोरस्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ७९ ॥ नराश्वकायसंच्छन्ना भूमिरासीद्विशाम्पते । रुधिरोदकचित्रा च भीरूणां भयवर्द्धिनी ॥ ८० ॥ असिभिः पट्टिशैः शूलैस्तक्षमाणाः पुनः पुनः । तावकाः पाण्डवेयाश्च नाभ्यवर्त्तन्त भारत ॥ ८१ ॥ प्रहरन्तो

घोड़ोंका तथा उनके हिनहिनानेका, शत्रुओंके मर्मोंको भेदने वाले कवचधारी योधाओंका, शक्ति, ऋष्टि और तोमरोंका रणमें तुमुल शब्द होरहा था ॥ ७४–७५ ॥ तुम्हारे सैनिक थक रहे थे, क्रोधमें भर रहे थे, तथा उनके घोड़े थक रहे थे और पिलासे थे तथा तीक्ष्ण शस्त्रोंसे घायल होरहे थे तब भी उन्होंने शत्रुओंपर धावा करना जारी रक्खा ॥ ७६ ॥ इस समय बहुतसे योधा रुधिरकी गंध से विक्षिप्तसे होगए थे, अतः अपने तथा शत्रुके जो भी योधा सामने आते थे, उनको मारने लगते थे ॥ ७७ ॥ और हे राजन् ! जय चाहने वाले बहुतसे क्षत्रिय बाणवर्षासे घिर कर प्राणरहित हो भूमिमें लोट रहे थे ॥ ७८ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रके सामने ही सेनाका घोर संहार होने लगा, वह दिन भेड़िये, गीदड़, और गिद्धोंको बड़ा आनन्ददायक हुआ ॥ ७९ ॥ हे राजन् ! भूमि हाथी और घोड़ोंकी ल्हाशोंसे ढक गई तथा रुधिररूपी जलसे विचित्र बन डरपोकोंके डरको बढ़ाने लगी ॥ ८० ॥ हे भारत ! तलवार पट्टिश और शूलोंसे एक दूसरेको काटतेहुए पाण्डव और तुम्हारे सैनिक रणमें से मुख नहीं मोड़ते थे ॥ ८१ ॥

यथाशक्ति यावत् प्राणस्य धारणम् । योधाः परिपतन्ति स्म वमन्तो रुधिरं व्रणैः ॥ ८२ ॥ शिरो गृहीत्वा केशेषु कवन्धश्च व्यदृश्यत । उद्यम्य च शितं खड्गं रुधिरेण परिप्लुतम् ॥ ८३ ॥ अथोत्थितेषु बहुषु कबन्धेषु जनाधिप । तथा रुधिरगन्धेन योधान् कश्मलमाविशत् ॥ ८४ ॥ मन्दीभूते ततः शब्दे पाण्डवानां महद्बलम् । अल्पावशिष्टैस्तुरगैरभ्यवर्त्तत सौबलः ॥ ८५ ॥ ततोभ्यधावंस्त्वरिताः पाण्डवा जयगृद्धिनः । पदातयश्च नागाश्च सादिनश्चोद्यतायुधाः ॥ ८६ ॥ कोष्ठकीकृत्य चाप्येनं परिक्षिप्य च सर्वशः । शस्त्रैर्नानाविधैर्जघ्नुर्युद्धपारं तितीर्षवः ॥ ८७ ॥ त्वदीयांस्तांस्तु संप्रेक्ष्य सर्वतः समभिद्रुतान् । साश्वपत्तिद्विपरथाः पांडवानभिदुद्रुवुः ॥८८॥ केचित् पदातयःपद्भिर्मुष्टिभिश्च परस्परम् । निजघ्नुः समरे शूराः क्षीणशस्त्रास्ततोऽपतन् ॥ ८९ ॥ रथेभ्यो

योधा अपने प्राण रहने तक शक्तिके अनुसार लडते थे और फिर वे घावोंमेंसे रुधिर बहाते २ गिर जाते थे ॥८२॥ और तहां एक हाथसे केशभागमें मस्तकको पकड़ दूसरे हाथसे रक्तसे रँगी हुई तलवारको पकडे हुए सहस्रों धड़ दीखते थे ॥ ८३ ॥ हे राजन् ! ऐसे उठते हुए बहुतसे कबन्धोंको देख कर तथा रुधिरकी गन्धको पा योधा मूर्छित होने लगे ॥ ८४ ॥ इस प्रकार होते २ कुछ समय पीछे कोलाहल बंद होगया, तब शकुनि फिर बचे हुए घुडसवारोंको ले पाण्डवोंकी फौज पर टूट पडा ॥ ७५ ॥ तब जय चाहने वाले पाण्डव भी पैदल, घुडसवार हाथीसवारोंको साथ ले आयुध उठा शीघ्रतासे शकुनिके ऊपर झपटे ॥८६॥ और युद्धको समाप्त करना चाहते हुए उन्होंने उसको मण्डलाकारसे घेर बाणोंसे मारना आरम्भ कर दिया८७उनको चढ़ता देख तुम्हारे पक्षके रथी घुडसवार पैदल और हाथीसवार पांडवों पर झपटे॥८८॥ बहुतसे योधा अस्त्रोंके न रहने पर लात घूँसोंसे युद्ध करने लगे और युद्ध करते हुए भूमिमें गिरने लगे ॥ ८९ ॥ पुण्यक्षय होने पर

रथिनः पेतुर्द्विपेभ्यो हस्तिसादिनः । विमानेभ्य इव भ्रष्टाः सिद्धाः पुण्यक्षये यथा ॥ ६० ॥ एवमन्योन्यमायत्ता योधा जघ्नुर्महामृधे पितॄन् भ्रातॄन् वयस्यांश्च पुत्रानपि तथापरे ॥ ६१ ॥ एवमासीदमर्य्यादं युद्धं भरतसत्तम । प्रासासिवाणकलिले वर्त्तमाने सुदारुणे ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि
संकुलयुद्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

सञ्जय उवाच । तस्मिन् शब्दे मृदौ जाते पाण्डवैर्निहते बले । अश्वैः सप्तशतैः शिष्टैरुपावर्त्तत सौबलः ॥ १ ॥ स यात्वा वाहिनीं तूर्णमब्रवीद्वै त्वरन् युधि । युध्यध्वमिति संहृष्टाः पुनःपुनररिन्दमाः २ अपृच्छत् क्षत्रियांस्तत्र क्व नु राजा महारथः । शकुनेस्तु वचः श्रुत्वा त ऊचुर्भरतर्षभ ॥ ३ ॥ असौ तिष्ठति कौरव्यो रणमध्ये महारथः । यत्रैतत् सुमहच्छत्रं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ॥४॥ यत्रैते सत-

विमानोंसे गिरने वाले सिद्धोंकी समान रथी रथों परसे और हाथीसवार हाथियों परसे गिरने लगे ॥ ६० ॥ इस प्रकार तयार हुए योधा महायुद्धमें पिता, भाई, मित्र और पुत्रोंका संहार कर रहे थे ॥ ६१ ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ ! प्रास, तलवार और वाणोंसे पूर्ण भयंकर युद्ध इस प्रकार मर्यादाको छोड़ कर होने लगा ॥ ६२ ॥ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ छ

सञ्जयने कहा कि– हे धृतराष्ट्र ! पाण्डवोंने सैनिकोंका संहार कर डाला, तब धीरे धीरे कोलाहल बन्द होने पर सुबलका पुत्र शकुनि बाकी बचे हुए सातसौ घुड़सवारोंको साथ ले शीघ्रतासे दुर्योधनकी सेनामें पहुँचा और कहने लगा कि –हे शत्रुनाशको ! हर्षमें भर कर वारंवार युद्ध करो ॥ १–२ ॥ और क्षत्रियोंसे बूझने लगा कि–महाबली दुर्योधन कहाँ है, शकुनिकी बात सुन उन्होंने शकुनिसे कहा कि॥ ३ ॥ महाबली कुरुराज दुर्योधन वहाँ रणके बीचमें खड़ा है जहाँ वह पूर्णचन्द्रमा

नुयाणा रथास्तिष्ठन्ति दंशिताः। यत्रैष शब्दस्तुमुलः पर्जन्यनिन-
दोपमः ॥ ५ ॥ तत्र गच्छ द्रुतं राजंस्ततो द्रक्ष्यसि कौरवम्। एव-
मुक्तस्तु तैः शूरैः शकुनिः सौबलस्तदा ॥६॥ प्रययौ तत्र यत्रासौ
पुत्रस्तव नराधिप। सर्वतः संवृतो वीरैः समरे चित्रयोधिभिः ॥ ७ ॥
ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा रथानीके व्यवस्थितम्। स रथांस्तावकान्
सर्वान् हर्षयन् शकुनिस्ततः ॥ ८ ॥ दुर्योधनमिदं वाक्यं हृष्टरूपो
विशाम्पते। कृतकार्यमिवात्मानं मन्यमानोऽब्रवीन्नृपम् ॥ ९ ॥ जहि
राजन्रथानीकमश्वाः सर्वे जिता मया। नात्यक्त्वा जीवितं संख्ये
शक्यो जेतुं युधिष्ठिरः ॥ १० ॥ हते तस्मिन् रथानीके पाण्डवे-
नाभिपालिते। गजानेतान् हनिष्यामः पदातींश्चेतरांस्तथा ॥११॥
श्रुत्वा तु वचनं तस्य तावका जयगृद्धिनः। जवेनाभ्यद्रवन् हृष्टाः
पाण्डवानामनीकिनीम् १२ सर्वे विवृततूणीराः प्रगृहीतशरासनाः।

की समान छत्र दीख रहा है ॥ ४ ॥ और क्रोधी रथी कवच पहिने खड़े हैं तथा जहाँ बादलों के गर्जनेकी समान तुमुल शब्द होरहा है ॥ ५ ॥ तुम तहाँ शीघ्रतासे जाओ तो तुम्हें दुर्योधन मिल जायगा, सुबलपुत्र शकुनि उन योधाओंके ऐसा कहने पर ॥६॥ हे नराधिप ! रणमें विचित्ररीतिसे युद्ध करने वाले वीरोंसे घिरा हुआ दुर्योधन जहाँ खड़ा था, तहाँ गया ॥ ७ ॥ और दुर्योधनको रथसेनाके वीचमें खडा देख शकुनि प्रसन्न हो अपने को कृतार्थ मान सकल रथियोंको प्रसन्न करता हुआ दुर्योधनसे कहने लगा कि —॥ ८—९॥ हे राजन् ! मैंने घुड़सवार सेनाका नाश कर डाला, अब तुम रथसेनाका संहार करो, क्योंकि प्राण त्यागे बिना युधिष्ठिर जीतनेमें नहीं आसकते ॥ १० ॥ पाण्डवों से रक्षित रथसेनाका संहार होने पर हम इस गजसेनाका संहार करेंगे तथा दूसरे पैदल आदिको मार डालेंगे ॥ ११ ॥ उसकी बात सुन जीतना चाहने वाले तुम्हारे सैनिक हर्षमें भर पांडव-सेना पर टूट पड़े ॥ १२ ॥ उन्होंने अपने भाथोंको खोल दिया

शरासनानि धुन्वाना सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ १३ ॥ ततो ज्यातल-निर्घोषः पुनरासीद्विशाम्पते । प्रादुरासीच्छराणाञ्च विमुक्तानां सुदारुणः ॥ १५ ॥ तान् समीपगतान् दृष्ट्वा जवेनोद्यतकार्मुकान् । उवाच देवकीपुत्रं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ १४ ॥ चोदयाश्वानसं-भ्रान्तः प्रविशैनं बलार्णवम् । अन्तमद्य गमिष्यामि शत्रूणां नि-शितैः शरैः ॥ १६ ॥ अष्टादश दिनान्यद्य युद्धस्यास्य जनार्दन । वर्त्तमानस्य महतः समासाद्य परस्परम् १७ अनन्तकल्पा ध्वजिनी भूत्वा ह्येषां महात्मनाम् । क्षयमद्य गता युद्धे पश्य दैवं यथाविधम् १८ समुद्रकल्पं च बलं धार्त्तराष्ट्रस्य माधव । अस्मानासाद्य संजातं गो-ष्पदोपममच्युत१९हते भीष्मे तु संदध्याच्छिवं स्यादिह माधव । न च तत् कृतवान् मूढो धार्त्तराष्ट्रः सुबालिशः ॥ २० ॥ उक्तं भीष्मेण यद्वाक्यं हितं पथ्यञ्च माधव । तच्चापि नासौ कृतवान्

था और उन सबोंके पास धनुष थे, उन धनुषों को घुमाते हुए वे सिंहसमान गर्जना करने लगे ॥१३॥हे राजन् ! फिर वेगमें भर छोड़े हुए बाण और धनुषों की प्रत्यञ्चाका घोर शब्द होने लगा ॥ १४ ॥ धनुषको चढ़ा झपटते हुए कौरवों को देख अर्जुन श्रीकृष्णसे कहने लगा कि ॥ १५ ॥ "हे केशव ! तुम सावधान हो घोड़ों को हाँकतेहुए कौरवोंके सेनारूपी समुद्रमें जा पहुँचो, हे जनार्दन ! आज मैं तेज किए हुए बाण मार कर शत्रुओंको समाप्त कर दूँगा, आपसमें लड़ते २ आज हमें अठारह दिन बीत गए ॥ १६-१७ ॥ इन महात्मा कौरवोंकी (सेना) अनन्त थी वह नष्ट होगई, यह दैवकी लीला है, ॥१८॥हे माधव ! कौरवोंकी सेना समुद्रकी समान (अपार) थी वह हमारे सामने आ कर गौके खुरकी समान होगई१९मेरा ध्यान था कि—भीष्मजीके मरने पर संधि होकर शान्ति होजायगी, परंतु महामूर्ख धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने संधि न की २०हे माधव!भीष्मजीने सच्ची और हितकारी बात कही थी, परन्तु बुद्धि मारी जानेके कारण दुर्योधनने उनकी

वीतबुद्धिः सुयोधनः ॥ २१ ॥ तस्मिंस्तु निहते भीष्मे प्रच्युते पृथिवीतले । न जाने कारणं किन्नु येन युद्धमवर्त्तत ॥२२॥ मूढांस्तु सर्वथा मन्ये धार्त्तराष्ट्रान् सुबालिशान् । पतिते शान्तनोः पुत्रे येऽकार्षुः संयुगं पुनः ॥ २३ ॥ अनन्तरञ्च निहते द्रोणे ब्रह्मविदाम्वरे । राधेये च विकर्णे च नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २४ ॥ अल्पावशिष्टे सैन्येऽस्मिन् सूतपुत्रे च पातिते। सपुत्रे वै नरव्याघ्रे नैवाशाम्यत वैशसम् ॥२५॥ श्रुतायुपि हते शूरे जलसन्धे च पौरवे । श्रुतायुधे च नृपतौ नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २६ ॥ भूरिश्रवसि शल्ये च शाल्वे चैव जनार्दन । आवन्त्येषु च वीरेषु नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २७ ॥ जयद्रथे च निहते राक्षसे चाप्यलायुधे । वाह्लीके सोमदत्ते च नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २८ ॥ भगदत्ते हते शूरे काम्बोजे च सुदक्षिणे । दुःशासने च निहते नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा च निहतान् शूरान् पृथङ्मांडलिकान्नृपान्

बात पर ध्यान ही नहीं दिया ॥ २१ ॥ तुमुल युद्धमें भीष्मजीके भूमिशायी होने पर भी न जाने किस कारण से युद्ध चल रहा है ॥ २२ ॥ मैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंको महामूढ़ समझता हूँ, उन्होंने भीष्मके मरनेके बाद भी युद्ध किया ॥ २३ ॥ इसके पीछे ब्रह्मज्ञोंमें श्रेष्ठ द्रोणके मारे जाने पर तथा कर्ण और विकर्णके मारे जानेपर भी युद्ध बन्द न हुआ ॥ २४ ॥ नरव्याघ्र कर्णके पुत्रसहित मारे जाने पर और सेनाके थोड़ी सी बच रहने पर भी युद्ध बन्द नहीं हुआ ॥ २५ ॥ वीर श्रुतायु, पौरव जलसन्ध और राजा श्रुतायुधके मरने पर भी युद्ध शान्त न हुआ ॥ २६ ॥ हे जनार्दन ! भूरिश्रवा, शल्य, शाल्व और अवन्तिके वीरोंके मरने पर भी रणचण्डी तृप्त न हुई ॥ २७ ॥ जयद्रथ, वाल्हीक, राक्षस अलायुध, और सोमदत्तके रणमें गिरनेपर भी युद्ध बंद न हुआ २८ शूर भगदत्त, दारुण काम्बोज और दुःशासनके मरने पर भी युद्ध बन्द न हुआ ॥२९॥ रणमें पृथक् २ मण्डलोंके शूरवीर बली

बलिनश्च रणे कृष्ण नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ ३० ॥ अक्षौहिणी-
पतीन् दृष्ट्वा भीमसेनेन पातितान्। मोहाद्वा यदि वा लोभान्नैवा-
शाम्यत वैशसम् ॥ ३१ ॥ को नु राजकुले जातः कौरवेयो विशे-
षतः। निरर्थकं महद्वैरं कुर्यादन्यः सुयोधनात् ॥ ३२ ॥ गुणतो-
ऽभ्यधिकं ज्ञात्वा बलतः शौर्यतोपि वा। अमूढः को नु युध्येत
जानन् प्राज्ञो हिताहितम् ॥ ३३ ॥ यन्न तस्य मनो ह्यासीत्त्वयो-
क्तस्य हितस्य च। प्रशमे पाण्डवैः सार्द्धं सोऽन्यस्य शृणुयात् कथम् ३४
येन शान्तनवो भीष्मो द्रोणो विदुर एव च। प्रत्याख्याताः शमस्यार्थे
किन्नु तस्याद्य भेषजम् ॥ ३५ ॥ मौढ्याद्येन पिता वृद्धः प्रत्या-
ख्यातो जनार्दन। तथा माता हितं वाक्यं भाषमाणा हितैषिणी
॥ ३६ ॥ प्रत्याख्याता ह्यसत्कृत्य स कस्माद्रोचयेद्वचः। कुलान्त-
करणो व्यक्तं जात एष जनार्दन ॥ ३७ ॥ तथास्य दृश्यते चेष्टा

राजाओंको मारे गये देख कर भी हे कृष्ण ! रण चलता ही रहा ॥ ३० ॥ भीमसेनने अक्षौहिणीपतियोंको मारडाला यह देख कर भी लोभ या मोहके कारण युद्ध बन्द न हुआ ॥ ३१ ॥ राजवंशमें उत्पन्न हुआ और उसमेंभी कुरुवंशमें उत्पन्न हुआ दुर्योधनके सिवाय और कौन पुरुष निरर्थक वैर बाँधेगा ॥ ३२ ॥ गुण, बल और शूरतामें भी अपनेसे अधिक पुरुषके साथ, हित अहितको विचारने वाला कौन बुद्धिमान् युद्ध करेगा ? ॥ ३३ ॥ तुमने जो हितकारी बात कही थी वही जब उसके मनमें न बैठी तब वह दूसरेकी कही, पाण्डवोंकी हितकारी बात पर कैसे ध्यान देसकता था ॥ ३४ ॥ जिसने वीर भीष्म, द्रोण और विदुरकी भी संधिके विषयमें एक न सुनी उसकी अब क्या औषध है ? ॥ ३५ ॥ हे जनार्दन ! जिसने मूर्खतासे पिताका अपमान किया और हित चाहने वाली माताके हितकारक वचन कहने पर उसका भी अनेक बार तिरस्कार किया उस दुर्योधनको और किसकी बात अच्छी लगेगी ? हे जनार्दन ! निश्चय ही दुर्योधन कुलका

नीतिश्चैव विशाम्पते: । नैव दास्यति नो राज्यमिति मे मतिरच्युत ॥ ३८ ॥ उक्तोहं बहुशस्तात विदुरेण महात्मना । न जीवन् दास्यते भागं धार्त्तराष्ट्रस्तु मानद ॥ ३६ ॥ यावत् प्राणा धरिष्यंन्ति धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः । तावद्युस्मासु पापोसौ प्रचरिष्यति पातकम् ॥ ४० ॥ न च शक्योन्यथा जेतुमृते युद्धेन माधव । इत्यब्रवीत् सदा मां हि विदुरः सत्यदर्शनः ॥ ४१ ॥ तत् सर्वमद्य जानामि व्यवसायं दुरात्मनः । यदुक्तं वचनं तेन विदुरेण महात्मना ॥ ४२ ॥ यो हि श्रुत्वा वचः पथ्यं जामदग्न्याद्यथातथम् । अवामन्यत दुर्बुद्धिर्ध्रुवं नाशमुखे स्थितः ॥ ४३ ॥ उक्तं हि बहुभिः सिद्धैर्जातमात्रे सुयोधने । एनं प्राप्य दुरात्मानं क्षयं क्षत्रं गमिष्यति ॥ ४४ ॥ तदिदं वचनं तेषां निरुक्तं वै जनार्दन । क्षयं याता

संहार करनेवाला ही उत्पन्न हुआ है ॥ ३६—३६ ॥ इसके काम और नीति भी ऐसी ही मालूम होती है, हे कृष्ण ! मेरी समझ में तो यह हमें राज्य नहीं देगा ॥ ३८ ॥ हे तात ! हे मेरा मान करनेवाले कृष्ण ! महात्मा विदुरने मुझसे बहुत वार कहा था, कि-दुर्योधन जबतक जीवित है, तुम्हें राज्यका भाग नहीं देगा ३६ दुष्टबुद्धि दुर्योधनके शरीरमें जबतक प्राण रहेंगे तबतक वह तुम निर्दोषोंका बुरा ही करता रहेगा ॥ ४० ॥ हे माधव ! सत्य विचारवाले विदुरजी मुझसे सदा ही कहा करते थे, कि—युद्धके सिवाय और किसी प्रकार भी दुर्योधन को नहीं जीता जा सकता ॥ ४१ ॥ महात्मा विदुरने मुझसे जो बात कही थी, दुर्योधनका सब उद्योग मैं उसके अनुसार ही देखरहा हूँ ॥४२॥ दुष्टमति दुर्योधनसे परशुरामजीने हितकारी वचन कहे थे, इसने उनकी भी नहीं सुनी, इसलिये निःसन्देह इसका नाश समीपमें ही है ॥ ४३ ॥ जब दुर्योधनका जन्म हुआ था तब बहुतसे सिद्ध पुरुषोंने कहा था, कि—इस दुष्टात्माके कारणसे क्षत्रियोंका संहार होगा ॥ ४४ ॥ हे जनार्दन ! उनकी बात आज सच्ची

हि राजानो दुर्योधनकृते भृशम् ॥ ४५ ॥ सोऽद्य सर्वान्रणे योधान्निहनिष्यामि माधव । क्षत्रियेषु हतेष्वद्य शून्ये च शिविरे कृते ४६ वधाय चात्मनोऽस्माभिः संयुगं रोचयिष्यति । तदन्तं हि भवेद्वैरमनुमानेन माधव ॥ ४७ ॥ एवं पश्यामि वार्ष्णेय चिंतयन् प्रज्ञया स्वया । विदुरस्य च वाक्येन चेष्टया च दुरात्मनः ४८ तस्माद्याहि चमूं वीर यावद्धन्मि शितैः शरैः । दुर्योधनं महाबाहो वाहिनीं चास्य संयुगे ॥ ४९ ॥ क्षेममद्य करिष्यामि धर्मराजस्य माधव । हत्वैतद् दुर्बलं सैन्यं धार्त्तराष्ट्रस्य पश्यतः ॥ ५० ॥ सञ्जय उवाच । अभीषुहस्तो दाशार्हस्तथोक्तः सव्यसाचिना । तद्बलौघममित्राणामभीतः प्राविशद्बलात् ॥ ५१ ॥ शरासनवनं घोरं शक्तिकण्टक-

होरही है, क्योंकि-दुर्योधनके कारणसे राजाओंका खूब ही संहार हुआ है ॥ ४५ ॥ हे माधव ! अब मैं आज रणमें सब योधाओंका संहार करडालूंगा और क्षत्रियोंके मारेजाने पर शत्रुओंकी छावनी शीघ्र ही सूनी होजायगी ।४६। तब दुर्योधन अपना नाश करनेके लिये हमारे साथ युद्ध करना चाहेगा और हे माधव ! अनुमान होता है, कि-इसके मरणसे वैरका अन्त होजायगा ४७ हे कृष्ण ! अपनी बुद्धिसे विचारने पर, विदुरजीकी बात पर ध्यान देनेसे और इस दुष्टात्माकी करतूतसे मुझे ऐसा ही दीखता है ॥ ४८ ॥ इसलिये हे महाबाहु वीर कृष्ण ! आप मुझे दुर्योधनकी सेनामें ले चलिये, कि-जिससे मैं रणमें तेज किए हुए बाणोंसे दुर्योधनका और उसकी सेनाका संहार करूँ ॥ ४९ ॥ हे माधव ! मैं आज दुर्योधनके सामने उसकी इस दुर्बल सेनाका संहार करके धर्मराजका कल्याण करूँगा ॥ ५० ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! अर्जुनके ऐसा कहने पर श्रीकृष्णने घोड़ों की डोरियोंको हाथमें पकड़ कर निर्भयताके साथ बलपूर्वक शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश किया ॥ ५१ ॥ कौरवसेना भाले तलवार और बाणोंके कारण भयानक थी, शक्तिरूप कांटोंसे भरी

संकुलम् । गदापरिघपन्थानं रथनागमहाद्रुमम् ॥ ५२ ॥ हयपत्ति-लताकीर्णं गाहमानो महायशाः । व्यरोचत्तत्र गोविन्दो रथेनाति-पताकिना ॥ ५३ ॥ ते हयाः पाण्डुरा राजन् वहन्तोऽर्जुनमाहवे । दिक्षु सर्वास्वदृश्यन्त दाशार्हेण प्रचोदिताः ॥ ५४ ॥ ततः प्राया-द्रथेनासौ सव्यसाची परन्तपः । किरञ्छरशतांस्तीक्ष्णान् वारि-धारा इवाम्बुदः ॥ ५५ ॥ प्रादुरासीन्महाशब्दः शराणां नतपर्व-णाम् । इषुभिश्छाद्यमानानां समरे सव्यसाचिना ॥५६॥ असज्ज-न्तस्तनुत्रेषु शरौघाः प्रापतन् भुवि । इन्द्राशनिसमस्पर्शा गाण्डीव-प्रेषिताः शराः ॥ ५७ ॥ नरान्नागान् समाहत्य हयांश्चापि वि-शाम्पते । अपतन्त रणे बाणाः पतङ्गा इव घोषिणः ॥ ५८ ॥ आसीत् सर्वमवच्छन्नं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः । न प्राज्ञायन्त समरे

हुई था, उसमें गदा और परिघोंका मार्ग था, उसमें रथ और हाथीरूप बड़े २ वृक्ष थे ॥ ५२ ॥ घोड़े और पैदलरूप लताओं से पिचपिच थी, महायशा गोविन्द बड़ी पताकावाले रथमें बैठकर उस शत्रुसेनारूप वनमें जाघुसे और घूमनेलगे ॥५३॥ हे राजन् ! श्रीकृष्ण अर्जुनके स्वेत घोड़ोंको रणमें हांकते हुए चारों ओर को देखते जाते थे ॥ ५४ ॥ परन्तप अर्जुन उन घोड़ोंसे दिपते हुए रथमें बैठकर रणमें गया और मेघ जैसे जलकी धारोंको बरसावे तैसे तीखे बाणोंको बरसाने लगा ॥ ५५ ॥ उस समय रणभूमिमें गाण्डीव धनुषमेंसे अर्जुनके छोड़े नमेहुए पर्ववाले बाणोंका बड़ाभारी शब्द होनेलगा ॥ ५६ ॥ गाण्डीवमेंसे छोड़े हुए इन्द्रकी समान तीक्ष्ण स्पर्शवाले बाण योधाओंके बख्तरोंको फोड़कर तहां अटके न रहे किन्तु भूमिमें आकर गिरने लगे ५७ उस समय अर्जुनके बाण रणमें मनुष्य हाथी और घोड़ोंका नाश करके पतङ्गोंकी समान शब्द करते हुए भूमिमें गिरते थे ५८ गाण्डीवसे छूटेहुए बाणोंसे सब ढकगया, दिशाओंमें या कोनोंमें

दिशो वा विदिशोपि वा ॥ ५६ ॥ सर्वमासीज्जगत् पूर्णं पार्थनामाङ्कितैः शरैः । रुक्मपुंखैस्तैलधौतैः कर्मारपरिमार्जितैः ॥ ६० ॥ ते दह्यमानाः पार्थेन पावकेनेव कुञ्जराः । समासीदन्त कौरव्या वध्यमानाः शितैः शरैः ॥ ६१ ॥ शरचापधरः पार्थः प्रज्वलन्निव भास्करः । ददाह समरे योधान् कक्षमग्निरिव ज्वलन् ॥ ६२ ॥ यथा वनान्ते वनगैर्विसृष्टः कक्षं दहेत् कृष्णगतिः सुघोषः । भूरिद्रुमं शुष्कलतावितानं भृशं समृद्धो ज्वलनः प्रतापी ॥ ६३ ॥ एवं स नाराचगणप्रतापी शरार्चिरुच्चावचतिग्मतेजाः । ददाह सर्वां तव पुत्रसेनाममृष्यमाणस्तरसा तरस्वी ॥ ६४ ॥ तस्येषवः प्राणहराः सुमुक्ता नासज्जन् वै वर्म्मसु रुक्मपुंखाः । न च द्वितीयं प्रमु-

कुछ नहीं दीखता था, तेल पिलायेहुए, कारीगरोंके घिसकर साफ कियेहुए सुनहरी परोंवाले और अर्जुनका नाम खुदेहुए बाणोंसे मानो सब जगत् ढकगया था ॥ ५६ ॥ ६० ॥ जैसे अग्नि वनमें हाथियोंको जलाता है तैसे ही अर्जुन भी रणमें तेज बाणोंसे योधाओंको मार रहा था और विकराल योधा भी अर्जुन के सामने ही डटे रहकर उसके बाणोंको सह रहे थे ॥ ६१ ॥ धधकता हुआ अग्नि जैसे घासके ढेरको जलाकर भस्म करडालता है तैसे ही तपते हुए सूर्यकी समान धनुष और बाणोंको धारण करनेवाला अर्जुन भी उस समय रणमें योधाओंको भस्म कर रहा था ॥ ६२ ॥ जैसे वनमें भीलोंका जलाया हुआ प्रकाशवान् अग्नि बढकर भड़भड़ाहटका शब्द करताहुआ घास, बड़े २ वृक्ष और सूखीहुई लताओंके गुच्छोंको जला डालता है तैसे ही अत्यन्त तीक्ष्ण तेजवाला, बाणरूप ज्वाला वाला तथा बाणोंके समूह से प्रतापी, असहनशील वेगधारी अर्जुन भी तुम्हारे पुत्रोंकी सब सेनाको रणमें जला रहा था । ६३–६४ ॥ प्राणलेवा और सुनहरी परोंवाले अर्जुनके बाण योधाओंके कवचोंमें उलझे न रहकर किन्तु उनको मारकर पृथिवी पर गिर रहे थे, अर्जुन

मोच वाणं नरे हये वा परमद्विपे वा ॥ ६५ ॥ अनेकरूपाकृतिभिर्हि वाणैर्महारथानीकमनुप्रविश्य । स एव एकस्तव पुत्रसेनां जघान दैत्यानिव वज्रपाणिः ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि अर्जुनपराक्रमे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सञ्जय उवाच । पश्यतां यतमानानां शूराणामनिवर्त्तिनाम् । सङ्कल्पमकरोन्मोघं गांडीवेन धनञ्जयः ॥ १ ॥ इन्द्राशनिसमस्पर्शानविषह्यान्महौजसः । विसृजन् दृश्यते वाणान् धारा मुञ्चन्निवाम्बुदः ॥ २ ॥ तत् सैन्यं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं किरीटिना । संप्रदुद्राव संग्रामात्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ३ ॥ पितॄन् भ्रातॄन् परित्यज्य वयस्यानपि चापरे । हतधुर्य्या रथाः केचिद्धतसूतास्तथा-

---

मनुष्य घोड़े वा बड़े २ हाथियोंके ऊपर दूसरा वाण नहीं छोड़ता था किन्तु एक वाणसे ही उनको मारडालता था ॥ ६५ ॥ हे राजन् ! जैसे अकेले ही वज्रधारी इन्द्रने दैत्योंका संहार किया था तैसे ही अर्जुनने भी अकेले ही महारथियोंकी सेनामें घुसकर भाँति २ के वाण मारे और तुम्हारे पुत्रकी सेनाका संहार करडाला ॥ ६६ ॥ चौवीसवाँ अध्याय ॥ २४ ॥

संजयने कहा कि हे राजन् ! सब वीर पीछेको न हटकर बड़े उद्योगके साथ अस्त्रशस्त्रोंकी मारामार कर रहे थे, तो भी अर्जुनने अकेले ही उनके संकल्पको गाण्डीव धनुषसे निष्फल कर दिया ॥ १ ॥ अर्जुन इन्द्रके वज्रकी समान तीखे स्पर्श वाले, असह्य और महातेजस्वी वाणोंको फेंक रहा था, जो मेघमेंसे वरसती हुई जलधाराओंसे मालूम होते थे ॥ २ ॥ हे भरतसत्तम ! किरीटीकी मार पड़ने पर कौरवसेना तुम्हारे पुत्रके देखते हुए संग्राममेंसे भागने लगी ॥ ३ ॥ कोई पिताओंको, भाइयोंको तथा कोई मित्रोंको छोड़कर भाग गये, किन्हीके रथोंके घोड़े मारे गये

परे ॥ ४ ॥ भग्नेषायुगचक्राक्षाः केचिदासन् विशाम्पते । अन्ये तां सायका चीणास्तथान्ये शरपीडिताः ॥ ५ ॥ अक्षता युगपत् केचित् प्राद्रवन् भयपीडिताः । केचित् पुत्रानुपादाय हतभूयिष्ठवान्धवाः ॥ ६ ॥ विचुक्रुशुः पितॄनन्ये सहायापरे पुनः । बांधवांश्च नरव्याघ्र भ्रातॄन् सम्बन्धिनस्तथा ॥ ७ ॥ दुद्रवुः केचिदुत्सृज्य तत्र तत्र विशाम्पते । बहवोऽत्र भृशं विद्धा मुह्यमाना महारथाः । निश्वसन्ति स्म दृश्यन्ते पार्थवाणाहता नराः । तानन्ये रथमारोप्य आश्वास्याथ मुहूर्त्तकम्। विश्रांताश्च वितृष्णाश्च पुनर्युद्धाय जग्मिरे। तानपास्य गताः केचित् पुनरेव युयुत्सवः ॥१०॥ कुर्वन्तस्तव पुत्रस्य शासनं युद्धदुर्मदाः । पानीयमपरे पीत्वा पर्य्याश्वास्य च वाहनम् ११

तथा किन्हीके सारथी मारे गये ॥ ४ ॥ हे राजन् ! किन्हीके रथों के धुरे, जुए, पहिये और ईषा टूट गये, किन्हींके वाण निबड़ गये और कितने ही वाणोंकी मारसे घबड़ा उठे ॥ ५ ॥ कितने ही घायल तो नहीं हुए, परन्तु भयसे दुःखी होकर एकसाथ भाग गये, जिनके बहुतसे सम्बन्धी मारे गये थे ऐसे कितने ही पुत्रों को लेकर भागगये ॥ ६ ॥ कोई अपने पिताओंको पुकारने लगे, कोई अपने सहायकोंको पुकारने लगे, हे राजन ! कोई बान्धवों को, कोई भाइयोंको और कोई संबन्धियोंको बुलाने लगे ॥७॥ हे राजन् ! कितने ही रणभूमिको छोड़कर जहाँ तहाँको भागगये और बहुतसे महारथी वाणोंसे बहुत ही विंधजानेके कारण मूर्छित हो होकर तहाँ ही पड़ेरहे ॥ ८ ॥ धनञ्जयके वाणोंसे घायल हुए मनुष्य हाँपते हुए दीखते थे, उनको दूसरे योधा रथोंमें बैठा कर दो घड़ीको आश्वासन दे रहे थे ॥ ९ ॥ वे विश्राम लेकर जीवनकी तृष्णा न रखते हुए फिर युद्ध करनेको जारहे थे,कोई युद्धदुर्मद योधा उनको छोड़कर तुम्हारे पुत्रकी आज्ञाका पालन करनेके लिये फिर युद्ध करनेकी इच्छासे रणमें जाडटे और कोई योधा जल पीकर तथा अपने घोड़ोंको आराम देकर लड़ने

वर्माणि च समारोप्य केचित् भरतसत्तम । समाश्वास्यापरे भ्रातॄन् निक्षिप्य शिविरेऽपि च ॥ १२ ॥ पुत्रानन्ये पितॄनन्ये पुनर्युद्धमरोचयन् । सज्जयित्वा रथान् केचित् यथामुख्यं विशाम्पते ॥ १३ ॥ आप्लुत्य पाण्डवानीकं पुनर्युद्धमरोचयन् । ते शूराः किङ्किणीजालैः समाच्छन्ना बभासिरे ॥ १४ ॥ त्रैलोक्यविजये युक्ता तथा दैतेयदानवाः । आगम्य सहसा केचिद्रथैः स्वर्णविभूषितैः ॥१५॥ पाण्डवानामनीकेषु धृष्टद्युम्नमयोधयन् । धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः शिखण्डी च महारथः ॥ १६ ॥ नाकुलिश्च शतानीको रथानीकमयोधयत् । पाञ्चाल्यस्तु ततः क्रुद्धः सैन्येन महता वृतः ॥१७॥ अभ्यधावत् सुसंरब्धस्तावकान् हन्तुमुद्यतः । ततस्त्वापततस्तस्य तव पुत्रो जनाधिप ॥ १८ ॥ बाणसंघाननेकान् वै प्रेषयामास

को चले गये ॥ १०—११ ॥ हे भरतसत्तम ! कितने ही कवच पहन कर, कोई अपने भाइयों, पुत्रों और पिताओंको धीरज देकर तथा उनको छावनीमें छोडकर युद्ध करनेको जारहे थे, कोई अपने रथोंको युद्धकी सामग्रीसे सजाकर उन रथोंमें बैठेहुए फिर युद्ध करनेको पांडवसेनामें प्रवेश कर रहे थे. घूँघरुओंवाले बख्तरोंको पहरेहुए वे योधा त्रिलोकीका विजय करनेको उद्यत हुए दैत्य और दानवोंकी समान शोभा पारहे थे, कौरव पक्षके योधाओंने सुनहरी कामवाले रथोंमें बैठकर पांडवसेना पर चढ़ाई करदी और धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगे. उस समय पंचालकुमार धृष्टद्युम्न, महारथी शिखंडी और नकुलका पुत्र शतानीक तुम्हारी रथसेनाके साथ लड रहे थे, तदनन्तर धृष्टद्युम्न को बडा ही क्रोध आया और वह बडी भारी सेनाको साथ लेकर ॥१२—१७॥ बड़े क्रोधमें भराहुआ तुम्हारे योधाओंका संहार करनेको उद्यत होगया, हे राजन् ! उसको चढकर आया देखकर हे भारत ! तुम्हारे पुत्रने उसके ऊपर बहुतसे बाण छोड़े, धृष्टद्युम्नने भी शीघ्र गति वाले

भारत । धृष्टद्युम्नस्ततो राजंस्तव पुत्रेण धन्विना ॥ १९ ॥ नाराचैरर्धनाराचैर्बहुभिः क्षिप्रकारिभिः । वत्सदन्तैश्च बाणैश्च कर्मारपरिमार्जितैः ॥२०॥ अश्वांश्च चतुरो हत्वा बाह्वोरुरसि चार्पयत् । सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ २१ ॥ तस्याश्वांश्चतुरो बाणैः प्रेषयामास मृत्यवे । सारथेश्चास्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ॥ २२ ॥ ततो दुर्य्योधनो राजा पृष्ठमारुह्य वाजिनः । अपाक्रामद्द्रुततरो नातिदूरमरिन्दमः ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा ह्रतविक्रान्तं स्वमनीकं महाबलः । तव पुत्रो महाराज प्रययौ यत्र सौबलः २४ ततो रथेषु भग्नेषु त्रिसाहस्रा महाद्विपाः । पाण्डवान्रथिनः पञ्च समन्तात् पर्यवारयन् ॥ २५ ॥ ते वृता समरे पञ्च गजानीकेन भारत । अशोभन्त नरव्याघ्र ग्रहा व्याप्ता घनैरिव ॥२६॥ ततोऽ-

---

नाराच और अर्धनाराच नामके बाण तथा वत्सदन्त और कारीगरोंके साफ करे हुए बाण मारकर तुम्हारे धनुर्धारी पुत्रके चारों घोड़ोंको मारडाला और दुर्योधनके दोनो भुजदंडों पर तथा छाती पर बाण मारे, उससे भालोंके प्रहारसे जैसे हाथीको पीडा होती है, ऐसे ही बाणोंकी मारसे दुर्योधनको पीड़ा होने लगी, धृष्टद्युम्नने बाणोंकी मारसे दुर्योधनके चारों घोड़ोंको मार डाला और भल्ल नामक बाणसे उसके सारथीका शिर धड़से अलग करके गिरा दिया ॥ १८—२२ ॥ अपनी सेनाको पराक्रमरहित देखकर तथा अपने सारथी और घोड़ोंको मराहुआ देखकर शत्रुओंका दमन करनेवाला तुम्हारा पुत्र दुर्योधन दूसरे घोड़ेकी पीठ पर चढ़ बैठा और पास ही शकुनिके पासको दौड़ गया ॥ २३ ॥ २४ ॥ इस प्रकार हे महाराज ! रथसेनाका नाश होजानेसे हमारी सेनाके तीन हजार बड़े २ हाथियोंने महारथी पाण्डवोंको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २५ ॥ हमारी हस्तिसेनाने पाँचों पाण्डवोंको घेर लिया उस समय पांडव मेघोंसे घिरे हुए ग्रहोंकी समान शोभा पाने

र्जुनो महाराज लब्धलक्षो महाभुजः । विनिर्ययौ रथेनैव श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ २७ ॥ तैः समन्तात् परिवृतः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः । नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्गजानीकमयोधयत् ॥ २८ ॥ तत्रैकबाणनिहतानपश्याम महागजान् । पतितान् पात्यमानांश्च निर्भिन्नान् सव्यसाचिना ॥ २९ ॥ भीमसेनस्तु तान् दृष्ट्वा नागान्मत्तगजोपमः । करेणादाय महतीं गदामभ्यद्रवद्बली ॥ ३० ॥ अथाप्लुत्य रथात्तूर्णं दण्डपाणिरिवान्तकः । तमुद्यतगदं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथम् ॥ ३१ ॥ वित्रेसुस्तावकाः सैन्याः शकृन्मूत्रे प्रसुस्रुवुः । आविग्नञ्च बलं सर्वं गदाहस्ते वृकोदरे ॥ ३२ ॥ गदया भीमसेनेन भिन्नकुम्भान् रजस्वलान् । धावमानानपश्याम कुञ्जरान् पर्वतोपमान् ॥ ३३ ॥ प्राद्रवन् कुञ्जरास्ते तु भीमसेनगदाहताः । पेतुरार्त्तस्वरं कृत्वा

लगे ॥ २६ ॥ हे महाराज ! बड़ी भुजाओंवाला और लक्ष्यवेधी अर्जुन, कि—जिसके सारथी श्रीकृष्ण थे वह भी पर्वतोंकी समान ऊँचे हाथियोंसे उस समय घिर गया, फिर वह हस्तिसेना से बाहर निकला और निर्मल तथा तीखे नाराचोंसे हाथियोंके साथ लड़ने लगा, वह एक २ बाणसे बड़े २ हाथियोंको मारकर भूमि पर गिरा रहा था, उन बाणोंके लगनेसे मरकर गिरे हुए हाथियोंको हमने देखा था ॥ २७—२९ ॥ मतवाले हाथीकी समान भीमसेन हस्तिसेनाको देखकर, हाथमें बड़ी भारी गदाको ले दंडधारा यमराजकी समान तुरन्त रथमेंसे पृथिवी पर कूदपड़ा, उस पाण्डवोंके महारथीको गदा लेकर आते हुए देखते ही तुम्हारी सेनाके योधा घबड़ा गये, उनका मल मूत्र निकल पड़ा, भीमसेन ने जिस समय हाथमें गदा ली, उसी समय सब सेनाओंमें त्रास फैल गया ॥ ३०-३२ ॥ फिर भीमसेनने गदासे पहाड़की समान ऊँचे मतवाले हाथियोंके मस्तक तोड डाले और हाथी इधर उधर को भागने लगे, यह हमने देखा था ॥ ३३ ॥ भीमकी गदाकी मारसे हाथी चिंघाड़तेहुए भागने लगे और पंख कटेहुए पर्वतोंकी

छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ ३४ ॥ तान् भिन्नकुम्भान् सुबहून् द्रवमाणानितस्ततः । पतमानांश्च संप्रेक्ष्य वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥३५॥ युधिष्ठिरोपि संक्रुद्धो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ । गार्द्धपत्रैः शितैर्बाणैर्निन्युर्वै यमसादनम् ॥ ३६ ॥ धृष्टद्युम्नस्तु समरे पराजित्य नराधिपम् । अपक्रान्ते तव सुते हयपृष्ठं समाश्रिते ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वा च पाण्डवान् सर्वान् कुञ्जरैः परिवारितान् । धृष्टद्युम्नो महाराज सहसा समुपाद्रवत् ॥ ३८ ॥ पुत्रः पाञ्चालराजस्य जिघांसुः कुञ्जरान् ययौ । अदृष्ट्वा तु रथानीके दुर्योधनमरिन्दमम् ॥ ३९ ॥ अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः । अपृच्छन् क्षत्रियांस्तत्र क्व नु दुर्योधनो गतः ॥ ४० ॥ अपश्यमाना राजानं वर्त्तमाने जनक्षये । मन्वाना निहतं तत्र तव पुत्रं महारथाः ॥ ४१ ॥

समान पृथिवी पर गिरने लगे ३४ जिनके कुंभस्थल फट गए थे ऐसे हाथी इधर उधरको भाग रहे थे और भूमि पर गिर रहे थे, यह देख कर तुम्हारे योधा डर गये ॥ ३५ ॥ क्रोधमें भरे हुए युधिष्ठिर और माद्रीके दोनों पुत्र, गिद्ध पक्षीके परोंवाले तीखे बाण मारकर तुम्हारे योधाओंको यमपुरीमें भेज रहे थे ॥ ३६ ॥ जब धृष्टद्युम्नने संग्राममें तुम्हारे पुत्रोंको हरादिया और वह घोड़े पर चढ़कर शकुनिके पासको भागगया, उसी समय हस्तिसेनाने पाण्डवोंको घेर लिया था, यह देखकर उन हाथियोंका नाश करनेके लिये पंचालकुमार धृष्टद्युम्न एक साथ राजा युधिष्ठिरके पासको दौड़गया ॥ ३७—३८ ॥ इस समय अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वबंशी कृतवर्माने रथसेनामें शत्रुओंका दमन करनेवाले दुर्योधनको खोजा, परन्तु वह दीखा नहीं, तब वे क्षत्रियों से बूझने लगे कि-दुर्योधन कहां है ? ॥ ३९-४० ॥ इस समय मनुष्योंका संहार चल रहा था, और महारथी तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको न देखनेसे यह समझने लगे, कि—दुर्योधन मारा गया

विवर्णवदना भूत्वा पर्य्यपृच्छन्त ते सुतम् । आहुः केचिद्धते सूते
मयातो यत्र सौवलः ॥ ४२ ॥ हित्वा पाञ्चालराजस्य तदनीकं
दुरुत्सहम् । अपरे त्वब्रुवंस्तत्र क्षत्रिया भृशविक्षताः ॥ ४३ ॥
दुर्योधनेन किं कार्यं द्रक्ष्यध्वं यदि जीवति । युध्यध्वं सहिताः
सर्वे किं वो राजा करिष्यति ॥ ४४ ॥ ते क्षत्रियाः क्षतैर्गात्रैर्हत-
भूयिष्ठवांधवाः । शरैः संपीड्यमानाश्च नातिव्यक्तमथाब्रुवन् ४५
इदं सर्वं वलं हन्मो येन स्म परिवारिताः । एते सर्वे गजान् हत्वा
उपायान्ति स्म पाण्डवाः ॥ ४६ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तेषामश्वत्थामा
महावलः । भित्त्वा पाञ्चालराजस्य तदनीकं दुरुत्सहम् ॥ ४७ ॥
कृपश्च कृतवर्मा च मययुर्यत्र सौवलः । रथानीकं परित्यज्य शराः

॥ ४१ ॥ और निस्तेज मुख होकर तुम्हारे पुत्रका समाचार बू-
झने लगे, कोई कहने लगे कि सारथी और रथके घोडे मारे
जाने पर वह पंचालराजकी असह्य सेनाको छोड़कर शकुनिके
पास चला गया है, तब असह्य घायल हुए दूसरे क्षत्रिय बोले
कि—तुम्हें दुर्योधनसे क्या काम है ? यदि वह जीवित होगा तो
तुम्हारे देखनेमें आजायगा, इस समय तो हम सबको इकट्ठे हो-
कर शत्रुसे लड़ना चाहिये, राजा तुम्हारी क्या सहायता करेगा?
४२-४४ उन क्षत्रियोंके शरीर घायल हो रहे थे, उनके वाहन भी
प्रायः मारे गये थे, वाणोंके प्रहारसे उनके वेदना हो रही थी, उन्होंने
स्पष्टरूपसे केवल इतना ही कहा, और कुछ भी नहीं कहा, कि-ये सब
पांडव हमारी हस्तिसेनाका संहार करके हमारे ऊपर चढ़ आये,
इसलिये हम जिस सेनासे घिर गये हैं, उस सब सेनाका हम
नाश कर डालें ॥ ४५-४६ ॥ महाबलवान् दृढ़धनुषधारी वीर
अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्माने उन क्षत्रिय योधाओंकी
इस वातको सुनकर पंचालराजकी महाभयङ्कर सेनाकी पंक्तिको
तोड़ डाला और रथसेनाको छोड़कर शकुनिके पास जापहुँचे

सुदृढधन्विनः ॥ ४८ ॥ ततस्तेषु प्रयातेषु धृष्टद्युम्नपुरस्कृताः । आ-
ययुः पाण्डवा राजन् विनिघ्नन्तः स्म तावकान् ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वा तु
तानापततः संप्रहृष्टान् महारथान् । पराक्रान्तांस्तथा वीरान्निराशा
जीविते तदा ॥ ५० ॥ विवर्णमुखभूयिष्ठमभवत्तावकं बलम् ।
परिक्षीणायुधान् दृष्ट्वा तानहं परिवारितान् ॥५१॥ राजन् बलेन
व्यङ्गेन त्यक्त्वा जीवितमात्मनः । आत्मना पञ्चमोऽयुध्यं पा-
ञ्चालस्य बलेन ह ॥ ५२ ॥ तस्मिन् देशे व्यवस्थाप्य यत्र शार-
द्वतः स्थितः । संप्रद्रुता वयं पञ्च किरीटिशरपीडिताः ॥ ५३ ॥
धृष्टद्युम्नं सहानीकं तत्र नोभूद्रणो महान् । जितास्तेन वयं सर्वे
व्यपायाम रणात्ततः ॥ ५४ ॥ अथापश्यं सात्यकिं तमुपायान्तं
महारथम् । रथैश्चतुःशतैर्वीरो माञ्चाभ्यद्रवदाहवे ॥ ५५ ॥

॥ ४७-४८ ॥ हे राजन् ! अश्वत्थामा आदिके चले जाने पर पां-
डवपक्षके योधा धृष्टद्युम्नको आगे करके तुम्हारे सैनिकोंका संहार
करते हुए चढ़ आये ॥ ४६ ॥ उन वीर, पराक्रमी और बडे उ-
त्साही सब महारथियोंको चढ़कर आया हुआ देखकर हमारी
सेनामेंके कितने ही के मुख सूख गये, उन्होंने जीवनकी आशा
छोड़ दी, हे महाराज ! मैं उस सब सेनाको निर्बल और शत्रुओं
से घिरी हुई देख कर जहाँ कृपाचार्य खडे थे तहाँ गया और
उनमें मिलकर पाँचवाँ होगया तथा जीवनकी परवाह न करके
शरीरबलसे धृष्टद्युम्नकी सेनाके साथ लड़ने लगा, उस युद्धमें
अर्जुनने बाण मारकर हम पाँचोंको पीड़ित किया, इसलिये हम
अर्जुनके पाससे हटकर धृष्टद्युम्नके पास गये, तहाँ उनके साथ
हमारा बड़ा भयानक युद्ध हुआ, इस लड़ाईमें धृष्टद्युम्नने हमें
जीत लिया, तब हम सब उस रणमेंसे भाग आये ॥ ५०–५४॥
इतनेमें ही मैंने देखा कि–महारथी सात्यकी हमारे समीप आप-
हुँचा, उस वीरने चार सौ घुड़सवारोंके साथ उस रणमें आकर

धृष्टद्युम्नादहं मुक्तः कथञ्चिच्छ्रान्तवाहनात् । पतितो माधवानीकं दुष्कृती नरकं यथा ५६ तत्र युद्धमभूद्‌ घोरं मुहूर्तमतिदारुणम् । सात्यकिस्तु महाबाहुर्मम हत्वा परिच्छदम् ॥ ५७ ॥ जीवग्राहमगृह्णान्मां मूर्च्छितं पतितं भुवि । ततो मुहूर्तादिव तद्गजानीकमवध्यत ॥ ५८ ॥ गदया भीमसेनेन नाराचैरर्जुनेन च । प्रतिपिष्टैर्महानागैः समन्तात् पर्वतोपमैः ॥ ५९ ॥ नातिप्रसिद्धैव जातिः पाण्डवानामजायत । रथमार्गांस्ततश्चक्रे भीमसेनो महाबलः ॥ ६० ॥ पाण्डवानां महाराज व्यपाकर्षन्महागजान् । अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ६१ ॥ अपश्यन्तो रथानीके दुर्योधनमरिन्दमम् । राजानं मृगयामासुस्तव पुत्रं महारथम् ॥ ६२ ॥ परित्यज्य च

मुझे घेर लिया ॥ ५५ ॥ जिसके घोडे थक गये थे ऐसे धृष्टद्युम्नके चुङ्गलसे मैं ज्यों त्यों छूटा था, इतनेमें ही जैसे कोई पापी नरकमें जापडे ऐसे ही मैं सात्यकीकी सेनामें जा फँसा ॥ ५६॥ तहाँ दो घड़ी तक तो वडा ही दारुण घोर युद्ध हुआ, तहां महाबाहु सात्यकीने मेरे साथकी सब सेनाको मारडाला और मैं मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पडा तथा सात्यकीने मुझे जीता ही पकड लिया, इसी अवसरमें भीमसेनने गदासे और अर्जुन ने बाणोंसे हस्तिसेनाका कचरघांस करडाला, परन्तु पहाड़ोंकी समान वडे २ हाथियोंके मरकर गिरनेसे रणमें पांडवोंका मार्ग रुकगया, इसलिये महाबली भीमसेनने वडे २ हाथियोंको घसीट कर दूर डाल दिया और पांडवोंके रथोंको निकलनेको मार्ग कर दिया, दूसरी ओर अश्वत्थामा कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्मा रथियोंकी सेनामें तुम्हारे अरिदमन महारथी पुत्र दुर्योधनको न देखकर उसको खोजने लगे ॥ ५७-६२ ॥ उस मनुष्योंके संहारके समय दुर्योधनको न देखनेसे घवडाये हुए वे सब

पाञ्चाल्यं प्रयाता यत्र सौबलः ; राज्ञो दर्शनसम्विग्ना वर्त्तमाने जनक्षये ॥ ६३ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि दुर्योधनापयाने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५ ॥

सञ्जय उवाच । गजानीके हते तस्मिन् पाण्डुपुत्रेण भारत । वध्यमाने बले चैव भीमसेनेन संयुगे ॥ १ ॥ चरन्तञ्च तथा दृष्ट्वा भीमसेनमरिन्दमम् । दण्डहस्तं यथा क्रुद्धमन्तकं प्राणहारिणम् २ समेत्य समरे राजन् हतशेषाः सुतास्तव । अदृश्यमाने कौरव्ये पुत्रे दुर्योधने तव ॥ ३ ॥ सोदराः सहिता भूत्वा भीमसेनमुपाद्रवन् । दुर्मर्षणः श्रुतान्तश्च जैत्रो भूरिबलो रविः ॥ ४ ॥ जयत्सेनः सुजातश्च तथा दुर्विषहोऽरिहा । दुर्विमोचननामा च दुष्प्रधर्षस्तथैव च ॥ ५ ॥ श्रुतर्वा च महाबाहुः सर्वे युद्धविशारदाः । इत्येते सहिता भूत्वा तव पुत्रा समन्ततः ॥ ६ ॥ भीमसेनमभिद्रुत्य रुरुधुः सर्वतो दिशम् । ततो भीमो महाराज स्वरथं पुनरा-

---

पंचालनन्दन धृष्टद्युम्नको छोड कर शकुनिके पास गये ॥६३॥ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥ छ ॥ छ

संजय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! युद्धमें भीमसेनके हस्तिसेनाका संहार कर डालने पर जैसे प्राणलेवा काल कोप में भरकर हाथमें दण्ड लिये हुए घूमता है, तैसे ही शत्रुका दमन करनेवाला भीमसेन भी हाथमें गदा लेकर रणमें घूमने लगा उधर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन रणमें कहीं नहीं दीखता था, इसलिये मरने से शेष बचे हुए तुम्हारे पुत्र दुर्मर्षण, श्रुतांत, जैत्र, भूरिबल, रवि, जयत्सेन, सुजात, शत्रुनाशक दुर्विषह, दुर्विमोचन, दुष्प्रधर्ष तथा महाबाहु श्रुतर्वा ये सब युद्ध करनेमें चतुर तुम्हारे पुत्र चारों ओरसे इकट्ठे होगये और भीमसेनके ऊपर धावा करके उसको सब ओरसे घेर लिया, हे महाराज ! तब तो भीमसेन

स्थितः ॥ ७ ॥ मुमोच निशितान् बाणान् पुत्राणां तव मर्मसु ते कीर्यमाणा भीमेन पुत्रास्तत्र महारणे ॥ ८ ॥ भीमसेनमुपासेदुः प्रवणादिव कुञ्जरम् । ततः क्रुद्धो रणे भीमः शिरो दुर्मर्षणस्य ह ॥ ९ ॥ क्षुरप्रेण प्रमथ्याशु पातयामास भूतले । ततोऽपरेण भल्लेन सर्वावरणभेदिना ॥ १० ॥ श्रुतान्तमवधीद्भीमस्तव पुत्रं महारथम् । जयत्सेनं ततो विध्वा नाराचेन हसन्निव ॥ ११ ॥ पातयामास कौरव्यं रथोपस्थादरिन्दमः । स पपात रथाद्राजन् भूमौ तूर्णं ममार च ॥ १२ ॥ श्रुतर्वा च ततो भीमं क्रुद्धो विव्याध ते सुतः । शतेन गृध्रवाजानां शराणां नतपर्वणाम् १३ ततः क्रुद्धो रणे भीमो जैत्रं भूरिबलं रविम् । त्रीनेतांस्त्रिभिरानर्च्छद्विषाग्निप्रतिमैः शरैः ॥ १४ ॥ ते हता न्यपतन् भूमौ स्यन्दनेभ्यो महारथाः । वसन्ते

फिर अपने रथ पर जा चढ़ा ॥ १ ७ ॥ और तुम्हारे पुत्रोंके मर्मस्थानों पर तेज करे हुए बाण छोडने लगा, उस महारणमें भीमसेन आपके पुत्रोंको घायल करने लगा, तब तो जैसे हाथी को तालावमें से बाहर घसीट लावें तैसे ही तुम्हारे पुत्र भी घसीटनेके लिये भीमसेनके पास जा पहुँचे, यह देखकर रणमें भीमसेनको बड़ा क्रोध आया और उसने शीघ्र ही क्षुरप्र नामक बाण से दुर्मर्षणका शिर काटकर भूमि पर गिरा दिया, फिर महारथी भीमने बख्तरको तोडनेवाले भल्ल नामके दूसरे बाणसे तुम्हारे पुत्र श्रुतांतको मार डाला और फिर हँसते२ नाराच नामक बाणसे जयत्सेनको घायल करके रथकी बैठक परसे भूमि पर गिरा दिया, हे राजन् ! वह रथ परसे भूमिमें गिरते ही तत्काल मर गया ॥ ८—१२ ॥ यह देखते ही श्रुतर्वाने कोपमें भरकर नमे हुए पर्व और गिद्धके परोंवाले सौ बाण भीमके मारे ॥ १३ ॥ इससे भीमसेनको बडा क्रोध चढ़ा, तब उसने जैत्र, भूरिबल और रवि इन तीनोंको विष तथा अग्निकी समान तीक्ष्ण तीन बाण मार कर घायल कर दिया ॥ १४ ॥ घायल हुए तीनों महारथी रथों

पुष्पशवला निकृत्ता इव किंशुकाः१५ ततोपरेण तीक्ष्णेन नाराचेन परन्तपः। दुर्विमोचनमाहत्य प्रेषयामास मृत्यवे ॥ १६ ॥ स हतः प्रापतद्भूमौ स्वरथाद्रथिनाम्वरः। गिरेस्तु कूटजो भग्नो मारुतेनेव पादपः॥ १७ ॥ दुष्प्रधर्षं ततश्चैव सुजातञ्च सुतौ तव। एकैकं न्यवधीत् संख्ये द्वाभ्यां द्वाभ्याञ्चमूमुखे ॥ १८ ॥ तौ शिलीमुख-विद्धाङ्गौ पेततू रथसत्तमौ। ततः पतन्तं समरे ह्यभिवीक्ष्य सुतं तव।१९। भल्लेन प्रतिविव्याध भीमो दुर्विषहं रणे। स पपात हतो वाहात् पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ २० ॥ दृष्ट्वा तु निहतान् भ्रातॄन् बहूनेकेन संयुगे। अमर्षवशमापन्नः श्रुतर्वा भीममभ्ययात् ॥ २१ ॥ विक्षिपन् सुमहच्चापं कार्त्तस्वरविभूषितम्। विसृजन् सायकांश्चैव

परसे भूमिमें गिरते हुए ऐसे मालूम हुए, जैसे वसन्त ऋतुमें फूलोंसे लदे हुए ढाकके वृक्ष काटकर गिराये जाते हों ॥ १५ ॥ फिर परन्तप भीमने भल्ल जातिके दूसरे तीक्ष्ण बाणसे दुर्विमोचनको मार डाला ॥ १६ ॥ वह श्रेष्ठ रथी घायल होकर अपने रथमेंसे भूमि पर ऐसे गिरा जैसे पहाड़के शिखर परका वृक्ष वायुसे टूट कर गिरता है ॥ १७ ॥ फिर रणमें सेनाके मुहाने पर दुष्प्रधर्ष और सुजात नामक तुम्हारे पुत्रको हर एकके दो दो बाण मार कर मार डाला ॥ १८ ॥ बाणोंसे जिनके शरीर विधगये थे, ऐसे वे महारथी रणमें गिरकर मरगये, यह देखकर तुम्हारा पुत्र दुर्विषह रणमें चढ़ आया, यह देख कर भीमने उसको भी भल्ल जातिका बाण मार कर रणमें गिरा दिया, वह सब धनुषधारियोंके देखते हुए अपने रथ परसे गिर गया ॥ १९–२० ॥ अकेले भीमसेनने बहुतसे भाइयोंको मार डाला, यह देखकर श्रुतर्वाको क्रोध आगया और वह भीमसेनके ऊपर चढ़ आया ॥ २१ ॥ और सोनेसे मढ़ा हुआ बहुत बड़ा धनुष खेंचकर विष और अग्निकी समान बहुतसे बाण भीमसेनके

विपाग्निप्रतिमान् बहून् ॥ २२ ॥ स तु राजन् धनुश्छित्त्वा पांडवस्य महामृधे । अथैनं छिन्नधन्वानं त्रिंशत्या समवाकिरत् ॥२३॥ ततोऽन्यद्धनुरादाय भीमसेनो महारथः । अवाकिरत्तव सुतं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २४ ॥ महदासीत्तयोर्युद्धं चित्ररूपं भयानकम् । यादृशं समरे पूर्वं जम्भवासवयोर्विभो ॥ २५ ॥ तयोस्तत्र शरैर्मुक्तैर्यमदण्डनिभैः शितैः । समाच्छन्ना धरा सर्वा खञ्च सर्वा दिशस्तथा ॥२६॥ ततः श्रुतर्वा संक्रुद्धो धनुरादाय सायकैः । भीमसेनं रणे राजन् बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २७ ॥ सोतिविद्धो महाराज तव पुत्रेण धन्विना । भीमः संचुक्षुभे क्षुब्धः पर्वणीव महोदधिः ॥ २८ ॥ ततो भीमो रुषाविष्टः पुत्रस्य तव मारिष । सारथिं चतुरश्चाश्वान् बाणैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ २९ ॥ विरथं तं समा-

मारने लगा ॥ २२ ॥ हे राजन्! उस महारणमें श्रुतर्वाने भीमके धनुषको काटडाला और उसके बीस बाण मारे ॥ २३ ॥ महाबली भीमने दूसरा धनुष लेकर तुम्हारे पुत्रके ऊपर बाणोंकी वर्षा करडाली और उससे कहा, कि-खड़ा रह खड़ा रह कहां जाता है ॥ २४ ॥ पहले जंभासुर और इन्द्रका जैसा युद्ध हुआ था, तैसे ही भीम और तुम्हारे पुत्रका महाभयानक और विचित्र युद्ध हुआ ॥ २५ ॥ वे दोनों योधा यमके दण्डकी समान तेज किये हुए बाण एक दूसरेके मार रहे थे, उनसे सब पृथिवी, आकाश, दिशायें और कोने ढकगये थे ॥ २६ ॥ फिर श्रुतर्वाने धनुष कटजाने पर क्रोधमें भरकर दूसरा धनुष हाथमें लिया, और हे राजन्! भीमसेनके भुजदण्ड तथा छातीपर बाण मारने लगा॥२७ हे महाराज! आपके धनुषधारी पुत्रने भीमसेनको अत्यन्त ही बींधडाला, तब तो भीमसेनको बड़ा क्रोध चढ़ा और वह पूर्णिमाके दिन चन्द्रमाकी समान क्षुभित हो उठा ॥ २८ ॥ हे राजन्! तब तो क्रोधमें भरेहुए भीमने तुम्हारे पुत्रके सारथी और चारों घोड़ोंको बाणोंसे घायल कर यमपुरीमें भेजदिया ॥ २९ ॥ इस

त्यच्य निशितैर्लोमवाहिभिः । अवाकिरदमेयात्मा दर्शयन् पाणि-लाघवम् ॥ ३० ॥ श्रुतर्वा विरथो राजन्नाददे खड्गचर्मणी । अथास्याददतः खड्गं शतचन्द्रञ्च भानुमत् ॥ ३१ ॥ क्षुरप्रेण शिरः कायात् पातयामास पाण्डवः । छिन्नोत्तमाङ्गस्य ततः क्षुरप्रेण महात्मनः ॥ ३२ ॥ पपात कायः स रथाद्वसुधामनुनादयन् । तस्मिन् निपतिते वीरे तावका भयमोहिताः ॥ ३३ ॥ अभ्यद्रवन्त संग्रामे भीमसेनं युयुत्सवः । तानापतत एवाशु हतशेषाद्बलार्णवात् ॥ ३४ ॥ दंशितान् प्रतिजग्राह भीमसेनः प्रतापवान् । ते तु तं वै समासाद्य परिवव्रुः समन्ततः ॥ ३५ ॥ ततस्तु संवृतो भीमस्तावकैर्निशितैः शरैः । पीडयामास तान् सर्वान् सहस्राक्ष इवासुरान् । ततः पञ्च शतान् हत्वा सवरूथान् महारथान् । जघान

प्रकार श्रुतर्वाको रथहीन हुआ देखकर महाबली भीमसेनने हाथकी सफाई दिखाते हुए उसको परोंवाले बाणोंसे ढकदिया ॥ ३० ॥ हे राजन् ! रथहीन हुए श्रुतर्वाने ढाल और जिसमें सूर्यका प्रतिबिम्ब पड़ रहा था ऐसी सैंकड़ों चन्द्रमासी चमकती हुई तलवार हाथमें ली, उसी समय भीमने क्षुरप्र नामका बाण मारकर उस तलवारको काटनेके साथ २ इसके शिरको भी काटकर धड़से अलग गिरादिया, जिसका शिर कटगया था ऐसा श्रुतर्वाका शरीर शब्द करता हुआ रथपरसे भूमिपर आपड़ा, उसके गिरने पर तुम्हारे योधा भयसे व्याकुल होगये ॥ ३१—३३ ॥ और संग्राममें लड़नेकी इच्छासे भीमसेनके ऊपर चढ़गये, मरनेसे बचे हुए सेनासागर में से अपने ऊपर चढ़ कर आये हुए हुए उन शस्त्रधारी योधाओंके सामनेको प्रतापी भीमसेन भी झपट आया, तुम्हारे योधाओंने भीमसेनके पास पहुँचकर उसको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३४-३५ ॥ आपके सैनिकोंसे घिराहुआ भीम, जैसे इन्द्र असुरोंको पीड़ा देता हो ऐसे ही तेज कियेहुए बाणों से आपके योधाओंको पीड़ा देनेलगा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर उस

कुञ्जरानीकं पुनः सप्तशतं युधि ॥ ३७ ॥ हत्वा दशसहस्राणि पत्तीनां परमेषुभिः । वाजिनाञ्च शतान्यष्टौ पाण्डवः स्म विराजते ॥ ३८ ॥ भीमसेनस्तु कौन्तेयो हत्वा युद्धे सुतांस्तव । मेने कृतार्थमात्मानं सफलं जन्म च प्रभो ॥ ३९ ॥ तं तथा युध्यमानं च विनिघ्नन्तञ्च तावकान् । ईक्षितुं नोत्सहन्ते स्म तव सैन्यानि मारिष ॥ ४० ॥ विद्राव्य तु कुरून् सर्वांस्तांश्च हत्वा पदानुगान् । दोर्भ्यां शब्दं ततश्चक्रे त्रासयानो महाद्विपान् ॥ ४१ ॥ हतभूयिष्ठयोधा तु तव सेना विशाम्पते । किञ्चिच्छेषा महाराज कृपणा समपद्यत ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि दुर्मर्षणादिवधे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

संग्राममें सेनासहित पांच सौ महारथियोंको मारकर कर सातसौ हस्तिसेनाको मारडाला ॥ ३७ ॥ भीमसेन श्रेष्ठ बाणोंसे एक लाख पैदल और आठ सौ घुड़सवारोंका संहार करके शोभा पाने लगा ॥ ३८ ॥ हे प्रभो ! कुन्तीकुमार भीमसेन इसप्रकार संग्राममें आपके पुत्रोंको मारकर अपने आत्माको कृतार्थ और जन्मको सफल मानने लगा ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! जिस समय भीम इसप्रकार युद्ध करता हुआ आपके योधाओंका संहार कर रहा था, उस समय आपके सैनिकोंका उसकी ओरको देखनेका भी साहस नहीं हुआ ॥ ४० ॥ भीमसेन सब कौरवोंको रणमेंसे भगाकर और उनके अनुचरोंका संहार करके ताल ठोककर शब्द करनेलगा, जिससे बड़े २ हाथी भयभीत होगये ॥ ४१ ॥ हे महाराज ! जिसमेंके बहुतसे योधा मारेगये थे ऐसी कुछ शेष रही हुई आपकी सेना दीन होगयी ॥ ४२ ॥ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । दुर्योधनो महाराज सुदर्शश्चापि ते सुतः । हतशेषौ तदा संख्ये वाजिमध्ये व्यवस्थितौ ॥ १ ॥ ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा वाजिमध्ये व्यवस्थितम् । उवाच देवकीपुत्रः कुन्तीपुत्रं धनंजयम् ॥ २ ॥ शत्रवो हतभूयिष्ठा ज्ञातयः परिपालिताः । गृहीत्वा संजयश्चासौ निवृत्तः शिनिपुङ्गवः ॥ ३ ॥ परिश्रान्तश्च नकुलः सहदेवश्च भारत । योधयित्वा रणे पापान् धार्त्तराष्ट्रान् सहानुगान् ॥ ४ ॥ दुर्योधनमभित्यज्य त्रय एते व्यवस्थिताः । कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः ॥ ५ ॥ असौ तिष्ठति पांचाल्यः श्रिया परमया युतः । दुर्योधनबलं हत्वा सह सर्वैः प्रभद्रकैः ॥ ६ ॥ असौ दुर्योधनः पार्थ वाजिमध्ये व्यवस्थितः । छत्रेण ध्रियमाणेन प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥ प्रतिव्यूह्य बलं सर्वं रणमध्ये व्यवस्थितः । एनं हत्वा शितैर्बाणैः कृतकृत्यो भवि-

---

संजय कहता है, कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! मरनेवालोंमेंसे शेष बचेहुए सुदर्शन और दुर्योधन आपके ये दो पुत्र रणमें घोड़ोंके बीचमें खड़े होगये ॥ १ ॥ तब घुडसवारोंके बीचमें खड़े हुए दुर्योधनको देखकर देवकीनन्दन कृष्णने कुन्तीकुमार धनञ्जयसे कहा, कि—॥ २ ॥ बहुतसे शत्रु मारे गये, भाइयोंकी रक्षाकी और यह सात्यकि सञ्जयको पकडकर लौटपडा ॥ ३ ॥ हे भारत ! नकुल और सहदेव भी रणमें सेनासहित पापी धृतराष्ट्रकुमारोंके साथ लडते २ थकगये हैं ॥ ४ ॥ कृपाचार्य, कृतवर्मा और महारथी अश्वत्थामा ये तीनों दुर्योधनको छोडकर जा बैठे हैं ॥५॥ यह धृष्टद्युम्न दुर्योधनकी सेनाको मारकर प्रभद्रकोंके साथ बडी शोभासे खडाहुआ है ॥ ६ ॥ और हे पार्थ ! यह दुर्योधन घुडसवारोंमें छत्र लगाये हुए वारम्वार इधर उधरको देखताहुआ खडा है ॥ ७ ॥ यह अपनी सब सेनाको व्यूहरचनामें लगाकर रणमें खडाहुआ है, तू इसको तीक्ष्ण बाणोंसे मारडाले तो कृ-

ष्यसि ॥ ८ ॥ गजानीकं हतं दृष्ट्वा त्वां च प्राप्तमरिन्दमम् । यावन्न विद्रवन्त्येते तावज्जहि सुयोधनं ॥ ९ ॥ यांतु कश्चित्तु पांचाल्यं क्षिप्रमागम्यतामिति । परिश्रान्तवलस्तात नैष मुच्येत किल्विषी ॥ १० ॥ तव हत्वा बलं सर्वं संग्रामे धृतराष्ट्रजः । जितान् पांडुसुतान् मत्वा रूपं धारयते महत् ॥ ११ ॥ निहतं स्वबलं दृष्ट्वा पीडितं चापि पांडवैः । ध्रुवमेष्यति संग्रामे वधायैवात्मनो नृपः ॥ १२ ॥ एवमुक्तः फाल्गुनस्तु कृष्णं वचनमब्रवीत् । धृतराष्ट्रसुताः सर्वे हता भीमेन मानद ॥ १३ ॥ यावेतावास्थितौ कृष्ण तावद्य न भविष्यतः । हतो भीष्मो हतो द्रोणः कर्णो वैकर्त्तनो हतः ॥ १४ ॥ मद्रराजो हतः शल्यो हतः कृष्ण जयद्रथः । हयाः पंचशताः शिष्टाः शकुनेः सौवलस्य च ॥ १५ ॥ रथानां च

तार्थ होजायगा ॥ ८ ॥ हे शत्रुओंका दमन करनेवाले अर्जुन ! ये कौरवपक्षके योधा हस्तिसेनाको नष्ट हुई देख कर तथा तुझको चढ़कर आया देखकर जब तक नहीं भागते हैं उससे पहिले ही तू दुर्योधनको मारडाल ॥ ९ ॥ पञ्चालराजके पुत्र धृष्टद्युम्नको बुलानेके लिए शीघ्रतासे किसी पुरुषको भेजो, पापी दुर्योधनकी सेना थक गई है अतः इस समय इसको छोडना ठीक नहीं है१० दुर्योधन संग्राममें तुम्हारी सकल सेनाका संहार कर सब पाण्डवों को जीता हुआ मान बडी ऐंठमें भर गया है ॥ ११ ॥ परन्तु पाण्डवोंने मेरी सेनाको वडा दुःख दिया है तथा नष्ट कर डाला है, यह देखकर वह वह अपने नाशके लिए ही संग्राम करनेको चढ़आवेगा ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा तब अर्जुन कहने लगा कि—हे माधव ! भीमने धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको मार डाला है ॥ १३ ॥ और जो दो बाकी खड़े हैं वे भी आज मारे जावेंगे, भीष्म मारे गए, कर्ण मारा गया, द्रोणाचार्य मारे गए ॥ १४ ॥ मद्रराज शल्य मारा गया और हे कृष्ण ! जयद्रथ मारा गया अब सुवलपुत्र शकुनिके पांचसौ घुडसवार दो सौ

शते शिष्टे द्वे एव तु जनार्दन । दन्तिनां च शतं साग्रं त्रिसाहस्राः पदातयः ॥ १६ ॥ अश्वत्थामा कृपश्चैव त्रिगर्त्ताधिपतिस्तथा । उलूकः शकुनिश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ १७ ॥ एतद्बलमभूच्छेषं धार्त्तराष्ट्रस्य माधव । मोक्षो न नूनं कालाद्धि विद्यते भुवि कस्यचित् ॥ १८ ॥ तथा विनिहते सैन्ये पश्य दुर्योधनं स्थितम् । अद्याहनि महाराजो हतामित्रो भविष्यति ॥ १९ ॥ न हि मे मोक्ष्यते कश्चित् परेषामिति चिन्तये । ये त्वद्य समरं कृष्ण न हास्यन्ति रणोत्कटाः ॥ २० ॥ तान् वै सर्वान् हनिष्यामि यद्यपि स्युरमानुषाः । अद्य युद्धे सुसंक्रुद्धो दीर्घं राज्ञः प्रजागरम् ॥ २१ ॥ अपनेष्यामि गान्धारं पातयित्वा शितैः शरैः । निकृत्या वै दुराचारो यानि रत्नानि सौबलः ॥ २२ ॥ सभायामहरद् द्यूते पुनस्तान्याहराम्यहम् । अद्य ता अपि रोत्स्यन्ति सर्वा नागपुरस्त्रियः २३

रथ, सौ हाथी और तीन सहस्र पैदल बचे हैं ॥ १५—१६ ॥ हे माधव ! दुर्योधनकी सेनामें अश्वत्थामा, कृपाचार्य, त्रिगर्तराज, उलूक, शकुनि और कृतवर्मा आदि कुछ योधा बाकी रहे हैं, वास्तवमें कोई भी पुरुष कालके हाथसे नहीं बच सकता १७-१८ देखो ! सेनाके नष्ट होनेपर भी दुर्योधन खडा हुआ है, परन्तु आज महाराज युधिष्ठिर शत्रुशून्य होजावेंगे ॥ १९ ॥ क्योंकि— शत्रुसेनाका कोई भी मनुष्य आज मेरे हाथसे जीता नहीं बचेगा ऐसा मुझे प्रतीत होता है, जो योधा मदमत्त होकर आज मेरे सामने युद्ध करेंगे, वे यदि देवता भी होंगे तो भी मैं उनको मार डालूँगा ! यह ही नहीं, परन्तु मैं आज क्रोधमें भर राजा युधिष्ठिर के बड़े जागरण को भी दूर कर दूँगा और सजेहुए बाणोंसे शकुनि को मार डालूँगा तथा वह दुराचारी कौरवोंकी सभामें जूआ खेलते में हमारे जिन रत्नोंको हर कर लेगया था; उन रत्नोंको फिर ले आऊँगा और हस्तिनापुरकी सब स्त्रियें भी आज पाण्डवोंने हमारे

श्रुत्वा पतींश्च पुत्रांश्च पाण्डवैर्निहतान् युधि । समाप्तमद्य वै कर्म सर्वं कृष्ण भविष्यति । अद्य दुर्योधनो दीप्तां श्रियं प्राणांश्च त्यक्ष्यति । नापयाति भयात् कृष्णं संग्रामादद्य चेन्मम ॥ २५ ॥ निहतं विद्धि वार्ष्णेय धार्त्तराष्ट्रं सुबालिशम् । मम ह्येतदशक्तं वै वाजिवृन्दमरिन्दम ॥ २६ ॥ सोढुं ज्यातलनिर्घोषं याहि यावन्निहन्म्यहम् । एवमुक्तस्तु दाशार्हः पांडवेन मनस्विना ॥ २७ ॥ अचोदयद्धयान्राजन् दुर्योधनबलं प्रति । तदनीकमभिप्रेक्ष्य त्रयः सज्जा महारथाः ॥ २८ ॥ भीमसेनोऽर्जुनश्चैव सहदेवश्च मारिष । प्रययुः सिंहनादेन दुर्येधनजिघांसया ॥२६॥ तान् प्रेक्ष्य सहितान् सर्वान् जवेनोद्यतकार्मुकान् । सौबलोभ्यद्रवद्युद्धे पाण्डवानाततायिनः ॥ ३० ॥ सुदर्शनस्तव सुतो भीमसेनं

पति और पुत्रोंको मार डाला, यह सुन कर रोवेंगी और हे कृष्ण! आज सब काम समाप्त होजायगा ॥ २०—२४ ॥ हे कृष्ण! यदि दुर्योधन आज मेरे भयसे संग्रामसे नहीं भागा तो आज ही अपने प्राण और प्रदीप्त लक्ष्मीसे भ्रष्ट होजायगा ॥ २५ ॥ हे वृष्णिवंशोत्पन्न! आज तुम महामूर्ख दुर्योधनको मरा हुआ ही समझो, क्योंकि हे अरिदमन! यह घोड़ोंका समूह मेरे धनुषकी प्रत्यञ्चा के शब्दको सह नहीं सकेगा अतः घोड़ोंको हाँको मैं अभी उनको मारे डालता हूँ ॥ हे राजन्! इस प्रकार यशस्वी अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा ॥ २६—२७ ॥ तब श्रीकृष्णने दुर्योधनकी सेनाकी ओर अर्जुनके रथके घोड़ोंको हांका, दुर्योधनकी सेना को देखकर भीम, अर्जुन और सहदेव ये तीन महारथी तयार होकर दुर्योधनको मार डालनेके लिए सिंहगर्जन कर दौड़े सब पाण्डवोंको आयुध उठा वेगसे चढ़ते हुए देख कर आततायी पाण्डवोंका सामना करनेके लिए शकुनि उठा ॥ २८—३० ॥ तुम्हारा पुत्र सुदर्शन भीमसेनके सामने डटगया और सुशर्मा

सभ्यतात् । सुशर्मा शकुनिश्चैव युयुधाते किरीटिना ॥ ३१ ॥ सहदेवं तत्र सुतो हयपृष्ठगतोऽभ्ययात् । ततो हि यत्नतः क्षिप्रं तव पुत्रो जनाधिप ॥ ३२॥ प्रासेन सहदेवस्य शिरसि प्राहरद् भृशम् । सोपाविशद्रथोपस्थे तव पुत्रेण ताडितः ॥ ३३ ॥ रुधिराप्लुतसर्वाङ्ग आसीविष इव श्वसन् । प्रतिलभ्य ततः संज्ञां सहदेवो विशाम्पते ॥ ३४ ॥ दुर्य्योधनं शरैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धः समवाकिरत् पार्थोपि युधि विक्रम्य कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ ३५ ॥ शूराणामश्वपृष्ठेभ्यः शिरांसि निचकर्त्त ह ।तदनीकं तदा पार्थो व्यधमद्बहुभिः शरैः ॥ ३६ ॥ पातयित्वा हयान् सर्वांस्त्रिगर्त्तानां रथान् ययौ । ततस्ते सहिता भूत्वा त्रिगर्त्तानां महारथाः ॥ ३७ ॥ अर्जुनंवासुदेवं च शरवर्षैरवाकिरन् । सत्यकर्माणमाक्षिप्य क्षुरप्रेण महायशाः ॥ ३८ ॥ ततोऽस्य स्यन्दनस्येषां चिच्छेद पाण्डुनन्दनः । शिला-

तथा शकुनि अर्जुनसे युद्ध करने लगे ॥ ३१ ॥ और तुम्हारा पुत्र दुर्योधन घोड़ेकी पीठ पर सवार हो सहदेवके सामने पहुंचा और हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने सहदेवके मस्तक पर वेग से प्रास मारा, इससे वह अपने रथके भीतर ही बैठ गया ३२-३३ उसके सब अंग खूनसे तरवतर होगए और वह सर्पकी समान फुंकारें भरने लगा, हे राजन् ! जब सहदेव चैतन्य हुआ तब वह क्रोधमें भर दुर्योधनको तीखे वाणोंसे भोंकने लगा, दूसरी ओर कुन्तीपुत्र अर्जुन भी युद्धमें पराक्रम कर घोड़ों पर बैठे हुए योधाओं के मस्तकोंको काटने लगा,इसप्रकार बहुतसे वाण मारकर शत्रुसेना का संहार करडाला३४–३६इसप्रकार सकल घुड़सवारोंका संहार करनेके पीछे अर्जुनने त्रिगर्त्तोंके रथियोंके ऊपर धावा बोल दिया, तुरत ही सब महारथी त्रिगर्त इकट्ठे होगए और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके ऊपर वाण बरसाने लगे, महायशस्वी अर्जुनने पहिले क्षुरप्र नामका वाण सत्यकर्माके मारा और उसके रथकी ईषाको काट डाला, फिर महायशवाले अर्जुनने एकाएक शिलापर

शितेन च विभो क्षुरप्रेण महायशाः ॥ ३९ ॥ शिरश्चिच्छेद सहसा तप्तकुण्डलभूषणम् । सत्येषुमथचादत्त योधानां मिषतां ततः ॥ ४० ॥ यथा सिंहो वने राजन् मृगं परिबुभुक्षितः । तं निहत्य ततः पार्थः सुशर्माणं त्रिभिः शरैः ॥ ४१ ॥ विध्वा तानहनत् सर्वान् रथान् रुक्मविभूषितान् । ततः प्रायात्त्वरन्पार्थो दीर्घकालं सुसम्भृतम् ॥ ४२ ॥ मुञ्चन् क्रोधविषं तीक्ष्णं प्रस्थलाधिपतिं प्रति । तमर्जुनः पृषत्कानां शतेन भरतर्षभ ॥ ४३ ॥ पूरयित्वा ततो वाहान् प्राहरत्तस्य धन्विनः । ततः शरं समादाय यमदण्डोपमं तदा ॥ ४ ॥ सुशर्माणं समुद्दिश्य चिक्षेपाशु हसन्निव । स शरः प्रेषितस्तेन क्रोधदीप्तेन धन्विना ॥ ४५ ॥ सुशर्माणं समासाद्य बिभेद हृदयं रणे । स गतासुर्महाराज पपात धरणीतले ४६ नन्दयन्पाण्डवान् सर्वान् व्यथयंश्चापि तावकान् । सुशर्माणं रणे हत्वा पुत्रानस्य महारथान् ॥ ४७ ॥ सप्त चाष्टौ च त्रिंशच्च साय-

तेज कियेहुए क्षुरप्र नामके वाणसे क्षणमात्रमें चमकते हुए सोने के कुण्डलोंवाले उसके मस्तकको काटडाला, हे राजन् ! फिर जैसे भूखा सिंह वनमें हिरनको पकड़ कर गिरादेता है, तैसे ही अर्जुनने सब योधाओंके देखते हुए सत्येषुको पकड़ कर मारडाला तथा चिरकालसे भीतर भरकर रक्खेहुए तीक्ष्ण क्रोधाग्नि को प्रदीप्त करके प्रस्थलपतिके ऊपर जा चढ़ा, और हे भरतवंशी राजन् ! उसके सौ वाण मारे, फिर उस धनुषधारीके घोड़ोंको वाणोंसे बींधडाला और यमके दण्डकी समान एक वाण लेकर मानो हँसता हो इसप्रकार सुशर्माके ऊपर फेंका, धनुषधारी अर्जुन के क्रोधमें भरकर छोड़ेहुए उस वाणने रणमें सुशर्माके हृदयको चीरडाला और हे महाराज ! वह प्राणहीन होकर भूमिपर ढह-पड़ा ॥ ३७–४६ ॥ सुशर्माको मराहुआ देखकर पांडव हर्षमें भरगये और तुम्हारे पक्षके योधाओंको बड़ा दुःख हुआ, अर्जुन ने रणमें सुशर्माको मारकर उसके पैंतालीस पुत्रोंको भी वाणोंसे

कैरनयत् क्षयम् । ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सर्वान्हत्वा पदानुगान् ॥ ४८ ॥ अभ्यगाद्भारतीं सेनां हतशेषां महारथः । भीमस्तु समरे क्रुद्धः पुत्रं तव जनाधिप ॥ ४९ ॥ सुदर्शनमदृश्यं तं शरैश्चक्रे हसन्निव । ततोऽस्य प्रहरन् क्रुद्धः शिरः कायादपाहरत् ॥ ५० ॥ क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन स हतः प्रापतद्भुवि । तस्मिंस्तु निहते वीरे ततस्तस्य पदानुगाः ॥ ५१ ॥ परिवव्रू रणे भीमं किरन्तो विविधान् शरान् । ततस्तु निशितैर्बाणैस्तवानीकं वृकोदरः ५२ इन्द्राशनिसमस्पर्शैः समन्तात्पर्यवारयत् । ततः क्षणेन तद्भीमो न्यहनद्भरतर्षभ ॥ ५३ ॥ तेषु तूत्साद्यमानेषु सेनाध्यक्षाः महारथाः । भीमसेनं समासाद्य ततोऽयुध्यन्त भारत ॥ ५४ ॥ स तान् सर्वान् शरैर्घोरैरवाकिरत पाण्डवः । तथैव तावका राजन् पाण्डवेयान् महा-

घायल करके मारडाला और फिर तेज बाणोंसे उसके सब अनुचरोंका भी संहार कर डाला ॥ ४७—४८ ॥ महारथी भीमसेन ने क्रोधमें भरकर तुम्हारे पुत्र सुदर्शनके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए मरते २ शेष रहीहुई भरतवंशके राजाकी सेनामें प्रवेश किया और हँसते २ तुम्हारे पुत्रको बाणोंसे ढकदिया, फिर क्षुरप्रसे उसका शिर धड़से जुदा करदिया ॥ ४९—५० ॥ सुदर्शन पृथिवी पर ढहपड़ा, यह देख उसके अनुचरोंने भीमको चारों ओरसे घेरकर अनेकों प्रकारके बाणोंसे घायल करना आरम्भ करदिया, भीमने भी वज्रकी समान तीक्ष्ण और तेज कियेहुए बाण मारकर तुम्हारी सेनाको चारों ओरसे घेरलिया तथा क्षणभरमें उसका भी संहार करडाला ॥ ५१—५३ ॥ ज्यों ही भीमसेन तुम्हारे पक्षके योधाओंका नाश करनेलगा, कि—हे राजन् ! उसी समय सेनाके महारथी अध्यक्ष भीमसेनके सामने आकर युद्ध करने लगे ॥ ५४ ॥ परन्तु भीम तुम्हारे पक्षके सब योधाओंके बाण मारने लगा, और तुम्हारे पक्षके योधाओंने भी महारथी पाण्डवोंके ऊपर बाणोंकी बड़ीभारी मार आरम्भ

रथान् ॥ ५५ ॥ शरवर्षेण महता समन्तात्पर्यवारयन् । व्याकुलं तदभूत्सर्वं पाण्डवानां परैः सह ॥ ५६ ॥ तावकानां च समरे पाण्डवेयैर्युयुत्सतां । तत्र योधास्तदा पेतुः परस्परसमाहताः । उभयोः सेनयो राजन् संशोचन्तः स्म बान्धवान् ॥ ५७ ॥ छ ॥ छ

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि सुशर्मवधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

सञ्जय उवाच । तस्मिन्प्रवृत्ते संग्रामे गजवाजिनरक्षये । शकुनिः सौबलो राजन् सहदेवं समभ्ययात् ॥ १ ॥ ततोऽस्यापततस्तूर्णं पतङ्गानिव शीघ्रगान् ॥ २ ॥ उलूकश्च रणे भीमं विव्याध दशभिः शरैः । शकुनिस्तु महाराज भीमं विध्वा त्रिभिः शरैः ॥ ३ ॥ सायकानां नवत्या वै सहदेवमवाकिरत् । ते शूराः समरे राजन् समासाद्य परस्परम् ॥ ४ ॥ विव्यधुर्निशितैर्बाणैः कङ्कबर्हिणवाजितैः । स्वर्ण-

---

करके उनको चारों ओरसे ढकदिया, उस समय तुम्हारे योधाओं के साथ लड़तेहुए पाण्डव और पांडवोंके सामने लड़तेहुए तुम्हारे पक्षके योधाओंमें महाभयानक युद्ध चलरहा था और हे राजन् ! उस समयके युद्धमें दोनों सेनाओंके योधा अपने बांधवोंका शोक करतेहुए एक दूसरेके प्रहारोंसे मरकर रणभूमिमें गिररहे थे ॥ ५५—५७ ॥ सत्ताईसवां अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! वह युद्ध चलने लगा और हाथी, घोड़े तथा मनुष्योंका संहार होने लगा, उस समय सुबलके पुत्र शकुनिने सहदेवके ऊपर चढ़ाई करदी ॥ १ ॥ प्रतापी सहदेवने तुरन्त ही पतङ्गोंकी समान शीघ्रगामी बाण शकुनिके ऊपर छोड़ना आरम्भ करदिये ॥ २ ॥ हे महाराज ! उलूकने रणमें भीमके दश बाण मारे, शकुनिने तीन बाणोंसे भीमको बींध डाला और नब्बे बाण सहदेवके मारे, तदनन्तर हे राजन् ! वे दोनों वीर आमने सामने आकर जुटगये और कङ्क तथा मोरके परोंवाले और सोनेकी पूँछवाले, शान पर

पुंखैः शिलाधौतैराकर्णप्रहितैः शरैः ॥ ५ ॥ तेषां चापभुजोत्सृष्टा शरवृष्टिर्विशाम्पते । आच्छादयद्दिशः सर्वा धारा इव पयोमुचः ६ ततः क्रुद्धो रणे भीमः सहदेवश्च वीर्यवान् । चेरतुः कदनं संख्ये कुर्वन्तौ सुमहाबलौ ॥ ७ ॥ ताभ्यां शरशतैश्छन्नं तद्बलं तव भारत । सान्धकारमिवाकाशमभवत्तत्र तत्र ह ॥ ८ ॥ अश्वैर्विपरिधावद्भिः शरैश्छन्नैर्विशाम्पते । तत्र तत्र कृतो मार्गो विकर्षद्भिर्हतान् बहून् ॥ ९ ॥ निहतानां हयानां तु सहैव हययोधिभिः । चर्मभिर्विनिकृत्तैश्च प्रासैश्छिन्नैश्च मारिष ॥ १० ॥ असिभिः शक्तिभिश्चैव तोमरैश्च समन्ततः । संच्छन्ना पृथिवी जज्ञे कुसुमैः शबला इव ॥ ११ ॥ योधास्तत्र महाराज समासाद्य परस्परम् । व्यचरन्त रणे क्रुद्धा विनिघ्नन्तः परस्परम् ॥ १२ ॥ उद्वृत्तनयनै रोषात्

घिसकर तेज कियेहुए तथा धनुषको कानतक खींचकर छोड़ेहुए बाणोंसे एक दूसरेको घायल करने लगे ॥ ३—५ ॥ हे राजन् ! वर्षाकी जलधाराओंसे जैसे सब दिशायें ढकजाती हैं तैसे ही उन योधाओंके धनुषमेंसे छोड़ेहुए बाणोंकी वर्षासे सब दिशायें ढकगयीं थीं ॥ ६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! इस लड़ाईके समय महाबली भीम और सहदेव रणमें महासंहार करतेहुए घूमरहे थे७ हे भरतवंशी राजन ! उन दोनों भाइयोंने सैंकड़ों बाणोंसे तुम्हारी सेनाको ढकदिया, इसलिये जहां तहां अँधेरेसा छाया हुआ आकाशसा होगया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! मरेहुए बहुतसे योधाओंको घसीटते हुए और बाणोंसे ढकेहुए, इधर उधरको दौड़नेवाले घोड़ोंसे जहां तहां रणभूमिके मार्ग ढकगये थे ॥ ९ ॥ और हे राजन् ! घुड़सवारोंके साथ ही मारेगये घोड़ोंसे टूटे फूटे कवचोंसे, कटेहुए प्रास, ऋष्टि, शक्ति, तलवार और फरसोंसे ढकीहुई रणभूमि ऐसी मालूम होती थी, कि—मानो फूलोंसे रङ्गबिरङ्गी होरही है ॥ १०—११ ॥ हे महाराज ! योधा भी रणमें क्रोधमें भरकर एक दूसरेके सामने जा डटे और परस्पर संहार

संदष्टौष्ठपुटैर्मुखैः । सकुण्डलैर्मही च्छन्ना पद्मकिञ्जल्कसन्निभैः १३
भुजैश्छिन्नैर्महाराज नागराजकरोपमैः । साङ्गदैः सतनुत्रैश्च सासि-
प्रासपरश्वधैः ॥ १४ ॥ कबन्धैरुत्थितैश्छिन्नैर्नृत्यद्भिश्चापरैर्युधि ।
क्रव्यादगणसंकीर्णा घोराभूत् पृथिवी विभो ॥ १५ ॥ अल्पाव-
शिष्टे सैन्ये तु कौरवेयान् महाहवे । प्रहृष्टाः पाण्डवाः भूत्वा निन्यिरे
यमसादनम् ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शूरः सौबलेयः प्रतापवान् ।
प्रासेन सहदेवस्य शिरसि प्राहरद् भृशम् ॥१७॥ स विह्वलो महा-
राज रथोपस्थ उपाविशत् । सहदेवं तथा दृष्ट्वा भीमसेनः प्रताप-
वान् ॥ १८ ॥ सर्वसैन्यानि संक्रुद्धो वारयामास भारत । निर्बि-
भेद च नाराचैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९ ॥ विनिर्भिद्याकरो-

करनेलगे ॥ १२ ॥ जिनकी आँखे बाहर निकलपड़ी थीं और जिन्होंने क्रोधके मारे नीचेके होठको दांतोंसे काटलिया था, ऐसे कमलके केसरकी समान चमकते हुए कुण्डलोंवाले योधाओंके मुँखोंसे पृथिवी ढकीहुई ही दीखती थी ॥ १३ ॥ हे महाराज ! गजराजकी सूँडकी समान गोलाकार और सुन्दर, बाजूबन्द, कवच, तलवार, प्रास और फरसोंवाले कटेहुए भुजदण्डोंसे रण-भूमि पर नाचते हुए धड़ोंके कारण तथा मांसाहारी प्राणियोंके समूहोंसे भरीहुई रणभूमि भयानक होरही थी ॥ १४—१५ ॥ इसप्रकार लड़ते २ जब कौरवोंकी सेना थोड़ीसी शेष रहगयी तब पांडवोंने हर्षमें भरकर कौरवोंका संहार करना आरम्भ कर-दिया ॥ १६ ॥ परन्तु इतनेमें ही प्रतापी वीर शकुनिने सहदेवके मस्तक पर जोरसे प्रासका प्रहार किया १७ हे महाराज ! सहदेव उस की मारसे विह्वल होकर रथमें पीछेको बैठगया, सहदेवकी यह दशा देखकर प्रतापी भीमसेनने बड़े क्रोधमें भरकर सब सेनाको आगे बढ़नेसे रोकदिया और नाराच नामके बाणसे सैंकड़ों सहस्रों सैनिकोंका संहार करडाला १८—१९ और बड़ाभारी संहार करने

च्चैव सिंहनादमरिन्दमः । तेन शब्देन वित्रस्ताः सर्वे सहयवा-
रणाः ॥ २० ॥ प्राद्रवन् सहसा भीताः शकुनेश्च पदानुगाः ।
प्रभग्नानथ तान् दृष्ट्वा राजा दुर्योधनोब्रवीत् ॥ २१ ॥ निवर्त्तध्व-
मधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः । इह कीर्त्तिं समाधाय प्रेत्य लोकान्
समश्नुते ॥ २२ ॥ प्राणान् जहाति यो वीरो युधि पृष्ठमदर्शयन् ।
एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सौबलस्य पदानुगाः ॥ २३ ॥ पाण्डवा-
नभ्यवर्त्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् । द्रवद्भिस्तत्र राजेन्द्र कृतः
शब्दोतिदारुणः २४ क्षुब्धसागरसंकाशाः क्षुभिताः सर्वतोऽभवन् ।
तांस्ततः पुरतो दृष्ट्वा सौबलस्य पदानुगान् ॥ २५ ॥ प्रत्युद्ययुर्महा-
राज पांडवा विजये स्थिताः। प्रत्याश्वास्य च दुर्धर्षः सहदेवो विशा-
म्पते ॥ २६ ॥ शकुनिं दशभिर्विध्वा हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः

के अनन्तर शत्रुका संहार करनेवाले भीमने सिंहकी समान गर्जना की, जिसको सुनकर हाथी घोड़ों सहित सब सेना घबड़ागयी २० तुरन्त ही शकुनिके पीछे चलनेवाले योधा भयभीत होकर एका-एकी रणमेंसे भागनेलगे, यह देखकर राजा दुर्योधन कहने लगा, कि-॥ २१ ॥ अरे युद्धधर्मको न जानने वालो, लडो ! लडो ! भागजानेसे तुम्हें क्या फल मिलेगा ? रणमें पीठ न दिखाकर आगे बढ़कर लड़नेवाला ही इस लोकमें कीर्त्तिको छोड़ मर कर परलोकमें जाता है, इसप्रकार दुर्योधनने शकुनिके अनुचर योधाओंसे कहा ॥ २२--२३ ॥ तब शकुनिके अनुचर मृत्युको कुछ न गिनकर पांडवोंके साथ लड़नेको फिर लौट आये और हे राजेन्द्र ! उनके ऊपर चढ़ाई करते समय उन्होंने बडा दारुण शब्द किया ॥ २४ ॥ उस समय शकुनिके अनुचर उबलतेहुए समुद्रसे मालूम होते थे और चारों ओरसे क्षोभमें भररहे थे, हे महाराज ! शकुनिके अनुचरोंको सामने आते देखकर विजयके लिये उद्यत होकर खड़ेहुए पांडव, शकुनिके अनुचरोंके सामने जा डटे और दुराधर्ष सहदेवने सबको धीरज देकर शकुनिके दश

धनुश्चिच्छेद च शरैः सौबलस्य हसन्निव ॥ २७ ॥ अथान्यद्धनु-
रादाय शकुनिर्युद्धदुर्मदः । विव्याध नकुलं षष्ट्या भीमसेनञ्च
सप्तभिः ॥ २८ ॥ उलूकोपि महाराज भीमं विव्याध सप्तभिः ।
सहदेवञ्च सप्तत्या परीप्सन् पितरं रणे ॥ २९ ॥ तं भीमसेनः
समरे विव्याध निशितैः शरैः । शकुनिञ्च चतुःषष्ट्या पार्श्वस्थांश्च
त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ३० ॥ ते हन्यमाना भीमेन नाराचैस्तैलपायितैः ।
सहदेवं रणे क्रुद्धाश्छादयन् शरवृष्टिभिः ॥ ३१ ॥ पर्वतं वारि-
धाराभिः सविद्युत इवाम्बुदाः । ततोस्यापततः शूरः सहदेवः प्रता-
पवान् ॥ ३२ ॥ उलूकस्य महाराज भल्लेनापाहरच्छिरः । स
जगाम रथाद् भूमिं सहदेवेन पातितः ॥ ३३ ॥ रुधिराप्लुतसर्वाङ्गो
नन्दयन् पाण्डवान् युधि । पुत्रन्तु निहतं दृष्ट्वा शकुनिस्तत्र

और उसके घोडोंके तीन बाण मारे तथा हँसते २ बाण मारकर उसके धनुषको काटडाला २५-२७ युद्धमें मदमत्त शकुनिने दूसरा धनुष लेकर नकुलके साठ और भीमके सात बाण मारे ॥ २८ ॥ फिर उलूकने अपने पिताकी रक्षा करनेके लिये रणमें लडतेहुए भीमके सात और सहदेवके सत्तर बाण मारे ॥ २९ ॥ तब भीमसेनने भी रणमें सामने लडतेहुए उलूकके नौ बाण मारे, शकुनिके साठ मारे और उसके आसपास रहनेवाले हरएक योधाके तीन २ बाण मारे ॥ ३० ॥ भीमसेन तेल पिलायेहुए बाणोंसे शकुनिके योधाओंको मारने लगा, तब वे भी क्रोधमें भर कर जैसे बिजलियोंवाले मेघ जलकी धाराओंसे पर्वतको ढकदेते हैं तैसे ही बाणोंकी वर्षासे रणमें सहदेवको ढकनेलगे, परन्तु इस समय प्रतापी वीर सहदेवने चढ़कर आयेहुए उलूकका शिर भल्ल नामके बाणसे काटडाला और सहदेवने जिसको रथमेंसे गिरादिया था ऐसा वह उलूक पृथिवी पर ढहपड़ा ॥ ३१-३३ ॥ उसके सब अङ्ग लोहूलुहान होगये थे और उसने पांडवोंको प्रसन्न किया, हे भरतवंशी राजन् ! मेरा पुत्र मारा गया, यह देखते तण

भारत ॥ ३४ ॥ साश्रुकण्ठो विनिश्वस्य क्षत्तुर्वाक्यमनुस्मरन् । चिन्तयित्वा मुहूर्त्तं स वाष्पपूर्णेक्षणः श्वसन् ॥ ३५ ॥ सहदेवं समासाद्य त्रिभिर्विव्याध सायकैः । तानपास्य शरान्मुक्तान् शर-संघैः प्रतापवान् ॥ ३६ ॥ सहदेवो महाराज धनुश्चिच्छेद संयुगे । छिन्ने धनुषि राजेन्द्र शकुनिः सौबलस्तदा ॥ ३७ ॥ प्रगृह्य विपुलं खड्गं सहदेवाय प्राहिणोत् । तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशा-म्पते ॥ ३८ ॥ द्विधा चिच्छेद समरे सौबलस्य हसन्निव । असिं दृष्ट्वा द्विधा छिन्नं प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ३९ ॥ प्राहिणोत् सहदेवाय सा मोघा न्यपतद्भुवि । ततः शक्तिं महाघोरां काल-रात्रिमिवोद्यताम् ॥ ४० ॥ प्रेषयामास संक्रुद्धः पाण्डवं प्रति सौ-बलः । तामापतन्तीं सहसा शरैः काञ्चनभूषणैः ॥ ४१ ॥ त्रिधा चिच्छेद समरे सहदेवो हसन्निव । सा पपात त्रिधा छिन्ना भूमौ

ही वह पागलसा होगया, और लंबा साँस छोड़कर रोता हुआ विदुर की बातोंको याद करने लगा तथा दो घड़ी तक अपने पुत्र की मृत्युके विषयमें ही विचार करता रहा, फिर उसने सहदेवके तीन बाण मारे, परन्तु हे महाराज ! प्रतापी सहदेवने सामनेसे बाण मारकर शकुनिके बाणोंको पीछेको हटा दिया ॥ ३४---३६ ॥ और युद्धमें उसके धनुषको काट डाला, परन्तु हे राजेन्द्र ! शकुनि ने उसी समय बड़ी तलवार लेकर सहदेवके ऊपर फेंकी, सहदेव ने हँसते २ एक साथ उसकी बड़ी तलवारके दो टुकड़े कर डाले अपनी तलवारके टुकड़े हुए देख कर शकुनिने बड़ी भारी गदा लेकर सहदेवके ऊपर फेंकी, वह गदा भी निष्फल होकर पृथिवी पर जापड़ी, शकुनिने बड़े क्रोधमें आकर उद्यत हुई कालरात्रिकी समान महाभयानक शक्तिका सहदेवके ऊपर प्रहार किया, सह-देवने भी हँसते २ ही सोनेसे सजाये हुए बाणोंके प्रहारसे उस शक्तिके एक साथ तीन टुकड़े कर डाले, सुवर्णके आभूषणोंवाली कटी हुई शक्ति आकाशमेंसे प्रदीप्त हुई बिजली जैसे पृथवी पर

कनकभूषणा। शीर्यमाणा यथा दीप्ता गगनाद्वै शतहदा। शक्ति विनिहतां दृष्ट्वा सौबलञ्च भयार्दितम् ४३ दुद्रुवुस्तावकाः सर्वे भये जाते ससौबलाः। अथोत्कुष्टं महच्चासीत् पाण्डवैर्जितकाशिभिः ४४ धार्त्तराष्ट्रास्ततः सर्वे प्रायशो विमुखाभवन्। तान् वै विमनसो दृष्ट्वा माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४५ ॥ शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास संयुगे। ततो गान्धारकैर्गुप्तं पुष्टैरश्वैर्जये धृतम् ॥ ४६ ॥ आससाद रणे यान्तं सहदेवोथ सौबलम्। स्वमंशमवतिष्ठन्तं संस्मृत्य शकुनिं नृप ॥ ४७ ॥ रथेन काञ्चनाङ्गेन सहदेवः समभ्ययात्। अधिज्यं बलवत् कृत्वा व्याक्षिपन् सुमहद्धनुः ॥ ४८ ॥ स सौबलमभिद्रुत्य गार्द्धपत्रैः शिलाशितैः। भृशमभ्यहनत् क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ४९ ॥ उवाच चैनं मेधावी विगृह्य स्मारयन्निव।

आकर गिरै तैसे ही पृथिवी पर तीन टुकड़ोंके रूपमें आपड़ी, इसप्रकार शक्तिको टुकड़े हुई और शकुनिको भयभीत हुआ देखकर तुम्हारे पक्षके सब योधा रणमेंसे भागगये और शकुनि भी उनके साथ ही भागगया, उस समय विजयके कारण दमकते हुए पांडवोंने बड़ीभारी गर्जना की ॥ ३७-४४ ॥ इस प्रकार तुम्हारे पक्षके सब योधा रणसे मुख मोड़ बैठे, उनको उदासमन देख कर प्रतापी सहदेवने सहस्रों बाण मारकर तुम्हारी सेनाको आगे बढ़नेसे रोकदिया, गांधार देशके हृष्टपुष्ट घुड़सवारोंकी सेनाके साथ शकुनि भी उधरको जारहा था, सहदेवने उसके पास पहुंचनेका विचार किया, शकुनिके नाश करनेका काम मेरे बांटे आया है, यह भी विचारकर सहदेवने सोनेसे जड़ेहुए रथमें बैठकर शकुनिके ऊपर धावा किया और जोरके साथ धनुष पर डोरी चढ़ाकर बड़े भारी धनुष पर टङ्कार दी ४५-४८ और शकुनिके ऊपर चढ़ाई करके गिद्धके परोंवाले तथा शिलापर रगड़कर तेज कियेहुए बाण क्रोधमें भर कर शकुनिके ऐसे मारे जैसे बड़े हाथीके भाले मारते हैं ॥ ४९ ॥ और उसके साथ विग्रह करके बुद्धिमान् सहदेव शकुनिको उसके

क्षत्रधर्मे स्थिरो भूत्वा युध्यस्व पुरुषो भव ॥ ५० ॥ यत्तदा हृष्यसे मूढ ग्लहन्नक्षैः सभातले। फलमस्य प्रपश्यस्व कर्मणस्तस्य दुर्मते ५१ निहतास्ते दुरात्मानो येऽस्मानवहसन् पुरा । दुर्योधनः कुलाङ्गारः शिष्टस्त्वं चास्य मातुलः ॥ ५२ ॥ अद्य ते निहनिष्यामि क्षुरेणोन्मथितं शिरः । वृन्तात् फलमिवाविद्धं लगुडेन प्रमाथिना ॥ ५३ ॥ एवमुक्त्वा महाराज सहदेवो महाबलः । संक्रुद्धो नरशार्दूलो वेगेनाभिजगाम ह ॥ ५४ ॥ अभिगम्य तु दुर्धर्षः सहदेवो युधांपतिः । विकृष्य बलवच्चापं क्रोधेन प्रदहन्निव ॥ ५५ ॥ शकुनिं दशभिर्विध्वा चतुर्भिश्चास्य वाजिनः । छत्रं ध्वजं धनुश्चास्य छित्त्वा सिंह इवानदत् ॥ ५६ ॥ छिन्नध्वजधनुश्छत्रः सहदेवेन सौबलः । कृतो विद्धश्च बहुभिः सर्वमर्मसु सायकैः ॥ ५७ ॥ ततो भूयो

पहले कर्मोंकी याद दिलानेके लिये कहनेलगा, कि—अरे ! शकुनि तू क्षत्रियधर्ममें स्थिर रहकर युद्ध कर और पुरुष बन ॥ ५० ॥ अरे दुष्टबुद्धिवाले मूढ़ ! तू उस समय तो राजसभामें पाशोंसे जुआ खेलकर प्रसन्न हुआ था, परन्तु उस अपने कर्मके फलको आज देख ॥ ५१ ॥ जिन दुष्टात्माओंने पहले हमारी हँसी की थी वे तो मारेगये, एक कुलाङ्गार दुर्योधन और दूसरा तू उसका मामा अभी बचरहे हो ॥ ५२ ॥ परन्तु ताड़कर कुचलदेनेवाली लाठी से जैसे वृक्षपैंसे फलको झाड़ दिया जाता है, तैसे ही मैं आज ही क्षुरप्र नामके बाणसे तेरा मस्तक काटकर तुझे मारडालूँगा ५३ हे महाराज ! ऐसा कहकर महाबली और रणमें सिंहसमान सहदेवने बड़े क्रोधमें भरकर वेगके साथ शकुनिके ऊपर धावा किया और अपने धनुषको जोरसे खेंचकर क्रोधाग्निसे जलतेहुए सहदेवने शकुनिके दश और उसके घोड़ाके चार बाण मारे तथा फिर उसके छत्र, ध्वजा और धनुषको काटकर सिंहकी समान गर्जना की ॥ ५४–५६ ॥ प्रतापी सहदेवने शकुनिकी ध्वजा, धनुष और छत्रको काटडाला, बाण मारकर उसके मर्मस्थानोंको

महाराज सहदेवः प्रतापवान् । शकुनेः प्रेषयामास शरवृष्टिं दुरासदाम् ॥ ५५ ॥ ततस्तु क्रुद्धः सुबलस्य पुत्रो माद्रीपुत्रं सहदेवं विमर्द । प्रासेन जाम्बूनदभूषणेन जिघांसुरेकोऽभिपपात शीघ्रम् ५६ माद्रीसुतस्तस्य समुद्यतं तं प्रासं सुवृत्तौ च भुजौ रणाग्रे । भल्लैस्त्रिभिर्युगपत् सञ्चकर्त्त ननाद चोच्चैस्तरसाजिमध्ये ॥ ६० ॥ तस्याशुकारी सुसमाहितेन सुवर्णपुंखेन दृढायसेन । भल्लेन सर्वावरणातिगेन शिरः शरीरात् प्रममाथ भूयः ॥ ६१ ॥ शरेण कार्त्तस्वरविभूषितेन दिवाकराभेन सुसंशितेन । हृतोत्तमाङ्गो युधि पाण्डवेन पपात भूमौ सुबलस्य पुत्रः ॥ ६२ ॥ स तच्छिरो वेगवता शरेण सुवर्णपुंखेन शिलाशितेन । प्रावेरयत् कुपितः पाण्डुपुत्रो यत्तत् कुरूणामनयस्य मूलम् ॥ ६३ ॥ भुजौ सुवृत्तौ प्रचकर्त वीरः

घायल करदिया और हे महाराज ! तदनन्तर प्रतापी सहदेव हुसकर उसके ऊपर दुरासद बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥५७-५८॥ इससे शकुनिको क्रोध चढ़आया और वह युद्धमें माद्रीकुमार सहदेवका नाश करनेकी इच्छासे अकेला ही सोनेकी पट्टियोंसे जड़ा हुआ प्रास लेकर तुरन्त सहदेवके ऊपर चढ़ आया ॥ ५६॥ परन्तु सहदेवने भल्ल जातिके तीन बाणोंसे शकुनिके उठायेहुए प्रासको तथा उसके गोलाकार दोनों सुन्दर भुजदण्डोंको एकसाथ काट डाला और रणभूमिमें बड़े वेगसे गर्जना की ॥ ६० ॥ सहदेवने सुनहरी परोंवाले, मजबूत लोहेमेंसे बनायेहुए, सबप्रकारके आवरणोंको फोडदेनेवाले, सुवर्णसे शोभायमान और चमकतेहुए भल्ल जातिके बाणको धनुष पर ठीक करके चढ़ाया तथा उससे शीघ्रता के साथ शकुनिका शिर काटडाला, सुबलपुत्र शकुनि मस्तकहीन होकर रणभूमिमें गिरपड़ा ॥ ६१-६२॥ फिर भी सहदेवने क्रोध में भरकर कौरवोंके अन्यायके मूलरूप शकुनिके शिरको सोनेकी पूँछवाले, शिला पर घिसकर तेज कियेहुए वेगवाले बाणसे चीर डाला ॥ ६३ ॥ तथा सुन्दर गोलाकार उसके दोनों भुजदण्डोंको

पश्चात्कबन्धं रुधिरावसिक्तम् । विस्पंदमानं निपपात घोरं रथो-त्तमात्पार्थिव पार्थिवस्य ॥ ६४ ॥ हतोत्तमाङ्गं शकुनिं समीक्ष्य भूमौ शयानं रुधिरार्द्रगात्रम् । योधास्त्वदीया भयनष्टसत्त्वा दिशः प्रजग्मुः प्रगृहीतशस्त्राः ॥ ६५ ॥ विप्रद्रुता शुष्कमुखाः विसंज्ञा गाण्डीवघोषेण समाहताश्च । भयार्दिता भग्नरथाश्व नागाः पदातयश्चैव सधार्त्तराष्ट्राः ॥ ६६ ॥ ततो रथाच्छकुनिं पातयित्वा मुदान्विता भारत पाण्डवेयाः । शंखान् प्रदध्मुः समरे प्रहृष्टा सकेशवाः सैनिकान् हर्षयंतः ६७ तञ्चापि सर्वे प्रतिपूजयन्तो हृष्टा ब्रुवाणाः सहदेवमाजौ । दिष्ट्या हतो नैकृतिको दुरात्मा सहात्मजो वीर रणे त्वयेति ॥६८॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधपर्वणि
शकुन्युलूकवधे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

और रुधिरसे भीगेहुए उसके धड़को वीर सहदेवने रणभूमिमें काटडाला, हे राजन् ! राजा शकुनिका वह घोर धड़ लुडकता २ श्रेष्ठ रथमेंसे नीचे गिरपड़ा ॥ ६४ ॥ हथियार लिये खड़ेहुए तुम्हारे योधा, शरीरमें लोहूलुहान हुए और मस्तकहीन होकर पृथिवी पर सोयेहुए शकुनिको देखकर भयभीत होगये और निर्बल होकर चारों ओरको भागने लगे ॥ ६५ ॥ इतना ही नहीं, किन्तु तुम्हारे पुत्र, योधा, पैदल, रथ, घोडे और हाथियोंके मारेजाने से बिना वाहनोंके होगये, गाण्डीव धनुषकी टङ्कारके शब्दसे उनके मुख सूखगये, उनको कुछ भान नहीं रहा और भयभीत होगये ॥ ६६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! शकुनिको रथमेंसे नीचे गिरादेने के अनन्तर सब पाण्डव और श्रीकृष्ण बडे ही प्रसन्न हुए और सैनिकोंको प्रसन्न करतेहुए रणमें अपने २ शंख बजाने लगे ६७ तथा रणमें सहदेवको देखकर उसका सन्मान करतेहुए सब उससे कहने लगे, कि-हे वीर ! तुमने रणमें महाबली जुआरी शकुनिको और उसके पुत्रोंको मारडाला, यह बडा अच्छा हुआ ॥ ६८ ॥ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥ छ ॥ छ ॥

अथ हृद प्रवेशपर्व

सञ्जय उवाच । ततः क्रुद्धा महाराज सौबलस्य पदानुगाः । त्यक्त्वा जीवितमाक्रन्दे पाण्डवान् पर्य्यवारयन् ॥ १ ॥ तानर्जुनः प्रत्यगृह्णात् सहदेवजये धृतः । भीमसेनश्च तेजस्वी क्रुद्धाशीविषदर्शनः ॥ २ ॥ शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां सहदेवं जिघांसताम् । संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनञ्जयः ॥ ३ ॥ संगृहीतायुधान् बाहून् योधानामभिधावताम् । भल्लैश्चिच्छेद बीभत्सुः शिरांस्यपि हयानपि ॥ ४ ॥ ते हयाः प्रत्यपद्यन्त वसुधां विगतासवः । त्वरता लोकवीराणां प्रहताः सव्यसाचिना ॥५॥ ततो दुर्य्योधनो राजा दृष्ट्वा स्वबलसंक्षयम् । हतशेषान् समानीय क्रुद्धान्रथशतान् विभो ॥ ६ ॥ कुञ्जरांश्च हयांश्चैव पादातांश्च परन्तप । उवाच सहितान् सर्वान् धार्त्तराष्ट्र इदं वचः ॥ ७ ॥ समासाद्य रणे सर्वान्

अब हृदप्रवेश पर्वका प्रारम्भ होता है ॥ सञ्जय कहता है कि-हे महाराज धृतराष्ट्र ! शकुनिके गिरते ही उसके अनुचर सैनिक क्रोधमें भरगये और प्राणोंकी भी परवाह न करके उन्होंने पांडवों को चारों ओरसे घेरलिया ॥ १ ॥ तब कोपमें भरेहुए विषधर सर्पकी समान दीखताहुआ तेजस्वी भीमसेन, अर्जुन तथा सहदेव विजयसे प्रसन्न होकर उनके सामने आगये ॥ २ ॥ शकुनिकी ओरके योधा उस समय शक्ति, ऋष्टि और प्रासको हाथमें लेकर सहदेवको मारने लगे, परन्तु अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे उनके सङ्कल्पको निष्फल करदिया ॥ ३ ॥ अर्जुनने सामने चढ़कर आये हुए योधाओंके हथियारवाले भुजदण्डोंको सिरोंको और घोड़ोंको भल्ल जातिके बाण मारकर काट डाला ॥ ४ ॥ और लोकमें वीर गिने जाने वाले अर्जुनने रणमें घूम २ कर जिनको काट डाला था वे घोड़े प्राणहीन होकर भूमि पर ढह पड़े ॥ ५ ॥ इस प्रकार अपनी सेनाका नाश हुआ देखकर दुर्योधनको बड़ा क्रोध आया, उसने मरते २ शेष रहे हुए बहुतसे रथी, हाथीसवार घुड़सवार तथा पैदलोंको चारों ओर से अपने पास बुला कर कहा

पाण्डवान् ससुहृद्गणान् । पाञ्चाल्यञ्चापि सबलं हत्वा शीघ्रं न्यवर्त्तत ॥ ८ ॥ तस्य ते शिरसागृह्य वचनं युद्धदुर्मदाः । प्रत्युद्ययू रणे पार्थास्तत्र पुत्रस्य शासनात् ॥ ६ ॥ तानभ्यापततः शीघ्रं हतशेषान्महारणे । शरैराशीविषाकारैः पाण्डवाः समवाकिरन् ॥ १० ॥ तत्सैन्यं भरतश्रेष्ठ मुहूर्तेन महात्मभिः । अवध्यत रणं प्राप्य त्रातारं नाभ्यविन्दत ॥ ११ ॥ प्रतिष्ठमानन्तु भयान्नावतिष्ठति दंशितम् । अश्वैर्विपरिधावद्भिः सैन्येन रजसावृते ॥ १२ ॥ न प्राज्ञायन्त समरे दिशश्च प्रदिशस्तथा । ततस्तु पाण्डवानीकान्निःसृत्य बहवो जनाः ॥ १३ ॥ अभ्यघ्नंस्तावकान् युद्धे मुहूर्त्तादिव भारत । ततो निःशेषमभवत् तत् सैन्यं तव भारत ॥ १४ ॥

कि—॥ ६ ॥७ ॥ हे योधाओं ! तुम रणमें, पाण्डव उनके स्नेही तथा सेनासहित पांचालराजके ऊपर चढ़ाई करके उनका झट नाश करडालो, तब मेरे पास लौट कर आओ ॥ ८ ॥ युद्धके मतवाले योधाओंने तुम्हारे पुत्रकी आज्ञाको शिर पर चढ़ाकर रण में पाण्डवोंके ऊपर चढ़ाई की ॥ ६ ॥ पाण्डव भी मरते २ बचे हुए और बड़े ही वेगके साथ चढ़कर आते हुए योधाओंके ऊपर विषधर सर्पोंकी समान तीक्ष्ण बाणोंको मारामार करने लगे १० हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! महात्मा पाण्डवोंने जरा देरमें उस दुर्योधनकी सेनाका रणमें नाश करडाला, दुर्योधनकी सेनाने रक्षा चाही, परन्तु उसको कोई रक्षक नहीं मिला ॥ ११ ॥ कवच पहन कर रणमें बड़ी देरसे खड़ी हुई सेना भयके मारे खड़े होने को भी असमर्थ होगयी, दूसरी ओर सेनाके चरणोंके शब्दसे और घोड़ोंकी टापोंके पड़नेसे उड़ी हुई धूलिके कारण दिशाओं और कोनोंमेंका कुछ भी नहीं दीखता था, उस समय बहुतसे योधा पाण्डवोंकी सेनामेंसे बाहर निकल कर युद्धमें तुम्हारी ओर के योधाओंका नाश करने लगे, इससे हे भरतसत्तम राजन् ! तुम्हारी सब सेना मारी गयी ॥ १२-१४ ॥ हे भरतवंशी

अक्षौहिण्यः समेतास्तु तव पुत्रस्य भारत । एकादश हता युद्धे ताः प्रभो पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १५ ॥ तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु महात्मसु एको दुर्योधनो राजन्नदृश्यत भृशं क्षतः ॥१६॥ ततो वीक्ष्य दिशः सर्वा दृष्ट्वा शून्याञ्च मेदिनीम् । विहीनः सर्वयोधैश्च पाण्डवान् वीक्ष्य संयुगे ॥ १७ ॥ मुदितान् सर्वसिद्धार्थान्नर्दमानान् समन्ततः। बाणशब्दरवांश्चैव श्रुत्वा तेषां महात्मनाम् ॥ १८ ॥ दुर्योधनो महाराज कश्मलेनाभिसंवृतः। अपयाने मनश्चक्रे विहीनबलवाहनः ॥ १९ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । निहते मामके सैन्ये निःशेषे शिविरे कृते । पाण्डवानां बले सूत किन्नु शेषमभूत्तदा ॥ २० ॥ एतन्मे पृच्छतो ब्रूहि कुशलो ह्यसि सञ्जय । यच्च दुर्योधनो मन्दः कृत-

राजन् ! इसप्रकार युद्धमें तुम्हारे पुत्रने ग्यारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठीकी थी उसका पाण्डवोंने और सृञ्जयोंने नाश करडाला १५ हे राजन् ! तुम्हारे पक्षके सहस्रों महात्मा राजे रणमें खपगये, उससमय अत्यन्त घायल हुआ अकेला दुर्योधन ही तहाँ खडाहुआ दीखता था ॥ १६ ॥ दुर्योधनने चारों ओरको दृष्टि डालकर देखा तो उसको सब दिशायें सूनी मालूम हुईं, पृथिवी भी शून्य दीखी और उसने यह भी देखा, कि-मेरे सब योधा मारेगये तथा उसने देखा, कि-पांडव पूर्ण रीतिसे सफलमनोरथ होनेके कारण हर्ष में भरकर चारों ओर आनन्दकी गर्जनायें कर रहे हैं और मनमें बड़े ही प्रसन्न हैं, उन महात्माओंकी ऐसी आनन्दकी दशा और उनके बाणोंके शब्दको सुनकर उसके मनमें सन्ताप होने लगा, उस समय उसके पास सेना या वाहन कुछ भी नहीं रहा था, इसलिये वह तहाँसे भागनेका विचार करने लगा ॥ १७-१९ ॥ धृतराष्ट्रने बूझा, कि—हे सञ्जय ! मेरी सेनाके निःशेष रूपसे मारी जानेके कारण छावनीके सूनी होजाने पर उस समय, पांडवों की कितनी सेना बचरही थी ? ॥ २० ॥ और अपनी सब सेना का नाश होजाने पर अकेले रहेहुए मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनने क्या

वांस्तनयो मम ॥ २१ ॥ बलक्षयं तदा दृष्ट्वा स एकः पृथिवीपतिः।
सञ्जय उवाच। रथानां द्वे सहस्रे तु सप्त नागशतानि च ॥२२॥
पंच चाश्वसहस्राणि पत्तीनां च शतंशताः। एतच्छेषमभूद्राजन् पांड-
वानां महद्बलम् ॥२३॥ परिगृह्य हि यद्युद्धे धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः।
एकाकी भरतश्रेष्ठ ततो दुर्योधनो नृपः ॥ २४ ॥ नापश्यत् समरे
कञ्चित् सहायं रथिनाम्वरः। गर्जमानान् परांश्चैव स्वबलस्य च
संक्षयम् ॥ २५ ॥ तथा दृष्ट्वा महाराज एकः स पृथिवीपतिः। हतं
स्वहयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद्भयात् ॥ २६ ॥ एकादशचमूभर्त्ता
पुत्रो दुर्योधनस्तव। गदामादाय तेजस्वी पदातिः प्रस्थितो ह्रदम् २७
नातिदूरं ततो गत्वा पद्भ्यामेव नराधिपः। सस्मार वचनं क्षत्तु-
र्धर्मशीलस्य धीमतः ॥ २८ ॥ इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान्
पुरा। महद्वैशसमस्माकं क्षत्रियाणां च संयुगे ॥ २९ ॥ एवं विचि-

किया वह तू मुझे सुना, क्योंकि—तू कथा सुनानेमें चतुर है २१
सञ्जयने कहा, कि–हे भरतसत्तम राजा धृतराष्ट्र ! जब कौरवों
की सब सेना नष्ट होगयी, उस समय पांडवोंकी सेनामें दो हजार
रथ, सात सौ हाथी, पांच हजार घुडसवार और दश हजार
पैदल शेष रहे थे, उस सेनाको लियेहुए धृष्टद्युम्न लडनेके लिये
रणमें खड़ा था, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! उस समय महारथी
राजा दुर्योधन संग्राममें अकेला था, उसको कोई भी अपना सहायक
नहीं दीखा, शत्रुओंको गर्जना करते हुए सुना और अपनी सेना
का नाश हुआ देखा, इससे ग्यारह अक्षौहिणीका पालन करने
वाला तुम्हारा पुत्र श्रेष्ठ रथी दुर्योधन भयके मारे हाथमें गदा
उठाकर मरेहुए घोड़ेको छोड पैदल ही पूर्व दिशामें एक जलके
सरोवरकी ओरको भाग गया ॥ २२–२७ ॥ पैदल ही थोड़ी
दूर तक भाग जानेके अनन्तर वह धर्मात्मा विदुरकी बातको याद
कर कहने लगा, कि–।२८। हायरे ! हमारा और क्षत्रियोंका इस
संग्राममें जो महासंहार हुआ है इसको महाबुद्धिमान् विदुरने पहले

न्तयानन्तु प्रविविक्षुर्ह्रदं ततः । दुःखसन्तप्तहृदयो दृष्ट्वा राजन् बल-क्षयम् ॥ ३० ॥ पाण्डवास्तु महाराज धृष्टद्युम्नपुरोगमाः । अभ्य-धावन्त संक्रुद्धास्तव राजन् बलं प्रति ॥ ३१ ॥ शक्त्यृष्टिप्रासह-स्तानां बलानामभिगर्ज्जताम् । सङ्कल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनञ्जयः ॥ ३२ ॥ तान हत्वा निशितैर्बाणैः सामात्यान् सह ब-न्धुभिः । रथे श्वेतहये तिष्ठन्नर्जुनो व्यशोभत ॥ ३३ ॥ सुबलस्य हतेपुत्रे सवाजिरथकुञ्जरे । महावनमिव छिन्नमभवत्तावकं बलम् ३४ अनेकशतसाहस्रे बले दुर्योधनस्य ह । नान्यो महारथो राजन् जीव-मानो व्यदृश्यत ॥ ३५ ॥ द्रोणपुत्रादृते वीरात्तथैव कृतवर्मणः । कृपाच्च गौतमाद्राजन् पार्थिवाच्च तवात्मजात् ॥ ३६ ॥ धृष्टद्युम्न-

ही देख लिया था ॥२९ ॥ हे राजन् ! ऐसा विचार करता हुआ तथा अपनी सेनाके संहार देखनेसे हुए दुःखके कारण सन्तप्त हृदय वाला दुर्योधन जलके सरोवरमें घुसजाने का विचार करने लगा ३० हे महाराज ! उधर जिनका अगुआ धृष्टद्युम्न था ऐसे पाण्डवोंने दूसरी ओरको खड़ी हुई तुम्हारी सेनापर चढ़ाई की ३१ तुम्हारी सेनाके योधा भी हाथमें शक्ति, ऋष्टि और प्रास लेकर गर्जना करते हुए सामने आगये थे, परन्तु धनंजयने गांडीव धनुषमेंसे बाण छोड़कर उनके सङ्कल्प को निरर्थक करदिया ॥ ३२ ॥ स-फेद घोड़ों वाले रथमें बैठा हुआ अर्जुन, तेज कियेहुए बाणोंकी मारसे बान्धव और मंत्रियों सहित सब कौरवोंका संहार करके उस समय बड़ाही शोभित हुआ ॥ ३३ ॥ सुबलपुत्र शकुनिके, घुड़सवार, रथी और हाथी सवारोंके सहित मारे जाने पर पवन से छिन्न भिन्न हुए महावनकी समान तुम्हारी शेष सेना भी शू-न्य होगयी थी ॥ ३४ ॥ हेराजन् ! दुर्योधन की सेनामें लाखों योधा थे, उनमेंसे वीर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा कृतवर्मा कृपाचार्य और तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके सिवाय और कोई भी महारथी जीवित देखनेमें नहीं आता था ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तदनन्तर धृष्टद्युम्न मुझे

स्तु धां दृष्ट्वा हसन् सात्यकिमब्रवीत् । किमनेन गृहीतेन नानेनार्थोऽस्ति जीवता ॥ ३७ ॥ धृष्टद्युम्नवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता महारथः । उद्यम्य निशितं खड्गं हन्तुमाम्युद्यतस्तदा ॥ ३८ ॥ तमागम्य महाप्राज्ञः कृष्णो द्वैपायनोऽब्रवीत् । मुच्यतां सञ्जयो जीवन्न हन्तव्यः कथञ्चन ॥ ३९ ॥ द्वैपायनवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता कृताञ्जलिः । ततो मामब्रवीन्मुक्त्वा स्वस्ति सञ्जय साधय ४० अनुज्ञातस्त्वहं तेन न्यस्तवर्मा निरायुधः । प्रातिष्ठं येन नगरं सायान्हे रुधिरोक्षितः ॥ ४१ ॥ क्रोशमात्रमपाक्रान्तं गदापाणिमवस्थितम् । एकं दुर्योधनं राजानमपश्यं भृशविक्षतम् ॥ ४२ ॥ स तु मामश्रुपूर्णाक्षो न शक्नोत्यभिवीक्षितुम् । उपमैक्षत मां दृष्ट्वा तदा दीनमवस्थितम् ४३

कैद हुआ देखकर हँसा और उसने सात्यकी से कहा, कि–इसको अब कैद रखने की कुछ आवश्यकता नहीं है. क्योंकि-यह जीता रहेगा तो इससे हमारा कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होसकता ॥ ३७ ॥ धृष्टद्युम्न की इस बातको सुनकर शिनिका पोता महारथी सात्यकी तीखी तलवार उठाकर मुझे मारनेको तयार हुआ ॥ ३८ ॥ परन्तु इतनेमें ही परम बुद्धिमान् कृष्ण द्वैपायन वहाँ आपहुंचे और उन्होंने सात्यकी से कहा, कि– संजयको जीताही छोड़दो, किसी प्रकार भी इसका मारना उचित नहीं है ॥ ३९ ॥ वेदव्यास की बात सुनकर सात्यकीने हाथ जोड़कर मुझसे कहा, कि–हेसञ्जय! तेरा कल्याण हो जा तू अपना काम कर ॥ ४० ॥ सात्यकीने मुझे जानेकी आज्ञादी, तब तो शस्त्र और कवचसे शून्य लोहूलुहान शरीर हुआ मैं सायंकालके समय हस्तिनापुरमें पहुंचनेके लिये चलदिया ॥ ४१ ॥ चलते२ एक कोस निकल कर आया होऊँगा इतनेमेंही अत्यन्त घायल हुआ दुर्योधन हाथमें गदा लेकर अकेला ही खड़ा हुआ मेरे देखनेमें आया, हे महाराज ! इस समय दुर्योधनकी दोनों आँखोंमें आँसू भर रहे थे, इसलिये वह मुझे न देख सका, परन्तु मैं उसके पास गया तब उसको मैंने दीनताभरी

तन्चाहमपि शोचन्तं दृष्ट्वैकाकिनमाहवे । मुहूर्त्तं नाशकं वक्तुं किंचिद् दुःखपरिप्लुतः ॥ ४४ ॥ ततोऽस्मै तदहं सर्वमुक्तवान् ग्रहणं तथा-द्वैपायनप्रसादाच्च जीवतो मोक्षमाहवे ॥४५॥ मुहूर्त्तमिव च ध्यात्वा प्रतिलभ्य च चेतनाम् । भ्रातॄंश्च सर्वसैन्यानि समपृच्छत मां ततः ॥ ४६ ॥ तस्मै तदहमाचक्षे सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् । भ्रातॄंश्च निहतान् सर्वान् सैन्यञ्च विनिपातितम् ॥ ४७ ॥ त्रयः किल रथाः शिष्टास्तावकानां नराधिप । इति प्रस्थानकाले मां कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ४८ ॥ स दीर्घमिव निःश्वस्य प्रत्यवेक्ष्य पुनः पुनः । असौ मां पाणिना स्पृष्ट्वा पुत्रस्ते पर्यभाषत ॥ ४९ ॥ त्वदन्यो नेह संग्रामे कश्चिज्जीवति संजय । द्वितीयं न हि पश्यामि ससहा-

दशामें खडा हुआ देखा ॥ ४२-४३ ॥ उस समय अकेला खडा २ दुर्योधन शोक कर रहा था, इसलिये मुझे भी बडा दुःख हुआ, मैं दो घडी तक कुछ भी बोल नहीं सका ।४४। दो घडी पीछे मैंने अपने कैद होनेकी और वेदव्यासजी कृपासे युद्धमें जीता छूटनेकी सब बात उससे कही ॥ ४५ ॥ दुर्योधन यह सब बात सुन कर दो घडी तक तो विचार ही विचारमें जडसा बना रहा, जब सावधान हुआ तो उसने भाइयोंका तथा सब सेनाका समाचार मुझसे बूझना आरम्भ किया ॥ ४६ ॥ तब मैंने जो प्रत्यक्ष देखा था सो सब दुर्योधनसे कहा तथा सब भाइयोंका और सेनाका संहार भी सुनाया और हे राजन् ! मेरे चलनेके समय कृष्ण द्वैपायनने मुझसे कहा था, कि- तुम्हारी सेनामें तीन महारथी शेष रहे हैं, यह बात भी मैंने दुर्योधनसे कही ॥ ४७-४८ ॥ यह सुनकर उस तुम्हारे पुत्रने गहरा साँस लेकर बार २ मेरी ओरको देखा और हाथसे मेरे शरीरको स्पर्श करके मुझसे कहा कि-॥ ४९ ॥ हे संजय ! संग्राममें तेरे सिवाय दूसरा कोई भी जीवित नहीं है, परन्तु पाण्डवोंके सहायक अभी जीवित हैं ॥ ५० ॥ अब तू मेरे अन्ध पितासे जाकर

याश्च पाण्डवाः ॥५०॥ ब्रूया संजय राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् । दुर्योधनस्तव सुतः प्रविष्टो ह्रदमित्युत ॥ ५१ ॥ सुहृद्भिस्तादृशैर्हीनः पुत्रैर्भ्रातृभिरेव च । पाण्डवैश्च हृते राज्ये को नु जीवेत मादृशः ॥ ५२ ॥ आचक्षीथाः सर्वमिदं मां च मुक्तं महाहवात् । अस्मिंस्तोयह्रदे सुप्तं जीवन्तं भृशविक्षतम् ॥ ५३ ॥ एवमुक्त्वा महाराज प्राविशत्तं ह्रदं नृपः । अस्तम्भयत तोयञ्च मायया मनुजाधिपः ॥ ५४ ॥ तस्मिन् ह्रदं प्रविष्टे तु त्रीनूथान् श्रान्तवाहनान् । अपश्यं सहितानेकस्तं देशं समुपेयुषः ॥ ५५ ॥ कृपं शारद्वतं वीरं द्रौणिञ्च रथिनां वरम् । भोजञ्च कृतवर्माणं सहितान् शरविक्षतान् ॥ ५६ ॥ ते सर्वे मामभिप्रेक्ष्य तूर्णमश्वानचोदयन् । उपयाय च मामूचुर्दिष्ट्या जीवसि संजय ॥ ५७ ॥ अपृच्छंश्चैव मां सर्वे पुत्रं तव

यह कहदेना. कि—तुम्हारा पुत्र दुर्योधन तालावमें घुसगया है ॥ ५१ ॥ मैं परमयोग्य मित्र, पुत्र और भ्राताओंसे हीन होगया और पांडवोंने राज्य छीनलिया, इस दशामें मुझसरीखा कौन पुरुष जीवित रहेगा ? ॥ ५२ ॥ खैर, मैं महारणमेंसे जीवित छूट आया हूँ और मेरा शरीर बहुत घायल होगया है, इसलिये जलके सरोवरमें आछिपा हूँ. यह सब उनसे कहदेना ॥ ५३ ॥ ऐसा कहकर हे महाराज ! दुर्योधन उस बड़ेभारी सरोवरमें घुस गया और मायासे उसमेंके पानीको बाँधदिया ॥ ५४ ॥ उसके सरोवरमें घुसजाने पर बाणोंसे विधेहुए वीर कृपाचार्य, महारथी अश्वत्थामा तथा कृतवर्मा इन तीन योधाओंको मैंने थकेहुए घोड़ोंवाले रथोंमें बैठकर एकसाथ उधरको आते हुआ मैंने देखा ॥ ५५-५६ ॥ उन सबोंने मुझे देखकर घोड़ोंको बड़े वेगसे हांका और मेरे पास आकर मुझसे कहने लगे, कि-हे संजय ! तू जीवित है, यह बड़ा अच्छा हुआ। ॥ ५७ ॥ उन सबोंने मुझसे तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनका समाचार बूझा, कि-हे संजय ! क्या वह हमारा राजा दुर्योधन जीवित है ? ॥ ५८ ॥

जनाधिपम् । यदिदं दुर्योधनो राजा स नो जीवति सञ्जय ॥५८॥ आख्यातवानहं तेभ्यस्तदा कुशलिनं नृपम् । तच्चैव सर्वमाचख्यौ यन्मां दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ५९ ॥ ह्रदञ्चैवाहमाचख्यौ यं प्रविष्टो नराधिपः। अश्वत्थामा तु तद्राजन्निशम्य वचनं मम ॥ ६० ॥ तं ह्रदं विपुलं प्रेक्ष्य करुणं पर्यदेवयत् ॥ ५८ ॥ अहो धिङ् न स जानाति जीवतोऽस्मान्नराधिपः ॥ ६१ ॥ पर्याप्ता हि वयं तेन सह योधयितुं परान् । ते तु तत्र चिरं कालं विलप्य च महारथाः ६२ प्राद्रवन् रथिनां श्रेष्ठा दृष्ट्वा पाण्डुसुतान् रणे । ते तु मां रथमारोप्य कृपस्य सुपरिष्कृतम् ॥ ६३ ॥ सेनानिवेशमाजग्मुर्हतशेषास्त्रयो रथाः । तत्र गुल्माः परित्रस्ताः सूर्य्ये चास्तमिते सति ॥ ६४ ॥ सर्वे विचुक्रुशुः श्रुत्वा पुत्राणां तव संक्षयम् । ततो वृद्धा महाराज-

तब उनसे मैंने राजा दुर्योधनका कुशल समाचार कहा और राजा दुर्योधनने जो कुछ कहा था, वह भी सब सुनादिया ॥ ५९ ॥ और राजा दुर्योधन जिस तालावमें घुसा था वह भी मैंने उनको दिखा दिया, हे राजन् ! अश्वत्थामाने मेरी इस बातको सुनकर उस विशाल सरोवरकी ओरको देखा और करुणाजनक विलाप करनेलगा तथा उसने कहा, कि—ओः ! हमें धिक्कार है, कि—हम जीवित हैं, इस बातको राजा दुर्योधन को खबर नहीं है ॥ ६०–६१ ॥ हम उनके साथ रहकर शत्रुओं के सामने युद्ध करनेको तयार हैं, इसप्रकार उन महारथियोंने वहाँ चिरकाल तक विलाप किया ॥ ६२ ॥ परन्तु रणमें पाण्डवोंको खड़ा देखकर वे महारथी वहांसे भागनिकले और अन्तमें मरनेवालोंमेंसे शेष बचेहुए वे तीनों महारथी मुझे कृपाचार्यके सुन्दर सजे रथमें बैठालकर सूर्यास्तके समय फिर छावनी में आगये, वहाँ रक्षा करनेवाले सैनिक घबड़ारहे थे, तुम्हारे पुत्रोंका मरण सुनकर वे सब रोउठे, हे महाराज ! उस समय स्त्रियोंकी रक्षा करनेवाले वृद्ध पुरुष रानियोंको लेकर नगरकी

योषितां रक्षिणो नराः ॥ ६५ ॥ राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति । तत्र विक्रोशतीनाञ्च रुदतीनाञ्च सर्वशः ॥ ६६ ॥ प्रादुरासीन्महाशब्दः श्रुत्वा तद्बलसंक्षयम् । ततस्तु योषितो राजन् क्रन्दन्त्यो वै मुहुर्मुहुः ॥ ६७ ॥ कुरर्य इव शब्देन नादयन्त्यो महीतलम् । आजघ्नुः करजैश्चापि पाणिभिश्च शिरांस्युत ॥ ६८ ॥ लुलुञ्चुश्च तदा केशान् क्रोशन्त्यस्तत्र तत्र ह । हाहाकारविनादिन्यो विनिघ्नाना उरांसि च ॥ ६९ ॥ क्रोशन्त्यस्तत्र रुरुदुः क्रन्दमाना विशाम्पते । ततो दुर्योधनामात्याः साश्रुकण्ठा भृशातुराः ॥ ७० ॥ राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति । वेत्रव्यासक्तहस्ताश्च द्वाराध्यक्षा विशाम्पते ॥ ७१ ॥ शयनीयानि शुभ्राणि स्पर्द्ध्यास्तरणवन्ति च समादाय ययुस्तूर्णं नगरं जनरक्षिणः ॥ ७२ ॥ आस्थायाश्वतरीयुक्तान् स्यन्दनानपरे पुनः । स्वान् स्वान् दारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ॥ ७३ ॥ अदृष्टपूर्वा या नार्यो भास्करेणापि वेश्मसु ।

ओर जानेका विचार कर रहे थे, रानियें अपने पतियोंके मरण को सुनकर टटीहियोंकी समान विलाप कररही थीं और उनके रोनेके कोलाहलने भूमण्डलको प्रतिध्वनित कर रक्खा था, वे दोनों हाथोंसे शिर पीट रही थीं और नखोंसे शरीरोंको वकोट रही थीं, हाथोंसे शिरके बालोंको खसोट रही थीं, हाय २ करके छातियोंको कूट रही थीं, इसप्रकार स्त्रियोंके रुदनको सुनकर दुर्योधनके मंत्री भी बड़े दुःखी हुए और उनकी आँखोंमें जल भरआया ॥ ६३–७० ॥ हे राजन् ! फिर हाथमें छड़ी धारण करनेवाले द्वाराध्यक्ष राजरानियोंको लेकर हस्तिनापुरकी ओरको चलदिये ॥ ७१ ॥ कितने ही रानियोंके रक्षक स्पर्धा करनेयोग्य पलँगपोशोंवाले सफ़ेद गद्दोंको लेकर तुरन्त नगरकी ओरको चलदिये ॥ ७२ ॥ कितने ही रणवासके रक्षक अपनी राजरानियों को लेकर खच्चरियोंसे जुतेहुए रथोंमें बैठकर नगरको चलपड़े ७३ हे महाराज ! पहले सूर्यने भी जिन रानियोंको राजमन्दिरमें नहीं

दृष्ट्वा महाराज जना यान्तीः पुरं प्रति ॥ ७४ ॥ ताः स्त्रियो भरतश्रेष्ठ सौकुमार्यसमन्विताः । प्रययुर्नगरं तूर्णं हतस्वजनबान्धवाः ॥ ७५ ॥ आगोपाला विपालेभ्यो द्रवन्तो नगरं प्रति । ययुर्मनुष्याः संभ्रान्ता भीमसेनभयार्दिताः ॥ ७६ ॥ अपि चैषां भयं तीव्रं पार्थेभ्योऽभूत् सुदारुणम् । प्रेक्षमाणास्तदान्योन्यमधावन्नगरं प्रति ॥ ७७ ॥ तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने विद्रवे भृशदारुणे । युयुत्सुः शोकसंमूढः प्राप्तकालमचिन्तयत् ॥ ७८ ॥ जितो दुर्योधनः संख्ये पाण्डवैर्भीमविक्रमैः । एकादशचमूभर्त्ता भ्रातरश्चास्य सूदिताः ।७९। हताश्च कुरवः सर्वे भीष्मद्रोणपुरःसराः । अहमेको विमुक्तस्तु भाग्ययोगाद्यदृच्छया ॥ ८० ॥ विद्रुतानि च सर्वाणि शिबिराणि समन्ततः । इतस्ततः पलायन्ते हतनाथा हतौ-

देखपाया था, उन रानियोंको हस्तिनापुरकी ओरको जातेहुए साधारण मनुष्यों ने देखा ॥ ७४ ॥ हे भरत सत्तम राजन् ! सुकुमार राजरानियें अपने कुटुम्बियों तथा पतियोंका मरण होजानेके कारण इसप्रकार बडी हो शीघ्रतासे नगरको चलदीं ॥७५॥ और उधर गौएं चरानेवाले ग्वालियोंसे लेकर भेडें पालने वालों तक सब मनुष्य भीमसेनके भयसे घबडाकर नगरकी ओरको भागगये ॥ ७६ ॥ लोगोंको पाँडवोंसे बडा ही दारुण भय होने लगा और एक दूसरेके मुखको देखते हुये नगरकी ओरको दौड़नेलगे ७७ इसप्रकार बडी दारुण भागड पड रही थी, उस समय शोक से मूढ़ बना हुआ युयुत्सु मनमें समयके अनुसार विचार करनेलगा, कि ।७८।भयानक पराक्रमी पांडवोंने ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका भरण करनेवाले दुर्योधनको जीतलिया, इसके भाइयोंको भी मारडाला ॥ ७९ ॥ भीष्म द्रोण आदि सब कौरव भी मारेगये, केवल एक मैं ही भाग्यवश अचानक जीवित रहगया हूँ ॥ ८० ॥ सब छावनियें चारों ओरसे उखड़गयीं, जिनके राजे मारे गये हैं और जिनका प्राणबल नष्ट होगया है ऐसे योधा इधर उधर

जसः ॥ ८१ ॥ अदृष्टपूर्वा दुःखार्त्ता भयव्याकुललोचनाः । हरिणा इव वित्रस्ताः प्रेक्ष्यमाणा दिशो दश ८२ दुर्योधनस्य सचिवा ये केचिदवशेषिताः । राजदारानुपादाय व्यधावन्नगरं प्रति ॥ ८३ ॥ प्राप्तकालमहं मन्ये प्रवेशं तैः सह प्रभो । युधिष्ठिरमनुज्ञाप्य भीमसेनं तथैव च ॥ ८४ ॥ एतमर्थं महाबाहुरुभयोः संन्यवेदयत् । तस्य प्रीतोऽभवद्राजा नित्यं करुणवेदिता ॥ ८६ ॥ परिष्वज्य महाबाहुर्वैश्यापुत्रं व्यसर्जयत् । ततः स्वरथमास्थाय द्रुतमश्वानचोदयत् ८६ सम्वाहयितवांश्चापि राजदारान् पुरं प्रति । तैश्चैव सहितः क्षिप्रमस्तं गच्छति भास्करे ॥ ८७ ॥ प्रविष्टो हास्तिनपुरं बाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः ॥ अपश्यन महाप्राज्ञं विदुरं साश्रुलोचनम् ॥ ८८ ॥ राज्ञः समीपान्निष्क्रान्तं शोकोपहतचेतसम् । तमब्रवीत् सत्यधृतिः

भागे फिरते हैं ॥ ८१ ॥ जो पहले कभी देखनेमें भी नहीं आते थे ऐसे पुरुष दुःखसे घबड़ाकर, भयसे व्याकुलनयन होकर त्रास पायेहुए हिरनोंकी समान दशों दिशाओंमेंको ताक रहे हैं ॥८२॥ दुर्योधनके शेष रहेहुए मंत्री राजरानियोंको लेकर नगरकी ओरको जारहे हैं ॥ ८३ ॥ इसलिये मैं भी युधिष्ठिर और भीमसेनकी आज्ञा लेकर नगरमें जानेवाले लोगोंके साथ २ अब नगरमें जाऊँ, क्योंकि-इस समय ऐसा ही करना उचित है ॥ ८४ ॥ ऐसा विचार करके महाबाहु युयुत्सुने यह बात उन दोनोंसे निवेदन की तब सदाके दयालु राजा युधिष्ठिर, वनैनीके पुत्र युयुत्सुके ऊपर प्रसन्नहुए और उसको छातीसे लगाकर जानेकी आज्ञा दी. तुरन्त ही युयुत्सुने रथमें बैठकर घोड़ोंको हाँकदिया, वह राजरानियोंको भी नगरकी ओरको शीघ्रतासे लेगया. सूर्यके अस्त होनेके समय उन सबके साथ युयुत्सु हस्तिनापुरमें पहुँच गया ॥ ८५-८७ ॥ वह हस्तिनापुरमें घुसकर महाबुद्धिमान् विदुरके पास जाकर खड़ा होगया, दोनों एक दूसरेकोदेखकर रोनेलगे तथा दोनोंके गले रुकगये ॥ ८८ ॥ फिर सच्चे धीरजवाले विदुरने

प्रणतम्त्वग्रतः स्थितम् ॥ ८९ ॥ अस्मिन् कुरुक्षये वृत्ते दिष्ट्या त्वं पुत्र जीवसि । विना राज्ञः प्रवेशाद्वै किमसि त्वमिहागतः ९० एतद्वै कारणं सर्वं विस्तरेण निवेदय । युयुत्सुरुवाच । निहते शकुनौ तात सज्ञातिसुतबान्धवे ॥ ९१ ॥ हतशेषपरीवारो राजा दुर्योधनस्ततः । हतं स्वहयमुत्सृज्यप्राङ्मुखः प्राद्रवद्भयात् ॥ ९२ ॥ अपक्रान्ते तु नृपतौ स्कन्धावारनिवेशनात् । भयव्याकुलितं सर्वं प्राद्रवन्नगरं प्रति ॥ ९३ ॥ ततो राज्ञः कलत्राणि भ्रातृणाञ्चास्य सर्वशः । वाहनेषु समारोप्य स्त्र्यध्यक्षाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ९४ ॥ ततोऽहं समनुज्ञाप्य राजानं सहकेशवम् । प्रविष्टो हास्तिनपुरं रक्षन् लोकान् प्रधावितान् ॥ ९५ ॥ एतत् श्रुत्वा तु वचनं वैश्यापुत्रेण भाषितम् । प्राप्तकालमिति ज्ञात्वा विदुरः सर्वधर्मवित् ॥ ९६ ॥

राजा युधिष्ठिरके पाससे आये हुए, शोकसे खिन्न मन वाले और प्रणाम करके सामने खड़े हुए युयुत्सुसे कहा, कि—॥ ८९ ॥ हे बेटा ! कुरुकुलका संहार होजाने पर तू जीवित है, यह अच्छा हुआ, तू दुर्योधनके यहां बिना पहुंचे क्यों चला आया, इसका कारण विस्तारसे सुना ॥ ९० ॥ युयुत्सुने कहा, कि—शकुनिके अपने सगे सम्बन्धी और पुत्रोंके सहित मारेजाने पर जिसके साथके सब योधा मारेगये थे ऐसा राजा दुर्योधन अपने मरेहुए घोड़को छोडकर डरके मारे पूर्वकी ओरको भागगया है ॥ ९१—९२ ॥ राजा दुर्योधनके भागते ही उसकी छावनीमेंसे भी सब लोग डरके मारे घबड़ाकर नगरकी ओरको भागनेलगे ॥ ९३ ॥ राजा दुर्योधन और उसके भाइयों की रानियोंको रथोंमें बैठालकर स्त्रियोंके रक्षक भी डरके मारे भागनेलगे ॥ ९४ ॥ तब मैं राजा युधिष्ठिर तथा केशवकी आज्ञा लेकर भागनेवालोंकी रक्षा करता हुआ हस्तिनापुरमें आया हूं ९५ वनेनीके पुत्र युयुत्सुकी बात सुनकर सब धर्मोको जाननेवाले विदुरने उसकी बातको समयोचित समझा और उसकी प्रशंसा

अपूजयदमेयात्मा युयुत्सुं वाक्यमब्रवीत् । प्राप्तकालमिदं सर्वं ब्रुवता भरतक्षये ॥ ९७ ॥ रक्षितः कुलधर्मश्च सानुक्रोशतया त्वया । दिष्ट्या त्वामिह संग्रामादस्माद्वीरक्षयात्पुरम् ॥ ९८ ॥ समागतमपश्याम ह्यंशुमन्तमिव प्रजाः । अन्धस्य नृपतेर्यष्टिर्लुब्ध-स्यादीर्घदर्शिनः ॥ ९९ ॥ बहुशो याच्यमानस्य दैवोपहतचेतसः । त्वमेको व्यसनार्त्तस्य ध्रियसे पुत्र सर्वथा ॥ १०० ॥ अद्य त्व-मिह विश्रान्तः श्वोऽभिगन्ता युधिष्ठिरम् । एतावदुक्त्वा वचनं विदुरः साश्रुलोचनः ॥ १०१ ॥ युयुत्सुं समनुप्राप्य प्रविवेश नृपक्षयम् । पौरजानपदैर्दुःखाद्धाहेति भृशनादितम् ॥ १०२ ॥ निरानन्दगत-श्रीकं हृतारामभिवाशयम् । शून्यरूपमपध्वस्तं दुःखाद्दुःखतरोऽ-

करके उदारमनवाले विदुरजी कहनेलगे, कि-हे युयुत्सु ! तूने भरतवंशके नाशके विषयमें जो बात कही है वह समयानुसार है और तूने दयाके कारण कुलके धर्मकी रक्षा की है, यह भी ठीक किया, जैसे प्रजा अंशुमान् सूर्यका दर्शन करके प्रसन्न होती है ऐसे ही मैं भी जिसमें वीर पुरुषोंका संहार होगया है ऐसे संग्राममेंसे तुझे यहाँ आया हुआ देखकर प्रसन्न हुआ हूँ, राजा धृतराष्ट्र आँखोंसे अन्धा है, लोभी है, अल्पदृष्टि है, अनेकों वार समझाने पर भी प्रारब्धवश बुद्धिहीन होगया है और दुःखसे पीडा पारहा है, उसके हाथकी लकडीरूप एक तू ही पुत्र सर्वथा जीवित रहा है ॥ ९६-१०० ॥ आज तू यहां विश्राम करले और कलको राजा युधिष्ठिरके पास चलाजाना, ऐसा युयुत्सुसे कहकर विदुरजी रोतेहुए राजमहलमें चलेगये, इस समय नगर के और देशके लोग दुःखसे हाय हाय कर रहे थे, इससे राज-महलमें बडा ही कोलाहल होरहा था ॥ १०१-१०२ ॥ आन-न्द और लक्ष्मी तहाँसे विदा होगये थे, जैसे तालावके पासका वगीचा कटगया हो, ऐसा ऊजड़ और विनष्ट हुआसा दीखता था ऐसी दशाके राजमहल तथा नगरको देखकर विदुरको बड़ा

भवत् ॥ १०३ ॥ विदुरः सर्वधर्मज्ञो विक्लवेनान्तरात्मना । विवेश नगरं राजन्निशश्वास शनैः शनैः ॥ १०४ ॥ युयुत्सुरपि तां रात्रिं स्वगृहेऽन्यवसत्तदा । वन्द्यमानः स्वकैश्चापि नाभ्यनन्दत् सुदुःखितः । चिन्तयानः क्षयं तीव्रं भरतानां परस्परम् ॥ १०५ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि ह्रदप्रवेशपर्वणि युयुत्सुनगरप्रवेश एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

समाप्तञ्च ह्रदप्रवेशपर्व

अथ गदापर्व

धृतराष्ट्र उवाच । हतेषु सर्वसैन्येषु पाण्डुपुत्रैः रणाजिरे । मम सैन्यावशिष्टास्ते किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥ कृतवर्मा कृपश्चैव द्रोणपुत्रश्च वीर्य्यवान् । दुर्योधनश्च मन्दात्मा राजा किमकरोत्तदा ॥२॥ सञ्जय उवाच । संप्रद्रवत्सु दारेषु क्षत्रियाणां महात्मनाम् । विद्रुते

ही दुःख हुआ, विदुरजी सब धर्मोंको जानते थे वे मनमें विकल होकर लंबे सांस लेतेहुए धीरे२ राजमहलमेंसे बाहर आये॥१०३॥ ॥ १०४ ॥ युयुत्सुने भी वह रात अपने घर रहकर ही बितायी यद्यपि उसके सेवकोंने बड़ी सेवा की, परन्तु भरतवंशी राजाओं के आपसमें युद्ध करनेसे महासंहार होगया था, इसका विचार करनेसे युयुत्सु बड़ा ही दुःखी होरहा था, इसलिये उसने अपने सेवकोंकी शुश्रूषाकी सराहना नहीं की ॥ १०५ ॥ उन्तीसवां अध्याय और ह्रदप्रवेशपर्व समाप्त ॥ २९ ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि—हे संजय ! जब पांडवोंने रणभूमिमें हमारी सब सेनाको मारडाला, तब शेष रहीहुई सेनाने क्या किया ? ॥ १ ॥ कृतवर्मा, कृपाचार्य, पराक्रमी अश्वत्थामा और मूर्ख राजा दुर्योधनने उस समय क्या किया ? ॥ २ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि—हे राजन्! महात्मा क्षत्रियोंकी रानियें नगर की ओरको चली गईं तथा छावनीमेंके और मनुष्य भी भागगये तब छावनीमें सूनसान देखकर वे तीनों महारथी बहुत ही दुःखित

शिविरे शून्ये भृशोद्विग्नास्त्रयो रथाः ॥ ३ ॥ निशम्य पाण्डुपुत्राणां तदा विजयिनां स्वनम् । विद्रुतं शिविरं दृष्ट्वा सायाह्ने राजगृद्धिनः ॥ ४ ॥ स्थानं नारोचयंस्तत्र ततस्ते ह्रदमभ्ययुः । युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितो रणे ॥ ५ ॥ हृष्टः पर्य्यचरद्राजन् दुर्य्योधनवधेप्सया । मार्गमाणास्तु संक्रुद्धास्तव पुत्रं जयैषिणः ॥ ६ ॥ यत्नतोऽन्वेषमाणास्ते नैवापश्यन् जनाधिपम् । स हि तीव्रेण वेगेन गदापाणिरपाक्रमत् ॥ ७ ॥ तं ह्रदं प्राविशच्चापि विष्टभ्यापः स्वमायया । यदा तु पाण्डवाः सर्वे सुपरिश्रान्तवाहनाः ॥ ८ ॥ ततः स्वशिविरं प्राप्य व्यतिष्ठन्त ससैनिकाः । ततः कृपश्च द्रौणिश्च कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ९ ॥ सन्निविष्टेषु पार्थेषु प्रयातास्तं ह्रदं शनैः । ते तं ह्रदं समासाद्य यत्र शेते जनाधिपः ॥ १० ॥ अभ्य-

---

हुए ॥ ३ ॥ विजय पानेवाले पाण्डवोंके कोलाहलको सुनकर और अपनी छावनीको भागीहुई देखकर कृपाचार्य आदि तीनों महारथियोंने तहां रहना ठीक नहीं समझा, वे सायंकालके समय दुर्योधनको खोजने लिये तहाँसे जलके सरोवरके समीप गये, हे राजन् ! उधर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर भी रणमें भाइयोंके साथ प्रसन्न होतेहुए दुर्योधनका प्राणान्त करनेकी इच्छासे घूमनेलगे विजय चाहनेवाले पांडव क्रोधमें भरकर तुम्हारे पुत्रको उद्योगके साथ खोजनेलगे, परन्तु उनको तुम्हारे पुत्रका पता ही नहीं मिला दुर्योधन हाथमें गदा लेकर बड़े ही वेगसे रणमेंसे भागगया था और जलके कुण्डमें घुसगया था तथा अपनी मायासे उस तालावमेंके जलको स्थिर करदिया था, इसकारण पाण्डव दुर्योधनका पता न पासके, वाहनोंके अत्यन्त थकजानेके कारण सैनिकोंके सहित सब पाण्डव अपनी छावनीमें जाकर विश्राम करनेलगे उनके अपनी छावनीमें चलेजानेपर कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा, जहाँ राजा जलके सरोवरमें घुसकर सोरहा था उस सरोवरके पास धीरे२ गये ॥४-१०॥ और जलमें सोयेहुए दुराधर्ष

भाषन्त दुर्द्धर्षं राजानं सुप्तमम्भसि । राजन्नुत्तिष्ठ युध्यस्व सहास्माभिर्युधिष्ठिरम् ॥ ११ ॥ जित्वा वा पृथिवीं भुङ्क्ष्व हतो वा स्वर्गमाप्नुहि । तेषामपि बलं सर्वं हतं दुर्य्योधन त्वया ॥ १२ ॥ प्रतिविद्धाश्च भूयिष्ठं ये शिष्टास्तत्र सैनिकाः । न ते वेगं विषहितुं शक्तास्तव विशाम्पते ॥ १३ ॥ अस्माभिरभिगुप्तस्य तस्मादुत्तिष्ठ भारत । दुर्य्योधन उवाच । दिष्ट्या पश्यामि वो मुक्तानीदृशात् पुरुषक्षयात् ॥ १४ ॥ पाण्डुकौरवसम्मर्दाज्जीवमानान्नरर्षभान् । विजेष्यामो वयं सर्वे विश्रान्ता विगतक्लमाः ॥ १५ ॥ भवन्तश्च परिश्रान्ता वयञ्च भृशविक्षताः । उदीर्णञ्च बलं तेषां तेन युद्धं न रोचये ॥ १६ ॥ न त्वेतदद्भुतं वीरा यद्वो महदिदं मनः । अस्मासु च परा भक्तिर्न तु कालः पराक्रमे ॥ १७ ॥ विश्राम्यैकां

राजा दुर्योधनसे कहा, कि-हे राजन् ! जलमेंसे उठकर बाहर निकलो और हमारे साथ रहकर युधिष्ठिरसे लडो, या तो पृथिवी को जीतकर उसका सुख भोगो, नहीं तो रणमें प्राण देकर स्वर्गको चलेजाओ, हे दुर्योधन ! तूने उनकी सब सेनाका नाश करदिया है, बहुतसे सैनिकोंको बींधडाला है और जो योधा बच गए हैं वे तेरे वेगको सह नहीं सकते ॥ ११-१३ ॥ और हम भी तेरी रक्षा करेंगे. इसलिये हे भरतवंशी राजा दुर्योधन ! तू तालवमेंसे बाहर निकल । दुर्योधनने कहा, कि-कौरव और पांडवोंके युद्धमें जो बड़ाभारी संहार हुआ, उसमेंसे तुम तीन महापुरुषोंको बचा हुआ देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है, अब तो हम परिश्रम तथा ग्लानिसे छुटकारा पानेपर शत्रुओंको जीतेंगे ॥ १४-१५ ॥ तुम भी थकगये हो और मैं भी बहुत घायल होरहा हूँ और पाण्डवोंकी सेना आवेशमें भररही है, इसलिये उनके साथ युद्ध करनेको मेरा जी नहीं चाहता ॥ १६ ॥ और हे वीरो ! तुम्हारा जो यह बडा मन है, इसमें आश्चर्य नहीं है, किन्तु यह उचित ही है, तथा हममें शक्ति भी बड़ीभारी है, परन्तु यह अवसर हमारे परा-

निशामद्य भवद्भिः सहितो रणे । प्रतियोत्स्याम्यहं शत्रून् श्वो न मेस्त्यत्र संशयः ॥ १८ ॥ संजय उवाच । एवमुक्तोब्रवीद्द्रौणी राजानं युद्धदुर्मदम् । उत्तिष्ठ राजन् भद्रन्ते विजेष्यामो वयं परान् ॥ १९ ॥ इष्टापूर्त्तेन दानेन सत्येन च जपेन च । शपे राजन् यथा ह्यद्य निहनिष्यामि सोमकान् ॥ २० ॥ मा स्म यज्ञकृतां प्रीतिं प्राप्नुयां सज्जनोचिताम् । यदीमां रजनीं व्युष्टां न निहन्मि परान्रणे ॥ २१ ॥ नाहत्वा सर्वपाञ्चालान् विमोक्ष्ये कवचं विभो । इति सत्यं ब्रवीम्येतत्तन्मे शृणु जनाधिप ॥ २२ ॥ तेषु सम्भाषमाणेषु व्याधास्तं देशमाययुः । मांसभारपरिश्रान्ताः पानीयार्थं यदृच्छया ॥ २३ ॥ ते हि नित्यं महाराज भीमसेनस्य लुब्धकाः । मांसभारा-

---

क्रम करनेका नहीं है ॥ १७ ॥ इसलिये आजकी एक रात इस जलमें विश्राम लेकर कल मैं तुम्हारे साथ रणमें चलूँगा और शत्रुओंके साथ लड़ूँगा, इसमें जरा भी सन्देह मत करो ॥ १८ ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! दुर्योधनकी इस बात को सुनकर अश्वत्थामाने युद्धदुर्मद राजा दुर्योधनसे कहा, कि-हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो, इस समय तुम जलमेंसे निकल आओ तो हम शत्रुओंको जीतलेंगे ॥ १९ ॥ हे राजन् ! मैं यज्ञ याग, कुआ खुदाना, दान, सत्य और विजयकी शपथ खाकर कहता हूँ, कि-आज मैं सोमक राजाओंको मारडालूँगा ॥ २० ॥ मैं यदि आजकी रात रणमें शत्रुओंको मारे विना विताऊँ तो सज्जनोंको मिलने योग्य यज्ञका पुण्यफल मुझे न मिले ॥ २१ ॥ हे राजन् ! मैं सब पांचालराजाओंको मारे विना अपने शरीर परका कवच नहीं उतारूँगा, इस बातको मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ २२ ॥ इस प्रकार वे बातें कर रहे थे, उसी समय व्याधे मांसके भारसे थकजाने पर पानी पीनेको दैवयोगसे उसी स्थान पर आपहुंचे ॥ २३ ॥ हे महाराज ! उन व्याधोंकी भीमसेनके ऊपर बड़ी भक्ति थी, इस कारण उसके लिये नित्य मांसका

नुपाजह्रभक्त्या परमया विभो ॥ २४ ॥ ते तत्राधिष्ठितास्तेषां सर्वं तद्वचनं रहः । दुर्योधनवचश्चैव शुश्रुवुः सङ्गता मिथः ॥ २५ ॥ तेपि सर्वे महेष्वासा अयुद्धार्थिनि कौरवे । निर्बन्धं परमञ्चक्रुस्तदा वै युद्धकांक्षिणः ।२६। तांस्तथा समुदीक्ष्याथ कौरवाणां महारथान् । अयुद्धमनसञ्चैव राजानं स्थितमम्भसि ॥२७॥ तेषां श्रुत्वा च संवादं राज्ञश्च सलिले सतः । व्याधाभ्यजानन् राजेन्द्र सलिलस्थं सुयोधनम् ॥ २८ ॥ ते पूर्वं पाण्डुपुत्रेण पृष्टा ह्यासन् सुतं तव । यदृच्छोपगतास्तत्र राजानं परिमार्गता ॥ २९ ॥ ततस्ते पाण्डुपुत्रस्य स्मृत्वा तद्भाषितं तदा । अन्योन्यमब्रुवन्राजन् मृगव्याधाःशनैरिदम् ॥ ३० ॥ दुर्योधनं ख्यापयामो धनं दास्यति पाण्डवः । सुव्यक्तमिह न ख्यातो ह्रदे दुर्योधनो नृपः ॥ ३१ ॥ तस्माद्गच्छामहे

ढेर लाकर अर्पण किया करते थे ॥ २४ ॥ वे तहाँ आकर खड़े होगए और कृपाचार्य आदि दुर्योधनके साथ जो गुप्त बात चीत होरही थी उसको आपसमें इकट्ठे होकर सुनते रहे ॥ २५ ॥ दुर्योधनको युद्ध करनेकी इच्छा नहीं थी, तो भी महाधनुषधारी कृपाचार्य आदिको युद्ध करनेकी इच्छा थी, इसलिये उस समय उन्होंने युद्धके लिये पक्का निश्चय किया ॥ २६ ॥ उन व्याधोंने कौरवोंके महारथियोंको तथा युद्धकी इच्छा न करनेवाले जलमें छिपेहुए राजा दुर्योधनको देख लिया और उन महारथियोंकी जलमें घुसे हुए दुर्योधनके साथ बातचीत भी सुनी, हे राजेन्द्र ! उन व्याधोंने जलमें घुसे हुए दुर्योधनको पहिचान लिया ॥ २७—२८ ॥ जहां तहाँ ढूढते हुए भीमने भी इन व्याधोंसे तुम्हारे पुत्रके विषयमें पहले बूझा था, इस समय अचानक वे तहां आपहुंचे ॥ २९ ॥ और वे व्याध भीमकी बातको याद करके हे राजन् ! आपसमें धीरे २ कहने लगे, कि—॥ ३० ॥ राजा दुर्योधन इस जलके तालाबमें छुपकर आबैठा है, यह बात हम राजा युधिष्ठिरसे कहेंगे तो वह हमें धन

सर्वे यत्र राजा युधिष्ठिरः। आख्यातुं सलिले सुप्तं दुर्योधनममर्षणम्॥३२॥ धृतराष्ट्रात्मजं तस्मै भीमसेनाय धीमते। शयानं सलिले सर्वे कथयामो धनुर्भृते॥ ३३॥ स नो दास्यति सुप्रीतो धनानि बहुलान्युत। किन्नो मांसेन शुष्केण परिक्लिष्टेन शोषिणा ३४ एवमुक्त्वा तु ते व्याधाः संप्रहृष्टा धनार्थिनः। मांसभारानुपादाय प्रययुः शिबिरं प्रति॥ ३५॥ पाण्डवाश्चापि महाराज लब्धलक्ष्याः प्रहारिणः। अपश्यमानाः समरे दुर्योधनमवस्थितम्॥ ३६॥ निकृतेस्तस्य पापस्य ते पारं गमनेप्सवः। चारान् संप्रेषयामासुः समन्ताच्चद्रणाजिरे॥ ३७॥ आगम्य तु ततः सर्वे नष्टं दुर्योधनं नृपम्। न्यवेदयन्त सहिता धर्मराजस्य सैनिकाः॥३८॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा चाराणां भरतर्षभ। चिन्तामभ्यागमत्तीव्रां निशश्वास च पार्थिवः॥३९॥ अथ स्थितानां दीनानां पाण्डूनां भरतर्षभ।

देंगे॥ ३१॥ इसलिये इस अमर्षण दुर्योधनका समाचार कहनेके लिये हम सब जहां राजा युधिष्ठिर हैं तहाँ चलें॥ ३२॥ और सब जने उस बुद्धिमान् धनुषधारी भीमसेनसे कहेंगे, कि-दुर्योधन जलमें सोरहा है॥ ३३॥ इससे वह परम प्रसन्न होकर हमें बहुतसा धन देगा, इस सूखे निःसार दुःखदायक मांससे हमें क्या लाभ होना है?॥ ३४॥ धनकी चाहनावाले वे व्याधे ऐसा कहकर बड़े प्रसन्न होतेहुए मांसकी गठरियोंको लियेहुए छावनी की ओरको चलेगये॥ ३५॥ हे महाराज! उधर सफलमनोरथ हुए पाण्डवोंने दुर्योधनको रणभूमिमें खड़ा न देखकर और पापीके कपटका पार पानेकी इच्छासे उस रणभूमिके चारोंओर दूतोंको भेजकर ढुँढवाया॥ ३६-३७॥ उनसब दूतोंने और धर्मराजके सैनिकोंने तहाँसे आकर निवेदन किया, कि-दुर्योधनका कुछ पता नहीं चलता॥ ३८॥ हे राजन्! दूतोंकी इस बातको सुनकर राजा युधिष्ठिरको बड़ी चिन्ता हुई और वह लंबे श्वास लेनेलगे॥ ३९॥ हे भरतसत्तम! इसके

तस्माद्देशादपाक्रम्य त्वरिता लुब्धका विभो ॥ ४० ॥ आजग्मुः शिविरं दृष्ट्वा हृष्टा दुर्योधनं नृपम् । वार्यमाणाः प्रविष्टाश्च भीमसेनस्य पश्यतः ॥ ४१ ॥ ते तु पाण्डवमासाद्य भीमसेनं महाबलम् । तस्मै तत् सर्वमाचख्युर्यद् वृत्तं यच्च वै श्रुतम् ॥४२॥ ततो वृकोदरो राजन् दत्त्वा तेषां धनं बहु । धर्म्मराजाय तत् सर्वमाचचक्षे परन्तप ॥ ४३ ॥ असौ दुर्य्योधनो राजन् विज्ञातो मम लुब्धकैः । संस्तभ्य सलिलं शेते यस्यार्थे परितप्स्यसे ॥ ४४ ॥ तद्वचो भीमसेनस्य प्रियं श्रुत्वा विशाम्पते । अजातशत्रुः कौन्तेयो हृष्टोभूत् सह सोदरैः ॥ ४५ ॥ तञ्च श्रुत्वा महेष्वासं प्रविष्टं सलिलं ह्रदम् । क्षिप्रमेव ततोऽगच्छत् पुरस्कृत्य जनार्दनम् ॥ ४६ ॥ ततः किलकिलाशब्दः प्रादुरासीद्विशाम्पते । पाण्डवानां प्रहृष्टानां पाञ्चालानाञ्च सर्वशः ॥ ४७ ॥ सिंहनादांस्ततश्चक्रुः क्ष्वेडाश्च भर-

---

अनन्तर पाण्डव लाचार हुए बैठे थे,-इतनेमें ही राजा दुर्योधनका पता पाकर प्रसन्न हुए वे व्याधे तहांसे बड़ी शीघ्र२ चलकर छावनी में आगये और रोके जाने पर भी घुसे चले आये, भीमसेन यह देख रहा था ॥४०॥४१॥ उन्होंने महाबली पांडुपुत्र भीमसेनके पास जाकर जो कुछ हुआ, और जो बातें सुनी थीं वह सब उससे कहदीं ।४२। हे राजन! उस समय शत्रुनाशी भीमने उन व्याधोंको बहुतसा धन दिया और वह सब समाचार धर्मराजको सुना दिया कि— ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! मेरे व्याधोंने दुर्योधनका पता निकाल लिया तुम जिसके लिये चिन्ता कर रहे थे वह दुर्योधन समीपमें ही जल को स्थिर कर के उसमें सो रहा है ॥ ४४ ॥ हे राजन्! भीमसेनकी इस प्यारी बातको सुनकर अजातशत्रु युधिष्ठिर और उनके भाई बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४५ ॥ राजा युधिष्ठिर महाधनुषधारी दुर्योधनको जलके भीतर घुसा हुआ सुनकर तुरन्त ही श्रीकृष्णको आगे करके उस तालावकी ओर चल दिये ॥४६ ॥ तथा उस समय पाण्डव और पांचालराजे चारों ओरसे आनन्दके शब्द करने लगे

तर्षभ । त्वरिताः क्षत्रिया राजन् जग्मुर्द्वैपायनं ह्रदम् ॥ ४८ ॥
ज्ञातः पापो धार्त्तराष्ट्रो दृष्टश्चेत्यसकृद्रणे । आक्रोशन् सोमकास्तत्र
हृष्टरूपाः समन्ततः ॥ ४९ ॥ तेषामाशु प्रयातानां रथानां तत्र
वेगिनाम् । बभूव तुमुलः शब्दो दिवस्पृक् पृथिवीपते ॥ ५० ॥
दुर्योधनं परीप्सन्तस्तत्र तत्र युधिष्ठिरम् । अन्वयुस्त्वरितास्ते वै
राजानं श्रान्तवाहनाः ॥ ५१ ॥ अर्जुनो भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ
च पाण्डवौ । धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी चापराजितः ।५२।
उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिश्च महारथः । पाञ्चालानाञ्च वै
शिष्टा द्रौपदेयाश्च भारत ॥ ५३ ॥ हयाश्च सर्वे नागाश्च शत-
शश्च पदातयः ॥ ५४ ॥ ततः प्राप्तो महाराज धर्मराजः प्रतापवान्
द्वैपायनह्रदं घोरं यत्र दुर्योधनोऽभवत् । शीतामलजलं हृद्यं द्विती-

॥ ४७ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! वे क्षत्रिय सिंहकी समान गर-जते भुजदण्डों पर ताल ठोकते हुए द्वैपायन सरोवरकी ओरको गये, सोमकवंशके राजे आनन्दमें भर कर चारों ओरसे ऊँचे स्वर से कहने लगे, कि—जिस पापीको हमने रणमें बारम्बार देखा था वह पापी दुर्योधन इस समय जलके तालावमें छिपा बैठा है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तुरन्त ही पाण्डव और उनके सैनिक रथोंमें बैठ कर बड़े वेगसे तालावकी ओरको गये थे, हे राजन् ! उस समय का उनका तुमुल कोलाहल ठेठ आकाशतक जा पहुँचा ॥ ५० ॥ क्षत्रिय योधाओंके वाहन थक गये थे तो भी वे दुर्योधनको ढूँढनेकी इच्छासे शीघ्रता से राजा दुर्योधनके पीछे २ गये ॥ ५१ ॥ अर्जुन, भीमसेन, नकुल, सहदेव, पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्न, अजित शिखण्डी उत्तमौजा, युधामन्यु, महारथी सात्यकि, मरते २ बचे हुए पञ्चाल राजे, द्रौपदीके पुत्र, सब घुड़सवार, हाथीसवार और सैकड़ों पैदल युधिष्ठिरके पीछे २ चलने लगे और हे महाराज ! प्रतापी धर्म-राज, जहाँ दुर्योधन छिपा हुआ था उस भयानक द्वैपायन नामक सरोवरके पास जापहुँचे, उस मनोहर तालावमें शीतल जल भरा

यमिव सागरम् ॥ ५५ ॥ मायया सलिलं स्तभ्य यत्राभूत्ते स्थितः सुतः । अत्यद्भुतेन विधिना दैवयोगेन भारत ॥ ५६ ॥ सलिलान्तर्गतः शेते दुर्द्धर्षः कस्यचित् प्रभो । मानुपस्य मनुष्येन्द्र गदाहस्तो जनाधिपः ॥ ५७ ॥ ततो दुर्य्योधनो राजा सलिलान्तर्गतो वसन् । शुश्रुवे तुमुलं शब्दं जलदोपमनिस्वनम् ॥ ५८ ॥ युधिष्ठिरस्तु राजेन्द्र तं ह्रदं सह सोदरैः । अजगाम महाराज तव पुत्रवधाय वै ॥ ५९ ॥ महता शंखनादेन रथनेमिस्वनेन च ॥ऊर्ध्वं धुन्वन्महारेणुं कम्पयंश्चापि मेदिनीम् ॥ ६० ॥ यौधिष्ठिरस्य सैन्यस्य श्रुत्वा शब्दं महारथाः । कृतवर्मा कृपो द्रौणी राजानमिदमब्रुवन् ॥६१॥ इमे ह्यायान्ति संहृष्टाः पाण्डवाः जितकाशिनः । अपयास्यामहे तावदनुजानातु नो भवान् ॥ ६२ ॥ दुर्य्योधनस्तु तत् श्रुत्वा तेषां तत्र तरस्विनाम् । तथेत्युक्त्वा ह्रदं तं वै माययास्तम्भयत् प्रभो ६३

हुआ था और वह दूसरा समुद्रसा दीखता था, हे राजन्! तुम्हारा पुत्र दुर्योधन मायासे जलको स्थिर करके, बड़ी अद्भुत विधिसे और दैवयोगसे कोई भी मनुष्य उसको देख न सकै, इस प्रकार जलमें सो रहा था, हे प्रभो! वह हाथमें गदा लिये हुएथा ॥५२–५७॥ उस दुर्योधनने पानीमें सोते २ युधिष्ठिरके आनेका मेघकी समान तुमुल शब्द सुना ॥ ५८ ॥ हे राजन्! राजा युधिष्ठिर शंखोंको बजाते, रथके पहियोंकी घरघराहट करते धूलिपटल उड़ाते तथा पृथिवीको कम्पित करते हुए अपने सगे भाइयोंके साथ, तुम्हारे पुत्रको मारनेके लिये द्वैपायन सरोवरके पास आपहुँचे ॥ ५९ ॥ ॥६०॥ राजा युधिष्ठिरकी सेनाका शब्द सुन कर महारथी कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्माने दर्योधनसे कहा, कि—विजयसे मतवाले हुए पाण्डव आनन्दमें भरे हुए यहाँको बढ़े चले आ-रहे हैं, इसलिये हम अब यहाँसे हट जाते हैं, आप हमें आज्ञा दीजिये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ दर्योधनने उन तीनों महारथियोंकी बात सुनकर कहा, कि-अच्छा आप जाइये, ऐसा कहकर उनको

ते त्वनुज्ञाप्य राजानं भृशं शोकपरायणाः । जग्मुर्दूरं महाराज कृपप्रभृतयो रथाः ॥ ६४ ॥ ते गत्वा दूरमध्वानं न्यग्रोधं प्रेक्ष्य मारिष । न्यविशन्त भृशं श्रान्ता चिन्तयन्तो नृपं प्रति ॥ ६५ ॥ विष्टभ्य सलिलं सुप्तो धार्त्तराष्ट्रो महाबलः । पाण्डवाश्चापि संप्राप्तास्तं देशं युद्धमीप्सवः ॥ ६६ ॥ कथं नु युद्धं भविता कथं राजा भविष्यति । कथं नु पाण्डवा राजन् प्रतिपत्स्यन्ति कौरवम् ॥ ६७ ॥ इत्येवं चिन्तयानास्तु रथेभ्योऽश्वान् विमुच्य ते । तत्रासाञ्चक्रिरे राजन् कृपप्रभृतयो रथाः ॥ ६८ ॥

इति श्री महाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि दुर्य्योधनान्वेषणे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

सञ्जय उवाच । ततस्तेष्वपयातेषु रथेषु त्रिषु पाण्डवाः । तं

तो जानेकी आज्ञा दी और अपने आप जलके तालावमें घुसगया और मायासे जलको स्थिर कर दिया ॥ ६३ ॥ हे महाराज! कृपाचार्य आदि महारथी राजाकी आज्ञा लेकर शोकसे बड़े ही व्याकुल होते हुए वहाँसे दूर चले गये ॥ ६४ ॥ वे मार्गमें चलते२ बहुत दूर जापहुँचे, तब उनको एक बडा पेड दीखा, उस समय वे बहुत थक जानेके कारण उस वृक्षके नीचे विश्राम करके दुर्योधनके विषयमें विचार करने लगे ॥ ६५ ॥ महाबली दुर्योधन जलको स्तम्भित करके जिस सरोवरमें सो रहा था, युद्ध करनेकी इच्छा करते हुए पांडव वहाँ भी आपहुँचे ॥ ६६ ॥ अब युद्ध किस प्रकार होगा ? राजा दुर्योधनकी क्या दशा होगी ? और पाण्डव दुर्योधनको कैसे खोजेंगे ? ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार विचार करते २ कृपाचार्य आदि महारथियोंने रथोंमें से घोड़ोंको खोल दिया और वटके वृक्षके नीचे विश्राम करने लगे ॥ ६८ ॥ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ ⁂ ॥ ⁂ ॥

सञ्जय कहता है, कि–हे राजा धृतराष्ट्र ! कृपाचार्य आदि तीनों महारथी तालावके पाससे भागगये, फिर जहाँ दुर्योधन दुबक

ह्रदं मत्स्यपद्मन्त यत्र दुर्योधनोऽभवत् ॥ १ ॥ आसाद्य च कुरुश्रेष्ठ तदा द्वैपायनं ह्रदम् । स्तम्भितं धार्त्तराष्ट्रेण दृष्ट्वा तं सलिलाशयम् । ॥ २ ॥ वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुनन्दनः । पश्येमां धार्त्तराष्ट्रेण मायामप्सु प्रयोजिताम् ॥ ३ ॥ विष्टभ्य सलिलं शेते नास्य मानुषतो भयम् । दैवीं मायामिमां कृत्वा सलिलान्तर्गतो ह्ययम् ॥४ ॥ निकृत्या निकृतिप्रज्ञो न मे जीवन् विमोक्ष्यते । यद्यस्य समरे साह्यं कुरुते वज्रभृत् स्वयम् ॥ ५ ॥ तथाप्येनं हतं युद्धे लोका द्रक्ष्यन्ति माधव । वासुदेव उवाच । मायाविन इमां मायां मायया जहि भारत। ॥ ६ ॥ मायावी मायया वध्यः सत्यमेतद्युधिष्ठिर । क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्मायामप्सु प्रयोज्य च ॥ ७ ॥ जहि त्वं भरतश्रेष्ठ मायात्मानं सुयोधनम् । क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण निहता दैत्यदानवाः ॥ ८ ॥

गया था, उस तालावके पास पाण्डव आपहुँचे ॥ १ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ राजन् ! दुर्योधनके स्तम्भित किये हुए जल वाले तालावको देखकर राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे कहा, कि—हे कृष्ण ! दुर्योधन मायासे जलको स्थिर कर इसमें सोरहा है, आप देखिये, अब इसको मनुष्योंका भय नहीं है, यह दैवी मायाको फैला कर जलमें सोरहा है ॥ २—४ ॥ यह कपट करनेमें चतुर है, तो भी यह कपट करके आज मेरे हाथमेंसे जीवित बचकर नहीं जायगा कदाचित् स्वयं इन्द्र युद्धमें इसकी सहायता करेगा तो भी हे माधव! लोग दुर्योधनको रणमें मरा हुआ देखेंगे, श्रीकृष्णने कहा, कि—हे भरतवंशी राजन् ! इस मायावीकी ऐसी मायाको तुम मायासे ही नष्ट करदो ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे युधिष्ठिर ! मैं सत्य कहता हूँ, कि—मायावीको माया से ही मारना चाहिये इसलिये तुम गत्रु कैसे ही बहुतसे क्रियात्मक उपायोंसे जलमें माया फैलाकर मायावी दुर्योधनको मारो, इन्द्रने क्रियात्मक उपायोंसे ही दैत्य और दानवोंको मारा था ॥ ७॥ ८ ॥ महात्मा वामनजीने बहुतसे क्रियात्मक उपायोंसे बलिको कैद किया था, क्रियात्मक

क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्बलिर्बद्धो महात्मना। क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्हिरण्याक्षो महासुरः॥ ९॥ हिरण्यकशिपुश्चैव क्रिययैव निषूदितः। वृत्रश्च निहतो राजन् क्रिययैव न संशयः॥१०॥ तथा पुलस्त्यतनयो रावणो नाम राक्षसः। रामेण निहतो राजन् सानुबन्धः सहानुगः। क्रियया योगमास्थाय तथा त्वमपि विक्रम। क्रियाभ्युपायैर्निहतौ पुरा राजन् पुरातनौ॥१२॥ तारकश्च महादैत्यो विप्रचित्तिश्च वीर्य्यवान्। वातापिरिल्वलश्चैव त्रिशिराश्च तथा विभो॥ १३॥ सुन्दोपसुन्दावसुरौ क्रिययैव निषूदितौ। क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण त्रिदिवं भुज्यते विभो॥ १४॥ क्रिया बलवती राजन्नान्यत् किञ्चिद्युधिष्ठिर। दैत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसाः पार्थिवास्तथा १५ क्रियाभ्युपायैर्निहताः क्रियां तस्मात् समाचर।सञ्जय उवाच। इत्युक्तो वासुदेवेन पाण्डवः संशितव्रतः॥ १६॥ जलस्थं तं महाराज तव

उपायोंसे महासुर हिरण्याक्षको और हिरण्यकशिपुको मारा था, हे राजन्! वृत्रासुरको निःसन्देह क्रियात्मक उपायोंसे ही मारा गया था॥ ९॥ १०॥ श्रीरामचन्द्र जीने पुलस्त्यवंशी रावण नामके राक्षसको उसके सहायक और सेवकोंके सहित क्रियात्मक उपायोंसे ही मारा था॥ ११॥ तैसे ही तुम भी क्रिया (उद्यम) से उपाय करके पराक्रम करो, हे राजन्! मैंने भी पहले तारक दैत्य और पराक्रमी विप्रचित्तिको क्रिया से ही मारा था और हे राजन्! वातापी, इल्वल, त्रिशिरा, सुन्द, उपसुन्द आदि असुरोंको भी क्रियासे ही मारा था, इतना ही नहीं, किन्तु हे राजन्! इन्द्र भी क्रियात्मक उपायोंसे ही स्वर्गमें राज्य करता है॥ १२—१४॥ हे राजा युधिष्ठिर! क्रिया ही बलवान् है और किसीमें ऐसा बल नहीं है, दैत्य दानव, राक्षस तथा राजाओंको क्रियात्मक उपायोंसे ही मारागया है, इसलिये हे युधिष्ठिर! तुम क्रियासे काम लो, संजय कहता है, कि–हे राजन् धृतराष्ट्र! इसप्रकार वासुदेवने सदाचारवाले धर्मराजको उपदेश

पुत्रं महाबलम् । अभ्यभाषत कौन्तेय प्रहसन्निव भारत ॥ १७॥ सुयोधन किमर्थोऽयमारम्भोऽप्सु कृतस्त्वया । सर्वं क्षत्रं घातयित्वा स्वकुलञ्च विशाम्पते ॥ १८ ॥ जलाशयं प्रविष्टोद्य वाञ्छन् जीवितमात्मनः । उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व सहास्माभिः सुयोधन ॥१९॥ स ते दर्पो नरश्रेष्ठ स च मानः क्व ते गतः । यस्त्वं संस्तभ्य सलिलं भीतो राजन् व्यवस्थितः । २० । सर्वे त्वां शूर इत्येवं जना जल्पन्ति संसदि । व्यर्थं तद्भवतो मन्ये शौर्य्यं सलिलशायिनः॥ २१ ॥ उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व क्षत्रियोसि कुलोद्भवः । कौरवेयो विशेषेण कुले जन्म च संस्मर ॥२२ ॥ स कथं कौरवे वंशे प्रशंसन् जन्म चात्मनः । युद्धाद्भीतस्ततस्तोयं प्रविश्य प्रतितिष्ठसि ॥२३॥ अयुद्धमव्यवस्थानं नैष धर्म्मः सनातनः । अनार्य्यजुष्टमस्वर्ग्यं रणे राजन् पलायनम्

क्रिया ॥१५॥१६॥ हे भारत ! तब जलमें स्थित तुम्हारे महाबली पुत्रसे युधिष्ठिरने हँसते २ कहा, कि–॥१७॥ हे दुर्योधन ! तू जलमें जाकर क्यों घुस गया है ? तू क्षत्रियोंका और अपने कुलका नाश करके अब अपने प्राण बचानेके लिये जलमें क्यों घुस बैठा है ? हे राजन् दुर्योधन ! जलमेंसे बाहर निकल और हमारे साथ युद्ध कर ॥१८॥१९॥ हे महापुरुष ! तेरा पहलेका गर्व और पहलेका अभिमान कहाँ गया ? जो तू इस समय भयभीत हो जलको स्थिर करके उसमें जा बैठा है ॥ २० ॥ सब पुरुष तुझे सभामें शूर कहते हैं, परन्तु तू जलमें छुप गया है इससे मैं तो तेरी शूरताको निरर्थक ही समझता हूँ ॥२१॥ हे राजन् ! जलमेंसे बाहर निकल और युद्ध कर, तू कुलीन क्षत्रिय है और विशेषकर कौरववंशमें तेरा जन्म हुआ है, इसलिये तू अपने जन्म और कुलका तो ज़रा विचार कर ॥ २२ ॥ यदि तू कौरवकुलमें अपना जन्म होनेकी प्रशंसा करता है तो हे राजन् ! तू युद्धसे डर कर जलको स्थिर करके उसके भीतर क्यों घुस गया है ? ॥२३॥ युद्ध न करना तथा राज्य या स्वर्ग इन दोनोंमेंसे एककी भी इच्छा न करना, यह

॥ २४ ॥ कथं पारमगत्वा हि युद्धे त्वं वै जिजीविषुः । इमान्निपातितान् दृष्ट्वा पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄंस्तथा ॥ २५ ॥ सम्बन्धिनो वयस्यांश्च मातुलान् बान्धवांस्तथा । घातयित्वा कथं तात हृदे तिष्ठसि साम्प्रतम् ॥ २६ ॥ शूरमानी न शूरस्त्वं मृषा वदसि भारत शूरोहमिति दुर्बुद्धे सर्वलोकस्य शृण्वतः ॥२७॥ न हि शूरा पलायन्ते शत्रून् दृष्ट्वा कथञ्चनः । ब्रूहि वा त्वं यया धृत्या शूर त्यजसि सङ्गरम् ॥ २८ ॥ स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व विनीय भयमात्मनः । घातयित्वा सर्वसैन्यं भ्रातॄंश्चैव सुयोधन ॥ २९ ॥ नेदानीं जीविते बुद्धिः कार्या धर्मचिकीर्षया । क्षत्रधर्ममुपाश्रित्य त्वद्विधेन सुयोधन ॥ ३० ॥ यत्तु कर्णमुपाश्रित्य शकुनिञ्चापि सौबलम् ।

बात क्षत्रियोंका सनातनधर्म नहीं मानीजाती, हे राजन् ! रणमेंसे भागजाने पर स्वर्ग नहीं मिलता और यह श्रेष्ठ पुरुषोंका आचारणभी नहीं है ॥ २४ ॥ अब तू युद्ध पूरा किये बिना जीवित रहना क्यों चाहता है ? युद्धमें पुत्र, भाई, चाचा, संबन्धी, मित्र, मामा और बांधवोंको मरवाकर अब जलके तालावमें क्यों घुस बैठा है ? हे भरतवंशी राजन् ! तू केवल शूरताका अभिमान ही रखता है, तू वास्तवमें शूर नहीं है, हे दुर्बुद्धि ! तू सब लोगोंको सुनाकर यह वृथा ही कहा करता है, कि—मैं शूर हूँ ॥ २५-२७ ॥ क्योंकि-शूर पुरुष शत्रुओंको देखकर रणमेंसे कभी नहीं भागते हैं, हे शूर ! तू बता तो सही क्या तूने वानप्रस्थाश्रमी होनेके कारण हथियारें डालदिये हैं ? या तुझमें क्लीवता आगयी है, इसलिये संग्रामको छोड़बैठा है ? ॥ २८ ॥ तू अब जलमेंसे बाहर निकल और मृत्युसे न डरकर, युद्ध कर हे दुर्योधन ! सब सेनाओंका और भाइयोंका संहार करवाकर तुझसरीखे क्षत्रियधर्मका अवलम्ब लेने वाले पुरुषको धर्माचरण करनेकी इच्छासे ही जीवित रहनेका विचार नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥ पहले कर्ण और सुबलका पुत्र शकुनि तेरे सहायक थे तथा तू

अमर्त्य इव सम्मोहात्त्वमात्मानं न बुद्धवान् ॥३१॥ तत् पापं सुमहत् कृत्वा प्रतियुध्यस्व भारत। कथं हि त्वद्विधो मोहात् रोचयेत पलायनम् ॥ ३२ ॥ क्व ते तत् पौरुषं तात क्व च मानः सुयोधन। क्व च विक्रान्तता याता क्व च विस्फूर्ज्जितं महत् ॥ ३३ ॥ क्व ते कृतास्त्रता याता किञ्च शेषे जलाशये। स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व क्षत्रधर्मेण भारत ॥ ३४ ॥ अस्मांस्त्वं वा पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम्। अथवा निहतोऽस्माभिर्भूमौ स्वप्स्यसि भारत ॥ ३५ ॥ एष ते परमो धर्म्मः सृष्टो धात्रा महात्मना। तं कुरुष्व यथातथ्यं राजा भव महारथ ॥ ३६ ॥ सञ्जय उवाच। एवमुक्तो महाराज धर्मपुत्रेण धीमता। सलिलस्थस्तव सुत इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ दुर्य्योधन उवाच। नैतच्चित्रं महाराज यद्भीः प्राणिनमाविशेत्।

मोहवश अपनेको अजर अमरसा मानता हुआ अपने स्वरूपको नहीं पहिचान सका था, इसकारण ही तूने बड़ा भारी पापकर्म किया है, इसलिये हे भरतवंशी राजन्! अब तू युद्ध करनेको ही उद्यत होजा, हे राजन्! तुझसरीखा पुरुष युद्धमेंसे भाग जानेको क्यों अच्छा समझता है? ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे दुर्योधन! तेरा वह पौरुष कहाँ गया? वह अभिमान कहाँ गया? और वह वज्रकी सी गरजना कहाँ गयी? ॥३३॥ अरे भरतवंशी! वह तेरा अस्त्रविद्याका ज्ञान आज कहाँ गया? तू इस तालावमें क्यों सोरहा है? तू इस जलमेंसे निकलकर क्षत्रियधर्मके अनुसार हमारे साथ युद्ध कर ॥ ३४ ॥ और हमारा पराजय करके इस पृथिवी पर राज्य कर अथवा हे भारत! हमारे हाथसे मरकर तू रणभूमिमें शयन कर ॥ ३५ ॥ महात्मा विधाताने तेरे लिये यही परमधर्म रचा है और हे महारथी! उसका तू ठीक २ आचरण करके राजा बन ॥ ३६ ॥ संजयने कहा, कि—हे महाराज धृतराष्ट्र! इसप्रकार बुद्धिमान् धर्मपुत्रने कहा, तब जलमें रहने वाले तुम्हारे पुत्रने यह बात कही ॥ ३७ ॥ दुर्योधन बोला, कि—हे महाराज!

न च प्राणभयाद्भीतो व्यपयातोऽस्मि भारत ॥ ३८ ॥ अरथश्चा-
निषङ्गी च निहतः पार्ष्णिसारथिः । एकश्चाप्यगणः संख्ये प्रत्या-
श्वासमरोचयम् ॥३९॥ न प्राणहेतोर्न भयान्न विषादाद्विशाम्पते !
इदमम्भः प्रविष्टोस्मि श्रमात्त्विदमनुष्ठितम् ॥ ४० ॥ त्वञ्चाश्वसिहि
कौन्तेय ये चाप्यनुगतास्तव । अहमुत्थाय वः सर्वान् प्रतियोत्स्यामि
संयुगे ॥ ४१ ॥ युधिष्ठिर उवाच । आश्वस्ता एव सर्वे स्म चिरं
त्वां मृगयामहे । तदिदानीं समुत्तिष्ठ युध्यस्वेह सुयोधन ॥४२॥ हत्वा
वा समरे पार्थान् स्फीतं राज्यमवाप्नुहि । अथवा निहतोऽस्माभि-
र्वीरलोकमवाप्स्यसि ॥ ४३ ॥ दुर्योधन उवाच । यदर्थं राज्यमि-
च्छामि कुरूणां कुरुनन्दन । त इमे निहताः सर्वे भ्रातरो मे जनेश्वर

यदि किसी प्राणीके हृदयमें भय घुस जाय तो यह कोई अचरज
की बात नहीं है, हे भारत ! मैं प्राणोंके भयसे डरकर नहीं भाग
था ॥३८॥ किन्तु मेरे पास रथ नहीं रहा था, मेरे पास बाणोंका
भाथा नहीं रहा था, मेरे दोनों ओरके रक्षक और सारथी मारे
गये थे, मैं अकेला रह गया अब मेरा कोई सहायक नहीं रहा, इस
से मैं विश्राम लेनेके लिये यहां आगया हूँ ॥ ३९ ॥ हे राजन् !
प्राणोंकी रक्षाके लिये या भयभीत होकर अथवा चित्तमें दुःख
मानकर मैं जलके भीतर नहीं घुसा हूँ, किन्तु थकावटके कारण
से मैंने यह काम किया है ॥ ४० ॥ इसलिये हे युधिष्ठिर ! तुम
और तुम्हारे साथी धीरज रक्खो, मैं इस तालाबमेंसे निकलकर
तुम सबोंके साथ युद्ध करूँगा ॥ ४१ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि—
हम सब सस्ता चुके और बहुत देरसे तुझे खोजते फिर रहे हैं,
इसलिये हे दुर्योधन ! अब तू जलमेंसे बाहर निकल कर हमारे
साथ युद्ध कर ॥ ४२ ॥ और युद्धमें पाण्डवोंको मारकर सम्पदा
सहित राज्यको ले, या रणमें हमारे हाथसे मरकर वीरलोकमें जा
॥ ४३ ॥ दुर्योधनने कहा, कि- हे कुरुनन्दन राजन् ! जिन
कौरवोंके लिये राज्य चाहता था वे मेरे सब भाई तो रणमें मारे

॥ ४४ ॥ क्षीणरत्नाञ्च पृथिवीं हतक्षत्रियपुङ्गवाम् । नाभ्युत्सहाम्यहं भोक्तुं विधवामिव योषितम् ॥ ४५ ॥ अद्यापि त्वहमाशंसे त्वां विजेतुं युधिष्ठिर । भंक्त्वा पञ्चालपाण्डूनामुत्साहं भरतर्षभ ॥ ४६ ॥ न त्विदानीमहं मन्ये कार्य्यं युद्धेन कर्हिचित । द्रोणे कर्णे च सशान्ते निहते च पितामहे ॥ ४७ ॥ अस्त्विदानीमियं राजन् केवला पृथिवी तव । असहायो हि को राजा राज्यमिच्छेत् प्रशासितुम् ॥ ४८ ॥ सुहृदस्तादृशान् हत्वा पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄनपि । भवद्भिश्च हृते राज्ये को नु जीवेत मादृशः ॥ ४९ ॥ अहं वनं गमिष्यामि ह्यजिनैः प्रतिवासितः । रतिर्हि नास्ति मे राज्ये हतपक्षस्य भारत ॥ ५० ॥ हतबान्धवभूयिष्ठा हताश्वा हतकुञ्जरा । एषा ते पृथिवी राजन् भुंक्ष्वैनां विगतज्वरः ॥ ५१ ॥ वनमेव गमि-

गये ॥ ४४ ॥ जिसमेंसे रत्नरूप पुरुषोंका और बड़े २ क्षत्रियों का नाश होगया है ऐसी, विधवा स्त्रीकी समान पृथिवीको भोगनेके लिये अब मुझे उत्साह नहीं होता है ॥ ४५ ॥ हे भरतसत्तम युधिष्ठिर ! अब भी पंचालराजे और पाण्डवोंके उत्साहको तोड़कर तुम्हें जीत लेनेकी आशा रखता हूँ ॥ ४६ ॥ परन्तु अब मेरी समझमें किसी प्रकार भी युद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं है, द्रोण, कर्ण, और भीष्म पितामह मारे गये, इसलिये हे राजन् ! उनसे सूनी हुई इस पृथिवी पर तुम ही राज्य करो, क्योंकि— असहाय हुआ कौनसा राजा राज्यका शासन करना चाहेगा ? ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ जैसे होने चाहियें तैसे मित्र, पुत्र, भाई और चचा ताउओंको गुमाकर और तुम्हारे द्वारा राज्य छीना जानेपर मुझसरीखा कौन पुरुष जीवित रहना चाहेगा ? ॥ ४९ ॥ अब तो मैं मृगचर्म ओढ़कर वनमें चला जाऊँगा, हे भारत ! मेरे पक्षके सब वीर वीर मारे गये, अब राज्य करनेमें मेरी रुचि है ही नहीं ॥ ५० ॥ जिसके बहुतसे बान्धव, हाथी और घोड़े मारे गये ऐसी यह पृथिवी तुम्हारी हो गयी है, हे राजन् ! इसको अब तुम

ज्यामि वसानो मृगचर्मणी । न हि मे निर्ज्जनस्यास्ति जीवितेद्य स्पृहा विभो ॥ ५२ ॥ गच्छ त्वं भुङ्क्ष्व राजेन्द्र पृथिवीं निहतेश्वराम् । हतयोधां नष्टरत्नां क्षीणवृत्तिर्यथासुखम् ॥ ५३ ॥ संजय उवाच । दुर्य्योधनं तत्र सुतं सलिलस्थं महायशाः । श्रुत्वा तु करुणं वाक्यमभाषत युधिष्ठिरः ॥ ५४ ॥ युधिष्ठिर उवाच । आर्त्तप्रलापान्मा तात सलिलस्थः प्रभाषिथाः । नैतन्मनसि मे राजन् वाशितं शकुनेरिव ॥ ५५ ॥ यदि वापि समर्थः स्यास्त्वं दानाय सुयोधन । नाहमिच्छेयमवनिं त्वया दत्तां प्रशासितुम् ॥ ५६ ॥ अधर्मेण न गृह्णीयां त्वया दत्तां महीमिमाम् । न हि धर्म्मः स्मृतो राजन् क्षत्रियस्य प्रतिग्रहः ॥ ५७ ॥ त्वया दत्तां न चेच्छेयं पृथिवीमखिलामहम्

निश्चिन्त होकर भोगो ॥५१॥ हे राजन् ! मैं तो अब दो मृगचर्म धारण करके वनको ही जाऊँगा, कोई मनुष्य मेरा अपना नहीं रहा है, इसलिये अब मेरी जीवित रहनेकी इच्छा नहीं है ॥५२॥ इसलिये हे राजेन्द्र ! अब तुम जाओ और जिसका राजा मरगया है, जिसके योधा मारे गये हैं और जिसके रत्न जा से रहे हैं ऐसी पृथिवीको तुम प्रसन्नता से भोगो, क्योंकि—तुम्हारी और कोई आजीविका नहीं है ॥ ५३ ॥ सञ्जयने कहा, कि हे धृतराष्ट्र ! जलमें घुसे हुए तुम्हारे पुत्रने दया उपजानेवाली यह बात कही, इसको सुनकर बड़े यशवाले राजा युधिष्ठिर बोले कि—॥५४ ॥ हे तात ! अब तू जलमें घुसा २ घबड़ाहटका प्रलाप न कर, हे राजन् ! पक्षीके शब्दकी समान तेरा यह बोलना मेरे मन पर जरा भी प्रभाव नहीं डालता है ॥ ५५ ॥ हे दुर्योधन ! तू कदाचित् पृथिवीका दान करनेकी शक्ति रखता हो, परन्तु मैं तेरी दी हुई पृथिवी पर राज्य करना नहीं चाहता ॥५६॥ हे राजन् ! तेरी दीहुई पृथिवीको मैं अधर्मसे नहीं लेना चाहता, क्योंकि—क्षत्रिय को दान लेना शास्त्रमें धर्म नहीं बताया है ॥ ५७ ॥ तू यदि सम्पूर्ण पृथिवी देय तो भी मैं इसको लेना नहीं चाहता. मैं

त्वान्तु युद्धे विनिर्जित्य भोक्तास्मि वसुधामिमाम् ॥ ५८ ॥ अनीश्वरश्च पृथिव्याँ कथं त्वं दातुमिच्छसि । त्वयेयं पृथिवी राजन् किन्न दत्ता तदैव हि ॥५९॥ धर्मतो याचमानानां शमार्थञ्च कुलस्य नः । वार्ष्णेयं प्रथमं राजन् प्रत्याख्याय महाबलम् ॥ ६० ॥ किमिदानीं ददासि त्वं को हि ते चित्तविभ्रमः । अभियुक्तस्तु को राजा दातुमिच्छेद्धि मेदिनीम् ॥ ६१ ॥ न त्वमद्य महीं दातुमीशः कौरवनन्दन । आच्छेत्तुं वा बलाद्राजन् स कथं दातुमिच्छसि ॥६२॥ मां तु निर्जित्य संग्रामे पालयेमां वसुन्धराम् । सूच्यग्रेणापि यद्भूमिरपि धीयेत भारत ॥ ६३ ॥ तन्मात्रमपि चेन्मह्यं न ददाति पुरा भवान् । स कथं पृथिवीमेतां प्रददासि विशाम्पते ॥ ६४ ॥ सूच्यग्रं मा त्यजः पूर्वं स कथं त्यजसि क्षितिम् । एवमैश्वर्य्यमासाद्य प्रशास्य

तो तुझे युद्धमें जीत कर ही इस वसुधाको भोगूँगा ॥ ५८ ॥ तू तो इस पृथिवीका राजा नहीं है, फिर तू इसको कैसे देना चाहता है ? हे राजन् ! यह पृथिवी तूने मुझे तब ही क्यों नहीं दी ॥ ५९ ॥ हमने उस समय धर्मानुसार याचना की थी, और अपने कुलमें सुमति सम्मति रहनेके लिये महाबली श्रीकृष्णको तेरे पास पहले ही भेजा था, परन्तु तूने उनका अपमान किया था ॥ ६० ॥ ऐसा तू इस समय पृथिवी देने निकला है ? तेरे चित्तको यह क्या भ्रम होगया है ? हे कुरुकुलकी सन्तान ! इस समय तुझमें पृथिवी देनेकी शक्ति ही नहीं है, क्योंकि-पराजित हुआ कौनसा राजा पृथिवी देनेकी इच्छा करेगा ? हे राजन् ! जो पहले पराक्रमसे हमारा नाश करनेको उद्यत था ऐसा तू आज किसलिये हमें पृथिवी देना चाहता है ? युद्धमें हमें जीतकर तू इस पृथिवीका राज्य कर, पहले तो तू सुईकी नोकसे छेदी जाय, इतनी भूमि भी हमें नहीं देता था, हे राजन् ! वही तू आज हमें सकल पृथिवी देनेको क्यों तयार है ? ॥ ६१--६४ ॥ पहले तो सुई की नोककी समान भूमि भी नहीं देता था, वह तू संपूर्ण

पृथिवीमिमाम् ॥ ६५ ॥ को हि मूढो व्यवस्येत शत्रोर्दातुं वसुन्धराम् । त्वन्तु केवलमौर्ख्येण विमूढ़ो नावबुध्यसे ॥ ६६ ॥ पृथिवीं दातुकामोपि जीविते न विमोक्ष्यसे । अस्मान् वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ॥ ६७ ॥ अथवा निहतोस्माभिर्व्रज लोकानुत्तमान् । आवयोर्जीवतो राजन् मयि च त्वयि च ध्रुवम् ।६८। संशयः सर्वभूतानां विजये नो भविष्यति । जीवितं तव दुष्प्रज्ञ मयि सम्प्रति वर्त्तते ॥६९॥ जीवयेयं त्वहं काम न तु त्वं जीवितुं क्षमः । दहने हि कृतो यत्नस्त्वयास्मासु विशेषतः ॥ ७० ॥ आसीविर्षैर्विषैश्चापि जले चापि प्रवेशनैः । त्वया विनिकृता राजन् राज्यस्य हरणेन च ॥ ७१ ॥ अप्रियाणाञ्च वचनैर्द्रौपद्याः कर्षणेन च । एतस्मात् कारणात् पाप जीवितं ते न विद्यते ॥७२॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ

पृथिवीको किसलिये त्यागरहा है, तू ऐश्वर्य प्राप्त करके इस पृथिवीका राज्य कर॥ ६५ ॥ तूतो निरा मूर्ख ही मालूम होता है, इसलिये मेरी बातको नहीं समझता है, ऐसा मूढ़ कौन होगा जो शत्रुको राज्य देनेका उद्योग करे ? ॥ ६६ ॥ तू राज्य देना चाहता है, परन्तु इससे जीता नहीं बचेगा, अब तो हमें हराकर ही इस पृथिवी पर राज्य कर॥ ६७॥ अथवा हमारे हाथसे मर कर उत्तम परलोकमें जा, हे राजन् ! जब तक हम दोनों जीवित रहेंगे तब तक तेरी ही विजय होगी वा हमारी ही विजय होगी, इस विषयमें सब लोगोंको वास्तवमें सन्देह ही रहेगा हे दुर्बुद्धि दुर्योधन ! तेरा जीवन इस समय मेरे हाथमें है ६८—६९ मैं अवश्य जीवित रहूँगा, परन्तु तू जीवित नहीं रहसकता, तू ने हमें अग्निमें जला देनेका बड़ाभारी उद्योग किया था ॥ ७० ॥ और हे राजन् ! तूने हमें विषधर सर्पोंसे कटवाकर, विष खिलवा कर, जलमें डुबवाकर तथा हमारा राज्य छीनकर हमें बहुत २ दुःखी किया था ॥ ७१ ॥ और द्रौपदीको गालियें देकर तथा उसके केश खींचकर हमारा अपमान किया था, इन सब कारणों

युध्यस्व तत्ते श्रेयो भविष्यति । एवन्तु विविधा वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः । कीर्त्तयन्ति स्म ते वीरास्तत्र तत्र जनाधिप ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि दुर्योधन-
भर्त्सन एकत्रिंशोध्यायः ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । एवं सन्तर्ज्ज्यमानस्तु मम पुत्रो महीपतिः । प्रकृत्या मन्युमान् वीरः कथमासीत् परन्तपः ॥ १ ॥ न हि सन्तर्ज्जना तेन श्रुतपूर्वा कथञ्चन । राजभावेन मान्यश्च सर्वलोकस्य सोऽभवत् ॥ २ ॥ यस्यातपत्रच्छायापि स्वका भानोस्तथा प्रभा । खेदायैवाभिमानित्वात् सहेत् सैवं कथं गिरः ॥३॥ इयञ्च पृथिवी सर्वा सम्लेच्छाटविका भृशम् । प्रसादाद्ध्रियते यस्य प्रत्यक्षं तव सञ्जय ॥ ४ ॥ स तथा तर्ज्यमानस्तु पाण्डुपुत्रैर्विशेषतः । विहीनश्च

से अरे पापी ! अब जीवित नहीं रहसकेगा ॥ ७२ ॥ अब तू जलमेंसे बाहर निकल कर हमारे साथ युद्ध कर, युद्ध से ही तेरा कल्याण होगा, इसप्रकार हे राजन् ! वे वीर पुरुष बार बार दुर्योधनसे अनेकों प्रकारकी बातें कहने लगे ॥ ७३ ॥ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ छ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि—हे सञ्जय ! युधिष्ठिरके ऐसा कहने पर मेरे परन्तप, वीर और क्रोधी स्वभावके पुत्र दुर्योधनने क्या किया था ! ॥ १ ॥ मेरे पुत्रने पहले किसीके भी तिरस्कारके वचन नहीं सुने थे, क्योंकि—राजा होनेके कारण वह सब लोगोंका मान्य था ॥ २ ॥ जिसको अपने ही छत्रकी छाया और सूर्यकी कांति ये दोनों भी अभिमानीपनेके कारण खेद देतीं थीं, उसने युधिष्ठिरकी ये बातें कैसे सही होंगी ? ॥ ३ ॥ हे सञ्जय ! म्लेच्छ और आटविकों सहित यह सब पृथिवी तेरी दृष्टिके सामने जिस की कृपासे टिकी हुई थी ॥ ४ ॥ उस दुर्योधनका इस प्रकार अपमान कियागया और वह भी फिर पांडवों की ओरसे किया गया, उस समय दुर्योधनके पास एक भी सेवक नहीं रहा था

स्त्रकैर्भृत्यैर्निर्जने चावृतो भृशम् ॥ ५ ॥ स श्रुत्वा कटुका वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः। किमब्रवीत् पाण्डवेयांस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ६ ॥ सञ्जय उवाच । तर्ज्यमानस्तथा राजन्नुदकस्थस्तवात्मजः। युधिष्ठिरेण राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितेन ह ॥ ७ ॥ स श्रुत्वा कटुका वाचो विषमस्थो जनाधिपः । दीर्घमुष्णञ्च निःश्वस्य सलिलस्थः पुनः पुनः ॥८॥ सलिलान्तर्गतो राजा धुन्वन् हस्तौ पुनः पुनः। मनश्चकार युद्धाय राजानञ्चाप्यभाषत ॥९॥ दुर्य्योधन उवाच। यूयं ससुहृदः पार्थाः सर्वे सरथवाहनाः। अहमेकः परिद्यूनो विरथो रथवाहनः ॥ १० ॥ आत्तशस्त्रै रथोपेतैर्बहुभिः परिवारितः । कथमेकः पदातिः सन्नशस्त्रो योद्धुमुत्सहे ॥११॥ एकैकेन तु मां यूयं योधयध्वं युधिष्ठिर। न ह्येको बहुभिर्वीरैर्न्याय्यो योधयितुं युधि १२

और निर्जन स्थानमें शत्रुओंने उसको अच्छे प्रकारसे घेर लिया था ॥ ५ ॥ हे सञ्जय ! उस दुर्य्योधनने शत्रुओंकी विजयशाली कड़वी बातें बार २ सुनकर पाण्डवोंसे क्या कहा था, वह मुझे सुना ॥ ६ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि–हे राजेन्द्र ! जलमें घुसे हुए तुम्हारे पुत्रका युधिष्ठिरने और उनके भाइयोंने अपमान किया तथा कटुवाणी कही, उसको सुनकर आपत्तिमें पड़ाहुआ और जलमें स्थित राजा दुर्य्योधन, अपने दोनों हाथोंको बारम्बार हिलानेलगा और युद्ध करना चाहता हुआ लंबे और गरम सांस लेकर युधिष्ठिरसे बोला ॥ ७-९ ॥ हे पाण्डवों ! तुम्हें मित्रोंकी सहायता है, तुम सबोंके पास रथ और वाहन हैं, मैं अकेला हूँ, थकगया हूँ तथा मेरे पास रथ नहीं है, और मेरे वाहन भी मारे गये हैं ॥ १० ॥ शस्त्रधारी, रथोंमें बैठे हुए अनेकों योधाओंके बीचमें घिराहुआ मैं अकेला, पैदल और शस्त्रहीन होकर युद्ध करनेके लिये कैसे उत्साह कर सकता हूँ ? ॥ ११ ॥ हे युधिष्ठिर ! तुम एक २ करके मेरे साथ युद्ध करो, क्योंकि–युद्धमें एक वीर पुरुष बहुतसे वीर पुरुषोंके साथ लड़े, यह न्याय नहीं है ॥१२॥

विशेषतो विकवचः श्रान्तश्चापत्समाश्रितः । भृशं विक्षतगात्रश्च श्रान्तवाहनसैनिकः ॥ १३ ॥ न मे त्वत्तो भयं राजन्न च पार्थाद् वृकोदरात् । फाल्गुनाद्वासुदेवाद्वा पञ्चालेभ्योथ वा पुनः ॥ १४ ॥ यमाभ्यां युयुधानाद्वा ये चान्ये तव सैनिकाः । एकः सर्वानहं क्रुद्धो वारयिष्ये युधि स्थितः ॥ १५ ॥ धर्ममूला सतां कीर्तिर्मनुष्याणां जनाधिप । धर्मञ्चैवेह कीर्तिञ्च पालयन् प्रब्रवीम्यहम् ॥ १६ ॥ अहमुत्थाय वः सर्वान् प्रतियोत्स्यामि संयुगे । अनुगम्यागतान् सर्वानृतून् संवत्सरो यथा ॥ १७ ॥ अद्य: व सरथान् साश्वानशस्त्रो विरथोपि सन् । नक्षत्राणीव सर्वाणि सविता रात्रिसंक्षये ॥ १८ ॥ तेजसा नाशयिष्यामि स्थिरी भवत पांडवाः। अद्यानृण्यं गमिष्यामि क्षत्रियाणां यशस्विनाम् ॥ १६ ॥ वाह्लीक-

---

विशेषकर मैं कवचहीन, थका हुआ और आपत्तिमें आपड़ा हूँ, मेरे अङ्ग अत्यन्त ही घायल होरहे हैं और वाहन तथा सैनिक थकगये हैं ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मैं तुमसे, भीमसे, अर्जुनसे, पञ्चालोंसे, वासुदेवसे, नकुलसे, सहदेवसे, युयुधानसे तथा और जो कोई भी तुम्हारे सैनिक हैं, उनसे डरता नहीं हूँ, जब मुझे क्रोध आवेगा तब मैं अकेला ही रणमें खड़ा होकर तुम सबों को हटादूँगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! सज्जन मनुष्योंकी कीर्तिका मूल धर्म है, मैं भी इस समय क्षत्रियधर्म और कीर्तिका पालन करता हुआ कहता हूँ, कि—॥ १६ ॥ जैसे सम्वत्सर हेमन्त आदि सब ऋतुओंका पराजय करता है, तैसे ही मैं भी इस जलमें से वाहर निकलकर मेरे ऊपर चढ़ कर आये हुए तुम सबोंके साथ रणमें लड़कर हराऊँगा ॥ १७ ॥ रात्रिके समाप्त होने पर जैसे सूर्य अपने तेजसे सब तारागणोंको निस्तेज कर देता है, तैसे ही मैं निःशस्त्र और रथहीन होकर भी अपने तेजसे रथ और घोड़ों वाले तुम सबोंका नाश कर डालूँगा हे पांडवों ! तुम खड़े रहो आज मैं, मेरे लिये मरने वाले कीर्ति-

द्रोणभीष्माणां कर्णस्य च महात्मनः । जयद्रथस्य शूरस्य भगदत्तस्य चोभयोः ॥ २० ॥ मद्रराजस्य शल्यस्य भूरिश्रवस एव च । पुत्राणां भरतश्रेष्ठ शकुनेः सौबलस्य च ॥ २१ ॥ मित्राणां सुहृदां चैव बान्धवानां तथैव च । आनृण्यमद्य गच्छामि हत्वा त्वां भ्रातृभिः सह ॥ २२ ॥ एतावदुक्त्वा वचनं विरराम जनाधिप । युधिष्ठिर उवाच । दिष्ट्या त्वमपि जानीसे क्षत्रधर्मं सुयोधन २३ दिष्ट्या ते वर्त्तते बुद्धिर्युद्धायैव महाभुज । दिष्ट्या शूरोसि कौरव्य दिष्ट्या जानासि सङ्गरम् ॥ २४ ॥ यस्त्वमेको हि नः सर्वान् संयुगे योद्धुमिच्छसि । एक एकेन सङ्गम्य यत्ते सम्मतमायुधम् । तत्त्वमादाय युध्यस्व प्रेक्षकास्ते वयं स्थिताः । स्वयमिष्टञ्च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम् ॥ २६ ॥ हत्वैकं भवतो राज्यं हतो वा

मान् क्षत्रियोंके ऋणसे मुक्त होऊँगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ और हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन् ! आज तुम्हें भाइयों सहित मारकर मैं बाल्हीक, द्रोण, भीष्म, महात्मा कर्ण, वीर जयद्रथ, शूर भगदत्त, मद्रदेशके राजा शल्य, भूरिश्रवा, सुवलनन्दन शकुनि, पुत्र, मित्र, सुहृद और बान्धवोंके ऋणसे भी मुक्त होऊँगा ॥ २० ॥ ॥ २२ ॥ इतना कहकर राजा दुर्योधन चुप होगया, तब राजा युधिष्ठिर ने कहा, कि—हे सुयोधन ! तू भी क्षत्रियके धर्मको जानता है, यह बड़ी अच्छा बात है ॥ २३ ॥ और हे बड़ी २ भुजावाले ! तेरी युद्ध करनेकी इच्छा है, यह भी बड़ी अच्छी बात है, तथा तू वीर है और युद्धकी रीति नीतिको जानता है, यह बात भी बड़ी उत्तम है ॥ २४ ॥ तू अकेला ही हम सबोंके साथ युद्ध करना चाहता है तो तुझ जिस शस्त्र पर भरोसा हो उसको लेकर तू अकेला ही जिसके साथ तेरी इच्छा हो उसके साथ युद्ध करले और बाकीके हम सब तेरे युद्धमें दर्शक बन कर खड़े रहेंगे, हे वीर ! मैं तेरी मन चाही कामनाको फिर पूरी करे देता हूँ ॥ २५ ॥ २६ ॥ और तुझसे कहे देता हूँ, कि—यदि तू हम

स्वर्गमवाप्नुहि । दुर्योधन उवाच । एकश्चेद्योद्धुमाक्रन्दे शूरोद्य मम दीयताम् ॥ २७ ॥ आयुधानामियञ्चापि वृता त्वत्संमते गदा । हन्तैकं भवतामेकः शक्यं मां योऽभिमन्यते ॥ २८ ॥ पदातिर्गदया संख्ये स युध्यतु मया सह । वृत्तानि रथयुद्धानि विचित्राणि पदे पदे ॥ २९ ॥ इदमेकं गदायुद्धं भवत्वद्याद्भुतं महत् । अस्त्राणामपि पर्य्यायं कर्तुमिच्छन्ति मानवाः ॥ ३० ॥ युद्धानामपि पर्य्यायो भवत्वनुमते तव । गदया त्वां महाबाहो विजेष्यामि सहानुजम् ३१ पञ्चालान् सृञ्जयांश्चैव ये चान्ये तव सैनिकाः । न हि मे सम्भ्रमो जातु शक्रादपि युधिष्ठिर ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिर उवाच । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गान्धारे मां योधय सुयोधन । एक एकेन सङ्गम्य संयुगे गदया बली ॥ ३३ ॥ पुरुषो भव गान्धारे युध्यस्व सुसमाहितः ।

में से एकको भी मार लेगा तो राज्य तेरा है, नहीं तो तू हमारे हाथसे मरकर स्वर्गमें चला जा, दुर्योधनने कहा, कि—ठीक है, तो तुम मुझे इस युद्धमें आज एक शूर युद्ध करनेके लिये दो ॥ २७ ॥ और तुम्हारी सम्मतिके अनुसार आयुधोंमेंसे एक गदा को पसन्द करता हूँ, अब तुममेंसे जो पुरुष मुझे मारनेके लिये अपनेको समर्थ समझता हो वह पुरुष पैदल रणमें मेरे साथ गदा-युद्ध करे, पग २ पर विचित्र मालूम होने वाले रथयुद्ध तो बहुत से होचुके हैं, परन्तु आज तो अद्भुत गदायुद्ध होय, मनुष्य अस्त्रों में उलट फेर करना चाहा करते हैं ॥ २८—३० ॥ तो फिर तुम्हारे सम्मतिके अनुसार आज हम युद्धोंमें भी उलट फेर किये लेते हैं, हे महाबाहु राजन्! मैं गदासे तेरा, तेरे भाइयोंका, पञ्चालोंका, सृञ्जयोंका और तुम्हारे दूसरे योधाओंका भी पराजय करूँगा। हे युधिष्ठिर ! मैं तो इन्द्रसे भी कभी नहीं डरता हूँ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि—अरे गान्धारीके पुत्र ! बलवान् बननेवाला तू पानीमेंसे बाहर निकल, निकल, अकेले मेरे ही साथ गदासे युद्ध कर ॥ ३३ ॥ हे गान्धारीके पुत्र ! पुरुष बन जा और सावधान

अद्य ते जीवितं नास्ति यदीन्द्रोपि तवाश्रयः ॥ ३४ ॥ सञ्जय
उवाच । एतत् स नरशार्दूलो नामृष्यत तवात्मजः । सलिलान्त-
गतः श्वभ्रे महानाग इव श्वसन् ॥ ३५ ॥ तथासौ वाक्प्रतोदेन
तुद्यमानः पुनः पुनः । वचो न ममृषे राजन्नुत्तमाश्वः कशामिव ३६
संक्षोभ्य सलिलं वेगाद्गदामादाय वीर्यवान् । अद्रिसारमयीं गुर्वीं
काञ्चनाङ्गदभूषणाम् ॥ ३७ ॥ अन्तर्जलात् समुत्तस्थौ नागेन्द्र
इव निश्वसन् । स भित्त्वा स्तम्भितं तोयं स्कन्धे कृत्वायसीं गदाम् ३८
उदतिष्ठत पुत्रस्ते प्रतपन्रश्मिमानिव । ततः शैक्यायसीं गुर्वीं जात-
रूपपरिष्कृताम् ॥ ३९॥ गदां परामृशद्धीमान् धार्त्तराष्ट्रो महाबलः।
गदाहस्तन्तु तं दृष्ट्वा सश्रृङ्गमिव पर्वतम् ॥ ४० ॥ प्रजानामिव संक्रुद्धं

होकर मेरे साथ युद्ध कर, आज यदि इन्द्र सहायता करेगा तो भी तेरा जीवित रहना असम्भव है ॥३४॥ सञ्जय कहता है, कि– हे राजन् ! मनुष्योंमें सिंहसमान तुम्हारा पुत्र, इन शब्दोंको सहन नहीं कर सका, किन्तु जैसे बिलके भीतर घुसा हुआ बड़ा भारी नाग फुंकारें भरता है तैसे ही जलमें स्थित तुम्हारा पुत्र भी लम्बे २ साँस लेने लगा ॥ ३५ ॥ उत्तम जातिका घोड़ा जैसे चाबुककी मारको नहीं सह सकता है, ऐसे ही उस वाणी-रूप चाबुकसे उस दुर्योधनको बार २ कष्ट दिया गया, हे राजन् ! यह बात दुर्योधनसे सही नहीं गयी ॥ ३६ ॥ पराक्रमी दुर्योधन बड़े हाथीकी समान गरजने लगा और पर्वतके सार वाली, सोनेके बाजूबन्दोंसे सजायी हुई बड़ी गदाको फुरतीसे कंधे पर उठाकर मायासे स्थिर किये हुए जलको फाड़कर उसमेंसे बाहर निकल आया, उस समय वह सूर्यकी समान दमकने लगा, उसने डोरियों के छीकेमें लटकायी हुई, लोहेकी बनी, सोनेसे मँढी बडी गदाको हाथमें उठा लिया, महाबली दुर्योधनके हाथमें गदाको देख कर लोग उसको शिखर वाला पहाड़सा समझने लगे और प्रजाके ऊपर कुपित हुए शूलपाणि शंकरसा देखने लगे, इस समय

शूलपाणिमिव स्थितम् । सगदो भारतो भाति प्रतपन् भास्करो यथा ॥ ४१ ॥ तमुत्तीर्णं महाबाहुं गदाहस्तमरिन्दमम् । मेनिरे सर्वभूतानि दण्डपाणिमिवान्तकम् ॥ ४२ ॥ वज्रहस्तं यथा शक्रं शूलहस्तं यथा हरम् । ददृशुः सर्वपाञ्चालाः पुत्रं तव जनाधिप ॥ ४३ ॥ तमुत्तीर्णन्तु संप्रेक्ष्य समहृष्यन्त सर्वशः । पंचालाः पाण्डवेयाश्च तेऽन्योन्यस्य तलान्ददुः ॥ ४४ ॥ अवहासन्तु तं मत्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव । उद्वृत्य नयनं क्रुद्धो दिधक्षुरिव पाण्डवान् ॥ ४५ ॥ त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा सन्दष्टदशनच्छदः । प्रत्युवाच ततस्तान् वै पाण्डवान् सहकेशवान् ॥ ४६ ॥ दुर्योधन उवाच । अस्यावहासस्य फलं प्रतिभोक्ष्यथ पाण्डवाः । गमिष्यथ हताः सद्यः सपञ्चाला यमक्षयम् ॥ ४७ ॥ सञ्जय उवाच

गदाधारी दुर्योधन भी तपते हुए सूर्यसा दीखता था ॥ ३७ ॥ ॥ ४१ ॥ महाबाहु और शत्रुका दमन करनेवाला दुर्योधन हाथमें गदा लिये हुए तालावमेंसे बाहर निकल आया, उस समय सब प्राणी उसको दण्डधारी कालसा मानने लगे ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! उस समय सब पंचालराजे तुम्हारे पुत्रको वज्रपाणी इन्द्र तथा शूलपाणि शंकरकी समान देखने लगे ॥ ४३ ॥ पंचालराजे और पांडव सब दुर्योधनको जलके तालावमेंसे बाहर निकला हुआ देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए और एक दूसरेके हाथ पर ताल देने लगे ॥ ४४ ॥ इसको तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने उपहास समझा, इसलिये दोनों आँखें फाड़कर मानो पाण्डवोंको भस्म कर रहा हो इसप्रकार क्रोधमें भर गया ॥ ४५ ॥ उसने भ्रकुटीमें तीन बल डालकर दाँतोंसे ओठको चाबा, तब पाण्डवोंको और श्रीकृष्णको उत्तर दिया ॥४६॥ दुर्योधनने कहा, हे पाण्डवो ! तुम जो मेरी हँसी कर रहे हो, इसका फल तुम्हें भोगना पड़ेगा, शीघ्र ही पंचालराजोंके साथ मारे जाकर यमलोकमें पहुँचोगे ॥ ४७ ॥ संजय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! फिर लोहूलुहान हुआ

उत्थितश्च जलात्तस्मात् पुत्रो दुर्योधनस्तव । अतिष्ठत गदापाणी रुधिरेण समुक्षितः ॥ ४८ ॥ तस्य शोणितदिग्धस्य सलिलेन समुक्षितम् । शरीरं स्म तदा भाति स्रवन्निव महीधरः ॥ ४९ ॥ तमुद्यतगदं वीरं मेनिरे तत्र पाण्डवाः । वैवस्वतमिव क्रुद्धं किङ्करोद्यतपाणिनम् ॥ ५० ॥ स मेघनिनदो हर्षान्नर्दन्निव च गोवृषः । आजुहाव ततः पार्थान् गदया युधि वीर्यवान् ॥ ५१ ॥ दुर्योधन उवाच । एकैकेन च मां यूयमासीदत युधिष्ठिर । न ह्येको बहुभिर्न्याय्यो वीरो योधयितुं युधि ॥ ५२ ॥ न्यस्तवर्मा विशेषेण श्रांतश्चाप्सु परिप्लुतः । भृशं विक्षतगात्रश्च हतवाहनसैनिकः ॥ ५३ ॥ अवश्यमेव योद्धव्यं सर्वैरेव मया सह । युक्तं न युक्तमित्येतद्वेत्सि त्वञ्चैव सर्वदा ॥ ५४ ॥ युधिष्ठिर उवाच । मा भूदियं तव प्रज्ञा

तुम्हारा पुत्र दुर्योधन हाथमें गदा लिये हुए जलमेंसे बाहर निकल आया ॥ ४८ ॥ रुधिरसे सना और पानी निचुडता हुआ शरीर, जल टपकाते हुए पर्वतसा मालूम होता था ॥ ४९ ॥ जब वीर दुर्योधन गदा उठाकर खडा हुआ उस समय पाण्डव उसको, न जाने क्या कर डाले, ऐसे हाथको उठाकर खड़े कोपमें भरे यमराजकी समान मानने लगे ॥ ५० ॥ फिर मेघकी समान गर्जना करने वाला दुर्योधन सांडकी समान शब्द करता हुआ युद्धमें गदा घुमाकर पांडवोंको पुकारने लगा ॥ ५१ ॥ दुर्योधन ने कहा, कि—हे युधिष्ठिर ! तुममेंसे एक २ युद्ध करनेके लिये मेरे पास आओ, युद्धमें एक वीर बहुतसे वीर पुरुषोंके साथ लड़े यह उचित नहीं है ॥ ५२ ॥ विशेषकर मैंने कवच उतार डाला है, थक गया हूँ और पानीमें भीग रहा हूँ, मेरे अंग बहुत ही घायल होरहे हैं, मेरे वाहन और सैनिक मारे गये हैं (ऐसेके साथ लडना धर्मानुकूल नहीं है) ॥ ५३ ॥ तो भी तुम सबोंको यदि अकेले मेरे साथ अवश्य लडना ही हो तो यह बात योग्य है या अयोग्य, इस बातको तुम सदा जानते ही हो ॥ ५४ ॥ युधि-

कथमेवं सुयोधन । यदाभिमन्युं बहवो जघ्नुर्युधि महारथाः ॥५५॥
क्षत्रधर्मं भृशं क्रूरं निरपेक्षं सुनिर्घृणम् । अन्यथा तु कथं हन्युरभिमन्युं तथागतम् ॥ ५६ ॥ सर्वे भवन्तो धर्मज्ञाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः । न्यायेन युध्यतां प्रोक्ता शक्रलोकगतिः परा ॥ ५७ ॥
यद्येकस्तु न हन्तव्यो बहुभिर्धर्म एष वः । तदाभिमन्युं बहवो निजघ्नुस्त्वन्मते कथम् ॥ ५८ ॥ सर्वो विमृशते जन्तुः कृच्छ्रस्थो धर्मदर्शनम् । पदस्थः पिहितं द्वारं परलोकस्य पश्यति ॥ ५९ ॥
आमुञ्च कवचं वीर मूर्द्धजान् यमयस्व च । यच्चान्यदपि ते नास्ति तदप्यादत्स्व भारत ॥ ६० ॥ इयमेकञ्च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम् । पञ्चानां पाण्डवेयानां येन युद्धमिहेच्छसि ॥ ६१ ॥

ष्ठिरने कहा, कि—जब बहुतसे महारथियोंने इकट्ठे होकर युद्धमें अभिमन्युको मारडाला था, उस समय हे दुर्योधन ! तुझे ऐसा विचार क्यों नहीं सूझा ॥ ५५ ॥ क्षत्रियका धर्म बडा ही क्रूर, निरपेक्ष और बडा ही निर्दयी है, यदि यह बात नहीं होती तो अकेले अभिमन्युको बहुतसे योधा घेरकर क्यों मारते ? ॥५६ ॥ तुम सब धर्मको जानने वाले, शूर और रणमें शरीर त्यागनेवाले हो, न्यायसे युद्ध करनेवालेको स्वर्गकी उत्तम गति मिलती है (इस बातको जानते हो) ॥ ५७ ॥ और बहुतसे मिलकर एकको न मारें यह धर्म गिना जाता है, तो भी तेरी जानकारीमें बहुतसे योधाओंने इकट्ठे मिलकर अभिमन्युको क्यों मारा था ? ॥५८॥ परन्तु सब ही प्राणी जब संकटमें आपडते हैं उस समय धर्मका विचार करते हैं, परन्तु सुख भोगता हुआ पुरुष उस समय परलोकके द्वारको बन्द हुआ देखता है ॥ ५९ ॥ इसलिये हे वीर ! अब तू कवच पहर ले और केशोंको बाँध ले, तथा हे भरतवंशी राजन् ! तेरे पास जो कोई वस्तु न होय उसको लेले ॥ ६० ॥ हे वीर ! मैं तुझे फिर एक वर देता हूँ, कि-तुझे पाँचों पांडवोंमेंसे जिस एकके साथ लडनेकी इच्छा हो उसके साथ ही युद्ध कर ६१

तं हत्वा वै भवान् राजा हतो वा स्वर्गमाप्नुहि । ऋते च जीविताद्वीर युद्धे किं कुर्म ते प्रियम् ॥ ६२ ॥ सञ्जय उवाच । ततस्तव सुतो राजन् वर्म जग्राह काञ्चनम् । विचित्रञ्च शिरस्त्राणं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ ६३ ॥ सोऽवबद्धशिरस्त्राणः शुभकाञ्चनवर्मभृत् । रराज राजन् पुत्रस्ते काञ्चनः शैलराडिव ॥ ६४ ॥ सन्नद्धः सगदी राजन् सज्जः संग्राममूर्द्धनि । अब्रवीत् पाण्डवान् सर्वान् पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ६५ ॥ भ्रातॄणां भवतामेको युध्यतां गदया मया । सहदेवेन वा योत्स्ये भीमेन नकुलेन वा ॥ ६६ ॥ अथवा फाल्गुनेनाद्य त्वया वा भरतर्षभ । योत्स्येऽहं सङ्गरं प्राप्य विजेष्ये च रणाजिरे ॥ ६७ ॥ अहमद्य गमिष्यामि वैरस्यान्तं सुदुर्गमम् । गदया पुरुषव्याघ्र हेमपट्टनिबद्धया ॥ ६८ ॥ गदायुद्धे न मे कश्चित् सदृशोऽस्तीति

यदि तू उसको मार डालेगा तो राजा होगा और यदि उसके हाथसे मारा जायगा तो स्वर्गमें जायगा, अरे दुष्टबुद्धि ! मैं इस युद्धमें तुझे जीता छोडनेके सिवाय तेरा और कौनसा प्रिय काम करूँ ? ॥ ६२ ॥ संजय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! तदनन्तर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने सोनेका कवच और सोनेसे जड़ाहुआ विचित्र टोप ये दो वस्तु माँग लीं ॥ ६३ ॥ उसने जब शिर पर सोनेका टोप तथा शरीर पर सोनेका कवच पहरा, उस समय वह सोनेका गिरिराज सा शोभा पाने लगा ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र दुर्योधन युद्धके वेशमें तयार हुआ और फिर हाथमें गदा लेकर सब पांडवोंसे कहने लगा कि—॥ ६५ ॥ तुम्हारे भाइयोंमेंसे चाहे जो कोई एक मेरे साथ गदायुद्ध कर लेय, मैं सहदेवके साथ, भीमके साथ, अर्जुनके साथ, नकुलके साथ, अथवा हे भरतसत्तम राजा युधिष्ठिर ! तुम्हारे साथ युद्धमें लड़नेको तयार हूँ और रणभूमिमें तुम्हारे ऊपर विजय पाऊँगा ६६-६७ हे पुरुषव्याघ्र ! सोनेकी पट्टीसे जड़ीहुई इस गदासे मैं आज वैर का अतिदुर्गम छोर लेआऊँगा ॥ ६८ ॥ मैं मानता हूँ, कि—गदा-

चिन्तये । गदया वो हनिष्यामि सर्वानेव समागतान् । ६९ । न मे समर्थाः सर्वे वै योद्धुं न्यायेन केचन । न युक्तमात्मना वक्तुमेवं गर्वोद्धतं वचः । अथ वा सफलं ह्येतत् करिष्ये भवतां पुरः ॥७०॥ अस्मिन् मुहूर्त्ते सत्यं वा मिथ्या वैतद्भविष्यति । गृह्णातु च गदां यो वै योत्स्यतेऽद्य मया सह ॥७१॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्व्वणि गदापर्व्वणि युधिष्ठिरदुर्योधनसम्वादे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

सञ्जय उवाच । एवं दुर्योधने राजन् गर्जमाने मुहुर्मुहुः । युधिष्ठिरस्य संक्रुद्धो वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥ यदि नाम ह्ययं युद्धे वरये त्वां युधिष्ठिर । अर्जुनं नकुलञ्चैव सहदेवमथापि वा २ किमिदं साहसं राजंस्त्वया व्याहृतमीदृशम् । एकमेव निहत्याजौ

युद्ध में मुझसरीखा दूसरा कोई भी पुरुष नहीं है, मैं इस गदासे इकट्ठे होकर आयेहुए तुम सबोंका नाश करडालूँगा ॥ ६९ ॥ तुम सब तथा दूसरा कोई भी न्यायसे मेरे साथ लड़नेकी सामर्थ्य नहीं रखते, इसप्रकार मुझे स्वयं गर्वसे उद्धत वचन नहीं बोलना चाहिये, परन्तु मैं तुम्हारे सामने अपनी कही हुई बातको सफल करूँगा ॥ ७० ॥ और आज दो घड़ामें, यह बात सत्य है या मिथ्या यह सिद्ध होजायगा, अस्तु अब आज जिसको मेरे साथ युद्ध करना हो, उसको चाहिये, कि-मेरे सामने गदा लेकर आजाय ॥ ७१ ॥ बत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥

संजय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! जब दुर्योधन इसप्रकार बार २ गरज २ कर बोलरहा था, उससमय श्रीकृष्णने कुपित होकर युधिष्ठिरसे यों कहा, कि-॥ १ ॥ हे धर्मराज ! यह दुर्योधन इस युद्धमें तुम्हें, अर्जुनको, नकुलको अथवा सहदेवको चुनलेगा तो कैसा अनर्थ होगा ? हे राजन् ! तुम्हारा यह कहना साहस है, तुम यह क्या कह बैठे, कि-तू हममेंसे चाहे किसी एकको भी रणमें मारडालेगा तो तू कौरवोंका राजा होजायगा २-३

भव राजा कुरुष्विति ॥ ३ ॥ न समर्थानहं मन्ये गदाहस्तस्य संयुगे । एतेन हि कृता योग्या वर्षाणीह त्रयोदश ॥ ४ ॥ आयसे पुरुषे राजन् भीमसेनजिघांसया । कथं नाम भवेत् कार्य्यमस्माभिर्भरतर्षभ ॥ ५ ॥ साहसं कृतवांस्त्वन्तु ह्यनुक्रोशान्नृपोत्तम । नान्यमस्यानुपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे ॥६॥ ऋते वृकोदरात् पार्थात् स च नातिकृतश्रमः । तदिदं द्यूतमारब्धं पुनरेव यथा पुरा ॥ ७ ॥ विषमं शकुनेश्चैव तव चैव विशाम्पते । बली भीमः समर्थश्च कृती राजा सुयोधनः॥८॥बलवान् वा कृती वेति कृती राजन् विशिष्यते । सोऽयं राजंस्त्वया शत्रुः समे पथि निवेशितः ॥ ९ ॥ न्यस्तश्चात्मा सुविषमे कृच्छ्रमापादिता वयम् । को नु सर्वान् विनिर्जित्य शत्रूनेकेन वैरिणा ॥१०॥ कृच्छ्रप्राप्ते न च तथा हारयेद्राज्यमागतम् ।

मेरी समझमें आप दुर्योधनके साथ गदायुद्ध करनेमें समर्थ नहीं हैं,, क्योंकि-भीमको मारनेके लिये दुर्योधनने तेरह वर्ष तक लोहे के पुरुषके साथ गदायुद्धका अभ्यास किया है, इसकारण हे भरतसत्तम ! यह काम हमसे कैसे हो सकता है ॥ ४ ॥ हे राजसत्तम ! तुमने दयावश ऐसा साहस किया है, मैं रणमें दुर्योधनकी बराबराका योधा कुन्तीनन्दन वृकोदर (भीम) के सिवाय दूसरे किसीको नहीं देखता भीमने अभी बहुत परिश्रम भी नहीं किया है, इसलिये पहले जैसे तुममें और शकुनिमें जुआ होनेलगा था, तैसे ही विकट युद्ध रूप जुआ तुमने फिर आरम्भ कर दिया है, भीम बलवान् और समर्थ है तो राजा दुर्योधन गदायुद्धमें चतुर है॥ ५-८ ॥ हे राजन् ! बलवान् और चतुर इन दोनोंमें बलवान्से चतुर विशेष(बढ़ाहुआ) होता है, हे राजन् ! तुमने अपने शत्रुको सूधे मार्गमें लाकर खड़ा कर दिया और अपने को घोर सङ्कट के मार्गमें लाडाला, ऐसा कौनसा पुरुष होगा, जो सबको जीतकर हाथमें आया हुआ राज्य दुःखमें पड़ेहुए एक शत्रुके हाथमें खोबैठे इस

पणित्वा चैकपाणेन रोचयेदेवमाहवम् ॥ ११ ॥ न हि पश्यामि तं लोके योद्ध दुर्योधनं रणे । गदाहस्तं विजेतुं वै शक्तः स्यादमरोपि हि ॥ १२ ॥ न त्वं भीमो न नकुलः सहदेवोऽथ फाल्गुनः। जेतुं न्यायेन शक्तो वै कृती राजा सुयोधनः ॥ १३ ॥ स कथं वदसे शत्रुं युध्यस्व गदयेति हि । एकञ्च नो निहत्याजौ भव राजेति भारत ॥ १४ ॥ वृकोदरं समासाद्य संशयो विजये हि नः । न्यायतो युद्धमानानां कृती ह्येष महाबलः ॥ १५ ॥ एकं वास्मान्निहत्य त्वं भव राजेति वै पुनः ॥ १५ ॥ नूनं न राज्यभागेपा पांडोः कुन्त्याश्च सन्ततिः ॥ १६ ॥ अत्यन्तवनवासाय सृष्टा भैक्षाय वा पुनः । भीमसेन उवाच । मधुसूदन मा कार्षीर्विषादं यदुनन्दन १७

प्रकार एक पुरुषके साथ युद्ध करनेका पण करना अच्छा समझे ॥ ९-११ ॥ आज रणमें गदाधारी दुर्योधनको जीतलेय, ऐसा कोई पुरुष भी मैं जगत्में नहीं देखता, इसको तो देवता भी नहीं जीतसकता (फिर तुम तो होही क्या ?) ॥ १२ ॥ तुम भीम, नकुल, सहदेव अथवा अर्जुन भी न्यायपूर्वक दुर्योधनके साथ लड़े तो इसको जीत नहीं सकते, क्योंकि-दुर्योधन गदायुद्धमें बड़ा कुशल है ॥ १३ ॥ तो भी हे भरतवंशी राजन् ! तुम शत्रु से यों कहते हो, कि—तू गदा लेकर हममेंसे चाहे जिस एक के साथ युद्ध करले और यदि उसको मारडाले तो तू राजा होजा ॥ १४ ॥ अब यदि हम न्यायसे युद्ध करेंगे तो दुर्योधनके सामने भीमसेनकी विजय होनेमें सन्देह है, क्योंकि-यह महाबली दुर्योधन बड़ा चतुर है ॥ १५ ॥ तो भी तुमने कहदिया, कि-हममेंसे एकको भी तू मारडालेगा तो तू कौरवकुलका राजा होजायगा, निःसन्देह पांडु और कुन्तीकी सन्तान राज्य भोगनेको उत्पन्न नहीं हुई है, किन्तु सदा वनवास करनेके लिये अथवा भीख माँगनेके लिए ही पैदा हुई है, भीमसेनने कहा, कि-हे यदुनन्दन वासुदेव ! हे मधुसूदन ! तुम मनमें खेद न मानो १६-१७

अद्य पारं गमिष्यामि वैरस्य भृशदुर्गमम् । अहं सुयोधनं संख्ये हनिष्यामि न संशयः ॥ १८ ॥ विजयो वै ध्रुवः कृष्ण धर्मराजस्य दृश्यते । अध्यर्द्धेन गुणेनेयं गदा गुरुतरी मम ॥ १९ ॥ न तथा धार्त्तराष्ट्रस्य मा कार्षीर्माधव व्यथाम् । अहमेनं हि गदया संयुगे योद्धुमुत्सहे ॥ २० ॥ भवन्तः प्रेक्षकाः सर्वे मम सन्तु जनार्दन । सामरानपि लोकांस्त्रीन्नानाशस्त्रधरान् युधि ॥ २१ ॥ योधयेयं रणे कृष्ण किमुताद्य सुयोधनम् । सञ्जय उवाच । तथा सम्भाषमाणन्तु वासुदेवो वृकोदरम् ॥ २२ ॥ हृष्टः संपूजयामास वचनं चेदमब्रवीत् । त्वामाश्रित्य महाबाहो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥ निहतारिः स्वकां दीप्तां श्रियं प्राप्तो न संशयः । त्वया विनिहताः सर्वे धृतराष्ट्रसुता रणे ॥ २४ ॥ राजानो राजपुत्राश्च नागाश्च

मैं आज वैरका बड़ा दुर्गम पार पाऊँगा और युद्धमें दुर्योधनका नाश करूँगा, इसमें संदेह नहीं है ॥ १८ ॥ हे कृष्ण ! मुझे अवश्य ही धर्मराजकी विजय दीखती है, हे माधव ! मेरी यह गदा दुर्योधनकी गदासे डेढगुणी भारी है. मेरी गदाकी बराबरी दुर्योधनकी गदा नहीं करसकती, इसलिये तुम खेद न करो, मुझे युद्धमें गदासे इसके साथ लड़नेका साहस है ॥ १९—२० ॥ हे जनार्दन ! तुम सब मेरे युद्धके दर्शक रहो, मैं अनेकों शस्त्रोंसे सजकर आयेहुए देवताओंके साथ तथा तीनों लोकोंके साथ भी रणमें युद्ध करसकता हूँ. फिर हे कृष्ण ! दुर्योधनके साथ युद्ध करना तो बात ही क्या है ? सञ्जय कहता है, कि—भीमने ऐसा कहा, तब कृष्णने प्रसन्न होकर भीमकी सराहना करते हुए कहा, कि—हे महाभुज भीम ! धर्मराज युधिष्ठिरने तेरे सहारेसे शत्रुओंका संहार करके दमकती हुई राज्यलक्ष्मी पायी है, इस में कुछ सन्देह नहीं है, रणमें तूने ही धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको मारा है ॥ २१-२४ ॥ तूने ही महायुद्धमें राजे, राजकुमार, हाथी तथा कलिङ्ग, मगध, पूर्वके देश तथा गंधार देशके राजे और

विनिपातितः । कलिंगा मागधाः प्राच्या गान्धाराः कुरवस्तथा २५
त्वामासाद्य महायुद्धे निहताः पाण्डुनन्दन । हत्वा दुर्योधनञ्चापि
प्रयच्छोर्वीं ससागराम् ॥ २६ ॥ धर्मराजाय कौन्तेय यथा विष्णुः
शचीपतेः । त्वाञ्च प्राप्य रणे पापो धार्त्तराष्ट्रो विनंक्ष्यति ॥२७॥
त्वमस्य सक्थिनी भङ्क्त्वा प्रतिज्ञां पालयिष्यसि । यत्नेन तु सदा
पार्थः योद्धव्यो धृतराष्ट्रजः ॥ २८ ॥ कृती च बलवांश्चैव युद्धशौ-
ण्डश्च नित्यदा । ततस्तु सात्यकी राजन् पूजयामास पाण्डवम्
॥ २९ ॥ पञ्चालाः पाण्डवेयाश्च धर्मराजपुरोगमाः । तद्वचो
भीमसेनस्य सर्वे एवाभ्यपूजयन् ॥ ३० ॥ ततो भीमबलो भीमो
युधिष्ठिरमथाब्रवीत् । सृञ्जयैः सह तिष्ठन्तं तपन्तमिव भास्करम् ३१
अहमेतेन सङ्गम्य संयुगे योद्धुमुत्सहे । न हि शक्तो रणे जेतुं
मामेष पुरुषाधमः ॥ ३२ ॥ अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि निहितं हृदये

कौरवोंको मारडाला है ॥ २५ ॥ जैसे विष्णुने इन्द्रको सागर-सहित पृथिवी दी थी, तैसे ही तू दुर्योधनको भी मार कर समुद्र-पर्यन्त की पृथ्वी धर्मराज को अर्पण कर, पापी दुर्योधन रणमें तेरे साथ युद्ध करके माराजायगा ॥ २६-२७ ॥ और तू भी उसकी दोनों जंघाओंको तोड़कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेगा, परन्तु हे भीम ! तू दुर्योधनके साथ सदा यत्नसे--सावधानीसे लड़ना, क्योंकि--दुर्योधन नित्य ही अपना काम सिद्ध करनेमें कुशल, बलवान् और युद्धचतुर है, हे राजन् ! तब सात्यकी ने भीमकी सराहना की थी ॥२८॥ और पञ्चालराजे तथा धर्म-राज आदि पाण्डवोंने भी भीमकी इस बातका धन्यवाद दिया २९ फिर भयङ्कर बलवाले भीमने संजयोंके साथ खड़ेहुए और सूर्यकी समान दमकतेहुए युधिष्ठिरसे कहा, कि--रणमें दुर्योधनके साथ युद्ध करनेको मेरा जी चाहरहा है, यह पुरुषाधम लड़ाईमें मुझे हरा नहीं सकता ॥३०-३२॥ जैसे अर्जुनने खाण्डव वन में अग्निको छोड़ा था, तैसे ही मैं भी अपने हृदयमें बहुत दा

भृशम् । सुयोधने धार्त्तराष्ट्रे खाण्डवेऽग्निमिवार्जुनः ॥३३॥ शल्य-मद्योद्धरिष्यामि तत्र पाण्डव हृच्छयम् । निहत्य गदया पापमद्य राजन् सुखी भव ॥ ३४ ॥ अद्य कीर्त्तिमयीं मालां प्रतिमोक्ष्ये तवानघ । प्राणान् श्रियञ्च राज्यञ्च मोक्ष्यतेऽद्य सुयोधनः ॥ ३५ ॥ राजा च धृतराष्ट्रोऽद्य श्रुत्वा पुत्रं मया हतम् । स्मरिष्यत्यशुभं कर्म यत्तच्छकुनिबुद्धिजम् ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो गदामुद्यम्य वीर्य्यवान् । उदतिष्ठत युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन् ॥ ३७ ॥ तदाह्वानममृष्यन् वै तव पुत्रोऽतिवीर्य्यवान् । प्रत्युपस्थित एवाशु मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ३८ ॥ गदाहस्तं तव सुतं युद्धाय समुपस्थितम् । ददृशुः पाण्डवाः सर्वे कैलासमिव शृङ्गिणम् ॥ ३९ ॥ तमेकाकिन-

भरे हुए क्रोध को आज धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनके ऊपर छोड़ूंगा; ॥ ३३ ॥ इतना ही नहीं किन्तु हे युधिष्ठिर ! आज मैं पापी दुर्योधन को गदा से मारकर अपने हृदय में के काँटेको बाहर निकालडालूँगा, हे राजन् ! तब तुम सुखी होना ॥ ३४ ॥ हे निर्दोष राजन् ! मैं आज आपको कीर्त्ति की माला पहराऊँगा, आज दुर्योधन प्राण, लक्ष्मी और राज्यको त्यागेगा ॥ ३५ ॥ आज धृतराष्ट्र भी अपने पुत्रको मेरे हाथसे मारागया सुनकर शकुनिकी सम्मतिसे कियेहुए अशुभ कर्मको याद करेगा ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर भरतवंशमें श्रेष्ठ पराक्रमी भीम गदा उठाकर खड़ा होगया और युद्धके लिये जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको बुलाया था तैसे ही दुर्योधनको बुलानेलगा ॥ ३७ ॥ तुम्हारा महाशक्तिमान् पुत्र इस बातको सह न सका और जैसे मदमत्त हाथी मदमत्त हाथीके सामने जाता हो तैसे ही तुरन्त ही वह भीमके सामने आकर खड़ा होगया ॥ ३८ ॥ जब तुम्हारा पुत्र हाथमें गदा लेकर युद्धके लिये खड़ाहुआ, उस समय वह सब पांडवोंको शिखरवाला कैलासपर्वतसा मालूम

मासाद्य धार्त्तराष्ट्रं महाबलम् । वियूथमिव मातंगं समहृष्यन्त पाण्डवाः
४० न सम्भ्रमो न च भयं न च ग्लानिर्न च व्यथा । आसीद्द दुर्यो-
धनस्यापि स्थितः सिंह इवाहवे ४१ तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव
शृंगिणम् । भीमसेनस्तदा राजन् दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ ४२ ॥
राज्ञापि धृतराष्ट्रेण त्वया चास्मासु यत् कृतम् । स्मर यद्द दुष्कृतं
कर्म यद्द वृत्तं वारणावते ॥ ४३ ॥ द्रौपदी च परिक्लिष्टा सभाम-
ध्ये रजस्वला । द्यूते यद्विजितो राजा शकुनेर्बुद्धिनिश्चयात् ॥४४॥
यानि चान्यानि दुष्टात्मन् पापानि कृतवानसि । अनागःसु च
पार्थेषु तस्य पश्य महत् फलम् ॥ ४५ ॥ त्वत्कृते निहतः शेते
शरतल्पे महायशाः । गांगेयो भरतश्रेष्ठः सर्वेषां नः पितामहः ॥४६॥

होता था ॥ ३९ ॥ महाबली दुर्योधन अकेला ही था, जो झुंड मेंसे बिछुड़ाहुआ हाथीसा मालूम होता था, उसको देखकर पांडव प्रसन्न हुए ॥ ४० ॥ इस समय दुर्योधनको न घबराहट थी, न भय था, न ग्लानि थी, न व्यथा थी, किन्तु वह रणमें सिंहकी समान खड़ा था ॥ ४१ ॥ शिखरवाले कैलासकी समान गदा उठाकर खड़ेहुए दुर्योधनको देखकर हे राजन्! उस समय भीमने दुर्योधनसे कहा, कि-॥ ४२ ॥ अरे ओ दुर्योधन! राजा धृतराष्ट्रने और तूने हमारे साथ जो बुराई की है उसको तथा वारणावत नगरमें हमारा जो अहित किया था, उसको याद कर ॥ ४३ ॥ वारणावतमें क्या हुआ था, उसको याद तो कर, तूने बीचसभामें रजस्वला द्रौपदीको दुःख दिया था, शकुनिकी बुद्धिपर आधार रखकर तूने युधिष्ठिरको कपटसे जुएमें जीता था, उसको याद कर ॥ ४४ ॥ अरे दुष्टात्मन्! इसके बाद निर-पराधी पांडवोंके ऊपर तूने और भी जो अत्याचार किये थे, उनका बड़ाभारी फल तू आज देखना ॥ ४५ ॥ तेरे ही कारण से तो महायशस्वी और हम सबोंके पितामह गङ्गानन्दन भीष्मजी हमारे हाथसे घायल होकर शरशय्या पर सोरहे हैं ॥ ४६ ॥

हतो द्रोणश्च कर्णश्च हतः शल्यः प्रतापवान् । वैरस्य चादिकर्त्तासौ शकुनिर्निहतो युधि ॥ ४७ ॥ भ्रातरस्ते हताः शूराः पुत्राश्च सहसैनिकाः । राजानश्च हताः शूराः समरेष्वनिवर्त्तिनः ॥ ४८ ॥ एते चान्ये च निहता बहवः क्षत्रियर्षभाः । प्रातिकामी तथा पापो द्रौपद्याः क्लेशकृद्धतः ॥ ४९ ॥ अवशिष्टस्त्वमेवैकः कुलघ्नोऽधमपुरुषः । त्वामप्यद्य हनिष्यामि गदया नात्र संशयः ॥ ५० ॥ अद्य तेऽहं रणे दर्पं सर्वं नाशयिता नृप । राज्याशां विपुलां राजन् पाण्डवेषु च दुष्कृतम् ॥ ५१ ॥ दुर्य्योधन उवाच । किं कथितेन बहुना युध्यस्वाद्य मया सह । अद्य तेऽहं विनेष्यामि युद्धश्रद्धां वृकोदर ॥ ॥ ५२ ॥ किं न पश्यसि मां पाप गदायुद्धे व्यवस्थितम् । हिमवच्छिखराकारां प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ५३ ॥ गदिनं कोद्य मां पाप

द्रोणाचार्य मारेगये, कर्ण मारागया, प्रतापी शल्य मारागया और वैरका आदिकर्त्ता शकुनि भी रणमें मारागया है ॥ ४७ ॥ तेरे वीर भाई पुत्र योधा और रणमें पोछेको पैर न देनेवाले वीरक्षत्रिय राजे भी रणमें तेरे लिये ही मारेगये हैं ॥४८॥ इसके उपरान्त दूसरे बहुतसे क्षत्रिय भी रणमें मारेगये हैं, इनके सिवाय द्रौपदी को दुःख देनेवाला पापी प्रातिकामी, कि—जिसने द्रौपदीके केश खेंचे थे वह भी तेरे लिये ही मारागया है ॥ ४९ ॥ अब कुलका नाश करनेवाला और अधम पुरुष एक तू ही शेष रहगया है, ऐसे तुझे भी आज मैं निःसन्देह गदासे मारडालूँगा ॥ ५० ॥ हे राजन् ! आज मैं रणमें तेरे सब घमण्डका चूरा २ करडालूँगा तेरा राज्य करनेकी बडी भारी आशाको भी तोड़डालूँगा और पाण्डवोंका तूने जो अशुभ किया है उसको भी दूर करूँगा ५१ दुर्योधनने कहा, कि—अरे वृकोदर ! बहुत बड़बड़ानेसे क्या लाभ है ? आज तू मेरे साथ युद्धकर, मैं तेरी युद्धकी श्रद्धाको नष्ट करूँगा ॥ ५२ ॥ अरे पापी ! मैं हिमालयके शिखरकी समान भारी गदा लेकर गदायुद्धके लिये खड़ा हूँ, यह तू देखता नहीं ५३

जेतुमुत्सहते रिपुः । न्यायतो युध्यमानस्य देवेष्वपि पुरन्दरः ५४
मा वृथा गर्ज्ज कौन्तेय शारदाभ्रमिवाजलम् । दर्शयस्व बलं युद्धे यावत्तत्तेऽद्य विद्यते॥५५॥तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पाण्डवाः सहसृञ्जयाः। सर्वे सम्पूजयामासुस्तद्वचो विजिगीषवः ५६ तं मत्तमिव मातङ्गं तलशब्देन मानवाः । भूयः संहर्षयामासू राजन् दुर्योधनं नृपम् ५७ बृंहन्ति कुञ्जरास्तत्र हया हेषन्ति चासकृत । शस्त्राणि संप्रदीप्यन्ते पाण्डवानां जयैषिणाम् ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि भीमदुर्योधनवाक्ये त्रयस्त्रिंशोध्यायः ॥ ३३ ॥

सञ्जय उवाच । तस्मिन् युद्धे महाराज सुसंवृत्ते सुदारुणे । उपविष्टेषु सर्वेषु पाण्डवेषु महात्मसु ॥ १ ॥ ततस्तालध्वजो रामस्तयोर्युद्ध उपस्थिते । श्रुत्वा तच्छिष्ययो राजन्नाजगाम हलायुधः ॥२॥

अरे पापी ! कौनसा शत्रु गदाधारी मुझको मारनेका हौंसला करसकता है ? मैं न्यायसे युद्ध करता हूँ, मुझे देवताओंमेंसे भी कोई नहीं मारसकता ॥५४॥ अरे कुन्तीके पुत्र ! तू शरद ऋतुके जलशून्य मेघकी समान वृथा गर्जना न कर, किन्तु तुझमें जितना बल हो उसको आज तू रणमें दिखा ॥ ५५ ॥ दुर्योधनकी इस बातको सुनकर विजय चाहनेवाले सृञ्जयों सहित पाण्डवोंने उसकी इस बातकी प्रशंसा की ॥ ४५ ॥ और हे राजन् ! सब लोगोंने तालियें बजाकर मतवाले हाथीकी समान दुर्योधनका फिर उत्साह बढ़ाया ॥ ५७ ॥ उस समय विजय चाहनेवाले पांडवोंके हाथी वार २ चिंघाड़नेलगे, घोड़े हिनहिनानेलगे और शस्त्र दमकने लगे ॥ ५८ ॥ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥

संजय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! जिस समय उस महादारुण युद्धकी तयारी होरही थी और महात्मा सब पांडव शान्तभावसे व्यासहृदके किनारे पर बैठे थे ॥ १ ॥ इतनेमें ही जिनकी ध्वजामें तालका चिन्ह था ऐसे हलधारी बलदेवजी,

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः पाण्डवाः सहकेशवाः । उपगम्योपसंगृह्य विधिवत् प्रत्यपूजयन् ॥ ३ ॥ पूजयित्वा ततः पश्चादिदं वचनमब्रुवन् । शिष्ययोः कौशलं युद्धे पश्य रामेति पार्थिव ॥ ४ ॥ अब्रवीच्च तदा रामो दृष्ट्वा कृष्णं सपाण्डवम् । दुर्योधनञ्च कौरव्यं गदापाणिमवस्थितम् ॥ ५ ॥ चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै। पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः । शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोस्मि माधव ॥ ६ ॥ ततस्तदा गदाहस्तौ दुर्योधनवृकोदरौ । युद्धभूमिं गतौ वीरावुभावेव विरेजतुः ॥ ७ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा परिष्वज्य हलायुधम् । स्वागतं कुशलञ्चास्मै पर्य्यपृच्छद्यथातथम् ॥ ८ ॥ कृष्णौ चापि महेष्वासावभिवाद्य हलायुधम् । सस्वजाते परिप्रीतौ प्रीयमाणौ यशस्विनौ ॥ ९ ॥ माद्रीपुत्रौ तथा शूरौ द्रौ-

अपने दोनों शिष्योंमें युद्ध होनेका समाचार पाकर तहाँ आगये ।२। श्रीकृष्ण और पांडव बलदेवजीको देखकर बड़े प्रसन्न हुए, उनके सामने गये और चरण छूकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की ॥३॥ हे राजन्! पूजा करनेके अनन्तर उनसे यह बात कही, कि–हे राम! तुम अपने शिष्योंकी रणचातुरी देखो ॥ ४ ॥ फिर बलदेवजी कृष्ण, पाण्डव और हाथमें गदा लेकर खड़े हुए दुर्योधनको देखकर उनसे कहनेलगे, कि–॥ ५ ॥ आज यात्रामें निकले हुए मुझे बयालीस दिन हुए हैं, मैं पुष्यनक्षत्रमें यात्राको निकला था और श्रवण नक्षत्रमें लौटकर आया हूँ ॥ ६ ॥ हे माधव! मैं दोनों शिष्योंका गदायुद्ध देखना चाहता हूँ, इसलिये ही यहाँ आया हूँ, इस समय रणभूमिमें हाथमें गदा लेकर खड़ेहुए दुर्योधन और भीमसेन शोभा पारहे थे, तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने बलरामजीको हृदयसे लगाकर स्वागत किया और उचित रीतिसे कुशल पूछा, महा धनुषधारी कृष्ण और अर्जुनने बलदेवजीको प्रणाम करके परमप्रेमके साथ आलिङ्गन किया, ऐसे ही यशस्वी, वीर माद्रीके दोनों पुत्रोंने तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंने भी महाबली

पर्थाः पञ्च चात्मजाः। अभिवाद्य स्थिता राजन् रौहिणेयं महाबलम् ॥ १० ॥ भीमसेनोथ बलवान् पुत्रस्तव जनाधिप। तथैव चोद्यतगदौ पूजयामासतुर्बलम् ॥ ११ ॥ स्वागतेन च तं तत्र प्रतिपूज्य नराधिपाः। पश्य युद्धं महाबाहो इति ते राममब्रुवन्। एवमूचुर्महात्मानं रौहिणेयं नराधिपाः ॥ १३ ॥ परिष्वज्य तदा रामः पाण्डवान् सृञ्जयानपि। अपृच्छत् कुशलं सर्वान् पार्थिवांश्चामितौजसः ॥ १४ ॥ तथैव ते समासाद्य पप्रच्छुस्तमनामयम्। प्रत्यभ्यर्च्य हली सर्वान् क्षत्रियांश्च महात्मनः ॥ १५ ॥ कृत्वा कुशलसंयुक्तां सम्विदञ्च यथावयः। जनार्दनं सात्यकिञ्च प्रेम्णा स परिषस्वजे ॥ १६ ॥ मूर्द्धिन चैतावुपाघ्राय कुशलं पर्य्यपृच्छत। तौ चैनं विधिवद्राजन् पूजयामासतुर्गुरुम् ॥ १७ ॥ ब्रह्माणमिव देवे-

रोहिणीकुमारको प्रणाम किया, हे राजन्! बलवान् भीमसेन तथा तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने गदा ऊँची करके इसप्रकार ही बलरामकी पूजा की, इसप्रकार चारों ओरसे सब राजाओंने बलदेवजीका स्वागत करके पूजा की ॥ ७-१२ ॥ और फिर उन राजाओंने महात्मा बलदेवजीसे कहा, कि-हे महाबाहु बलदेवजी! आप इन दोनोंका युद्ध देखिये ॥ १३ ॥ बलरामने भी पाण्डवोंको और सृञ्जयोंको छातीसे लगाया, फिर उनसे तथा दूसरे महाबली राजाओंसे कुशलसमाचार बूझा ॥ १४ ॥ इसप्रकार ही उन राजाओंने भी बलदेवजीसे मिलभेंटकर कुशलसमाचार बूझा, बलदेवजीने भी अपना पूजन करनेवाले महात्मा क्षत्रिय राजाओंका प्रतिपूजन किया तथा अवस्थाके अनुसार उनके साथ कुशल आदिकी बातचीत की, फिर कृष्ण और सात्यकीको प्रेमके साथ आलिङ्गन करके बलदेवजीने उनके मस्तक चूमे और उनका पूर्ण कुशलसमाचार बूझा, जैसे इन्द्र और उपेन्द्र आनन्दके साथ ब्रह्मा की पूजा करते हों, तैसे ही कृष्ण और सात्यकीने अपने गुरु तथा बड़े भाई बलरामकी प्रेमके साथ पूजा की, तदनन्तर धर्मराजने

शमिन्द्रोपेन्द्रौ मुदायुतौ । ततोऽब्रवीद्धर्मसुतो रौहिणेयमरिन्दमम् ॥ १८ ॥ इदं भ्रात्रोर्महायुद्धं पश्य रामेति भारत तेषां मध्ये महाबाहुः श्रीमान् केशवपूर्वजः ॥ १९ ॥ न्यविशत् परमप्रीतः पूज्यमानो महारथैः । स बभौ राजमध्यस्थो नीलवासाः सितप्रभः । ॥ २० ॥ दिवीव नक्षत्रगणैः परिकीर्णो निशाकरः ततस्तयोः सन्निपातस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥२१॥ आसीदन्तकरो राजन् वैरस्य तव पुत्रयोः ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते गदापर्वणि बलदेवागमने
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

जनमेजय उवाच । पूर्वमेव यदा रामस्तस्मिन् युद्ध उपस्थिते । आमन्त्र्य केशवं यातो वृष्णिभिः सहितः प्रभुः ॥ १ ॥ साहाय्यं धार्त्तराष्ट्रस्य न च कर्त्तास्मि केशव । न चैव पाण्डुपुत्राणां गमिष्यामि यथागतम् ॥ २ ॥ एवमुक्त्वा तदा रामो यातः शत्रुनिब-

---

शत्रुओंका दमन करनेवाले रोहिणीके पुत्र बलदेवसे कहा, कि— ॥ १५–१८ ॥ हे राम ! तुम इन दोनों भाइयोंका गदायुद्ध देखो, युधिष्ठिरके ऐसा कहने पर श्यामवस्त्र और गौर कान्तिवाले बलदेवजी, महारथियोंके बड़ेभारी सत्कारसे अत्यन्त प्रसन्न होकर उन महारथी राजाओंके बीचमें बैठगये, उस समय जैसे आकाशमें तारागणोंसे घिराहुआ चन्द्रमा शोभा पाता है, तैसे ही बलदेवजी शोभा पारहे थे, फिर हे राजन् ! तुम्हारे दोनों पुत्रोंमें वैर का अन्त लानेवाला रोमाञ्चकारी घोर गदायुद्ध होने लगा ॥१९॥ ॥ २२ ॥ चौंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥

जनमेजयने कहा, कि—हे ब्रह्मन् ! महाभारतका युद्ध आरम्भ होनेसे पहले ही बलदेवजी श्रीकृष्णकी आज्ञा लेकर वृष्णिवंशी पुरुषोंके साथ यात्रा करनेको चलेगये थे ॥ १ ॥ और यात्राको जाते समय कृष्णसे कहा था, कि— मैं धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनकी या पांडवोंकी, इनमेंसे किसी की भी सहायता नहीं करूँगा और

रणः । तस्य चागमनं भूयो ब्रह्मन् शंसितुमर्हसि ॥३॥ आख्याहि मे विस्तरशः कथं राम उपस्थितः । कथञ्च दृष्टवान् युद्धं कुशलो ह्यसि सत्तम ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच । उपप्लवनिविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु । प्रेषितो धृतराष्ट्रस्य समीपं मधुसूदनः ॥ ५ ॥ शमम्प्रति महाबाहो हितार्थं सर्वदेहिनाम् । स गत्वा हास्तिनपुरं धृतराष्ट्रं समेत्य च ॥ ६ ॥ उक्तवान् वचनं तथ्यं हितञ्चैव विशेषतः। न च तत् कृतवान्राजन् यथाख्यातं हि तत्पुरा ॥ ७ ॥ अनवाप्य शमं तत्र कृष्णः पुरुषसत्तमः । आगच्छत महाबाहुरुपप्लव्यं जनाधिप॥८॥ततः प्रत्यागतः कृष्णो धार्त्तराष्ट्रविसर्जितः । अक्रियायां नरव्याघ्र पांडवानिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥ न कुर्वन्ति वचो मह्यं कुरवः

अपनी इच्छानुसार तीर्थयात्राको चला जाऊँगा ॥ २ ॥ ऐसा कह कर क्षत्रियोंका संहार करनेमें समर्थ बलदेवजी उस समय यात्रा करनेको चलेगये थे, वह बलराम फिर किसलिये आये थे यह मुझे बताओ ॥३॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! तुम कथा कहनेमें कुशल हो, इसलिये बलरामजी फिर क्यों आये और उन्होंने युद्ध किसप्रकार देखा, यह मुझे विस्तारसे सुनाओ ॥ ४ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि हे महाबाहु राजन् ! महात्मा पांडव जब उपप्लव्यके मैदानमें छावनी डालकर ठहरगये, तब उन्होंने सब प्राणियोंके हितके लिये सन्धि करनेके निमित्त श्रीकृष्णको धृतराष्ट्रके पास भेजा, वह हस्तिनापुरमें गये और राजा धृतराष्ट्रसे मिले ॥ ५ ॥ ६ ॥ तथा उनको विशेषरूपसे हितकारी सच्ची सलाह दी, परन्तु राजाने वह नहीं मानी, यह बात पहले मैंने तुमसे कही थी ॥ ७ ॥ महाबाहु पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सन्धि नहीं करासके, इसलिये लौटकर फिर उपप्लव्यमें पांडवोंकी छावनीमें आगये ॥ ८ ॥ हे नरव्याघ्र ! तदनन्तर सन्धि न होने पर धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन के विदा कियेहुए श्रीकृष्ण लौट आये और उन्होंने पांडवोंसे यह बात कही कि—॥ ९ ॥ कौरव कालके वशमें होरहे हैं, इस

कालचोदिताः । निर्गच्छध्वं पांडवेयाः पुष्येण सहिता मया ॥१०॥ ततो विभज्यमानेषु बलेषु बलिनां वरः । प्रोवाच भ्रातरं कृष्णं रौहिणेयो महामनाः ॥ ११ ॥ तेषामपि महाबाहो साहाय्यं मधुसूदन । क्रियतामिति तत् कृष्णो नास्य चक्रे वचस्तदा ॥ १२ ॥ ततो मन्युपरीतात्मा जगाम यदुनन्दनः । तीर्थयात्रां हलधरः सरस्वत्यां महायशाः ॥ १३ ॥ मैत्रनक्षत्रयोगे स्म सहितः सर्वयादवैः । आश्रयामास भोजस्तु दुर्योधनमरिन्दमः ॥ १४ ॥ युयुधानेन सहितो वासुदेवस्तु पाण्डवान् । रौहिणेये गते शूरे पुष्येण मधुसूदनः ॥ १५ ॥ पांडवेयान् पुरस्कृत्य ययावभिमुखः कुरून् । गच्छन्नेव पथिस्थस्तु रामः प्रेष्यानुवाच ह ॥ १६ ॥ सम्भारास्तीर्थयात्रायाः सर्वोपकरणानि च । आनयध्वं द्वारकायामग्नीन् वै याजकांस्तथा ॥ १७॥

लिये वे मेरा कहना नहीं मानते, अतः हे पांडवों ! तुम पुष्य नक्षत्रमें मेरे साथ छावनीमेंसे लड़नेको निकल पड़ो, इसके अनन्तर सेनाके विभाग करदिये गये, उस समय बड़े मनवाले रोहिणीनन्दनने छोटे भाई कृष्णसे कहा, कि-॥१०-११॥ हे महाबाहु मधुसूदन ! तुम कौरवोंकी भी सहायता करना, परन्तु कृष्णने उस समय बलदेवजीका कहना नहीं किया ॥ १२ ॥ इससे महायशस्वी बलदेवजीको क्रोध आगया और वह तीर्थयात्राके निमित्त सरस्वती नदीकी ओरको चलदिये, तब शत्रुओंका दमन करनेवाले भोजवंशी कृतवर्माने अनुराधा नक्षत्रमें सब यादवोंको साथ लेकर कौरवोंका पक्ष लिया ॥ १३-१४ ॥ श्रीकृष्णने सात्यकीको साथ लेकर पांडवोंका पक्ष लिया और वीर बलदेवजी पुष्य नक्षत्रमें पांडवोंके पाससे चलदिये तथा अनुराधा नक्षत्रमें तीर्थयात्रा करनेको निकले, फिर श्रीकृष्णने पांडवोंको आगे करके कौरवों के ऊपर चढ़ाई की बलदेवजी ने मार्ग में जाते २ अनुचरों को आज्ञा दी, कि—॥ १५-१६ ॥ तीर्थयात्रामें काम देनेवाली सब वस्तुएं, सब प्रकारकी सामग्रियें,

सुवर्णं रजतञ्चैव धेनूर्वासांसि वाजिनः । कुञ्जरांश्च रथांश्चैव खरोष्ट्रं वाहनानि च ॥ १८ ॥ क्षिप्रमानीयतां सर्वं तीर्थहेतोः परिच्छदम् । प्रतिस्रोतः सरस्वत्याः गच्छध्वं शीघ्रगामिनः ॥ १९ ॥ ऋत्विजश्चानयध्वं वै शतशश्च द्विजर्षभान् । एवं संदिश्य तु प्रेष्यान् बलदेवो महाबलः ॥ २० ॥ तीर्थयात्रां ययौ राजन् कुरूणां वैशसे तदा । सरस्वतीं प्रतिस्रोतः समन्तादभिजग्मिवान् ॥ २१ ॥ ऋत्विग्भिश्च सुहृद्भिश्च तथान्यैर्द्विजसत्तमैः । रथैर्गजैस्तथाश्वैश्च प्रेष्यैश्च भरतर्षभ ॥ २२ ॥ गोखरोष्ट्रप्रयुक्तैश्च यानैश्च बहुभिर्वृतः । श्रान्तानां क्लान्तवपुषां शिशूनां विपुलायुषाम् ॥ २३ ॥ देशे देशे तु देयानि दानानि विविधानि च । अर्चायै चार्थिनां राजन् क्लृप्तानि बहुशस्तथा ॥ २४ ॥ तानि यानीह देशेषु प्रतीक्षन्ति स्म भारत । बुभुक्षितानामर्थाय क्लृप्तमन्नं समन्ततः ॥ २५ ॥ यो यो यत्र द्विजो भोज्यं भोक्तुं कामयते तदा । तस्य तस्य तु तत्रैवमु-

अग्निहोत्र तथा यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंको द्वारकासे लिवालाओ १७ तदनन्तर सोना, चाँदी, गौएं, वस्त्र, घोड़े, हाथी, रथ, खच्चर, ऊँट और सवारियें आदि भी तीर्थ यात्राके लिये शीघ्र लाओ, शीघ्रताकी चालसे सरस्वतीके प्रवाहके साथ २ चलेजाओ और वहाँसे सैंकड़ों ऋत्विजोंको और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भी लिवालाओ इसप्रकार महाबली बलदेवजीने सेवकोंको आज्ञा दी ॥१८-२०॥ और हे राजन् ! कौरवोंके संहारके समय बलदेवजी तीर्थयात्रा करनेको निकलपड़े, वह ऋत्विज, सुहृद्, श्रेष्ठ ब्राह्मण, रथ, हाथी घोड़े, सेवक, बैल, खच्चर और ऊँटोंके बहुतसे वाहनोंसे घिरकर सरस्वती नदीके प्रवाहके साथ २ चलदिये, थकेहुए, दुःखी देहवाले, बालक, वृद्ध आदि याचकोंका सत्कार करनेके लिये उन्होंने हरएक देशमें बहुतसे पदार्थ तयार करा रक्खे थे; भूखोंके लिये हरएक स्थानमें राँधाहुआ अन्न तयार करा रक्खा था २१-२५ कोई भी ब्राह्मण जिस किसी स्थान पर भी खानेकी इच्छा

पाजहुस्तदा नृप ॥२६ ॥ तत्र स्थिता नरा राजन्रौहिणेयस्य शासनात् । भक्ष्यपेयस्य कुर्वन्ति राशींस्तत्र समन्ततः ॥ २७ ॥ वासांसि च महार्हाणि पर्य्यङ्कास्तरणानि च । पूजार्थं तत्र क्लृप्तानि विप्राणां सुखमिच्छताम् ॥ २८ ॥ यत्र यः स्वदते विप्रः क्षत्रियो वापि भारत । तत्र तत्र तु तस्यैव सर्वं क्लृप्तमदृश्यत ॥ २६ ॥ यथासुखं जनः सर्वो याति तिष्ठति वै तदा । यातुकामस्य यानानि पानानि तृषितस्य च ॥ ३० ॥ बुभुक्षितस्य चान्नानि स्वादूनि भरतर्षभ । उपाजहुर्नरास्तत्र वस्त्राण्याभरणानि च ॥ ३१ ॥ स पन्थाः प्रबभौ राजन् सर्वस्यैव सुखावहः । स्वर्गोपमस्तदा वीर नराणां तत्र गच्छताम् ॥ ३२ ॥ नित्यप्रमुदितोपेतः स्वादुभक्ष्यः शुभान्वितः। विपण्यापणपण्यानां नानाजनशतैर्वृतः । नानाद्रुमल-

करता था उसको उस ही स्थान पर उस ही समय खानेको दिया जाता था ॥ २६॥ हे राजन्! बलदेवजीकी आज्ञासे उनके सेवकोंने जुदे २ स्थानों पर चारों ओर भक्ष्य पदार्थोंके और पीनेके पदार्थोंके ढेर लगा रक्खे थे ॥ २७ ॥ सुख चाहनेवाले ब्राह्मणोंके सन्मान के लिये बहुमूल्य वस्त्र, पलँग और बिछौने तयार करारक्खे थे२८ ब्राह्मण या क्षत्रिय जहाँ कहीं खानेकी इच्छा करते थे तहाँ ही उनको सब पदार्थ तयार दीखते थे ॥ २६ ॥ इस यात्रामें सब लोग अपनी शक्तिके अनुसार सुखमें चलते थे और विश्राम लेते जाते थे, जिनको आगे जानेकी इच्छा होती थी उनको सवारियें मिलती थीं और प्यासोंके लिये पीनेके पदार्थ तयार थे॥ ३० ॥ और भूखोंके लिये स्वादिष्ट अन्न तयार थे. हे भरतसत्तम ! सेवक वस्त्र और आभूषण भी लाकर सबको देते थे ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! वे सब मनुष्य जिस समय यात्राको निकले, उससमय उनका मार्ग स्वर्गकी समान दिपरहा था, उस मार्गमें चलतेहुए सब लोगोंको बड़ा ही सुख मालूम होता था ॥ ३२ ॥ उस यात्रा के मार्गोंमें यात्री नित्य हर्षमें रहते थे, इस यात्रामें स्वादिष्ट भोजन

तोपेतो नानारत्नविभूषितः ॥ ३३॥ ततो महात्मा नियमे स्थितात्मा पुण्येषु तीर्थेषु वसूनि राजन् । ददौ द्विजेभ्यः क्रतुदक्षिणाश्च यदुप्रवीरो हलभृत् प्रतीतः ॥ ३४ ॥ दोग्ध्रीश्च धेनूश्च सहस्रशो वै सुवाससः काञ्चनबद्धशृंगीः । हयांश्च नानाविधिदेशजातान् यानानि दासाँश्च शुभान् द्विजेभ्यः ॥ ३५ ॥ रत्नानि मुक्तामणिविद्रुमञ्चाप्यग्र्यं सुवर्णं रजतं सुशुंगम् । अयसमयं ताम्रमयञ्च भांडं ददौ द्विजातिप्रवरेषु रामः ॥ ३६ ॥ एवं स वित्तं प्रददौ महात्मा सरस्वतीतीर्थवरेषु भूरि । ययौ क्रमेणाप्रतिमप्रभावस्ततः कुरुक्षेत्रमुदारवृत्तिः ॥ ३७ ॥ जनमेजय उवाच । सारस्वतानां तीर्थानां गुणोत्पत्तिं वदस्व मे । फलञ्च द्विपदां श्रेष्ठ कर्मनिर्वृतिमेव च ३८ यथा क्रमेण भगवन् तीर्थानामनुपूर्वशः । ब्रह्मन् ब्रह्मविदां श्रेष्ठ परं

तयार रहते थे, बाजार, हाट और बेचनेको वस्तुएं भी तयार रहती थीं, अनेकों प्रकारके वृक्ष, लता और रत्नोंसे मार्ग दिपरहा था, अनेकों प्रकारके सैंकडों मनुष्योंसे वह मार्ग भरपूर था ३३ हे राजन् ! यदुवंशी, वीर और मनको नियममें रखनेवाले महात्मा बलदेवजीने पुण्यकारी तीर्थोंमें यज्ञ करके उसकी दक्षिणाके रूपमें ब्राह्मणोंको बहुतसा धनदिया, सुन्दर झूलें उढ़ाकर और सींगोंमें सुवर्ण बाँधकर हजारों दूध देनेवालीं गौएँ अनेकों देशोंमें उत्पन्न हुए घोड़े, सवारियें, श्रेष्ठ दास, रत्न, मोती, मणियें, मूँगे, श्रेष्ठ सोना, शुद्ध चाँदी, लोहे और ताँबेके पात्र आदिका दान उत्तम ब्राह्मणोंको विश्वासी हलधर बलदेवजीने दिया ३४-३६ इसप्रकार अनुपम प्रभाव और उदार स्वभाववाले महात्मा बलदेवजीने सरस्वतीके तटके श्रेष्ठतीर्थोंमें ब्राह्मणोंको बहुतसा धन दान करके दिया और वहाँसे क्रमसे कुरुक्षेत्रको गये थे ॥ ३७॥ जनमेजयने बूझा, कि-हे वेदके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण !-सरस्वतीके तटपर आनेवाले सब तीर्थोंकी रमणीयता, उत्पत्ति, तीर्थयात्राकी सिद्धि और फल तीर्थोंके क्रमसे मुझे सुनाओ, उसको

कौतूहलं हि मे ॥ ३९ ॥ वैशम्पायन उवाच । तीर्थानां विस्तरं राजन् गुणोत्पत्तिञ्च सर्वशः । मयोच्यमानं वै पुण्यं शृणु राजेन्द्र कृत्स्नशः ॥ ४० ॥ पूर्वं महाराज यदुप्रवीर ऋत्विक्सुहृद्विप्रगणैश्च सार्द्धम् । पुण्यं प्रभासं समुपाजगाम यत्रोडुराड् यक्ष्मणा क्लिश्यमानः ॥ ४१ ॥ विमुक्तशापः पुनराप्य तेजः सर्वं जगद्भासयते नरेन्द्र । एवन्तु तीर्थप्रवरं पृथिव्यां प्रभासनात्तस्य ततः प्रभासः ४२ जनमेजय उवाच । किमर्थं भगवान् सोमो यक्ष्मणा समगृह्यत । कथञ्च तीर्थप्रवरे तस्मिंश्चन्द्रो न्यमज्जत ॥ ४३ ॥ कथमाप्लुत्य तस्मिंस्तु पुनराप्यायितः शशी । एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामुने ॥ ४४ ॥ वैशम्पायन उवाच । दक्षस्य तनया यास्ताः प्रादुरासन् विशाम्पते । स सप्तविंशतिं कन्या दक्षः सोमाय वै

सुननेका मुझे बड़ा चाव है ॥ ३८—३९ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि—हे राजेन्द्र ! मैं आपको सब तीर्थोंकी उत्पत्ति और उन तीर्थों में यात्रा करनेसे प्राप्त होनेवाला पुण्य फल पूर्ण रीतिसे सुनाता हूँ, उसको तुम सुनो ॥ ४० ॥ हे महाराज ! क्षयरोगसे दुःख पाते हुए चन्द्रमाने जिस तीर्थमें शापसे मुक्त होकर फिर तेज पाया था और सब जगत्को प्रकाशित करनेलगा था उस प्रभास नामके पवित्र तीर्थमें यदुवीर बलदेवजी ऋत्विज, स्नेही और ब्राह्मणोंके साथ पहले ही गये थे, यह श्रेष्ठ तीर्थ पृथिवी पर अपने गुणोंसे प्रकाशित होनेके कारण जगत्में प्रभास नामसे प्रसिद्ध हुआ है ॥ ४१—४२ ॥ जनमेजयने बूझा, कि—हे वैशम्पायनजी ! भगवान् चन्द्रमाको क्षयरोग क्यों हुआ था ? उस उत्तम तीर्थमें चन्द्रमाने किसप्रकार स्नान किया? ४३ प्रभासतीर्थमें स्नान करके चन्द्रमाने फिर किसप्रकार क्षयरोगसे मुक्त होकर पुष्टि पायी थी ? हे महामुने यह सब मुझे विस्तारसे सुनाओ ॥४४॥ वैशम्पायनने कहा, कि—हे राजन् ! दक्षकी सन्तानमें बहुत सी कन्याएँ हुई थीं, उनमेंसे सत्ताईस कन्याएँ उसने चन्द्रमाको वि-

ददौ ॥ ४५ ॥ नक्षत्रयोगनिरताः संख्यानार्थञ्च ताभवन्। पत्न्यो वै तस्य राजेन्द्र सोमस्य शुभकर्मणः ॥ ४६ ॥ तास्तु सर्वा विशालाक्ष्यो रूपेणाप्रतिमा भुवि। अत्यरिच्यत तासान्तु रोहिणी रूपसम्पदा ॥ ४७ ॥ ततस्तस्यां स भगवान् प्रीतिञ्चक्रे निशाकरः। सास्य हृद्या बभूवाथ तस्मात्तां बुभुजे सदा ॥ ४८ ॥ पुरा हि सोमो राजेन्द्र रोहिण्यामवसच्चिरम्। ततस्ताः कुपिताः सर्वा नक्षत्राख्या महात्मनः ॥ ४९ ॥ सा गत्वा पितरं प्राहुः प्रजापतिमतन्द्रिताः। सोमो वसति नास्मासु रोहिणीं भजते सदा ॥ ५० ॥ ता वयं सहिताः सर्वास्त्वत्सकाशे प्रजेश्वर। वत्स्यामो नियताहारास्तपश्चरणतत्पराः ॥ ५१ ॥ श्रुत्वा तासान्तु वचनं दक्षः सोममथाब्रवीत्। समं वर्त्तस्व भार्य्यासु मा त्वाधर्मो महान् स्पृशेत् ५२

ब्याह दी थीं ॥ ४५ ॥ हे राजेन्द्र! शुभ कर्म करनेवाले चन्द्रमाकी नक्षत्र और योगके साथ समीपका सम्बन्ध रखनेवाली वे स्त्रियें गिनतीमें मनुष्योंको बड़ी उपयोगी हुई हैं ॥४६॥ उन सब स्त्रियों के नेत्र विशाल थे और वे स्त्रियें पृथिवी पर अनुपम रूपवती थीं, इन सबोंमें रोहिणी रूपसम्पत्तिसे सबोंमें बढ़ीहुई थी ॥ ४७ ॥ भगवान् चन्द्रदेव उसके ऊपर प्रसन्न रहते थे और वह उनको प्यारी थी, इसलिये सदा उसको ही भोगते थे ॥ ४८॥ हे राजेंद्र! उस पुरातन समयमें चन्द्रदेव रोहिणीके यहाँ ही रहने लगे थे, इसकारण नक्षत्रनामसे प्रसिद्ध दूसरी स्त्रियें महात्मा चन्द्रमाके ऊपर कुपित होगयीं ॥ ४९ ॥ वे अपने पिता दक्ष प्रजापतिके पास गयीं और सावधानीसे कहनेलगीं, कि—चन्द्रमा हमारे साथ नहीं रहता, वह सदा रोहिणीके यहाँ ही रहता है ॥ ५० ॥ इसलिये हे प्रजापति! हम सब इकट्ठी होकर आपके पास रहेंगी और नियमका भोजन करके तपस्या करेंगी ॥ ५१ ॥ पुत्रियोंकी इस बातको सुन दक्षने चंद्रमाको बुलाकर कहा, कि—तुम सब स्त्रियों के साथ एकसा वर्त्ताव करो, तुमको महान् अधर्म न लगे, इसके

ताश्च सर्वाब्रवीद्दक्षो गच्छध्वं शशिनोऽन्तिकम् । समं वत्स्यति सर्वासु चन्द्रमा मम शासनात् ॥ ५३ ॥ विसृष्टास्तास्तथा जग्मुः शीतांशुभवनं तदा । तथापि सोमो भगवान् पुनरेव महीपते ॥५४॥ रोहिणीं निवसत्येव प्रीयमाणो मुहुर्मुहुः । ततस्ताः सहिताः सर्वा भयः पितरमब्रुवन् ५५ तव शुश्रूषणे युक्ता वत्स्यामो हि तवाश्रमे । सोमो वसति नास्मासु नाकरोद्वचनं तव ॥ ५६ ॥ तासां तद्वचनं श्रुत्वा दक्षः सोममथाब्रवीत् । समं वर्त्तस्व भार्यासु मा त्वां शप्स्ये विरोचन ॥ ५७ ॥ अनादृत्य तु तद्वाक्यं दक्षस्य भगवान् शशी । रोहिण्यां सार्द्धमवसत्ततस्ताः कुपिताः पुनः ॥ ५८ ॥ गत्वा च पितरं प्राहुः प्रणम्य शिरसा तदा । सोमो वसति नास्मासु

लिये तुम सावधान होजाओ ॥ ५२ ॥ फिर दक्षने अपनी सब पुत्रियोंसे कहा, कि–चंद्रमा मेरी आज्ञासे तुम सबोंके साथ एकसा वर्त्ताव करेगा, इसलिये तुम चन्द्रमाके पास जाओ ॥ ५३ ॥ पिताके जानेकी आज्ञा देते ही वे कन्याएँ चन्द्रमाके घर जाकर रहने लगीं, परन्तु हे राजन्! भगवान् चन्द्रमा तो फिर भी रोहिणीके ऊपर प्रसन्न होकर उसके ही यहाँ रहते रहे तब फिर नक्षत्र नामसे प्रसिद्ध वे कन्याएँ इकट्ठी हो अपने पिताके पास जाकर कहनेलगीं, कि–॥५४-५५॥चन्द्रमाने आपका कहना नहीं किया, वह हमारे पास नहीं, रहते इसलिये हम तो तुम्हारे पास रहकर तुम्हारी ही सेवा करेंगी ॥ ५६ ॥ कन्याओंकी इस बातको सुनकर दक्षने चंद्रमासे फिर कहा, कि–हे सोम ! तू सब स्त्रियोंके साथ एकसा वर्त्ताव रख, कि—जिससे मैं शाप देकर तेरी कीर्त्तिको न हरलूँ ॥ ५७ ॥ परन्तु भगवान् चन्द्रमा दक्षकी बातका अनादर करके रोहिणीके साथ ही रहते रहे, वे स्त्रियें फिर कुपित हुईं ॥ ५८ ॥ और पिताके पास जा शिरसे प्रणाम करके कहनेलगीं, कि–चन्द्रमा हमारे साथ नहीं रहता आप हमें

तस्मान्नः शरणं भव ॥ ५९ ॥ रोहिण्यामेव भगवान् सदा वसति चन्द्रमाः । न त्वद्वचो गणयति नास्मासु स्नेहमिच्छति ६० तस्मान्नस्त्राहि सर्वा वै यथा नः सोम आविशेत् । तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धो यक्ष्माणं पृथिवीपते ॥ ६० ॥ ससर्ज रोषात् सोमाय स चोडुपतिमाविशत् । स यक्ष्मणाभिभूतात्मा क्षीयताहरहः शशी ६२ यत्नञ्चाप्यकरोद्राजन् मोक्षार्थं तस्य यक्ष्मणः । इष्टिभिर्महाराज विविधाभिर्निशाकरः ॥ ६३ ॥ न चामुच्यत शापाद्वै क्षयञ्चैवाभ्यगच्छत । क्षीयमाणे ततः सोमे ओषध्यो न प्रजज्ञिरे ॥ ६४ ॥ निरास्वादरसाः सर्वा हतवीर्य्याश्च सर्वतः । ओषधीनां क्षये जाते प्राणिनामपि संक्षयः ॥ ६५ ॥ कृशाश्चासन् प्रजाः सर्वाः क्षीयमाणे निशाकरे । ततो देवाः समागम्य सोममूचुर्महीपते ॥ ६६ ॥

आश्रय दीजिये ॥ ५९ ॥ भगवान् चन्द्रमा नित्य रोहिणीके साथ ही रहता है, आपकी बातको कुछ भी नहीं गिनता और हमारे ऊपर प्रेम नहीं रखता ॥ ६० ॥ इसलिये चन्द्रमा हमारे पास रहे इसप्रकार आप हमारी रक्षा करिये, हे राजन्! पुत्रियोंकी बात सुनकर भगवान् दक्षको क्रोध आगया, उन्होंने चन्द्रमाके पास क्षयरोगको भेजदिया और वह चन्द्रमाके शरीरमें घुसगया, क्षयने तारापतिके शरीरमें घुसकर उसके शरीरको दबालिया, तब तो चन्द्रमा दिनप्रतिदिन क्षीण होनेलगा ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ हे महाराज! चन्द्रमाने क्षयरोगसे छूटनेके लिये अनेकों इष्टियें करके उद्योग किया ॥ ६३ ॥ परंतु दक्षके शापसे न छूटसका, किन्तु क्षीण ही होता रहा चन्द्रमाके क्षीण होने पर औषधियोंका उगना बंद होगया ॥ ६४ ॥ और जो औषधियें थीं वे सब स्वाद, रस और वीर्यसे हीन होगयीं, औषधियोंका क्षय होने से प्राणियोंका भी क्षय होने लगा ॥ ६५ ॥ इसप्रकार ज्यों २ चन्द्रमा क्षीण होता गया, त्यों २ सब प्रजाएं भी दुर्बल होगयीं, हे राजन्! तब देवता आकर चन्द्रमासे कहनेलगे, कि—॥ ६६ ॥ यह तुम्हारा कैसा

किमिदं भवता रूपमीदृशं न प्रकाशते । कारणं ब्रूहि नः सर्वं ये-
नेदं ते महद्भयम् ॥ ६७ ॥ श्रुत्वा च वचनं त्वत्तो विधास्यामस्ततो
वयम् । एवमुक्तः प्रत्युवाच सर्वांस्तान् शशलक्षणः ॥ ६८ ॥
शापस्य कारणञ्चैव यक्ष्माणञ्च तथात्मनः । देवास्तथा वचः
श्रुत्वा गत्वा दक्षमथाब्रुवन् ॥६९॥ प्रसीद भगवन् सोमे शापोऽयं
विनिवर्त्तताम् । असौ हि चन्द्रमाः क्षीणः किञ्चिच्छेषो हि लक्ष्यते७०
क्षयाच्चैवास्य देवेश प्रजाश्चापि गताः क्षयम् । वीरुधौषधयश्चैव
बीजानि विविधानि च ॥७१॥तेषां क्षये क्षयाऽस्माकं विनास्माभि-
र्जगच्च किम् । इति ज्ञात्वा लोकगुरो प्रसादं कर्त्तुमर्हसि॥७२॥एव-
मुक्तस्ततो देवान् प्राह वाक्यं प्रजापतिः । नैतच्छक्यं मम वचो
व्यावर्तयितुमन्यथा ॥ ७३ ॥ हेतुना तु महाभागा निवर्तिष्यति

रूप होगया है, जो यह प्रकाशित नहीं होता, हमसे सब कारण
कहो, जिससे तुम्हें यह बड़ाभारी भय हुआ है ॥ ६७ ॥ हम तुम
से भयका कारण सुनकर उसका उपाय करेंगे, इसप्रकार देव-
ताओंने बूझा तब उन सबको चन्द्रमाने उत्तर दिया ॥ ६८ ॥
अपनेको शाप होनेका कारण और उससे होनेवाले क्षयरोगका
समाचार सुनाया, देवता उस वृत्तांतको सुनकर दक्षके पासगये
और कहनेलगे कि-॥ ६९ ॥ हे भगवन् ! चन्द्रमाके ऊपर प्रसन्न
हूजिये और इस शापको लौटालीजिये, यह चन्द्रमा क्षीण होगया
अब थोड़ासा ही शेष रहा दीखता है ॥ ७० ॥ हे देवेश ! चन्द्रमा
के क्षयसे प्रजाका भी क्षय होनेलगा है, लता, औषधियें और
नानाप्रकारके बीज भी क्षीण होगये ॥७१॥ उनका क्षय होनेसे
हमारा भी क्षय होजायगा, जब हम नहीं रहे तो फिर जगत्का
भी क्या काम है ? हे लोकगुरो ! हमारे ऊपर कृपा करिये ७२
ऐसा कहने पर दक्षप्रजापतिने देवताओंसे यह बात कही, कि-
मैंने जो शाप दिया है वह पलट जाय, ऐसा कभी नहीं होसकता७३
परन्तु हे महाभागो ! किसी एक कारणसे यह शाप दूर होजा-

केनचित् । समं वर्त्ततु सर्वासु शशी भार्यासु नित्यशः ॥ ७४ ॥ सरस्वत्या वरे तीर्थे उन्मज्जन् शशलक्षणः । पुनवर्द्धिष्यते देवास्तद्वै सत्यं वचो मम ॥ ७५ ॥ मासार्द्धञ्च क्षयं सोमो नित्यमेव गमिष्यति । मासार्द्धं तु सदा वृद्धिं सत्यमेतद्वचो मम ॥७६॥ समुद्रं पश्चिमं गत्वा सरस्वत्यब्धिसंगमम् । आराधयतु देवेशं ततः कान्तिमवाप्स्यति ॥ ७७ ॥ सरस्वतीं ततः सोमः स जगामर्षिशासनात् । प्रभासं प्रथमं तीर्थं सरस्वत्या जगाम ह ॥७८॥ अमावस्यां महातेजास्तत्रोन्मज्जन् महाद्युतिः । लोकान् प्रभासयामास शीतांशुत्वमवाप च ॥ ७९ ॥ देवास्तु सर्वे राजेन्द्र प्रभासं प्राप्य पुष्कलम् । सोमेन सहिता भूत्वा दक्षस्य प्रमुखेऽभवन् ॥ ८० ॥ ततः प्रजापतिः सर्वा विससर्ज्जाथ देवताः । सोमे च भगवान् प्रीतो

यगा, वह कारण यह है, कि--चन्द्रमा अपनी सब स्त्रियोंके साथ सदा एकसा वर्त्ताव किया करे ॥ ७४ ॥ और सरस्वतीके श्रेष्ठ तीर्थ पर आकर स्नान करे तो क्षयसे छूटकर फिर बढ़ने लगेगा, इस मेरी बातको तुम सत्य जानो ॥ ७५ ॥ चन्द्रमा सदा एक पक्षमें क्षीण होगा और एक पक्षमें बढ़ेगा, इस मेरी बातको सत्य मानो ॥ ७६ ॥ पश्चिम समुद्रके तटपर जहां सरस्वती और समुद्र का सङ्गम होता है, तहाँ जाकर यह भगवान् शंकरकी आराधना करे तो कान्तिको पावेगा ॥ ७७ ॥ इसप्रकार ऋषिकी आज्ञा होनेपर चन्द्रमा सरस्वतीके किनारे २ चलताहुआ पहले सरस्वती के प्रभास क्षेत्रमें पहुंचा ॥ ७८ ॥ तहाँ अमावास्याके दिन स्नान करके बड़ी कान्तिवाला और महातेजस्वी होगया, उसकी किरणें बड़ी शीतल होगयीं और सब लोकोंको फिर प्रकाशित करने लगा ॥ ७९ ॥ हे राजेन्द्र ! देवता पूर्ण प्रकाशको पाकर चन्द्रमा को साथमें लियेहुए दक्ष प्रजापतिके सामने गये ॥ ८० ॥ चन्द्रमाके क्षयरोगसे मुक्त होजाने पर प्रजापतिने सब देवताओं को विदा किया और प्रसन्न होकर भगवान् दक्षने चन्द्रमासे फिर

भूयो वचनमब्रवीत् ॥ ८१ ॥ मावमंस्थाः स्त्रियः पुत्र मा च विप्रान् कदाचन । गच्छ युक्तः सदा भूत्वा कुरु त्वं शासनं मम ॥ ८२ ॥ स विसृष्टो महाराज जगामाथ स्वमालयम् । प्रजाश्च मुदिता भूत्वा पुनस्तस्थुर्यथा पुरा ॥ ८३ ॥ एवं ते सर्वमाख्यातं यथा शप्तो निशाकरः । प्रभासं च यथा तीर्थं तीर्थानां प्रवरं ह्यभूत् ॥ ८४ ॥ अमावास्यां महाराज नित्यशः शशलक्षणः । स्नात्वा ह्याप्यायते श्रीमान् प्रभासे तीर्थ उत्तमे ॥ ८५ ॥ अतश्चैनं प्रजानन्ति प्रभासमिति भूमिप । प्रभां हि परमां लेभे तस्मिन्नुन्मज्ज्य चन्द्रमाः ॥ ८६ ॥ ततस्तु चमसोद्भेदमच्युतस्त्वगमद्बली । चमसोद्भेद इत्येवं यं जनाः कथयन्त्युत ॥ ८७ ॥ तत्र दत्त्वा च दानानि विशिष्टानि हलायुधः । उषित्वा रजनीमेकां स्नात्वा च विधिवत्तदा ॥ ८८ ॥ उदपानम-

---

कहा, कि— ॥ ८१ ॥ हे बेटा ! तू किसी दिन भी स्त्रियोंका अपमान न करना, तथा ब्राह्मणोंका भी अपमान न करना, सदा सावधान होकर मेरी आज्ञाका पालन करना ॥ ८२ ॥ हे महाराज ! ऐसा कह कर दक्षने जानेकी आज्ञा दी, तब चन्द्रमा अपने स्थानको गया और प्रजा भी पहलेकी समान प्रसन्न होकर दिन विताने लगी ॥ ८३ ॥ इसप्रकार जैसे चन्द्रमाको शाप लगा था, वह सब मैंने तुझे सुना दिया और तीर्थोंमें उत्तम प्रभास तीर्थका माहात्म्य भी सुना दिया ॥ ८४ ॥ हे महाराज ! हरएक अमावस्याके दिन श्रीमान् चन्द्रमा उत्तम प्रभास तीर्थमें स्नान करके तृप्त होता है ॥ ८५ ॥ हे राजन् ! चन्द्रमाने उस तीर्थमें स्नान करके बड़ी प्रभा (कान्ति) को पाया था, अतः इस तीर्थको सब लोग प्रभास नामसे जानते हैं ॥ ८६ ॥ धैर्यधारी बलदेवजी उस तीर्थमें स्नान करके तहांसे चमसोद्भेद नामक तीर्थमें गये, जिसको लोग चमसोद्भेद इस नामसे ही पुकारते हैं ॥८७॥ केशवके बड़े भाई बलदेवजीने उस तीर्थमें विधिपूर्वक स्नान किया और अनेकों प्रकारके पदार्थोंका दान करके तहां एक रात्रि रहे,

थागच्छत् त्वरायान् केशवाग्रजः । आद्यं स्वस्त्ययनञ्चैव यत्रावाप्य महत् फलम् ॥ ७६ ॥ स्निग्धत्वादोषधीनां च भूमेश्च जनमेजय । जानन्ति सिद्धा राजेन्द्र नष्टामपि सरस्वतीम् ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां प्रभासोत्पत्तिकथने पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

वैशम्पायन उवाच। तस्मान्नदीगतञ्चापि उदपानं यशस्विनः । त्रितस्य च महाराज जगामाथ हलायुधः ॥१॥ तत्र दत्त्वा बहु द्रव्यं पूजयित्वा तथा द्विजान् । उपस्पृश्य च तत्रैव प्रहृष्टो मुसलायुधः २ तत्र धर्मपरो ह्यासीत्त्रितः स सुमहातपाः । कूपे च वसता तेन सोमः पीतो महात्मना ॥ ३ ॥ तत्र चैनं समुत्सृज्य भ्रातरौ जग्मतुर्गृहान् । ततस्तौ वै शशापाथ त्रितो ब्राह्मणसत्तमः ॥४॥ जनमेजय उवाच। उदपानं कथं ब्रह्मन् कथञ्च सुमहातपाः । पतितः किञ्च स त्यक्तो

दूसरे दिन एक साथ उदपान नामक तीर्थोंमें चले गये, हे राजेन्द्र जनमेजय ! इस तीर्थमें स्नान करनेसे मुख्य कल्याण और बड़ा पुण्यफल मिलता है, ऐसा सिद्ध पुरुष मानते हैं तथा चिकनी भूमिके कारण हरी २ ओषधिओंके निकल आनेसे इस तीर्थमें सरस्वती नदी भूमिके भीतर बहती है, इस बातको भी सिद्ध पुरुष जानते हैं ॥ ८८—६० ॥ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५॥

वैशम्पायनने कहा, कि—हे राजा जनमेजय ! तहाँसे यशस्वी हलधर बलदेवजी त्रितमुनिके नदीके भीतर आनेवाले उदपान नामक तीर्थमें गये और तहाँ स्नान तथा ब्राह्मणोंकी पूजा कर के उनको बहुत सा धन देते हुए बड़े प्रसन्न हुए ॥ १—२ ॥ उस तीर्थ पर धर्मात्मा महातपस्वी त्रित नामक मुनि रहते थे उन्होंने कुएके भीतर रह कर ही सोमलताका रस पिया था ॥३॥ त्रित मुनिके दो सगे भाई उनको कुएमें छोड़कर अपने घर चलेगए थे, इसलिये द्विजवर त्रित मुनिने उनको शाप दे दिया था ॥४॥ जनमेजयने बूझा, कि—हे वैशम्पायन महाराज ! वह कूप तीर्थ-

भ्रातृभ्यां द्विजसत्तमः ॥ ५ ॥ कूपे कथञ्च हित्वैनं भ्रातरौ जग्मु-
तुर्गृहान् । कथञ्च याजयामास पपौ सोमं च वै कथम् ॥ ६ ॥
एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् श्रोतव्यं यदि मन्यसे । वैशम्पायन उवाच ।
आसन् पूर्वयुगे राजन् मुनयो भ्रातरस्त्रयः ॥ ७ ॥ एकतश्च
द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसन्निभाः । सर्वे प्रजापतिसमाः प्रजावन्त-
स्तथैव च ॥ ८ ॥ ब्रह्मलोकजितः सर्वे तपसा ब्रह्मवादिनः ।
तेषान्तु तपसा प्रीतो नियमेन दमेन च ॥ ९ ॥ अभवद्गौतमो
नित्यं पिता धर्मरतः सदा । स तु दीर्घेण कालेन तेषां प्रीतिम-
वाप्य च ॥ १० ॥ जगाम भगवान् स्थानमनुरूपमिवात्मनः ।
राजानस्तस्य ये ह्यासन् याज्या राजन्महात्मनः ॥ ११ ॥ ते सर्वे
स्वर्गते तस्मिंस्तस्य पुत्रानपूजयन् । तेषान्तु कर्मणा राजंस्तथा चा-

रूप कैसे होगया ? वह महातपस्वी ब्राह्मण कुएमें कैसे गिरा उन
के भाइयोंने उन्हें क्यों त्यागा ? ॥५॥ उनके सगे भाई उनको कुए
में ही गिराहुआ छोड़ कर क्यों घरको चले गये ? त्रितने कुएमें
यज्ञ कैसे किया और सोमरस कैसे पिया ? ॥ ६ ॥ हे ब्राह्मण !
यह सुनने योग्य कथा यदि आपकी कृपा हो तो मुझे सुनाइये,
वैशम्पायनने कहा, कि—हे राजन् ! पहले युगमें तीन मुनि सहो-
दर भाई थे ॥७ ॥ उनके नाम एकत, द्वित और त्रित थे, वे तीनों
सूर्यकी समान तेजस्वी, प्रजापतिकी समान प्रभावशाली और
प्रजावाले थे ॥ ८ ॥ वे सब वेदवेत्ता थे और उन्होंने तप करके
ब्रह्मलोकको जीत लिया था, उनके तप, नियम और दमसे उनके
धर्मात्मा पिता गौतम उनके ऊपर सदा प्रसन्न रहते थे, भगवान्
गौतम चिरकाल तक पुत्रोंकी प्रीतिका उपभोग करके अपने कर्म
के अनुकूल परलोकमें चले गये (मर गये) हे राजन् ! जो राजे
महात्मा गौतमके यजमान थे वे सब गौतमके परलोकवासी हो
जाने पर उनके पुत्रोंका सत्कार करने लगे, तीनों भाइयोंमें त्रित,
वेदोक्त कर्म करनेके कारण और वेदोंका पढ़ा हुआ होनेके कारण

ध्ययनेन च ॥ १२ ॥ त्रितः स श्रेष्ठतां प्राप यथैवास्य पिता तथा । तथा सर्वे महाभागा मुनयः पुण्यलक्षणाः ॥१३॥ अपूजयन्महाभागं यथास्य पितरं पुरा । कदाचिद्धि ततो राजन् भ्रातरावेकतद्वितौ ॥ १४ ॥ यज्ञार्थं चक्रतुश्चिन्तां तथा वित्तार्थमेव च । तयोर्बुद्धिः समभवत् त्रितं गृह्य परन्तप ॥ १५ ॥ याज्यान् सर्वानुपादाय प्रतिगृह्य पशूंस्ततः । सोमं पास्यामहे हृष्टाः प्राप्य यज्ञं महाफलम् ॥ १६ ॥ चक्रुश्चैवं तथा राजन् भ्रातरस्त्रय एव च । तथा तु ते परिक्रम्य याज्यान् सर्वान पशून् प्रति ॥ १७ ॥ याजयित्वा ततो याज्यान लब्ध्वा तु सुबहून् पशून् । याज्येन कर्मणा तेन प्रतिगृह्य विधानतः ॥ १८ ॥ प्राचीं दिशं महात्मान आजग्मुस्ते महर्षयः । त्रितस्तेषां महाराज पुरस्ताद्याति हृष्टवत् ॥१९॥ एकतश्च द्वितश्चैव पृष्ठतः कालयन् पशून् । तयोश्चिन्ता समभवद्दृष्ट्वा पशुगणं महत् ॥ २० ॥ कथं च स्युरिमा गाव आवाभ्यां

त्रिताकी समान श्रेष्ठताको पागया था और बड़े भाग्यशाली तथा पुण्य कर्म करने वाले सब मुनि, पहले जैसे उसके पिताका मान करते थे, तैसे ही अब उनके पुत्र महाभाग त्रितका सम्मान करने लगे, हे राजन्! एक दिन एकत और द्वित नामके दोनों भाई यज्ञके लिये और धनके लिये चिन्ता करने लगे, उन दोनों ने एक मत करके हे परन्तप! त्रितको साथ लेलिया और विचार किया, कि-सब यजमानोंको महाफलवाला यज्ञ करवाकर हम उन से पशु लेंगे और सोमरस पीकर आनन्द पावेंगे ९-१६ हे राजन् इस प्रकार तीनों भाइयोंने विचार किया और ऐसा ही करनेका निश्चय किया, फिर वे अपने यजमानोंके पास गये और उनको विधिपूर्वक यज्ञ करवाकर बहुतसे पशु पाये, उन पशुओंको लेकर ये महात्मा महर्षि पूर्व दिशाकी ओरको आने लगे, त्रित प्रसन्न होकर सबके आगे २ चल रहा था ॥१७-१९॥ एकत और द्वित पशुओंको हांकते हुए उनके पीछे २ चल रहे थे. पशुओंकी बड़ी

हि विना त्रितम् । तावन्योन्यं समाभाष्य एकतश्च द्वितश्च ह २१
यदूचतुर्मिथः पापौ तन्निबोध जनेश्वर । त्रितो यज्ञेषु कुशलस्त्रितो
वेदेषु निष्ठितः ।। २२ ।। अन्यास्तु बहुला गावस्त्रितः समुपल-
प्स्यते । तदावां सहितौ भूत्वा गाः प्रकाल्य व्रजावहे ।। २३ ।।
त्रितोऽपि गच्छतां काममावाभ्यां वै विना कृतः । तेषामागच्छतां
रात्रौ पथिस्थानां वृकोभवत् ।। २४ ।। तत्र कूपोऽविदूरेभूत् सरस्व-
त्यस्तटे महान् । अथ त्रितो वृकं दृष्ट्वा पथि तिष्ठन्तमग्रतः।।२५ ।।
तद्भयोदपसर्पन् वै तस्मिन् कूपे पपात ह । अगाधे सुमहाघोरे
सर्वभूतभयङ्करे ।।२६।। त्रितस्ततो महाराज कूपस्थो मुनिसत्तमः ।
आर्त्तनादं ततश्चक्रे तौ तु शुश्रुवतुर्मुनी ।।२७।। तं ज्ञात्वा पतितं

भारी संख्या देखकर एकत और द्वितके मनमें चिन्ता हुई कि-
।। २० ।। ये सब गौएँ त्रितको न मिलकर हम दोनोंको ही कैसे
मिलें ? ऐसा विचार करनेके अनन्तर हे राजन् ! पापी एकत
और द्वितने आपसमें किस प्रकार बात चीत की थी, उसको तुम
सुनो, वे दोनों भाई आपसमें बातें करने लगे, कि--त्रित यज्ञ
करानेमें चतुर है; और वेदोंका भी पारङ्गत है, इसलिये इसको
तो और भी बहुत सी गौएँ मिल जायँगी, इसलिये हम दोनों
जने मिल कर इन गौओंको भगा ले जायँ ।। २१—२३।। त्रित
भी हमको आगे चले आये हुए देखकर, इच्छानुसार जहाँ भी
जाना होय तहाँ भले ही चला जाय, इसप्रकार बातें
करते२ चले आरहे थे, समय रात्रिका था, चलते २ त्रितको सामने
से आता एक भेडिया मिला, उस सामने खड़े हुए भेडियेको
मार्गमें देखकर त्रित अपने पासमें ही सरस्वती नदीके किनारे
के एक बड़े भारी कुएमें जापडा, वह कुआ बहुत ही गहरा और
महाभयङ्कर था, सब प्राणी उसको देखकर डर जाते थे ।।२४।।
।।२६।। हे महाराज ! मुनिवर त्रितने कुएमें चीखें मारना आरम्भ
कर दीं, दोनों भाइयोंने उसकी चिल्लाहट सुनी,परन्तु वे भी भेडिये

कूपे भ्रातरावेकतद्वितौ । वृकत्रासाच्च लोभाच्च समुत्सृज्य
प्रजग्मतुः ॥ २८ ॥ भ्रातृभ्यां पशुलुब्धाभ्यामुत्सृष्टः स महातपाः ।
उदपाने तदा राजन् निर्जले पांशुसंवृते ॥ २९ ॥ त्रित आत्मान-
मालक्ष्य कूपे वीरुत्तृणावृते । निमग्नं भरतश्रेष्ठ नरके दुष्कृती
यथा ॥ ३० ॥ स बुद्ध्यागणयत् प्राज्ञो मृत्योर्भीतो ह्यसोमपः ।
सोमः कथं नु पातव्य इहस्थेन मया भवेत् ॥ ३१ ॥ स एवमभि-
निश्चित्य तस्मिन् कूपे महातपाः । ददर्श वीरुधं तत्र लम्बमानां
यदृच्छया ॥ ३२ ॥ पांशुग्रस्ते ततः कूपे विचिन्त्य सलिलं मुनिः ।
अग्नीन् सङ्कल्पयामास होत्रे चात्मानमेव च ॥ ३३ ॥ ततस्तां
वीरुधं सोमं सङ्कल्प्य सुमहातपाः । ऋचो यजूंषि सामानि मनसा
चिन्तयन्मुनिः ॥ ३४ ॥ ग्रावाणः शर्कराः कृत्वा प्रचक्रेऽभिषवं
नृप । आज्यञ्च सलिलं चक्रे भागांश्च त्रिदिवौकसाम् ॥ ३५॥

के भयसे तथा लोभवश त्रित मुनिको कुएमें गिरा हुआही छोड़कर
भाग गये ॥ २७ ॥२८॥ दोनों भाई बहुत सी गाँएँ मिलजानेके
लोभसे जलसे शून्य और धूलि भरे हुए कुएमें गिरेहुए महातप-
स्वी त्रितको छोड़कर चलेगये ॥ २९ ॥ हे भरतसत्तम ! तदनन्तर
त्रितने विचार किया, कि—मैं लता और तृणोंसे ढके हुए कुएमें
जैसे पापी नरकमें गिरता है तैसे गिर गया हूँ ॥ ३० ॥ त्रित
बुद्धिमान् था, उसने यज्ञ करके सोमपान नहीं किया था, इस
कारण उसने मृत्युसे डरकर अपनी बुद्धिसे विचार किया, कि—
इस कुएमें रह कर ही मैं सोमरस कैसे पीलूँ ? ॥ ३१ ॥ ऐसा
विचार करनेके अनन्तर उस महातपस्वी मुनिने देखा तो कुएमें
दैवयोगसे एक लता लटक रही थी ॥ ३२ ॥ धूलिसे भरे हुए
उस कुएमें जलकी भावना करके फिर उन मुनिने मनमें अग्निका
संकल्प किया, स्वयं होता बना, लटकती हुई लताको सोमलता
मानकर मनमें ऋग, यजु और सामवेदका चिन्तवन किया, कुए
में पड़ी हुई कङ्कड़ियोंको शर्करा मानकर पानीको घी मान लिया

सोमस्याभिषवं कृत्वा चकार तुमुलं ध्वनिम् । स चाविशद्दिवं राजन् पुनः शब्दस्त्रितस्य वै ॥ ३६ ॥ समवाप च तं यज्ञं यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः । वर्त्तमाने तथा यज्ञे त्रितस्य सुमहात्मनः ॥३७॥ आविग्नं त्रिदिवं सर्वं कारणञ्च न बुध्यते । ततः सुतुमुलं शब्दं शुश्रावाथ बृहस्पतिः ॥ ३८ ॥ श्रुत्वा चैवाब्रवीत् सर्वान् देवान् देवपुरोहितः । त्रितस्य वर्त्तते यज्ञस्तत्र गच्छामहे सुराः ॥ ३९ ॥ स हि क्रुद्धः सृजेदन्यान् देवानपि महातपाः । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सहिताः सर्वदेवताः ॥ ४० ॥ प्रययुस्तत्र यत्रासौ त्रितयज्ञः प्रवर्त्तते । ते तत्र गत्वा विबुधास्तं कूपं यत्र स त्रितः ॥ ४१ ॥ ददृशुस्तं महात्मानं दीक्षितं यज्ञकर्मसु । दृष्ट्वा चैनं महात्मानं श्रिया परमया युतम्॥४२॥ ऊचुश्चाथ महाभागं प्राप्ता भागार्थिनो वयम् ।

और सोमका रस निकालकर और देवताओंको उनका भाग देकर वेदकी बडी भारी ध्वनि की, त्रितकी वेदध्वनि ठेठ स्वर्ग तक पहुँच गयी ॥ ३३—३६ ॥ वेदवेत्ताओंने जिसप्रकार यज्ञ करना कहा है, उसके अनुकूल ही उसने वह यज्ञ किया, महात्मा त्रितका महायज्ञ जिस समय होने लगा, उस समय सब स्वर्गमें घबराहट पड़गई और बिचार करने पर इसके कारणको नहीं जाना जासका, फिर बृहस्पतिने त्रित मुनिका महातुमुल वेदघोष सुना ॥३७॥३८॥देवताओंके पुरोहित बृहस्पतिने सब देवताओंसे कहा, कि–त्रित यज्ञ कर रहा है, इसलिये हे देवताओं! हम तहाँ चलें३९ वह मुनि महातपस्वी है, यदि कुपित होजायगा तो दूसरे देवताओंको रच डालेगा, बृहस्पतिकी इस बातको सुनकर सब देवता इकट्ठे हुए और जहां त्रितकी वेदध्वनि होरही थी, उस कुएमें जापहुँचे, तहाँ देखा तो महात्मा त्रित यज्ञकी दीक्षा लेकर यज्ञ कररहा था और बड़ा तेजस्वी मालूम होरहा था, देवताओंने महाभाग त्रितसे कहा, कि–हम यज्ञका भाग लेने को आये हैं, इस पर ऋषिने देवताओंसे कहा, कि–हे देवताओं ! तुम मेरी

अपाग्नरीद्दर्विर्दैनान् पश्यध्वं मां दिवौकसः ॥ ४३ ॥ अस्मिन् प्रतिभये कूपे निमग्नं नष्टचेतसम् । ततस्त्रितो महाराज भागांस्तेषां यथाविधि ॥ ४४ ॥ मन्त्रयुक्तान् समदद्त्ते च प्रीतास्तदाभवन् । ततो यथाविधि प्राप्तान् भागान् प्राप्य दिवौकसः ॥ ४५ ॥ प्रीतात्मानो ददुस्तस्मै वरान् यान् मनसेच्छसि । स तु वव्रे वरं देवास्त्रातुमर्हत मामितः ॥ ४६ ॥ यश्चेहोपस्पृशेत् कूपे स सोमपगतिं लभेत् । ततश्चोर्मिमती राजन्नुत्पपात सरस्वती ॥४७॥ तयोत्क्षिप्तः समुत्तस्थौ पूजयंस्त्रिदिवौकसः । तथेति चोक्त्वा विबुधा जग्मू राजन् यथागताः ॥ ४८ ॥ त्रितश्चाप्यगमत् प्रीतः स्वमेव निलयं तदा । क्रुद्धः स तु समासाद्य तावृषी भ्रातरौ तदा ॥४९॥ उवाच परुषं वाक्यं शशाप च महातपाः । पशुलुब्धौ युवां यस्मा-

---

दशा देखो ॥ ४०–४३ ॥ मैं इस महाभयङ्कर कुएमें गिर गया हूँ, मेरी चेतना नष्ट होगयी है, ऐसा कहकर त्रित मुनिने उन सब देवताओंको शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार मन्त्र पढ़कर उनके भाग दिये, तब तो देवता प्रसन्न होगये, विधिपूर्वक अपने २ भाग पाकर मनमें बड़ा आनन्द माना और मुनिसे कहने लगे, कि तुम्हारे मनमें जिस वरके माँगनेकी इच्छा हो उसको माँगलो, त्रितने वर माँगा, कि—हे देवताओं! तुम्हें इस कुएमेंसे मेरी रक्षा करनी चाहिये और जो मनुष्य इस कुएमें स्नान करे उसको सोमपान करनेवालेकी गति मिले, यह वर मुझे दीजिये, हे राजन्! उसी समय उस कुएमें तरङ्गोंवाली सरस्वती उत्पन्न होकर उबल उठी और उसने त्रितकी पूजा करके उसको कुएमेंसे बाहर निकालाथा, देवता भी 'तथास्तु' कहकर जैसे आये थे तैसे ही फिर अपने २ धामको चले गये ॥ ४४–४८ ॥ महातपस्वी त्रित भी प्रसन्न होते हुए फिर अपने घर आये और क्रोध करके दोना भाइयोंको तीक्ष्ण वचन कहकर शाप देते हुए बोले, कि—तुम दोनों भाई गौओंको लेजानेके लोभसे मुझे छोड़कर भाग गये,

न्माशुन्सृज्य प्रधावितो ॥ ५० ॥ तस्माद् वृकाकृती रौद्रौ दंष्ट्रिणा-
वभितश्चरौ । भवितारौ मया शप्तौ पापेनानेन कर्मणा ॥ ५१ ॥
प्रसवश्चैव युवयोर्गोलांगूलर्क्षवानराः । इत्युक्ते तु तदा तेन क्षणा-
देव विशाम्पते ॥ ५२ ॥ तथाभूतावदृश्येतां वचनात् सत्यवा-
दिनः । तत्राप्यमितविक्रान्तः स्पृष्ट्वा तोयं हलायुधः ॥ ५३ ॥
दत्वा च विविधान् दानान् पूजयित्वा च वै द्विजान् । उद-
पानञ्च तं वीक्ष्य प्रशस्य च पुनः पुनः । नदीगतमदीनात्मा प्राप्तो
विनशनं तदा ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थ-
यात्रायां त्रिताख्याने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो विनशनं राजन् जगामाथ हला-
युधः । शूद्राभीरान् प्रतिद्वेषाद्यत्र नष्टा सरस्वती ॥ १ ॥ तस्मात्त-
दृषयो नित्यं प्राहुर्विनशनेति च । तत्राप्युपस्पृश्य बलः सरस्वत्यां

अतः इस पापकर्मको करनेके कारण मेरे शापसे तुम दाढ़ वाले और बनमें चारों ओर भटकनेवाले भयानक नाहर होओ ॥ ४९—५१॥ और गोलाङ्गूल, रीछ, बानर आदि पशु तुमसे उत्पन्न होंगे, हे राजन्! इसप्रकार सत्यवादी मुनिने शाप दिया, बस उसी समय दोनों भाई नाहररूप दीखनेमें आये; अपारपराक्रमी बलदेवजीने उस त्रित मुनिके नदीमेंके कुएमें स्नान किया, ब्राह्मणोंकी पूजा करके उनको भाँति २ के दान दिये और उस कुएको देखकर बारम्बार उसकी प्रशंसा करने लगे, उदार चरित्र वाले बलदेवजी फिर वहाँसे सरस्वती नदीके तट पर विनशनकी की ओरको चले गये ॥५२—५४॥ छत्तीसवां अध्याय समाप्त ३६

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे राजा जनमेजय! हलका आयुध धारण करनेवाले महाबली बलदेवजी, शूद्र और आभीर देश पर द्वेष होनेके कारण, जहाँ भूमिमें सरस्वतीके अदृश्यरूपसे बहने के कारण ऋषि जिसको नित्य विनशन नामका तीर्थ कहते हैं

महाबलः ॥ २ ॥ सुभूमिकं ततोऽगच्छत् सरस्वत्यास्तटे वरे। तत्र चाप्सरसः शुभ्रा नित्यकालमतंद्रिताः ॥ ३ ॥ क्रीडाभिर्विमलाभिश्च क्रीडन्ति विमलाननाः। तत्र देवाः सगन्धर्वा मासि मासि जनेश्वर ॥ ४ ॥ अभिगच्छन्ति तत्तीर्थं पुण्यं ब्राह्मणसेवितम्। तत्रादृश्यन्त गन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः ॥ ५ ॥ समेत्य सहिता राजन् यथाप्राप्तं यथासुखम्। तत्र मोदन्ति देवाश्च पितरश्च सवीरुधः ॥ ६ ॥ पुण्यैः पुष्पैः सदादिव्यैः कीर्यमाणाः पुनः पुनः आक्रीडभूमिः सा राजन् तासामप्सरसां शुभा ॥ ७॥ सुभूमिकेति विख्याता सरस्वत्यास्तटे वरे। तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च वसु विप्राय माधवः ॥ ८ ॥ श्रुत्वा गीतञ्च तद्दिव्यं वादित्राणाञ्च निस्वनम्। छायाश्च विपुला दृष्ट्वा देवगन्धर्वरक्षसाम्। गन्धर्वाणां ततस्तीर्थमागच्छद्रोहिणीसुतः। विश्वावसुमुखास्तत्र गन्धर्वास्तपसान्विताः १०

उस तीर्थ पर गए, तहां स्नान किया और सरस्वती नदीके सुन्दर तट पर सुभूमिक नामवाले तीर्थ पर गये, उस तीर्थमें गौर रङ्गकी, तन्द्राशून्य तथा निर्मल मुखवाली अप्सरायें निर्दोष क्रीड़ा करती हैं और हे राजन्! ब्राह्मणोंके सेवन किये हुए उस पवित्र तीर्थमें देवता और गंधर्व हर महीने जाते हैं तथा गन्धर्व और अप्सराओंके गण तथा देवता और पितर तहां इकट्ठे होकर किलोलें करते हैं, उनके ऊपर पवित्र और दिव्य फूल सदा वार २ विखरा करते हैं, हे राजन्! वह शुभ भूमि अप्सराओंकी विहारभूमि है और जगत्में सुभूमिका नामसे प्रसिद्ध है और यह सरस्वतीके उत्तम किनारे पर आती है, मधुवंशी बलदेवजीने उस तीर्थमें स्नान करके ब्राह्मणोंको धनका दान दिया ॥ १-८ ॥ अप्सराओंका दिव्य गान और बाजोंकी दिव्य ध्वनि भी सुनी, देवता, गन्धर्व और राक्षसोंकी बड़ी २ छायाको देखकर रोहिणीनन्दन गन्धर्व नामक तीर्थमें आये, तहां विश्वावसु आदि गन्धर्व तपस्या करते थे और बड़ा मनोहर नृत्य

नृत्यवादित्रगातञ्च कुर्वन्ति सुमनोरमम् । तत्र दत्वा हलधरो विप्रेभ्यो विविधं वसु ११ अजाविकं गोखरोष्ट्रं सुवर्णं रजतं तथा । भोजयित्वा द्विजान् कामैः सन्तर्प्य च महाधनैः ॥ १२ ॥ प्रययौ सहितो विप्रैः स्तूयमानश्च माधवः । तस्माद्गन्धर्वतीर्थाच्च महाबाहुररिन्दमः ॥ १३ ॥ गर्गस्रोतो महातीर्थमाजगामैककुण्डली । तत्र गर्गेण वृद्धेन तपसा भावितात्मना ॥ १४ ॥ कालज्ञानगतिश्चैव ज्योतिषाञ्च व्यतिक्रमः । उत्पाता दारुणाश्चैव शुभाश्च जनमेजय ॥ १५ ॥ सरस्वत्याः शुभे तीर्थे विहिता वै महात्मना । तस्य नाम्ना च तत्तीर्थं गर्गस्रोत इति स्मृतम् ॥ १६ ॥ तत्र गर्गं महाभागमृषयः सुव्रता नृप । उपासाञ्चक्रिरे नित्यं कालज्ञानं प्रति प्रभो ॥ १७ ॥ तत्र गत्वा महाराज बलः श्वेतानुलेपनः ।

करते थे तथा बाजे बजाते हुए गीत गाते थे, हलधर बलदेवजीने उस तीर्थमें स्नान करके ब्राह्मणोंको अनेकों पदार्थ, बकरे, मैंढे, गौ, खच्चर, ऊँट, सोना और चांदी आदिका दान दिया और उनको भोजन कराकर फिर बहुमूल्य पदार्थ दे उनकी कामना पूरी की ॥ ६–१२ ॥ ब्राह्मणोंने बलदेवजीकी प्रशंसा की, एक कुण्डल पहरनेवाले महाबाहु बलदेवजी ब्राह्मणोंको साथ लिये हुए तहांसे गर्गस्रोत नामक बड़े तीर्थ पर गये, हे राजा जनमेजय! तपस्याके द्वारा जिनका चित्त निर्मल होरहा था ऐसे वृद्धावस्था वाले महात्मा गर्गजीने सरस्वतीके इस शुभ तीर्थमें तपस्या करके कालका ज्ञान, कालकी गति, ग्रह और नक्षत्रोंकी चालका अंतर तथा अशुभ उत्पात और शुभ शकुन आदि ज्योतिःशास्त्रका ज्ञान प्राप्त कर लिया था, उन गर्ग ऋषिके नामसे वह तीर्थ भी गर्गस्रोत नामसे कहा जाता था ॥ १३–१६ ॥ हे राजन् ! उस तीर्थमें सुन्दर व्रतधारी ऋषि कालका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये तहां नित्य निवास करनेवाले महाभगा गर्गजीकी सेवा किया करते थे ॥ १७ ॥ हे महाराज ! शरीर पर श्वेत अङ्गराग लगाने वाले

विधिवद्धि धनं दत्वा मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ १८ ॥ उच्चावचांस्तथा भक्ष्यान् द्विजेभ्यो विप्रदाय सः । नीलवासास्ततोऽगच्छच्छंखतीर्थे महायशाः ॥ १९ ॥ तत्रापश्यन्महाशंखं महामेरुमिवोच्छ्रितम् । श्वेतपर्वतसंकाशमृषिसंघैर्निषेवितम् ॥ २० ॥ सरस्वत्यास्तटे जातं नगं तालध्वजो बली । यक्षा विद्याधराश्चैव राक्षसाश्चामितौजसः ॥ २१ ॥ पिशाचाश्चमितबला यत्र सिद्धाः सहस्रशः । ते सर्वे ह्यशनं त्यक्त्वा फलं तस्य वनस्पतेः ॥ २२ ॥ व्रतैश्च नियमैश्चैव काले काले स्म भुञ्जते । प्राप्तैश्च नियमैस्तैर्विचरन्तः पृथक् पृथक् ॥ २३ ॥ अदृश्यमाना मनुजैर्व्यचरन् पुरुषर्षभ । एवं ख्यातो नरपते लोकेस्मिन् स वनस्पतिः ॥ २४ ॥ ततस्तीर्थं सरस्वत्याः पावनं लोकविश्रुतम् । तस्मिंश्च यदुशार्दूलो

बलदेवजीने शुद्ध अन्तःकरण वाले मुनियोंका शास्त्रमें लिखी विधिसे पूजन करके उनको धनका दान दिया, घटिया बढ़िया अनेकों प्रकारके भोजन जिमाये और फिर महायशस्वी और नीले वस्त्र पहरनेवाले बलदेवजी तहाँसे शंख तीर्थमें गये ॥ १८॥१९ ॥ उस तीर्थमें उन्होंने मेरु पर्वतकी समान बड़ा और ऊँचा शंख देखा, वह शंख दूरसे सफेद पहाड़सा मालूम होता था और ऋषि उस शंखकी सेवा करते थे ॥ २० ॥ उस तीर्थका दर्शन करके तालकी ध्वजावाले बली बलदेवजीने सरस्वती नदीके तटपर तीर्थ माने जाते हुए एक वृक्षको देखा, कि-जिसके समीपमें यक्ष, विद्याधर, अपारबली राक्षस अमित पराक्रमी पिशाच और सिद्ध सहस्रोंकी संख्यामें रहते थे और व्रत तथा नियमोंका पालन करते हुए समय २ पर उस वनस्पतिके फलोंको खाया करते थे और मनुष्य देखने न पावें, इसप्रकार अदृश्य होकर अलग २ विचरा करते थे और अपने नियमोंमें बँधे रहते थे, हे नरेन्द्र ! वह वृक्ष इसप्रकार लोकमें प्रसिद्ध था ॥ २१-२४ ॥ और वह लोकप्रसिद्ध सरस्वतीके तटका तीर्थ पवित्र करनेवाला था, उस तीर्थमें यदु-

दत्वा तीर्थे पयस्विनीः ॥ २५ ॥ ताम्रायसानि भाण्डानि वस्त्राणि विविधानि च । पूजयित्वा द्विजांश्चैव पूजितश्च तपोधनैः ॥२६॥ पुण्यं द्वैतवनं राजन्नाजगाम हलायुधः । तत्र गत्वा मुनीन् दृष्ट्वा नानावेशधरान् बलः ॥ २७ ॥ आप्लुत्य सलिले चापि पूजयामास वै द्विजान् । तथैव दत्वा विप्रेभ्यः परिभोगान् सुपुष्कलान् ॥२८॥ ततः प्रायाद्बलो राजन् दक्षिणेन सरस्वतीम् । गत्वा चैवं महाबाहुर्नातिदूरं महायशाः ॥ २९ ॥ धर्मात्मा नागधन्वानं तीर्थमागमदच्युतः । यत्र पन्नगराजस्य वासुकेः सन्निवेशनम् ॥ ३० ॥ महाद्युतेर्महाराज बहुभिः पन्नगैर्वृतम् । ऋषीणां हि सहस्राणि तत्र नित्यं चतुर्दश ॥ ३१ ॥ तत्र देवा समागम्य वासुकिं पन्नगोत्तमम् । सर्वपन्नगराजानमभ्यषिञ्चन् यथाविधि ॥ ३२ ॥ पन्नगेभ्यो।भयं तत्र विद्यते न स्म कौरव। तत्रापि विधिवद्दत्वा विप्रे-

---

वंशमें सिंहसमान बलदेवजीने ब्राह्मणोंकी पूजा करके उनको दुधेर गौएँ, तांबे और लोहेके वर्त्तन तथा भांति २ के वस्त्र दिये, तदनन्तर तपोधन मुनियोंनेभी बलदेवजीका सत्कार किया॥ २५॥ ॥ २६ ॥ हे राजन् ! हलधर बलदेवजी तहाँसे पवित्र द्वैतवनमें आये, तहाँ भाँति २ के वेषधारी मुनियों का दर्शन करके ॥२७॥ तीर्थके जलमें स्नान किया, फिर ब्राह्मणोंकी पूजा करके और उनको बहुतसे पदार्थ देकर सन्तुष्ट किया ॥ २८ ॥ हे राजन् ! महाबाहु और महायशस्वी बलदेवजी उस तीर्थसे चलकर सरस्वतीके दक्षिण भागमें समीप ही नागधन्वा नामक तीर्थमें गये, जिस तीर्थमें महाकान्तिमान् सर्पोंका राजा वासुकिका निवास है ॥२९-३०॥हे महाराज! उस तीर्थमें बहुतसे साँप वासुकिके स्थानको घेरे हुए हैं, चौदह सहस्र ऋषि तहाँ नित्य रहते है ॥ ३१॥ जहाँ देवताओंने आकर सर्पोंमें श्रेष्ठ वासुकिका शास्त्रमें कही हुई विधिसे सर्पोंका राजा बनाकर अभिषेक किया था ॥ ३२ ॥ हे पुरुवंशी राजन! उस तीर्थमें किसीको भी सर्पोंका भय नहीं रहता है, उस

भ्यो रत्नसञ्चयान् ॥ ३३ ॥ प्रायात् प्राचीं दिशं तत्र तथा तीर्थान्यनेकशः । सहस्रशतसंख्यानि प्रथितानि पदे पदे ॥ ३४ ॥ आप्लुत्य तत्र तीर्थेषु यथोक्तं तत्र चर्षिभिः । कृत्वोपवासनियमं दत्त्वा दानानि सर्वशः ॥ ३५ ॥ अभिवाद्य मुनींस्तांस्तु तत्र तीर्थनिवासिनः । उद्दिष्टमार्गः प्रययौ यत्र भूयः सरस्वती ॥ ३६ ॥ प्राङ्मुखं वै निवृत्ते वृष्टिर्वातहता यथा । ऋषीणां नैमिषेयाणाम-वेक्षार्थं महात्मनाम् ॥ ३७ ॥ निवृत्तान्तां सारत्श्रेष्ठां तत्र दृष्ट्वा तु लांगली । बभूव विस्मतो राजन् बलः श्वेतानुलेपनः ॥ ३८ ॥ जनमेजय उवाच । कस्मात् सरस्वती ब्रह्मन् निवृत्ता प्राङ्मुखी भवत् । व्याख्यातमेतदिच्छामि सर्वमध्वर्यु सत्तम ॥ ३९ ॥ कस्मिंश्चित् कारणे तत्र विस्मतो यदुनन्दन । निवृत्ता हेतुना केन कथमेव सरि-

नागतीर्थमें बलदेवजीने विधिपूर्वक ब्राह्मणों को रत्नोंके ढेर दिये ३३ तहाँसे पूर्वदिशाकी ओर गये, उस दिशामें पग२ पर लाखों प्रसिद्ध तीर्थ आतेहैं ॥ ३४ ॥ उन तीर्थोंमें ऋषियोंकी आज्ञाके अनुसार बलदेवजीने स्नान करके तथा उपवास के नियमोंका पालन करके सब प्रकारके दान दिये ॥ ३५ ॥ और उन तीर्थोंमें रहनेवाले मुनियोंको प्रणाम करके जैसे पवनके झपाटेसे फिर वृष्टि लौट आती है, तैसे ही जहाँ सरस्वती नदीको, नैमिषारण्यके महात्मा ऋषियोंकी मनःकामना सिद्ध करनेके लिये पूर्वदिशाका ओरको फिर लौटना पड़ा था, उस तीर्थकी ओरको चल दिये और नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती नदीको पीछेको लौटी हुई देख कर, शरीर पर स्वेतचन्दन लगाने वाले तथा जिनका आयुध हल है ऐसे हलधर बलदेवजी आश्चर्यमें होगये ॥ ३६-३८ ॥ राजा जनमेजयने कहा कि-यज्ञ करानेवालोंमें श्रेष्ठ वैशंपायनजी ! सरस्वती नदीने पीछेको लौटकर पूर्वदिशाकी ओरको मुख क्यों किया? यह बात मैं सुनना चाहता हूं, यदुनन्दन बलदेवजीको आश्चर्य क्यों हुआ था तथा वह श्रेष्ठ नदी किस कारणसे और किसप्रकार पीछेको लौ-

द्वरा ॥ ४० ॥ वैशम्पायन उवाच । पूर्वे कृतयुगे राजन् नैमिषे-यास्तपस्विनः । वर्त्तमाने सुविपुले सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ ४१ ॥ ऋषयो बहवो राजंस्तत् सत्रमभिपेदिरे । उषित्वा च महाभागास्तस्मिन् सत्रे यथाविधि ॥ ४२ ॥ निवृत्ते नैमिषीये वै सत्रे द्वादशवार्षिके । आजग्मु ऋषयस्तत्र बहवस्तीर्थकारणात् ॥४३॥ ऋषीणां बहुलत्वात्तु सरस्वत्या विशाम्पते । तीर्थानि नगरायन्ते कूले वै दक्षिणे तदा ॥ ४४ ॥ स्यमन्तपञ्चकं यावत्तावत्ते द्विजसत्तमाः । तीर्थलोभान्नरव्याघ्र नद्यास्तीरं समाश्रिताः ॥ ४५ ॥ जुह्वतां तत्र तेषान्तु मुनीनां भावितात्मनाम् । स्वाध्यायेनातिमहता बभूवुः पूरिता दिशः ॥४६॥ अग्निहोत्रैस्ततस्तेषां क्रियमाणैर्महात्मनाम् । अशोभत सरिच्छ्रेष्ठा दीप्यमानैः समन्ततः ॥ ४७ ॥ बालखिल्या महाराज अश्मकुट्टाश्च तापसाः । दन्तोलूखलिनश्चान्ये संप्रख्या-

टी थी यह मुझे सुनाओ, वैशंपायन कहते हैं, कि—हे राजा जनमेजय! पहले सत्ययुगके समय नैमिषारण्यमें बहुत ही बड़े बारह वर्षके यज्ञका आरम्भ हुआ था, उस समय अनेकों तपस्वी ऋषि उस यज्ञमें आये थे और महाभाग्यशाली उन सब ऋषियोंने यज्ञके स्थानमें विधिपूर्वक निवास किया था, नैमिषारण्यमें होनेवाले बारह वर्षके यज्ञकी समाप्ति होनेपर वे सब तीर्थमें स्नान करनेके लिये सरस्वती नदीके समीप आये, हे राजन्! उस समय ऋषियोंकी संख्या बहुत बडी हो जाने के कारण सरस्वतीके दक्षिण तटके तीर्थ नगरों की समान होगये थे, द्विजोंमें श्रेष्ठ ऋषियोंने तीर्थके लोभसे सरस्वती नदीके दक्षिण तटपर स्यमन्तपंचक पर्यन्तके नदी तटका आश्रम लिया था ॥ ३९—४५ ॥ आत्मज्ञानी मुनि तहाँ होम करके स्वाध्याय करने लगे, उनके बड़े भारी वेदघोषसे दिशायें गूँज उठीं ॥ ४६ ॥ सब महात्मा मुनि अग्निहोत्र करने लगे उनकी अग्नियोंके प्रकाशसे नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती नदीभी चारों ओर दिपने लगी थी ॥ ४७ ॥ हे महाराज! बालखिल्य,

नास्तथापरे ॥४८॥ वायुभक्ष्या जलाहाराः पर्णभक्ष्याश्च तापसाः। नानानियमयुक्ताश्च तथा स्थण्डिलशायिनः ॥ ४६ ॥ आसन् वै मुनयस्तत्र सरस्वत्याः समीपतः । शोभयन्तः सरिच्छ्रेष्ठां गङ्गामिव दिवौकसः ॥ ५० ॥ शतशश्च समापेतुर्ऋषयस्तत्र याजिनः । तेऽवकाशं न ददृशुः सरस्वत्या महाव्रताः ५१ ततो यज्ञोपवीतैस्ते तत्तीर्थं निर्मिमाय वै । जहुवुश्चाग्निहोत्राश्च चक्रुश्च विविधाः क्रियाः ॥ ५२ ॥ ततस्तमृषिसंघातं निराशं चिन्तयान्वितम् । दर्शयामास राजेन्द्र तेषामर्थे सरस्वती ॥५३॥ ततः कुञ्जान् बहून् कृत्वा सन्निवृत्ता सरिद्वरा । ऋषीणां पुण्यतपसां कारुण्याज्जनमेजय ५४ ततो निवृत्य राजेन्द्र तेषामर्थे सरस्वती । भूयः प्रतीच्याभिमुखी

अश्मकुट्ट (पत्थरसे फोड़े हुए फलोंका भोजन करनेवाले), दन्तोलूखली (फलोंको दाँतोंसे कुतर कर खाने वाले), प्रसंख्यान (गिने हुए फल खाने वाले) तथा और दूसरे कितनेही तपस्वी वायुका आहार करनेवाले, जलका आधार करनेवाले, पत्ते खाकर रहने वाले, अनेकों नियमोंका पालन करनेवाले, भूमिपर सोनेवाले सब मुनि सरस्वतीके समीप आये और जैसे स्वर्गनिवासी देवता भगवती मन्दाकिनीको सुशोभित करते हैं तैसे ही सरस्वती नदीको सुशोभित करने लगे ।४८-५०। सैंकड़ो यज्ञ करानेवाले, महाव्रतधारी ऋषि सरस्वतीके तटपर आये, परन्तु उन्होंने तहाँ निवास करने के लिये स्थान नहीं देखा ॥ ५१ ॥ तब वे ऋषि यज्ञोपवीत की बराबर नापी हुई, तीर्थभूमि को ठीक करके उसमें अग्नि प्रज्वलित करके होम करने लगे तथा दूसरे भी बहुतसे अनुष्ठान करने लगे ॥ ५२ ॥ परन्तु जब ऋषि निराश होकर चिन्तामें पड़ गये, ऋषियोंकी यह दशा देखकर सरस्वती नदीने उन सबोंको दर्शन दिया ॥ ५३ ॥ और हे जनमेजय! पवित्र तप करनेवाले ऋषियोंके ऊपर दया आजाने से सरस्वतीने फिर लौटकर अपने अनेकों तीर्थस्थान कर दिये ॥ ५४ ॥ हे राजेंद्र! नदियोंमें श्रेष्ठ

प्रस्रुस्राव सरिद्वरा ॥ ५५ ॥ अथोपागमनं कृत्वा तेषां भूयो प्रजाम्यहम् । इत्यद्भुतं महच्चक्रे तदा राजन् महानदी ॥ ५६ ॥ एवं स कुञ्जो राजन् वै नैमिषीय इति स्मृतः । कुरुक्षेत्रे कुरुश्रेष्ठ कुरुष्व महतीं क्रियाम् ॥ ५७ ॥ तत्र कुञ्जान् बहून् दृष्ट्वा निवृत्ताञ्च सरिद्वराम् । बभूव विस्मयस्तत्र रामस्याथ महात्मनः ॥ ५८ ॥ उपस्पृश्य तु तत्रापि विधिवद्यदुनन्दनः । दत्त्वा दायान् द्विजातिभ्यो भाण्डानि विविधानि च ॥ ५९ ॥ भक्ष्यं भोज्यञ्च विविधं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय च । ततः प्रायाद्बलो राजन् पूज्यमानो द्विजातिभिः ॥ ६० ॥ सरस्वतीतीर्थवरं नानाद्विजगणायुतम् । बदरेङ्गुदकाश्मर्यप्लक्षाश्वत्थविभीतकैः ॥ ६१ ॥ कङ्कोलैश्च पलाशैश्च करीरैः पीलुभिस्तथा । सरस्वतीतीररुहैस्तरुभिर्विविधैस्तथा ।६२। करूपकवनैश्चैव विल्वैराम्रातकैस्तथा । अतिमुक्तकषण्डैश्च पारि-

सरस्वती नदी इस प्रकार उन ऋषियोंके लिये फिर पीछेको लौट आयी तब फिर पश्चिमकी ओरको बहने लगी ॥ ५५ ॥ महानदी सरस्वतीने प्रतिज्ञा की, कि-मैं ऋषियोंके आगमनको सफल करके फिर लौट जाऊँगी, उससमय उसने बड़ा अद्भुत काम कर दिखाया था ॥ ५६ ॥ हे कुरुसत्तम राजन् ! इस प्रकार यह तीर्थ स्थान नैमिषीयके नामसे प्रसिद्ध है, इसलिये तुम भी इस कुरुक्षेत्रमें कोई बड़ा भारी पुण्यकर्म करो ॥ ५७ ॥ तहाँ बहुतसे तीर्थस्थानोंको तथा पीछेको लौटी हुई सरस्वती नदीको देखकर महात्मा बलदेवजीको अचम्भा मालूम हुआ था ॥ ५८ ॥ यदुनन्दन बलदेवजीने उस तीर्थमें शास्त्रोक्त विधिसे स्नान किया और ब्राह्मणोंको भाँति २ के पात्र तथा भक्ष्य भोज्य आदि खानेके पदार्थ देकर उन ब्राह्मणोंसे सत्कार पाते हुए सारस्वत नामके तीर्थमें गये ॥ ५९ ॥ ६० ॥ उस तीर्थमें अनेकों प्रकारके पक्षी किलोलें कर रहे थे, बेर, इङ्गुदी, काश्मरी, पिलखन, पीपल, बहेडा, कंकोल ढाक, करीर, पीलु तथा सरस्वतीके किनारे पर उगे हुए, करूप.

जातैश्च शोभितम् ॥ ६३ ॥ कदलीवनभूयिष्ठं दृष्टिकान्तं मनोहरम् । वाय्वम्बुफलपर्णादैर्दन्तोलूखलिकैरपि ॥ ६४ ॥ तथाश्मकुट्टैर्वानेयैर्मुनिभिर्बहुभिर्वृतम् । स्वाध्यायघोषसंघुष्टं मृगयूथशताकुलम् ॥ ६५ ॥ अहिंस्रैर्धर्म्मपरमैर्नृभिरत्यर्थसेवितम् । सप्तसारस्वतं तीर्थमाजगाम हलायुधः । यत्र मङ्कणकः सिद्धस्तपस्तेपे महामुनिः ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने सप्तत्रिंशोध्यायः ॥ ३७ ॥

जनमेजय उवाच । सप्तसारस्वतं कस्मात् कश्च मङ्कणको मुनिः । कथं स सिद्धो भगवान् कश्चास्य नियमोऽभवत् ॥ १ ॥ कस्य वंशे समुत्पन्नः किञ्चाधीतं द्विजोत्तमः । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विधिवद्द्विजसत्तम ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । राजन् सप्त सर-

---

इमली, आम्रातक, अतिमुक्तके झुंड और पारिजातके वृक्षोंसे वह तीर्थ शोभायमान होरहाथा ६१-६३ उस तीर्थमें केलेके वन बहुत थे, वह दृष्टिको बड़े प्यारे थे, वायु, जल, फल, पत्ते आदिका आहार करनेवाले दन्तोलूखलिक, अश्मकुट्ट तथा वनवासी बहुतसे मुनियों से भरपूर था, स्वाध्यायोंके घोषसे गुञ्जार रहा था और तहाँ सैंकड़ों मृगोंकी टोलियें रहती थीं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ धर्मपरायण और अहिंसक मनुष्य तहाँ रहते थे और जहाँ महामुनि सिद्ध मंकणक तप कर रहे थे, ऐसे सप्त सारस्वत नामके तीर्थमें बलदेवजी गये ॥ ६४ ॥ ॥ ६६ ॥ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥ छ

जनमेजयने बूझा, कि—हे वैशम्पायन जी ! सप्त सारस्वत नामका तीर्थ किस कारणसे उत्पन्न हुआ है ? ॥ १ ॥ मंकणक मुनि कौन थे, उन मुनि महाराजको किसप्रकार सिद्धि मिली थी, और उनका क्या नियम था ॥ १ ॥ वह किसके वंशमें उत्पन्न हुए थे और क्या पढ़े थे, यह सब वृत्तान्त मैं विधिपूर्वक सुनना चाहता हूँ, सो हे ब्राह्मणसत्तम ! तुम यह सब मुझे सुनाओ ?

स्वत्यो याभिर्व्याप्तमिदं जगत् । आहूता बलवद्भिर्हि तत्र तत्र सरस्वती ॥ ३ ॥ सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला च मनोरमा । सरस्वती चौघवती सुरेणुर्विमलोदका ॥ ४ ॥ पितामहस्य महतो वर्त्तमाने महामखे । वितते यज्ञवाटे वै संसिद्धेषु द्विजातिषु ॥ ५ ॥ पुण्याहघोषैर्विमलैर्वेदानां निनदैस्तथा । देवेषु चैव व्यग्रेषु तस्मिन् यज्ञविधौ तदा ॥ ६ ॥ तत्र चैव महाराज दीक्षिते प्रपितामहे । यजतस्तस्य सत्रेण सर्वकामसमृद्धिना ॥ ७ ॥ मनसा चिन्तिता ह्यर्था धर्मार्थकुशलैस्तदा । उपतिष्ठन्ति राजेन्द्र द्विजातींस्तत्र तत्र ह ॥ ८ ॥ जगुश्च तत्र गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । वादित्राणि च दिव्यानि वादयामासुरञ्जसा ॥ ९ ॥ तस्य यज्ञस्य सम्पत्त्या तुतुषुर्देवता अपि । विस्मयं परमं जग्मुः किमु मानुषयोनयः ॥ १० ॥ वर्त्त-

---

॥ २ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे राजन् ! सात सरस्वती नदियें इस सब जगत्में फैली हुई हैं, उनके नाम यह हैं—सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मनोरमा, ओघवती, सुरेणु और विमलोदका ये सरस्वती नदियें जिस २ देशमें हैं, वहाँ २ के बलवान् महात्मा पुरुषोंने उन २ देशोंमें सरस्वतीका आवाहन किया था ॥३॥ ॥ ४ ॥ एक समय पितामह प्रजापतिने बड़े भारी यज्ञका आरंभ किया था, उस समय उसकी बड़ी चौड़ी यज्ञशालामें बैठे हुए ब्राह्मण सिद्ध दशाको प्राप्त होगये थे और उनके निर्मल पुण्याहवाचनके घोषोंसे तथा वेदके घोषोंसे यज्ञमें आये हुए देवता व्यग्र होगये थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे महाराज ! उस यज्ञमें प्रजापतिने स्वयं यज्ञकी दीक्षा ली थी और सब इच्छायें पूरी करनेवाले उस यज्ञ के द्वारा परमात्माका यजन करना आरम्भ किया ॥ ७ ॥ हे राजेन्द्र ! धर्ममें और अर्थमें कुशल पुरुष मनमें जिन २ अर्थोंको विचारते थे वेही पदार्थ तहां ब्राह्मणोंके पास आजाते थे ॥ ८ ॥ उस यज्ञमें गन्धर्व गाते थे, अप्सरायें नाचती थीं और दिव्य बाजे बड़ी उत्तमतासे बजाती थीं ॥ ९ ॥ उस यज्ञकी सम्पत्तिसे देवता

पाने तथा यज्ञे पुष्करस्थे पितामहे । अब्रुवन्नृषयो राजन्नायं यज्ञो महागुणः ॥ ११ ॥ न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती । तच्छ्रुत्वा भगवान् प्रीतः सस्माराथ सरस्वतीम् ॥ १२ ॥ पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै । सुप्रभा नाम राजेन्द्र नाम्ना तत्र सरस्वती ॥ १३ ॥ तां दृष्ट्वा मुनयस्तुष्टास्त्वरायुक्तां सरस्वतीम् । पितामहं मानयन्तीं क्रतुं ते बहु मेनिरे ॥ १४ ॥ एवमेषा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करेषु सरस्वती । पितामहार्थं सम्भूता तुष्ट्यर्थञ्च मनीषिणाम् ॥ १५ ॥ नैमिषे मुनयो राजन् समागम्य समासते । तत्र चित्राः कथा ह्यासन् वेदं प्रति जनेश्वर ॥ १६ ॥ यत्र ते मुनयो ह्यासन् नानास्वाध्यायवेदिनः । ते समागम्य मुनयः सस्मरुर्वै सरस्वतीम् ॥ १७ ॥ सा तु ध्याता महाराज ऋषिभिः सत्रयाजिभिः ।

भी सन्तुष्ट होकर बड़े आश्चर्यमें होरहे थे फिर मनुष्योंका तो कहना ही क्या है ? ॥ १० ॥ यह महायज्ञ प्रजापति महात्माने पुष्कर तीर्थमें किया था, उस समय ऋषियोंने उनसे कहा, कि–यह यज्ञ महाफलदायक नहीं होगा, क्योंकि–यहाँ नदियोंमें उत्तम सरस्वती नदी नहीं है, यह सुन कर पुष्करतीर्थमें यज्ञका आरंभ करनेवाले प्रसन्नचित्त ब्रह्माने सरस्वतीका आवाहन किया, कि— हे राजन् ! सुप्रभा नामकी सरस्वती नदी पितामहका मान रखकर बड़ी शीघ्रतासे वहाँ प्रकट होगयी, यह देखकर ऋषियोंने प्रजापतिके उस यज्ञका बड़ा सन्मान किया ॥ ११–१४ ॥ इसप्रकार पितामहकी आज्ञासे और ऋषियोंके सन्तोषके लिये यह नदियों में श्रेष्ठ सरस्वती पुष्करतीर्थमें प्रकट हुई है ॥ १५ ॥ एक समय नैमिषारण्यमें बहुतसे मुनि इकट्ठे होकर विचार करने लगे, हे भूपते ! तहां वेदके विषयमें बड़े २ विचित्र विचार हुए ॥ १६ ॥ वे सब मुनि वेदके स्वाध्यायमें बराबर लगे रहते थे, उन्होंने इकट्ठे होकर सरस्वतीका स्मरण किया ॥ १७ ॥ हे महाराज ! यज्ञ करनेवाले ऋषियोंने तहां आये हुए महात्माओंकी सहायताके

समागतानां राजेन्द्र सहायार्थं महात्मनाम् ॥ १८ ॥ आजगाम महाभागा तत्र पुण्या सरस्वती । नैमिषे काञ्चनाक्षी तु मुनीनां सत्रयाजिनाम् ॥ १९ ॥ आगता सरितां श्रेष्ठा तत्र भारत पूजिता । गयस्य यजमानस्य गयेष्वेव महाक्रतुम् ॥ २० ॥ आहूता सरितां श्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती । विशालां तां गयेष्वाहुर्ऋषयः संशितव्रताः ॥ २१ ॥ सरित्सा हिमवत्पार्श्वात् प्रसृता शीघ्रगामिनी । औद्दालके यथा यज्ञे यजतस्तस्य भारत ॥ २२ ॥ समेते सर्वतः स्फीते मुनीनां मण्डले तदा । उत्तरे कोसलाभागे पुण्ये राजन्महात्मनः ॥ २३ ॥ उद्दालकेन यजता पूर्वं ध्याता सरस्वती । आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशमृषिकारणात् ॥ २४ ॥ पूज्यमाना मुनिगणैर्वल्कलाजिनसंवृतैः । मनोरमेति विख्याता सा हि तैर्मनसा कृता ॥ २५ ॥ सुरेणुर्ऋषभे द्वीपे पुण्ये राजर्षिसेविते । कुरोश्च

लिये उस सरस्वतीका ध्यान किया ॥ १८ ॥ तब उस नैमिषक्षेत्र में यज्ञ करनेवाले मुनियोंके आवाहन करने पर महाभागा पवित्रजला कांचनाक्षी नामवाली सरस्वती प्रकट होगयी ॥ १९ ॥ और हे भरतवंशी राजन् ! तहां उस श्रेष्ठ नदीका ऋषियोंने पूजन किया-गय देशमें गयनामक यजमानके महायज्ञमें आवाहन कीहुई महानदी सरस्वतीको उत्तम व्रतधारी ऋषि विशाला नामसे कहते हैं।२०-२१। यह शीघ्र गति वाली नदी हिमालयके समीपसे बहती है, हे भारत! पहले महात्मा उद्दालक ने कोसल देशके उत्तर भागमें यज्ञका आरम्भ किया था, उस यज्ञमें पुण्यात्मा ऋषियोंकी मण्डलियें इकट्ठी हुई थीं; तहाँ उद्दालकने सरस्वतीका ध्यान किया, तब उन मुनिके लिये ही महानदी सरस्वती तहाँ आयी ॥ २२-२४ ॥ वल्कल वस्त्र और मृगचर्म धारण करनेवाले मुनियोंने पूजन करके उसका मनोरमा नाम प्रसिद्ध किया, क्योंकि मुनियोंने उसका मनमें मनन किया था ॥ २५ ॥ महात्मा राजा कुरुने कुरुक्षेत्रमें यज्ञ किया था, तहाँ राजर्षियोंसे सेवित ऋषभ नामक पवित्र द्वीपमें

यजमानस्य कुरुक्षेत्रे महात्मनः ॥ २६ ॥ आजगाम महाभागा सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती । ओघवत्यपि राजेन्द्र वशिष्ठेन महात्मना २७ समाहूता कुरुक्षेत्रे दिव्यतोया सरस्वती । दक्षेण यजता चापि गङ्गाद्वारे सरस्वती ॥ २८ ॥ सुरेणुरिति विख्याता प्रस्तुता शीघ्रगामिनी । विमलोदा भगवती ब्रह्मणा यजता पुनः ॥२६॥ समाहूता ययौ तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ । एकीभूतास्ततस्तास्तु तस्मिंस्तीर्थे समागताः ॥ ३० ॥ सप्तसारस्वतं तीर्थं ततस्तत् प्रथितं भुवि । इति सप्त सरस्वत्यो नामतः परिकीर्त्तिताः ॥ ३१ ॥ सप्तसारस्वतञ्चैव तीर्थं पुण्यं तथा स्मृतम् । शृणु मंकणकस्यापि कौमारब्रह्मचारिणः ॥ ३२ ॥ आपगामवगाढस्य राजन् प्रक्रीडितं महत् । दृष्ट्वा यदृच्छया तत्र स्त्रियमम्भसि भारत ॥ ३३ ॥ स्नायन्तीं रुचि-

सुरेणु नामकी महानदी सरस्वती प्रकट हुई थी ॥ २६ ॥ हे राजेन्द्र! इस ही कुरुक्षेत्रमें महात्मा वशिष्ठजीने यज्ञ किया था उस समय उन्होंने दिव्यजल वाली सरस्वती नदीका आवाहन किया, तब ओघवती नामकी सरस्वती प्रकट हुई थी । गङ्गाद्वारमें दक्षप्रजापतिने यज्ञ करते समय सरस्वतीका आवाहन किया था, तब शीघ्र गति वाली सरस्वती नदी सुरेणु नामसे प्रकट हुई थी, फिर भगवान् ब्रह्माजीने पवित्र हिमालय पर यज्ञ किया था, उस समय सरस्वतीका आवाहन किया, तब भगवती सरस्वती तहाँ विमलोदा नामसे प्रकट हुई थी, ये सब नदियें उन तीर्थोंमें इकट्ठी होकर एक दूसरीसे मिलती हैं, इसलिये पृथ्वी पर वह तीर्थ सप्तसारस्वत नामसे प्रसिद्ध हुआ, इस प्रकार सातों सरस्वतियोंके नाम तुमको सुनादिये ॥ २७-३१ ॥ सप्तसारस्वत नामके पवित्र तीर्थका शास्त्रों में वर्णन है, अब तुम कुमार अवस्थासे ब्रह्मचर्यका पालन करने वाले मँकणक मुनिका चरित्र भी सुनो ॥ ३२ ॥ हे राजन्! उन मुनिने एक समय नदीमें स्नान करते२ बड़ी भारी क्रीडा की थी, हे भारत! हे महाराज! एक समय मंकणक मुनिने सरस्वतीमें स्नान

रापाङ्गीं दिग्वाससमनिन्दिताम् । सरस्वत्यां महाराज चस्कन्दे बीजमम्भसि ॥ ३४ ॥ तद्रेतः स तु जग्राह कलशे वै महातपाः । सप्तधा प्रविभागन्तु कलशस्थं जगाम ह ॥ ३५ ॥ तत्रर्षयः सप्त जाता जज्ञिरे मरुतां गणाः । वायुवेगो वायुबलो वायुहा वायुमण्डलः ॥ ३६ ॥ वायुज्वालो वायुरेता वायुचक्रश्च वीर्य्यवान् । एवमेते समुत्पन्ना मरुतां जनयिष्णवः ॥ ३७ ॥ इदमत्यद्भुतं राजन् शृण्वाश्चर्यतरं भुवि । महर्षेश्चरितं यादृक् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ३८ पुरा मंकणकः सिद्धः कुशाग्रेणेति नः श्रुतम् । क्षतः किलकरे राजंस्तस्य शाकरसोऽस्रवत् ॥ ३९ ॥ स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः

करते२ दैवगतिसे एक सुन्दर कटाक्षवाली सर्वाङ्गसुन्दरी नवीना स्त्रीको नङ्गी होकर नदीके जलमें स्नान करते हुए देखा, उसको देखते ही मँकणक मुनिका वीर्य जलमें स्खलित होगया ३३-३४ उन महात्मा तपस्वीने वह वीर्य एक कलशमें लेलिया, कलशमें उसके सात भाग होगये ॥ ३५ ॥ उसमेंसे मरुत्गण नामके सात ऋषि उत्पन्न हुए, जिनके नाम वायुवेग, वायुबल वायुहा, वायुमण्डल, वायुज्वाल, वायुरेता, और पराक्रमी वायुचक्र थे, इसप्रकार ये पवनोंको उत्पन्न करनेवाले ऋषि उत्पन्न हुए ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे राजन्! महर्षि मंकणकका त्रिलोकीमें प्रसिद्ध, बड़ा अद्भुत भूतल पर परम आश्चर्यमें डालने वाला चरित्र जिसप्रकार हुआ है, उस को सुनो ॥ ३८ ॥ पहले इन मंकणक नामक सिद्ध ऋषिका हाथ कुशाकी नोकसे घायल होगया और उसमेंसे शाकका रस टपकने लगा, यह हमने सुना है ॥३९॥ ऋषि (१) घायल हुए

(१) इस चालीसवें श्लोकका तात्पर्य यह है, कि—सिद्ध पुरुषकी काया की ह्रास वृद्धि आदि परिणाम नहीं होता है, उसकी कायामें पहुँचे हुए अन्न का रस भी रुधिररूपमें न बदलकर वैसा ही बाहर निकल आता है, मंकणक ऋषि भी अपने हाथके घावमेंसे शाकके रसको ज्यों का त्यों निकलता देख अपनेको सिद्ध मानकर घमण्डसे नाचने कूदने लगे, तब शंकरने भी अपने हाथ

प्रनृत्तवान् । ततस्तस्मिन् प्रनृत्ते वै स्थावरं जङ्गमञ्च यत् ॥ ४० ॥ प्रनृत्तमुभयं वीरं तेजसा तस्य मोहितम् । ब्रह्मादिभिः सुरै राजन्नृषिभिश्च तपोधनैः ॥ ४१ ॥ विज्ञप्तो वै महादेव ऋषेरर्थे नराधिप । नायं नृत्येद्यथा देव तथा त्वं कर्त्तुमर्हसि ॥ ४२ ॥ ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव ह । सुराणां हितकामार्थं महादेवोऽभ्यभाषत ४३ भो भो ब्राह्मण धर्मज्ञ किमर्थं नृत्यते भवान् । हर्षस्थानं किमर्थं च तवेदमधिकं मुने ॥ ४४ ॥ तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम ॥ ४४ ॥ ऋषिरुवाच । किन्नपश्यसि मे ब्रह्मन् कराच्छाकरसं स्रुतम् ॥ ४५ ॥ दृष्ट्वा संप्रनृत्तो वै हर्षेण महता विभो । तं

हाथमेंसे शाकके रसको टपकता हुआ देखकर हर्षमें भरगये और नाचने कूदने लगे, हे वीर उनको नाचता कूदता देखकर स्थावर और जङ्गम दोनों प्रकारका जगत् भी उनके तेजसे मोहित होकर नाचने कूदने लगा, ब्रह्मा आदि देवताओंने और तपोधन ऋषियोंने मङ्कणक ऋषिके लिये महादेवजीकी प्रार्थना करके उनसे कहा, कि-हे देव ! आपको ऐसा करना चाहिये, कि-जिससे इनका नाचना बन्द होजाय ॥४०-४२॥ इस पर महादेवजीने हर्षमें भरे हुए मुनिकी ओरको देखकर देवताओंके हितके लिये उन ऋषिसे कहा, कि-॥४३॥ हे धर्मज्ञ ब्राह्मण ! आप किस लिये नाच रहे हैं ? हे मुने ! किस कारणसे आपको बडा भारी आनन्द मालूम होरहा है ? ॥ ४४ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! तुम तपस्वी और धर्ममार्गमें वर्त्तने वाले हो, ऋषिने कहा, कि-हे ब्रह्मन् ! मेरे हाथमेंसे टपकते हुए शाकके रसको क्या आप नहीं देख रहे हैं ॥ ४६ ॥ इस प्रकार शरीरमेंसे टपकते हुए शाकके रसको देखकर बड़े हर्षके साथ नाचते हुए और रागसे मोहमें पड़े हुए उन मुनिसे खिलखिला

ठेसे भस्म निकाली, उन्होंने अपनी उससे भी बड़ी सिद्धि दिखाकर ऋषिके गर्वको चूर्ण करदिया । अयज्जन्य होना देहकी बड़ी सिद्धि है और देहका भस्मरूप होजाना सो बड़ी सिद्धि है (नीलकंठी)

प्रहस्याब्रवीद्देवो मुनिं रागेण मोहितम् ॥ ४६ ॥ अहं न विस्मयं विप्र गच्छामीति प्रपश्य माम् । एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं महादेवेन धीमता ॥ ४७॥ अंगुल्यग्रेण राजेन्द्र स्वांगुष्ठस्ताडितोभवत् । ततो भस्म क्षताद्राजन्निर्गतं हिमसन्निभम् ॥ ४८ ॥ तद्द दृष्ट्वा व्रीडितो राजन् स मुनिः पादयोर्गतः । मेने देवं महादेवमिदञ्चोवाच विस्मितः ॥ ४९ ॥ नान्यं देवादहं मन्ये रुद्रात् परतरं महत् । सुरासुरस्य जगतो गतिस्त्वमसि शूलधृक् ॥ ५० ॥ त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्तीह मनीषिणः । त्वामेव सर्वं विशति पुनरेव युगक्षये ५१ देवैरपि न शक्यस्त्वं परिज्ञातुं कुतो मया । त्वयि सर्वे स्म दृश्यन्ते भावा ये जगति स्थिता ॥ ५२ ॥ त्वामुपासन्त वरदं देवा ब्रह्मादयोनघ । सर्वस्त्वमसि देवानां कर्त्ता कारयिता च ह ॥५३॥

कर हँसते हुए शङ्करने कहा, कि—॥ ४६ ॥ हे ब्राह्मण ! मुझे तो इसमें जरा भी आश्चर्य नहीं मालूम होता, तुम मेरी ओरको देखो, ऐसा श्रीमान् महादेवजीने मुनिराजसे कहकर अपनी अंगुलीके पोरुयेको अपने अंगूठे पर मारा, हे राजन् ! उसी समय अँगूठे मेंसे बरफकी समान भस्म झडने लगी ॥४७॥ ४८॥ हे राजन् ! उस भस्मको झडती हुई देख मुनि लज्जित होकर महादेवजीके चरणोंमें गिर पड़े और महादेवजीको देवतारूप मान उनसे आश्चर्यमें होकर कहने लगे, कि—॥ ४९ ॥ मैं रुद्रदेवके सिवाय दूसरेको महादेव नहीं मानता हूँ, हे देव ! शूलधारी आप देव, दानव और जगत्की गति हो ॥ ५० ॥ इस जगत्को तुमने रचा है, ऐसा विद्वान् कहते हैं और युगका नाश होने पर यह सब फिर तुममें ही प्रवेश कर जाता है ॥ ५१ ॥ देवता भी तुम्हें नहीं जानसकते फिर मैं तो जान ही क्या सकता हूँ ? जगत्में जो कुछ भी पदार्थ हैं वे सब तुममें ही दीखते हैं ॥ ५२ ॥ हे निर्दोष देव ! ब्रह्मादि देवता, वरदान देनेवाले आपकी उपासना करते हैं, तुम देवताओंके सर्वस्व हो, कर्त्ता और कारयिता हो ॥ ५३ ॥ सब देवता

त्वत्प्रसादात् सुराः सर्वे मोदन्तीहाकुतोभयाः । एवं स्तुत्वा महादेवं स ऋषिः प्रणतोभवत् ॥ ५४ ॥ यदिदञ्चापलं देव कृतमेतत् स्मयादिकम् । अतः प्रसादयामि त्वां तपो मे न क्षरेदिति ॥५५॥ ततो देवः प्रीतमनास्तमृषिं पुनरब्रवीत् । तपस्ते वर्द्धतां विप्र मत्प्रसादात् सहस्रधा ॥ ५६ ॥ आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सार्द्धमहं सदा । सप्तसारस्वते चास्मिन् यो मामर्च्चिष्यते नरः ॥ ५७ ॥ न तस्य दुर्ल्लभं किञ्चिद्भवितेह परत्र वा । सारस्वतञ्च ते लोकं गमिष्यन्ति न संशयः ॥ ५८ ॥ एतन्मङ्कणकस्यापि चरितं भूरितेजसः । स हि पुत्रः सुकन्यायामुत्पन्नो मातरिश्वना ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने अष्टत्रिंशोध्यायः ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन उवाच । उषित्वा तत्र रामस्तु संपूज्याश्रमवा-

आपकी कृपासे निर्भय होकर आनन्द भोगते हैं, इसप्रकार महादेवजीकी स्तुति करके उन ऋषिने प्रणाम किया ॥५४॥ फिर प्रार्थना की, कि-हे देव ! मैंने आज जो कुछ चपलता की है तथा हास्य आदि किया है उससे मेरा तप नष्ट न हो, इसके लिये मैं आपको प्रसन्न करता हूँ ॥ ५५ ॥ तदनन्तर महादेवजी मनमें प्रसन्न होकर उन ऋषिसे कहने लगे, कि-हे विप्र ! मेरे प्रसादसे तुम्हारा तप सहस्रगुणा बढ़ै ॥ ५६ ॥ मैं इस आश्रममें सदा तुम्हारे साथ निवास करूँगा और इस सप्तसारस्वत नामक तीर्थमें जो मनुष्य मेरी पूजा करेगा, उसको इस लोकमें अथवा परलोकमें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होगी और वे मनुष्य निःसन्देह सारस्वत नामक स्वर्गलोकमें अवश्य जायेंगे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ हे महाराज! महातेजस्वी मङ्कणक ऋषिका यह चरित्र मैंने तुम्हें सुनाया,वह ऋषि मातरिश्वासे सुकन्या नामकी स्त्रीमें उत्पन्न हुए थे, ॥ ५९ ॥ अट्ठतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥ छ ॥

वैशंपायन कहते हैं, कि-हे राजा जनमेजय! हलधर बलदेवजी

सिनः । तथा मङ्कणके प्रीतिं शुभाञ्चक्रे हलायुधः ॥ १ ॥ दत्वा दानं द्विजातिभ्यो रजनीं तामुपोष्य च । पूजितो मुनिसंघैश्च मातरुत्थाय लाङ्गली ॥ २ ॥ अनुज्ञाप्य मुनीन् सर्वान् स्पृष्ट्वा तोयञ्च भारत । प्रययौ त्वरितो रामस्तीर्थहेतोर्महाबलः ॥ ३ ॥ ततस्त्वौशनसं तीर्थमाजगाम हलायुधः । कपालमोचनं नाम यत्र मुक्तो महामुनिः ॥ ४ ॥ महता शिरसा राजन् ग्रस्तजंघो महोदरः । राक्षसस्य महाराज रामक्षिप्तस्य वै पुरा ॥ ५ ॥ तत्र पूर्वं तपस्तप्तं काव्येन सुमहात्मना । यत्रास्य नीतिरखिला प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ ६ ॥ यत्रस्थश्चिन्तयामास दैत्यदानवविग्रहम् । तत् प्राप्य च बलो राजंस्तीर्थप्रवरमुत्तमम् ॥७॥ विधिवद्धै ददौ वित्तं ब्राह्मणानां महात्मनाम् । जनमेजय उवाच । कपालमोचनं ब्रह्मन् कथं

ने, मङ्कणक ऋषिके ऊपर उत्तम प्रीति रखकर इस आश्रममें रहने वाले ऋषियोंकी पूजा की और एक रात निवास किया ॥ १ ॥ ब्राह्मणोंको दान देकर उस रातमें उपवास किया और दूसरे दिन प्रातःकालके समय मुनिमण्डलीसे सन्मान पाकर उस तीर्थके जलमें स्नान किया तथा वहाँके सब मुनियोंकी आज्ञा लेकर महावली बलरामजी तीर्थयात्राके लिये शीघ्रतासे आगेको चल दिये ॥ २ ॥३ ॥ तदनन्तर हलधर औशनस् तीर्थमें आपहुंचे, इसका नाम कपालमोचन भी है, हे राजन् ! पहले रामजीने एक राक्षसको मार कर फेंक दिया था, उसका बड़ाभारी मस्तक (कपाल) महामुनि महोदर की जाँघमें आकर लगा, इस तीर्थ उन मुनिने मुक्ति पाई थी, यहां ही पहले भृगुपुत्र महात्मा शुक्रने तपस्या करके अपनी संपूर्ण नीतिको प्रकट किया था ॥ ४—६ ॥ और पहले शुक्राचार्यने इस ही स्थानमें निवास कर के दैत्य और दानवोंके कलहके विषयमें विचार किया था, उस ही उत्तम तीर्थमें बलदेवजी गये और वहाँ महात्मा ब्राह्मणोंको

यत्र महामुनिः ॥ ८ ॥ मुक्तः कथञ्चास्य शिरो लग्नं केन च हेतुना । वैशम्पायन उवाच । पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेन महात्मना ॥ ९ ॥ वसता राजशार्दूल राक्षसान् शमयिष्यता । जनस्थाने शिरश्छिन्नं राक्षसस्य दुरात्मनः ॥१०॥ क्षुरेण शितधारेण उत्पपात महावने । महोदरस्य तल्लग्नं जंघायां वै यदृच्छया ११ वने विचरतो राजन्नस्थि भित्त्वास्फुरत्तदा । स तेन लग्नेन तदा द्विजातिर्न शशाक ह ॥ १२ ॥ अभिगन्तुं महाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानि च । स पूतिना विस्रवता वेदनार्त्तो महामुनिः ॥ १३ ॥ जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्याञ्चेति नः श्रुतम् । स गत्वा सरितः सर्वाः समुद्रांश्च महातपाः ॥ १४ ॥ कथयामास तत् सर्वमृषीणां

विधिपूर्वक उत्तम धनका दान दिया, जनमेजयने कहा, कि—हे ब्रह्मन् ! इस तीर्थका कपालमोचन नाम क्यों पड़ा ? इस स्थानमें राक्षसका मस्तक मुनिकी जंघामें क्यों लगा, और उससे मुनि की मुक्ति कैसे हुई, यह मुझे सुनाओ ? वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे राजसिंह जनमेजय ! पहले महात्मा रामचन्द्रजी दण्डकारण्यमें रहते थे, उस समय वह राक्षसों का संहार करते थे, एक दिन उन्होंने जनस्थानमें तेज की हुई धारवाले छुरेसे एक राक्षसका मस्तक काट डाला, वह मस्तक महाबनमें ऊपरको उड़कर दैवगतिसे महोदर मुनिकी जाँघमें आलगा और वह जांघकी हड्डीके टुकड़े करके जाँघमें ही चिपट गया, तब तो वह परमबुद्धिमान् मुनि तीर्थोंमें और देवस्थानोंमें यात्रा करनेको असमर्थ होगये, उनके घावमेंसे पीब बहने लगी, उसकी वेदनासे उन महामुनिको बड़ी पीड़ा होने लगी, परन्तु हमारे सुननेमें आया है; कि—उन महामुनिने कितना ही समय बीतजानेके अनन्तर पृथिवीके सब तीर्थोंमें यात्रा की थी, उन महातपस्वी मुनिने सब नदियों और सब समुद्रोंकी यात्रा करके तहाँ रहने वाले ऋषियोंसे अपना सब वृत्तान्त कहा था, तो भी उन

भावितात्मनाम् । आप्लुतः सर्वतीर्थेषु न च मोक्षमवाप्तवान् १५ स तु शुश्राव विप्रेन्द्र मुनीनां वचनं महत् । सरस्वत्यास्तीर्थवरं ख्यातमौशनसं तदा १६ सर्वपापप्रशमनं सिद्धक्षेत्रमनुत्तमम् । स तु गत्वा ततस्तत्र तीर्थमौशनसं द्विजः ॥१७॥ तत औशनसे तीर्थे तस्योपस्पृशतस्तदा । तच्छिरश्चरणं मुक्त्वा पपातान्तर्जले तदा ॥ १८ ॥ विमुक्तस्तेन शिरसा परं सुखमवाप ह । स चाप्यन्तर्जले मूर्द्धा जगामादर्शनं तदा ॥ १९ ॥ ततः स विशिरा राजन् पूतात्मा वीतकल्मषः । आजगामाश्रमं प्रीतः कृतकृत्यो महोदरः ॥२०॥ सोऽथ गत्वाश्रमं पुण्यं विप्रमुक्तो महातपाः । कथयामास तत्सर्वमृषीणां भावितात्मनाम् २१ ते श्रुत्वा वचनं तस्य ततस्तीर्थस्य मानद । कपालमोचनमिति नाम चक्रुः समागताः ॥ २२ ॥ स चापि तीर्थप्रवरं पुनर्गत्वा महानृषिः ।

मुनिकी जाँघमें चिपटा हुआ राक्षसका मस्तक जाँघमेंसे नहीं छूटा था ॥ ७—१५ ॥ उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने मुनियोंसे सरस्वतीके किनारे पर आने वाले औशनस् नामवाले प्रसिद्ध तीर्थकी कीर्त्ति सुनी ॥ १६ ॥ जब सब पापोंको शान्त करने वाले, सबसे उत्तम सिद्धिके क्षेत्ररूप औशनस् नामक तीर्थमें गये और तहां ज्यों ही स्नान किया, कि—उसी समय राक्षसका मस्तक मुनिकी जांघ मेंसे छूटकर जलके भीतर जापडा, ऋषिने उस मस्तकसे छूटनेके कारण परम सुख पाया और हे राजन् ! वह मस्तक जलमें गिर कर अदृश्य होगया ॥ १७—१९ ॥ हे राजन् ! पवित्रात्मा, पाप-रहित और कृतार्थ हुए महोदर मुनि राक्षसके मस्तकसे छूटजाने के कारण प्रसन्न हुए और अपने पवित्र आश्रममें आकर, पवित्र मनवाले ऋषियोंके सामने वह सब वृत्तान्त कहा ॥ २० ॥ २१ ॥ हे मान देनेवाले राजन् ! महोदर मुनिकी बात सुन सब ऋषियोंने इकट्ठे होकर उस तीर्थका कपालमोचन नाम रक्खा है ॥ २२ ॥ इसके बाद महर्षि महोदर फिर भी उस महातीर्थमें गये थे और उस तीर्थके पवित्र जलको पीकर सिद्धि पायी थी ॥ २३ ॥ उस

पीत्वा पयः सुविपुलं सिद्धिमाप्तवान्सदा मुनिः ॥ २३ ॥ तत्र दत्त्वा बहून् दायान् विप्रान् संपूज्य माधवः । जगाम वृष्णिप्रवरो रुपङ्गोराश्रमन्तदा ॥ २४ ॥ यत्र तप्तं तपो घोरमार्ष्टिषेणेन भारत । ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तत्र विश्वामित्रो महामुनिः ॥ २५ ॥ सर्वकामसमृद्धं वै तत्राश्रमपदं महत् । मुनिभिर्ब्राह्मणैश्चैव सेवितं सर्वदा विभो ॥ २६ ॥ ततो हलधरः श्रीमान् ब्राह्मणैः परिवारितः । जगाम तत्र राजेन्द्र रुषंगुस्तनुमत्यजत् ॥ २७॥ रुषंगुर्ब्राह्मणो वृद्धस्तपोनित्यश्च भारत । देहन्यासे कृतमना विचिन्त्य बहुधा तदा २८ ततः सर्वानुपादाय तनयान् वै महातपाः । रुषंगुरब्रवीत्तत्र नयध्वं मां पृथूदकम् ॥ २९ ॥ विज्ञायातीतवयसं रुषङ्गुं ते तपोधनाः तं च तीर्थमुपानिन्युः सरस्वत्यास्तपोधनम् ॥ ३० ॥ स तैः पुत्रै-

तीर्थमें बलदेवजीने ब्राह्मणोंका पूजन करके उनको बहुतसे पदार्थोंके दान दिये और फिर तहांसे रुषंगु मुनिके आश्रममें गये॥२४॥ हे भरतवंशी राजन् ! उस तीर्थमें आर्ष्टिषेणने महाघोर तप किया था और महामुनि विश्वामित्रने तहाँ ब्राह्मणपना पाया था ॥२५॥ हे राजन् ! वह महान् आश्रमस्थान सब कामनायें पूरी करनेवाला था और तहाँ मुनि तथा ब्राह्मण सदा रहते थे ॥२६॥ हे राजेन्द्र ! जिस आश्रममें रुषंगुने अपना देह त्याग दिया था, उस ही मेरे वर्णन किये हुए आश्रममें श्रीमान् बलदेवजी ब्राह्मणोंके साथ गये।२७। हे महाराज ! रुषंगु ब्राह्मण ब्रद्ध अवस्थाके और नित्य तपस्वी थे, उन्होंने बहुत दिनों तक देहको त्यागनेका विचार करके अपने सब पुत्रोंको अपने पास बुलाकर उनसे कहा, कि-तुम मुझे पृथूदक नामके तीर्थमें लेचलो ॥ २८ ॥ २९ ॥ उन तपोधन पुत्रोंने तपको धन माननेवाले रुषंगु मुनिको अत्यन्त वृद्ध अवस्थामें पहुँचे हुए जानकर सरस्वती नदीके पृथूदक नामक तीर्थ पर लेजानेका विचार किया ॥ ३० ॥ और उनके पुत्र बुद्धिमान् रुषंगु मुनिको ब्राह्मणोंसे भरपूर और सैकडों तीर्थवाली सरस्वती नदीके तट

स्तदा श्रीमानानीतो वै सरस्वतीम् । पुण्यां तीर्थशतोपेतां विप्रसंघैर्निषेविताम् ॥ ३१ ॥ स तत्र विधिना राजन्नाप्लुत्य सुमहातपाः । ज्ञात्वा तीर्थगुणांश्चैव प्राहेदमृषिसत्तमः ॥ ३२ ॥ सुप्रीतः पुरुषव्याघ्र सर्वान् पुत्रानुपासतः । सरस्वत्युत्तरे तीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ॥ ३३ ॥ पृथूदके जप्यपरो नैनं श्वो मरणं तपेत् । तत्राप्लुत्य स धर्मात्मा उपस्पृश्य हलायुधः ॥ ३४ ॥ दत्वा चैव बहून् दायान् विप्राणां विप्रवत्सलः । ससर्ज्ज यत्र भगवाँल्लोकांल्लोकपितामहः ॥ ३५ ॥ यत्रार्ष्टिषेणः कौरव्य ब्राह्मण्यं संशितव्रतः । तपसा महता राजन् प्राप्तवानृषिसत्तमः ॥ ३६ ॥ सिन्धुद्वीपश्च राजर्षिर्देवापिश्च महातपाः । ब्राह्मण्यं लब्धवान् यत्र विश्वामित्रस्तथा मुनिः ॥ ३७ ॥ महातपस्वी भगवानुग्रतेजाः

पर ले आये ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! उन महातपस्वी मुनिने तहां आकर सरस्वती नदीके जलमें विधिपूर्वक स्नान किया और तीर्थके गुणोंको जानकर उन महर्षिने बड़े प्रसन्न होते हुए अपनी सेवा करनेवाले अपने पुत्रोंसे कहा, कि-सरस्वती नदीके उत्तरके किनारे पर पृथूदक नामक तीर्थमें जो पुरुष गायत्री आदि मन्त्रों का जप करता हुआ अपने देहको त्यागेगा, उसको फिर दुसराकर मरणका दुःख नहीं मिलेगा और वह स्वर्गमें चला जायगा, उस पवित्र तीर्थमें धर्मात्मा हलधर बलदेवजीने स्नान किया॥३२॥ ॥ ३४ ॥ और ब्राह्मणोंके ऊपर वत्सलता रखनेवाले बलदेवजी ने ब्राह्मणोंको बहुत से दान दिये, फिर हे राजन् ! जहाँ पर पितामह ब्रह्माजीने लोकोंकी रचना की थी तथा जहां उत्तम आचरण वाले परमतपस्वी आर्ष्टिषेणने बड़ी भारी तपश्चर्या की थी तथा राजर्षि सिन्धुद्वीप, महातपस्वी देवापि और महायशा परमतपस्वी उग्रतेजा भगवान् विश्वामित्रने जहाँ ब्राह्मणपना पाया था, उस

महातपाः । तत्राजगाम बलवान् बलभद्रः प्रतापवान् ॥३८॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

जनमेजय उवाच । कथमार्ष्टिषेणो भगवान् विपुलं तप्तवांस्तपः। सिन्धुद्वीपः कथं चापि ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तदा ॥ १ ॥ देवापिश्च कथं ब्रह्मन् विश्वामित्रश्च सत्तम । तन्ममाचक्ष्व भगवन् परं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । पुरा कृतयुगे राजन्नार्ष्टिषेणो द्विजोत्तमः । वसन् गुरुकुले नित्यं नित्यमध्ययने रतः ॥३॥ तस्य राजन् गुरुकुले वसतो नित्यमेव च। समाप्तिं नागमाद्विद्या नापि वेदा विशाम्पते ॥४॥ स निर्विण्णस्ततो राजंस्तपस्तेपे महातपाः । ततो वै तपसा तेन प्राप्य वेदाननुत्तमान् ॥ ५ ॥ स विद्वान् वेदयुक्तश्च सिद्धश्चाप्यृषिसत्तमः । तत्र तीर्थे वरान् प्रादात्त्रीनेव

पवित्रतीर्थमें बलवान् और प्रतापी बलदेवजी आये ॥ ३५-३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥ छ ॥

जनमेजयने बूझा, कि-हे वैशम्पायनजी ! भगवान् आर्ष्टिषेण मुनिने बड़ा भारी तप किसप्रकार किया था ? और सिन्धुद्वीपने उस समय ब्राह्मणपना कैसे पाया था ? ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! देवापि और मुनिवर विश्वामित्रने भी ब्राह्मणपना कैसे पाया था, यह मुझे सुनाइये, हे भगवन् ! यह सब सुननेके लिये मुझे बड़ी उत्कण्ठा है ॥ २ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि-हे राजन् ! पहले सत्ययुगके समयमें आर्ष्टिषेण नामके एक श्रेष्ठ ब्राह्मण नित्य गुरुके घर रहकर निरन्तर वेद पढ़नेमें लगे रहते थे ॥३॥ हे राजन् ! नित्य गुरुके घर रहकर वेदाध्ययन करनेपरभी उनकी न विद्याही समाप्त हुई और न वेदोंका ही अभ्यास पूरा हुआ ॥ ४ ॥ तब उन महातपस्वीके मनमें बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने तप करके सबसे श्रेष्ठ वेद प्राप्त किये ॥ ५ ॥ और वह विद्वान् तथा सिद्ध होकर ऋषियोंमें श्रेष्ठ और वेदवेत्ता कहलाने लगे, उन महातप-

सुमहातपाः ॥ ६ ॥ अस्मिंस्तीर्थे महानद्या अद्य प्रभृति मानवः ।
आप्लुतो वाजिमेधस्य फलं प्राप्स्यति पुष्कलम् ॥७॥ अद्यप्रभृति
नैवात्र भयं व्यालाद्भविष्यति । अपि चाल्पेन कालेन फलं प्रा-
प्स्यति पुष्कलम् ॥८॥ एवमुक्त्वा महातेजा जगाम त्रिदिवं मुनिः।
एवं सिद्धः स भगवानार्ष्टिषेणः प्रतापवान् ॥ ९ ॥ तस्मिन्नेव
तदातीर्थे सिन्धुद्वीपः प्रतापवान् । देवापिश्च महाराज
ब्राह्मण्यं प्रापतुर्महत् ॥ १० ॥ तथा च कौशिकस्तात तपोनित्यो
जितेन्द्रियः । तपसा वै सुतप्तेन ब्राह्मणत्वमवाप्तवान् ॥ ११ ॥
गाधिर्नाम महानासीत् क्षत्रियः प्रथितो भुवि । तस्य पुत्रोऽभवद्रा-
जन् विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥ १२ ॥ स राजा कौशिकस्तात
महायोग्यभवत् किल । स पुत्रमभिषिच्याथ विश्वामित्रं महा-
तपाः ॥ १३ ॥ देहन्यासे मनश्चक्रे तमूचुः प्रणताः प्रजाः । न

स्त्रीने उस तीर्थमें तीन वर देते हुए कहा, कि—॥ ६ ॥ आज से जो कोई मनुष्य इस तीर्थमें आकर इस महानदीके जलमें स्नान करेगा उसको अश्वमेध यज्ञका बडा भारी फल प्राप्त होगा ॥ ७ ॥ आजसे लेकर इस तीर्थमें सर्पका भय भी नहीं होगा, और मनुष्य यहाँ थोड़े ही समयमें बहुत सा फल पाजायगा ।८। ऐसा कहकर महातेजस्वी मुनि स्वर्गको चलेगये, वह प्रतापी भगवान् आर्ष्टिषेण इसप्रकार सिद्ध हुए थे ॥ ९ ॥ हे महाराज ! उस समय उस ही तीर्थमें प्रतापी सिन्धुद्वीप और देवापि इन दोनोंने महान् ब्राह्मणपना पाया था ॥ १० ॥ हे तात ! ऐसे ही नित्य तप करनेवाले जितेन्द्रिय कुशिकवंशी विश्वामित्रने भी बडीभारी तपस्या करके ब्राह्मणपना पाया था ॥ ११ ॥ पृथिवी पर एक गाधि नामसे परम प्रसिद्ध क्षत्रिय राजा राज्य करता था हे राजन् ! प्रतापी विश्वामित्र उसके ही पुत्र थे ॥ १२ ॥ हे तात! वह कुशिकवंशी गाधि राजा महायोगी था, उस महातपस्वीने अपने पुत्र विश्वामित्रको राजसिंहासन देकर देहको त्यागनेका

गन्तव्यं महाप्राज्ञ त्राहि चास्मान्महाभयात् ॥ १४ ॥ एवमुक्तः
प्रत्युवाच ततो गाधिः प्रजास्ततः । विश्वस्य जगतो गोप्ता भविष्यति
सुतो मम ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वा तु ततो गाधिर्विश्वामित्रं निवेश्य च ।
जगाम त्रिदिवं राजन् विश्वामित्रोऽभवन्नृपः ॥ १६ ॥ न स
शक्नोति पृथिवीं यत्नवानपि रक्षितुम् । ततः शुश्राव राजा स
राक्षसेभ्यो महाभयम् ॥ १७ ॥ निर्ययौ नगराच्चापि चतुरङ्ग-
बलान्वितः । स यात्वा दूरमध्वानं वशिष्ठाश्रममभ्ययात् ॥ १८ ॥
तस्य ते सैनिका राजंश्चक्रुस्तत्रानयान् बहून् । ततस्तु भगवान्
विप्रो वशिष्ठाश्रममभ्ययात् ॥ १९ ॥ ददृशेऽथ ततः सर्वं भज्यमानं
महावनम् । तस्य क्रुद्धो महाराज वशिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ २० ॥

बिचार किया, उस समय प्रजाओंने प्रणाम करके राजासे कहा, कि–हे महाप्राज्ञ ! आप वनमें न जाइये, महाभयसे हमारा रक्षा करिये ॥ १३ ॥ १४ ॥ प्रजाके ऐसा कहने पर गाधिराजाने उनको उत्तर दिया, कि–मेरा पुत्र सकल जगत्‌का रक्षक होगा ॥१५॥ हे राजन् ! गाधिने ऐसा कहकर राजसिंहासन पर विश्वामित्रका अभिषेक कर दिया और स्वर्गको चला गया, विश्वामित्र राजा होगये ॥ १६ ॥ विश्वामित्र यत्न करने पर भी पृथिवीकी रक्षा न कर सके और उन राजा विश्वामित्रने सुना, कि–मुझे राक्षसोंसे वडा भारी भय आनेवाला है ॥ १७ ॥ ऐसा सुनकर वह चतुरङ्गिणी सेनाके साथ नगरमेंसे निकल आये और बहुत दूर तक मार्ग चलकर वशिष्ठजीके आश्रममें आपहुँचे ॥ १८ ॥ उस समय उनके सैनिकोंने उस आश्रममें बड़े ही उत्पात किये, इतनेमें ही ऋषि बशिष्ठजी कहींसे आश्रममें आपहुँचे ॥ १९ ॥ और उन्होंने अपना बड़ाभारी वन चारों ओरसे नष्ट भ्रष्ट किया हुआ देखा तब तो हे महाराज ! मुनिराज वशिष्ठजीको बड़ा ही क्रोध आया ॥ २० ॥ और उन्होंने अपनी कामधेनुसे कहा, कि

सृजस्व शबरान् घोरानिति स्वां गामुवाच ह । तथोक्ता साऽसृजद्धेनुः पुरुषान् घोरदर्शनान् ॥२१॥ ते च तद्बलमासाद्य बभञ्जुः सर्वतो दिशम् । तच्छ्रुत्वा विद्रुतं सैन्यं विश्वामित्रस्तु गाधिजः ॥ २२ ॥ तपः परं मन्यमानस्तपस्येव मनो दधे । सोऽस्मिंस्तीर्थवरे राजन् सरस्वत्याः समाहितः ॥ २३ ॥ नियमैश्चोपवासैश्च कर्षयन्देह-मात्मनः । जलाहारो वायुभक्ष्यः पर्णाहारश्च सोऽभवत् ॥ २४ ॥ तथा स्थंडिलशायी च ये चान्ये नियमाः पृथक् । असकृत्तस्य देवा-स्तु व्रतविघ्नं प्रचक्रिरे ॥ २५ ॥ न चास्य नियमाद् बुद्धिरपयाति कदाचन । ततः परेण यत्नेन तप्त्वा बहुविधं तपः ॥ २६ ॥ तेजसा भास्कराकारो गाधिजः समपद्यत । तपसा तु तथा युक्तं विश्वामित्रं पितामहः ॥ २७ ॥ अमन्यत महातेजा वरदो वरमस्य

तू घोर शबरोंको उत्पन्न कर, इतना कहते ही उस धेनुने भयानक दीखनेवाले पुरुषोंको उत्पन्न कर दिया ॥ २१ ॥ वे विश्वामित्रकी सेनाके ऊपर चढ़ायी करके चारों ओरसे उस सेना-को मारने लगे और गाधितनय विश्वामित्रने सुना कि—मेरी सेना घबड़ाकर भाग रही है ॥ २२ ॥ इससे उन्होंने समझा, कि—तपका बड़ा भारी प्रभाव है, तब तो उन्होंने भी तप करनेका विचार किया और हे राजन्! वह सरस्वतीके इस उत्तम तीर्थ में ही सावधान होकर ॥ २३ ॥ नियमों और उपवासोंके द्वारा अपने शरीरको कृश करते हुए कभी जलका आधार, कभी वायु का आहार और कभी पत्तोंका भोजन करके समयको विताने लगे ॥ २४ ॥ खुले मैदानकी भूमिमें सोने लगे तथा और भी अनेकों नियमोंका पालन करने लगे, यह देख देवता राजाके व्रतमें वार वार विघ्न करने लगे ॥ २५ ॥ परन्तु इस महात्माका विचार नियमोंके पालनसे नहीं हटा और फिर बड़े यत्न से अनेकों प्रकारका तप करके ॥ २६ ॥ गाधिनन्दन विश्वामित्र तेजसे सूर्यकी समान तेजस्वी होगये, ऐसे तपस्वी विश्वामित्रको

तत् । स तु वव्रे वरं राजन् स्यामहं ब्राह्मणस्त्विति ॥ २८ ॥ तथेति चाब्रवीद् ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः । स लब्ध्वा तपसोग्रेण ब्राह्मणत्वं महायशाः ॥ २९ ॥ विचचार महीं कृत्स्नां कृतकामः सुरोपमः । तस्मिंस्तीर्थवरे रामः प्रदाय विविधं वसु ॥ ३० ॥ पयस्विनीस्तथाधेनूर्यानानि शयनानि च । अथ वस्त्राण्यलङ्कारं भक्ष्यं पेयञ्च शोभनम् ॥ ३१ ॥ अददन्मुदितो राजन् पूजयित्वा द्विजोत्तमान् । ययौ राजंस्ततो रामो वकस्याश्रममन्तिकात् ॥ ३२ ॥ यत्र तेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो वक इति श्रुतिः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वततीर्थोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

वैशम्पायन उवाच । ब्रह्मयोनैरवाकीर्णं जगाम यदुनन्दनः । यत्र दाल्भ्यो वको राजन्नाश्रमस्थो महातपाः ॥ १ ॥ जुहाव धृतराष्ट्रस्य

वरदान देनेवाले महातेजस्वी ब्रह्माजीने वरदानके योग्य मानकर कहा, वर माँग, हे राजन् ! तब विश्वामित्रने 'मैं ब्राह्मण होजाऊँ' यह वरदान माँगा ॥ २७ ॥ २८ ॥ इस पर सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने कहा, कि–' तथास्तु ' इसप्रकार महायशस्वी विश्वामित्र कठिन तपस्यासे ब्राह्मणपना पाकर कृतकृत्य और देवताओंकी समान होगये तथा सब पृथिवी पर विचरने लगे, उस ही तीर्थमें बलदेवजीने वेदवेत्ता ब्राह्मणोंकी पूजा करके उनको अनेकों प्रकारका धन दुधेर गौएँ, सवारियें, शय्याएँ, वस्त्र, गहने, खानेके पदार्थ और पीनेके सुन्दर पदार्थ प्रसन्न होकर दिये, फिर तहाँसे समीपमें ही वक मुनिके आश्रममें गए, इस आश्रममें रह कर वकदाल्भ्य नामके मुनिने तीव्र तप किया था, ऐसा सुननेमें आया है ॥ २९–३३ ॥ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥

वैशम्पायनने कहा, कि–हे राजा जनमेजय! यदुनन्दन बलदेवजी ब्राह्मणपना प्राप्त करानेवाले तीर्थमेंसे अवकीर्ण नामके तीर्थमें गये, इस आश्रममें वकदाल्भ्य नामके महातपस्वी ॥ १ ॥ प्रतापी और

राष्ट्रं वैचित्रवीर्य्यिणः । तपसा घोररूपेण कर्षयन् देहमात्मनः २
क्रोधेन महताविष्टो धर्मात्मा वै प्रतापवान् । पुरा हि नैमिषीयाणां
सत्रे द्वादशवार्षिके ॥३॥ वृत्ते विश्वजितोन्ते वै पञ्चालानृपयोगमन् ।
तत्रेश्वरमयाचन्त दक्षिणार्थं मनीषिणः ॥ ४ ॥ बलान्वितान् वत्स-
तरान्निर्व्याधीनेकविंशतिम् । तानब्रवीद्वको दाल्भ्यो विभजध्वं
पशूनिति ॥ ५ ॥ पशूनेतानहं त्यक्त्वा भिक्षिष्ये राजसत्तमम् ।
एवमुक्त्वा ततो राजन्नृषीन् सर्वान् प्रतापवान् ॥ ६ ॥ जगाम
धृतराष्ट्रस्य भवनं ब्राह्मणोत्तमः । स समीपगतो भूत्वा धृतराष्ट्रं जने-
श्वरम् ॥ ७ ॥ अयाचत् पशून् दाल्भ्यः स चैनं रुषितोब्रवीत् ।
यदृच्छया मृता दृष्ट्वा गास्तदा नृपसत्तमः ॥ ८ ॥ एतान् पशून्नय
क्षिप्रं ब्रह्मबन्धो यदीच्छसि । ऋषिस्त्वथ वचः श्रुत्वा चिन्तयामास
धर्मवित् ॥ ९ ॥ अहो बत नृशंसं वै वाक्यमुक्तोस्मि संसदि ।

धर्मात्मा ऋषि बड़े क्रोधमें भरकर घोर तपस्यासे अपने शरीरको सुखा रहे थे, इसका कारण यह था, कि--पहले नैमिषारण्यके निवासी ऋषियोंने बारह वर्ष तक चलता रहे, ऐसे बड़े भारी यज्ञका आरम्भ किया था, उस यज्ञकी पूर्णाहुति होजाने पर वे विचारवान् ऋषि विश्वका विजय करनेवाले पंचालोंके पास गये और उनके राजासे दक्षिणाके लिये बलवती और नीरोग इक्कीस बछियें माँगी, वे उन ऋषियोंको मिल गई तब वकदाल्भ्यने उन सब ऋषियोंसे कहा, कि-इनको तुम ही बाँट लो ॥ २-५ ॥ मैं इन बछियोंको छोड़ता हूँ, किसी बड़े राजासे मैं और गौएँ माँग लाऊँगा, हे राजन! सब ऋषियोंसे ऐसा कहकर प्रतापी वकदाल्भ्य ऋषि राजा धृतराष्ट्रके राजमहलमें गये ॥ ६ ॥ ७ ॥ और राजा धृतराष्ट्रसे गौओंकी याचना की, दैवगतिसे उस समय जो गौएँ मर गई थीं उनको देखकर राजा धृतराष्ट्रने क्रोधमें होकर वकदाल्भ्यसे कहा, कि-हे ब्रह्मबन्धो ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इन गौओंको ले जाइये, धर्मके ज्ञाता ऋषि राजाकी इस बातको सुन

चिन्तयित्वा मुहूर्त्तन्तु रोषाविष्टो द्विजोत्तमः ॥ १० ॥ मतिञ्चक्रे विनाशाय धृतराष्ट्रस्य भूपतेः । सतूत्कृत्य मृतानां वै मांसानि मुनिसत्तमः ॥ ११ ॥ जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेः पुरा । अवकीर्णे सरस्वत्यास्तीर्थे प्रज्वाल्य पावकम् ॥ १२ ॥ बको दाल्भ्यो महाराज नियमं परमंस्थितः । स तैरेव जुहावास्य राष्ट्रं मांसैर्महातपाः ॥ १३ ॥ तस्मिंस्तु विधिवत् सत्रे संप्रवृत्ते सुदारुणे । अक्षीयत ततो राष्ट्रं धृतराष्ट्रस्य पार्थिव ॥ १४ ॥ ततः प्रक्षीयमाणन्तद्राष्ट्रन्तस्य महीपतेः । छिद्यमानं यथानन्तं वनं परशुना विभो १५ बभूवापद्गतं तच्च व्यपकीर्णमचेतनम् । दृष्ट्वा तथावकीर्णन्तु राष्ट्रं स मनुजाधिपः ॥ १६ ॥ बभूव दुर्मना राजंश्चिन्तयामास च

कर विचार करने लगे, कि—॥ ८ ॥ ९ ॥ ओः ! इस राजाने बीच सभामें मुझसे अपमानकी बात कही है, इसप्रकार जरा देर विचार करके उन श्रेष्ठ ब्राह्मण वकदाल्भ्यको क्रोध चढ़ आया ॥ १० ॥ और उन्होंने राजा धृतराष्ट्रके राज्यका नाश करडालने का विचार किया और उन मरी हुई गौओंको लेकर वह मुनि हस्तिनापुरसे अपने आश्रममें आगये तथा सरस्वती नदीके अवकीर्ण तीर्थमें अग्निको प्रज्वलित करके उसमें मरी हुई गौओंका मांस काट काट कर धृतराष्ट्रके राज्यका नाश करनेके लिये होम करने लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे महाराज ! बड़े भारी तपस्वी वकदाल्भ्य मुनि, बड़े भारी नियममें रहकर धृतराष्ट्रके राज्यका नाश करनेके लिये उन मरी हुई गौओंके मांससे होम करने लगे ॥ १३ ॥ ऐसे महादारुण यज्ञका ज्यों ही विधिविधानसे आरंभ हुआ, कि—धृतराष्ट्रके राज्यका भी क्षय होने लगा ॥ १४ ॥ हे महाराज ! जैसे कुल्हाड़ेसे महावनके नाशका आरम्भ होता है तैसे ही राजा धृतराष्ट्रका राज्य भी क्षीण होने लगा ॥ १५ ॥ देशके लोग विपत्तिमें पड़ गये, मोहमें पड़कर अचेत होगये, राजा धृतराष्ट्र देशकी ऐसी छिन्न भिन्न दशाको देख उदास होकर मन

प्रभुः । मोक्षार्थमकरोद् यत्नं ब्राह्मणैः सहितः पुरा ॥ १७ ॥
न च श्रेयोभ्यगच्छत् स क्षीयते राष्ट्रमेव च । यदा स पार्थिवः खि-
न्नस्ते च विप्रास्तदानघ ॥ १८ ॥ यदा चापि न शक्नोति राष्ट्रं
मोक्षयितुं नृपः । अथ वै प्राश्निकांस्तत्र पप्रच्छ जनमेजय ॥ १९॥
ततो वै प्राश्निकाःप्राहुः पशुं विप्रकृतस्त्वया। मांसैरभिजुहोतीति तव
राष्ट्रं मुनिर्वकः ॥ २० ॥ तेन ते हूयमानस्य राष्ट्रस्यास्य क्षयो
महान् तस्यैतत्तपसः कर्म येन ते ह्यनयो महान्॥२१ ॥ अपां कुञ्जे
सरस्वत्यास्तं प्रसादय पार्थिव । सरस्वतीं ततो गत्वा स राजा
वक्रमब्रवीत् ॥ २२ ॥ निपत्य शिरसः भूमौ प्राञ्जलिर्भरतर्षभ ।
प्रसादये त्वां भगवन्नपराधं क्षमस्व मे ॥ २३ ॥ मम दीनस्य

में विचार करने लगा, कि–इसका क्या कारण है ? और देशको दुःखमेंसे छुटानेके लिये ब्राह्मणोंको साथ लेकर उसका यत्न करने लगा ॥ १६ ॥ १७ ॥ वे देशकी रक्षा न कर सके, किन्तु देशका नाश होता ही चला गया, हे राजन् ! जब वह राजा और ब्राह्मण उदास होगये, तथा देशको दुःखमेंसे न छुटा सके तब हे जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्रने प्रश्नका उत्तर देनेवाले ब्राह्मणासे देशके क्षयके विषयमें प्रश्न किया ॥ १८ ॥ १९ ॥ इस पर ज्योतिषियोंने कहा, कि–आपने जो गौएँ मांगनेको आये हुए वक मुनिका अपमान किया है, वह वक मुनि तुम्हारे राज्यका नाश करनेके लिये मरी हुई गौओंके मांससे होम कर रहे हैं ॥ २०॥ वकदाल्भ्य मुनि सरस्वती नदीके किनारे पर बैठकर घोर तप कर रहे हैं और तुम्हारे राज्यका नाश करनेके लिये अग्निमें होम कर रहे हैं, इसीलिये तुम्हारे देशका बडा भारी क्षय होने लगा है, इसकारण तुम उन मुनिको प्रसन्न करो, यह सुन कर राजा धृतराष्ट्र तहाँ गया और दोनों हाथ जोडकर पृथिवी पर लेट मस्तकसे प्रणाम करके मुनिसे कहने लगा, कि–हे भगवन् ! मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ, मेरे अपराधको आप क्षमा करिये २१-२३

लुब्धस्य मौर्ख्येण हतचेतसः । त्वं गतिस्त्वञ्च मे नाथः प्रसादं कर्त्तुमर्हसि ॥ २४ । तन्तथा विलपन्तन्तु शोकोपहतचेतसम् । दृष्ट्वा तस्य कृपा जज्ञे राष्ट्रं तस्य व्यमोचयत् ॥ २५ ॥ ऋषिः प्रसन्नस्तस्याभूत् संरम्भञ्च विहाय सः । मोक्षार्थं तस्य राष्ट्रस्य जुहाव पुनराहुतिम् ॥ २६ ॥ मोक्षयित्वा ततो राष्ट्रं प्रतिगृह्य पशून् बहून् । हृष्टात्मा नैमिषारण्यं जगाम पुनरेव सः ॥ २७ ॥ धृतराष्ट्रोऽपि धर्मात्मा स्वस्थचेता महामनाः । स्वमेव नगरं राजा प्रतिपेदे महर्द्धिमत् ॥ २८ ॥ तत्र तीर्थे महाराज बृहस्पतिरुदारधीः । असुराणामभावाय भवाय च दिवौकसाम् ॥ २६ । मांसैरभिजुहावेष्टिमक्षीयन्त ततोऽसुराः । दैवतैरपि संभग्ना जितकाशिभिराहवे ३० तत्रापि विधिवद्दत्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः । वाजिनः कुञ्जरांश्चैव

मैं दीन, लोभी और मूर्खतासे विचारशून्य हूँ तुम ही मेरे रक्षक और नाथ हो, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥ २४ ॥ इसप्रकार धृतराष्ट्रको विलाप करता हुआ तथा शोकसे खिन्नचित्त देख कर वक मुनिको उसके ऊपर दया आगयी और उन्होंने उसके राज्यको क्षयके दुःखसे छुटानेके लिये फिर अग्निमें आहुतिका होम करके उसके देशको दुःखसे छुडाया और उससे बहुत सी गौएँ लेकर मनमें प्रसन्न होते हुए फिर नैमिषारण्यमें चले गये ॥ २५-२७ ॥ और हे राजन् ! तदनन्तर धर्मात्मा तथा उदार मनवाला राजा धृतराष्ट्र भी शान्त चित्तसे फिर अपने समृद्धिवाले नगरमें आया ॥ २८ ॥ हे महाराज ! इस ही तीर्थमें उदारबुद्धि वाले बृहस्पतिने असुरोंका नाश करनेके लिये और देवताओंकी उन्नतिके लिये मांसका होम किया था, उससे ही असुरों का संहार हुआ था, युद्धमें विजय होनेसे शोभायमान दीखने दीखने वाले देवताओंने रणमें असुरोंका नाश किया था २६-३० हे राजन् ! ऐसे इस तीर्थमें बड़े यशस्वी बलदेवजी ने

रथांश्चाश्वतरीयुतान् ॥ ३१ ॥ रत्नानि च महार्हाणि धनं धान्यं च पुष्कलम् । ययौ तीर्थं महाबाहुर्यायातं पृथिवीपते ॥ ३२ ॥ तत्र यज्ञे ययातेस्तु महाराज सरस्वती । सर्पिः पयश्च सुस्राव नाहुषस्य महात्मनः ॥ ३३ ॥ तत्रेष्ट्वा पुरुषव्याघ्रो ययातिः पृथिवीपतिः । आक्रामदूर्ध्वं मुदितो लेभे लोकांश्च पुष्कलान् ॥ ३४ ॥ पुनस्तत्र च राज्ञस्तु ययातेर्यजतः प्रभो । औदार्यं परमं कृत्वा भक्तिं चात्मनि शाश्वतीम् ॥ ३५ ॥ ददौ कामान् ब्राह्मणेभ्यो यान् यान् यो मनसेच्छति । यो यत्र स्थित एवेह आहूतो यज्ञसंस्तरे ३६ तस्य तस्य सरिच्छ्रेष्ठा गृहादिशयनादिकम् । षड्रसं भोजनञ्चैव दानं नानाविधं तथा ॥ ३७ ॥ ते मन्यमाना राज्ञस्तु सम्प्रदानमनुत्तमम् । राजानं तुष्टुवुः प्रीता ददुश्चैवाशिषः शुभाः ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक घोड़े, हाथी, खच्चरोंसे जुते रथ, बड़े मूल्य के हीरे माणिक आदि रत्न, बहुत सा धन, बहुत सा अन्न, आदि दिया, महाबाहु बलदेवजी तहाँसे चलकर यायात नामके तीर्थमें गये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! उस तीर्थ पर ययातिके यज्ञमें सरस्वती नदीने माहात्मा ययातिके लिये घी और दूधके प्रवाह चलाये थे ॥ ३३ ॥ और राजा ययाति उस तीर्थमें यज्ञ कर के बड़े हर्षके साथ स्वर्गलोकमें तथा दूसरे अनेकों पवित्र लोकोंमें गया था ३४ सरस्वती नदी यज्ञ करने वाले राजा ययातिकी परम उदारताको देख कर तथा अपने ऊपर सनातन भक्तिको देख कर जो जो ब्राह्मण अपने मनमें जिस २ कामनाको करते थे उन२ ब्राह्मणोंकी उस२ कामनाको पूर्ण करती थी और यज्ञमें निमंत्रण दियेहुए जो २ ब्राह्मण जहाँ २ रहते थे. तहाँ सरस्वती नदी उनको; रहनेके लिये घर, सोनेके लिये बिछेहुए पलँग, छहोंरसों के भोजन तथा अनेकों प्रकारके दान देती थी ॥ ३५-३७ ॥ और ब्राह्मणभी ययातिके दानको सबसे उत्तम मानकर उसकी प्रशंसा करते थे तथा शुभ आशीर्वाद देते थे, ऐसेही देवता और

तत्र देवाः सगन्धर्वाः प्रीता यज्ञस्य सम्पदा । विस्मिता मानुषाश्चासन् दृष्ट्वा तां यज्ञसम्पदम् ॥ ३६ ॥ ततस्तालकेतुर्महाधर्मकेतुर्महात्मा कृतात्मा महादाननित्यः । वशिष्ठापवाहं महाभीमवेगं धृतात्मा जितात्मा समभ्याजगाम ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि सारस्वतो-
पाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

जनमेजय उवाच । वशिष्ठस्यापवाहोसौ भीमवेगः कथं नु सः । किमर्थं च सरिच्छ्रेष्ठा तमृषिं प्रत्यवाहयत् ॥ १ ॥ कथमस्याभवद्वैरं कारणं किञ्च तत् प्रभो । शंस पृष्टो महाप्राज्ञः न हि तृप्यामि कथ्यति ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । विश्वामित्रस्य विप्रर्षेर्वसिष्ठस्य च भारत । भृशं वैरमभूद्राजंस्तपस्पर्द्धाकृतं महत् ॥ ३ ॥ आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थेभवन्महान् । पूर्वतः पार्श्वतस्त्वासीद्विश्वा-

---

गन्धर्व ययातिके यज्ञकी सम्पदाको देखकर प्रसन्न होगये और मनुष्य तो ययातिके यज्ञको देखकर आश्चर्यमें डूबगये थे ३८-३६ धर्मकी बड़ी भारी ध्वजारूप, ध्वजामें ताड़का चिन्ह धारण करने वाले तथा नित्य बड़े २ दान देनेवाले महात्मा बलदेवजीने उस तीर्थमें बड़े २ दान दिये, फिर वहाँसे चलकर महाभयङ्कर बड़े वेग वाले वशिष्ठापवाह नामक तीर्थमें आये ॥ ४० ॥ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥　　॥ छ ॥

जनमेजयने बूझा, कि- हे वैशंपायनजी! वशिष्ठापवाह नामक तीर्थका वेग भयानक क्यों है? और महानदी सरस्वती वशिष्ठजी को बहाकर क्यों लेगयी थी? ॥ १ ॥ वशिष्ठका विश्वामित्रके साथ वैर क्यों हुआ था? हे महाबुद्धिमान् विप्र! वह तुम मुझे सुनाओ, आपकी कथाको सुननेसे मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ २ ॥ वैशंपायनने कहा, कि–हे भरतवंशी राजन्! विश्वामित्र और ब्रह्मर्षि वशिष्ठजीमें तपके लिये स्पर्धा होनेके कारण वैर होगया था ॥ ३ ॥ स्थाणु तीर्थमें वशिष्ठजीका बड़ा भारी आश्रम था और पूर्वकी

मित्रस्य धीमतः ॥ ४ ॥ यत्र स्थाणुर्महाराज तप्तवान् सुमहत्तपः । तत्रास्य कर्म तद्व घोरं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ५ ॥ यत्रेष्ट्वा भगवान् स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीम् । स्थापयामास तत्तीर्थं स्थाणुतीर्थमिति प्रभो ॥ ६ ॥ तत्र तीर्थे सुराः स्कन्दमभ्यषिञ्चन् नराधिप । सैनापत्येन महता सुरारिविनिवर्हणम् ॥ ७ ॥ तस्मिन् सारस्वते तीर्थे विश्वामित्रो महामुनिः । वशिष्ठञ्चालयामास तपसोग्रेण तच्छृणु ॥८ विश्वामित्रवसिष्ठौ तावहन्यहनि भारत । स्पर्द्धां तपःकृतां तीव्रां चक्रतुस्तौ तपोधनौ ॥ ९ ॥ तत्राप्यधिकसन्तप्तो विश्वामित्रो महामुनिः । दृष्ट्वा तेजो वशिष्ठस्य चिन्तामभिजगाम ह ॥ १० ॥ तस्य बुद्धिरियं ह्यासीद्धर्मनित्यस्य भारत । इयं सरस्वती तूर्णं मत्समीपं तपोधनम् ॥ ११ ॥ आनयिष्यति वेगेन वशिष्ठं तपताम्वरम् ।

ओर समीपमें ही बुद्धिमान् विश्वामित्रका आश्रम था ॥ ४ ॥ हे महाराज! जिस आश्रममें स्थाणु (महादेव) ने परम तप किया था, उसही आश्रममें विश्वामित्रजीने घोर तप किया था ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥ ५ ॥ हे राजन्! भगवान् शङ्करने यज्ञ करनेके अनन्तर सरस्वतीका पूजन करके उसकी स्थापना की थी वह तीर्थ स्थाणु नामसे कहाजाता है ॥ ६ ॥ हे नरेन्द्र! उस तीर्थमें देवशत्रु दानवोंका नाश करनेवाले स्वामिकार्त्तिकेयका देवताओंने बड़े सेनापति के पद पर अभिषेक किया था ॥ ७॥ उस सारस्वत नामके तीर्थमें महामुनि विश्वामित्रने उग्रतप करके वशिष्ठजीको विचलित करदिया था, वह कथा सुनो ॥ ८ ॥ हे भरतवंशी राजन्! तपोधन विश्वामित्र और वशिष्ठ प्रतिदिन एक दूसरेकी स्पर्धा करके तप करने लगे ॥ ९ ॥ उन दोनोंमें वशिष्ठका अधिक तेज देखकर महामुनि विश्वामित्रको बड़ा सन्ताप होने लगा और वह चिन्तामें पड़ गये ॥ १०॥ नित्य धर्मपरायण रहनेवाले विश्वामित्र के मनमें यह विचार उठा, कि- यह सरस्वती नदी तपोधन वशिष्ठ

इहागतं द्विजश्रेष्ठं हनिष्यामि न संशयः ॥ १२ ॥ एवं निश्चित्य भगवान् विश्वामित्रो महामुनिः । सस्मार सरितां श्रेष्ठां क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १३ ॥ सा ध्याता मुनिना तेन व्याकुलत्वं जगाम ह । जज्ञे चैनं महावीर्यं महाकोपञ्च भाविनी ॥ १४ ॥ तत एनं वेपमाना विवर्णा प्राञ्जलिस्तदा । उपतस्थे मुनिवरं विश्वामित्रं सरस्वती ॥ १५ ॥ हतवीरा यथा नारी साभवद्‌ दुःखिता भृशम् । ब्रूहि किं करवाणीति प्रोवाच मुनिसत्तमम् ॥ १६ ॥ तामुवाच मुनिः क्रुद्धो वशिष्ठं शीघ्रमानय । यावदेनं निहन्म्यद्य तच्छ्रुत्वा व्यथिता नदी ॥ १७ ॥ साञ्जलिन्तु ततः कृत्वा पुण्डरीकनिभेक्षणा । प्राकम्पत भृशं भीता वायुनेवाहता लता ॥ १८ ॥ तथारूपान्तु तां दृष्ट्वा मुनिराह महानदीम् । अविचार्य वशिष्ठन्त्वमानय-

को एकसाथ वेगसे मेरे पास खेंचलावे तो मैं इसको निःसन्देह मार डालूँ ॥ ११ ॥ १२ ॥ ऐसा विचार करनेके अनन्तर महामुनि विश्वामित्रने क्रोधसे लाल२ नेत्र करके तुरन्त महानदी सरस्वतीका स्मरण किया ॥ १३ ॥ सरस्वतीका मन व्याकुल हो उठा, विचार करने पर उसको मालूम हुआ, कि-महापराक्रमी विश्वामित्रको बड़ा कोप चढ़ा प्रतीत होता है ॥ १४ ॥ उस समय निस्तेज हुई सरस्वती काँपती २ दोनों हाथ जोड कर मुनिवर विश्वामित्रके पास पहुँची ॥ १५ ॥ जिसका वीरपति मारागया हो ऐसी स्त्रीकी समान अत्यन्त दुःखित हुई वह सरस्वती मुनिराजसे कहने लगी, कि-कहिये आपका कौनसा काम करूँ १६ क्रोधमें भरे हुए मुनिने सरस्वतीसे कहा, कि-तू वशिष्ठको शीघ्र मेरे पास घसीटला, तो आज ही मैं उसको मारडालूँ, यह सुन कर सरस्वती नदी बड़ी दुःखित हुई ॥ १७ ॥ कमलकी समान नेत्रोंवाली सरस्वती दोनों हाथ जोड़कर खडी होगयी और भयके मारे पवनके झकोलेसे जैसे लता हिलने लगती है तैसे ही थर २ काँपने लगी ॥ १८ ॥ सरस्वती नदीको काँपते हुए देखकर

स्वान्तिकं मम ॥ १६ ॥ सा तस्य वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा पापं चिकीर्षितम् । वशिष्ठस्य प्रभावञ्च जानन्त्यप्रतिमं भुवि ॥ २० ॥ साभिगम्य वशिष्ठन्तमिममर्थमचोदयत् । यदुक्ता सरितां श्रेष्ठा विश्वामित्रेण धीमता ॥ २१ ॥ उभयोः शापयोर्भीता वेपमाना पुनः पुनः । चिन्तयित्वा महाशापमृषिवित्रासिता भृशम् ॥ २२ ॥ तां कृशाञ्च विवर्णाञ्च दृष्ट्वा चिन्तासमन्वितताम् । उवाच राजन् धर्मात्मा वशिष्ठो द्विपदाम्वरः॥२३॥ वशिष्ठ उवाच । पाह्यात्मानं सरिच्छ्रेष्ठे वह मां शीघ्रगामिनी । विश्वामित्रः शपेद्धि त्वां मा कृथास्त्वं विचारणाम् ॥ २४ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृपाशीलस्य सा सरित् । चिन्तयामास कौरव्य किं कृत्वा सुकृतं भवेत् ॥ २५ ॥ तस्याश्चिन्ता समुत्पन्ना वशिष्ठो मय्यतीव हि । कृतवान् हि दयां नित्यं

मुनिने कहा, कि–तू कुछ विचार न कर और वशिष्ठको मेरे पास खेंचला ॥ १६ ॥ वह महानदी विश्वामित्रकी बात सुन कर तथा उनके पापी कर्त्तव्यको जानकर पृथ्वी पर वशिष्ठके अनुपम प्रभावको जाननेवाली सरस्वती वशिष्ठजीके पास आयी और बुद्धिमान् विश्वामित्रने जो बात कही थी वह वशिष्ठजीसे कही ॥२० ॥२१॥ उस समय दोनोंके शापसे अत्यन्त भयभीत होकर सरस्वती वारम्वार काँपने लगी,क्योंकि-ऋषियोंके महाशापका विचार करके वह बड़ी ही व्याकुल होरही थी ॥ २२ ॥ हे राजन् ! सरस्वती को दुर्बल, निस्तेज (सुस्त) और चिन्तासे घवड़ायी हुई देख कर मनुष्योंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा वशिष्ठजी कहने लगे ॥ २३ ॥ वशिष्ठजीने कहा, कि–हे श्रेष्ठ नदी! तू शीघ्रतासे मुझे लेचल और अपनी रक्षा कर क्योंकि- विश्वामित्र तुझे शाप देदेगा, इसलिये तू कुछ विचार न कर ॥ २४ ॥ दयालु स्वभाववाले वशिष्ठजीकी इस वातको सुनकर हे कुरुवंशी! वह नदी विचारने लगी, कि–अब कौनसा काम करनेसे मेरा भला होगा! ॥ २५ ॥ उसको यह चिन्ता उत्पन्न होगयी, कि- वशिष्ठने मेरे ऊपर बड़ी भारी

नस्य कार्यं हितं मया ॥ २६ ॥ अथ कूले स्वके राजन् जपन्तमृषि-
सत्तमम् । जुह्वानं कौशिकं प्रेक्ष्य सरस्वत्यभ्यचिन्तयत् ॥ २७ ॥
इदमन्तरमित्येव ततः सा सरितांवरा । कूलापहारमकरोत् स्वेन
वेगेन सा सरित् ॥ २८ ॥ तेन कूलापहारेण मैत्रावरुणिरौह्यत ।
उह्यमानः स तुष्टाव तदा राजन् सरस्वतीम् ॥ २९ ॥ पितामहस्य
सरसः प्रवृत्तासि सरस्वती । व्याप्तञ्चेदं जगत् सर्वं तवैवाम्भोभि-
रुत्तमैः ॥ ३० ॥ त्वमेवाकाशगा देवि मेघेषूत्सृजसे पयः । सर्वा-
स्त्वापस्त्वमेवेति त्वत्तो वयमधीमहि ॥ ३१ ॥ पुष्टिर्द्युतिस्तथा कीर्त्तिः
सिद्धिर्बुद्धिरुमा तथा । त्वमेव सर्वभूतेषु वससीह चतुर्विधा ।
त्वमेव वाणी स्वाहा त्वं तवायत्तमिदं जगत् ॥ ३२ ॥ एवं
सरस्वती राजंस्तूयमाना महर्षिणा ॥ ३३ ॥ वेगेनोवाह तं

कृपा करी है तो मुझे भी इनका हित करना चाहिये ॥ २६ ॥
हे राजन्! ऐसा विचार करके नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती, ऋषिवर
विश्वामित्रको अपने किनारे पर जप तथा अग्निमें होम करते
देख कर विचारने लगी, वशिष्ठको खेंचकर लेजानेका यही ठीक
अवसर है, ऐसा विचार कर जिस किनारे पर वशिष्ठ बैठे थे, उस
किनारेको अपने जलके वेगसे खेंचकर लेजाने लगी और वशिष्ठ
उस किनारेके साथ बहने लगे, उस समय वशिष्ठ सरस्वतीकी
स्तुति करतेहुए कहनेलगे, कि-॥ २७-२९ हे सरस्वती ! तू ब्रह्मा
जीके सरोवरमें से उत्पन्न हुई है और तेरे ही उत्तम जलसे यह
सब जगत् व्याप्त होरहा है ॥ ३० ॥ हे देवि! तू ही आकाशमें रह
कर मेघमण्डलमें जल उत्पन्न करती है, सकल जलरूप तू ही है,
और अवर्षासे ऋषियोंका नाश होजाने पर वेदाध्ययनका संप्रदाय
नष्ट हो जाता है तब ऋषि तुमसे ही वेदाध्ययन करते हैं ॥ ३१ ॥
पुष्टि, द्युति, कीर्त्ति, सिद्धि, बुद्धि, उमा, वाणी और स्वाहारूप है,
यह जगत् तेरे वशमें है ॥ ३२ ॥ तू सकल प्राणियोंमें सूक्ष्म,
मध्यमा, वैखरी और पश्यन्ती इन चार रूपोंसे निवास करती है

विप्रं विश्वामित्राश्रमं प्रति । न्यवेदयत चाभीक्ष्णं विश्वामित्राय तं मुनिम् ॥ ३४ ॥ तमानीतं सरस्वत्या दृष्ट्वा कोपसमन्वितः । अथान्वैषत् प्रहरणं वशिष्ठान्तकरं तदा ॥ ३५ ॥ तन्तु क्रुद्धमभिप्रेक्ष्य ब्रह्मवध्याभयान्नदी । अपोवाह वशिष्ठं तं प्राचीं दिशमतन्द्रिता ॥ ३६ ॥ उभयोः कुर्वती वाक्यं वञ्चयित्वा तु गाधिजम् । ततोऽपवाहितं दृष्ट्वा वशिष्ठमृषिसत्तमम् ॥३७॥ अब्रवीदथ संक्रुद्धो विश्वामित्रो ह्यमर्षणः । यस्मान्मां त्वं सरिच्छ्रेष्ठे वञ्चयित्वा पुनर्गता ॥ ३८ ॥ शोणितं वह कल्याणि रक्षोग्रामणि सम्मतम् । ततः सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता ॥ ३९॥ अवहच्छोणितोन्मिश्रं तोयं सम्वत्सरं तदा । अथर्षयश्च देवाश्च गन्धर्वाप्सर-

---

हे राजन्! इसप्रकार महर्षिकी स्तुति की हुई सरस्वती वशिष्ठको वेगके द्वारा वहाकर विश्वामित्रके आश्रममें लेगयी और यह समाचार विश्वामित्रसे वारम्वार निवेदन किया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सरस्वतीके वहाकर लाये हुए वशिष्ठको देखकर विश्वामित्र क्रोध में भरगये और उनको मारडालनेके लिये शस्त्र खोजने लगे ३५ विश्वामित्रको कोपमें भराहुआ देखकर ब्रह्महत्या लगनेके डरसे सरस्वती सावधान होकर वशिष्ठको पूर्वदिशाकी ओरको खेंचती हुई लेजाने लगी, इसप्रकार दोनोंका काम करती हुई सरस्वती विश्वामित्रको धोखा देने लगी, तब तो महर्षि वशिष्ठको पीछेको खिंचते हुए देखकर असहनशील विश्वामित्र दुःखसे वड़े ही क्रोध में भरकर कहने लगे, कि—अरी महानदी सरस्वती! तू मुझे धोखा देकर पीछेको लौट गयी है, इस लिये जा तेरे प्रवाहमें बड़े राक्षसोंको अच्छा लगने वाला रुधिर बहेगा, इसप्रकार बुद्धिमान् विश्वामित्रने सरस्वतीको शाप दिया, कि—एक वर्ष तक उस का जल रुधिर मिला होगया, ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सरायें सरस्वतीको रुधिरमयी देखकर वड़े ही खिन्न होगये और महानदी सरस्वती फिर अपने ही मार्ग पर वहने लगी, हे राजन्!

सस्तथा ॥ ४० ॥ सरस्वतीं तथा दृष्ट्वा बभूवुर्भृशदुःखिताः । एवं वशिष्ठापवाहो लोके ख्यातो जनाधिप । आगच्छच्च पुनर्मार्गं स्वमेव सरितां वरा ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां वशिष्ठापवाहोपाख्याने द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

वैशम्पायन उवाच । सा शप्ता तेन क्रुद्धेन विश्वमित्रेण धीमता । तस्मिंस्तीर्थवरे शुभ्रे शोणितं समुपावहत् ॥ १ ॥ अथाजग्मुस्ततो राजन्राक्षसास्तत्र भारत । तत्र ते शोणितं सर्वे पिबन्तः सुखमासते ॥२ ॥ तृप्ताश्च सुभृशं तेन सुखिता विगतज्वराः । नृत्यन्तश्च हसन्तश्च यथा स्वर्गजितस्तथा ॥ ३ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य ऋषयः सुतपोधनाः । तीर्थयात्रां समाजग्मुः सरस्वत्यां महीपते ।४। तेषु सर्वेषु तीर्थेषु त्वाप्लुत्य मुनिपुङ्गवाः । प्राप्य प्रीतिं पराञ्चापि तपोलुब्धा विशारदाः ॥ ५ ॥ प्रययुर्हि ततो राजन् येन तीर्थमसृग्वहम् । अथागम्य महाभागास्तत्तीर्थं दारुणं तदा॥६॥ दृष्ट्वा तोयं

इस प्रकार जगत्में वशिष्ठापवाह नामका तीर्थ प्रसिद्ध हुआ ।३६। ॥ ४१ ॥ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥ छ ॥

वैशम्पायनने कहा, कि-हे जनमेजय ! बुद्धिमान् विश्वामित्रने क्रोध करके सरस्वतीको शाप दिया, तदनन्तर उस उज्वल महातीर्थमें रुधिर बहने लगा ॥ १ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! यह देखकर तहाँ राक्षस आये और रुधिर पीकर आनन्दके साथ रहने लगे ॥ २ ॥ रुधिरको पीनेसे दुःखरहित होकर सुखी हुए और मानो स्वर्गको जीत लिया हो इस प्रकार नाचने और हँसने लगे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! कुछ समय बीतने पर तपको धन माननेवाले ऋषि तीर्थयात्रा करनेको निकले थे, वे सरस्वतीके तीर्थ पर इकट्ठे हुए ॥४॥ और तपके लोभी वे चतुर ऋषि सरस्वतीके सब तीर्थोंमें स्नान करके बड़े प्रसन्न हुए, फिर हे राजन् ! तदनन्तर वे मुनि, जिस भयंकर तीर्थमें रुधिर बहता था तहाँ जा-

सरस्वत्याः शोणितेन परिस्रुतम्। पीयमानञ्च रक्षोभिर्बहुभिर्नृप- सत्तम ॥ ७ ॥ तान् दृष्ट्वा राक्षसान् राजन्मुनयः संशितव्रताः । परित्राणे सरस्वत्याः परं यत्नं प्रचक्रिरे ॥८॥ ते तु सर्वे महाभागा समागम्य महाव्रताः । आहूय सरितां श्रेष्ठामिदं वचनमब्रुवन् ॥६॥ कारणं ब्रूहि कल्याणि किमर्थं ते ह्रदो ह्ययम् । एवमाकुलतां यातः श्रुत्वा ध्यास्यामहे वयम् ॥ १० ॥ ततः सा सर्वमाचष्ट यथा वृत्तं प्रवेपती । दुःखितामथ तां दृष्ट्वा ऊचुस्ते वै तपोधनाः ॥११॥ कारणं श्रुतमस्माभिः शापश्चैव श्रुतोऽनघे । करिष्यन्ति तु यत्प्राप्तं सर्व एव तपोधनाः१२एवमुक्त्वा सरिच्छ्रेष्ठामूचुस्तेश परस्परम्।विमोचयामहे सर्वे शापादेतां सरस्वतीम् ॥ १३॥ ते सर्वे ब्राह्मणा राजंस्तपोभि- र्नियमैस्तथा । उपवासैश्च विविधैर्यमैःकष्टव्रतैस्तथा॥१४॥ आराध्य

पहुँचे, और देखा तो सरस्वतीका जल रुधिर होरहा था, और बहुतसे राक्षस उस रुधिरमय जलको पीते थे ॥ ५-७॥ हे राजन्! उन राक्षसोंको देखकर महाव्रतधारी और परमभाग्यशाली मुनि- योंने इकट्ठे होकर सरस्वती नदीकी रक्षा करनेके लिये बड़ाभारी यत्न करनेका विचार किया, उन महात्माओंने महानदी सरस्वती को बुलाकर बूझा, कि—॥ ८ ॥ ६ ॥ हे कल्याणि ! बता तेरा यह कुण्ड ऐसा रुधिरमय कैसे होगया है ! हम इसके कारणको सुनकर इसको शुद्ध कर देना चाहते हैं ॥ १० ॥ सरस्वती नदी ने काँपते २ जो कुछ घटना हुई थी उसका सब वृत्तान्त कह सुनाया, सरस्वतीको दुःखित देखकर वे तपस्वी कहने लगे कि११ अरी निर्दोष नदी ! हमने शापका कारण सुन लिया और शाप भी सुन लिया, अब हम सब तपस्वी इसको दूर करनेका उचित प्रयत्न करेंगे ॥ १२ ॥ श्रेष्ठ नदीसे ऐसा कह कर वे सब आपस में कहने लगे, कि—आओ हम सब इस सरस्वतीको पापसे मुक्त करें ॥ १३ ॥ हे राजन् ! ऐसा विचार करके उन सब ब्राह्मणों ने तप, नियम, उपवास, नानाप्रकारके यम तथा कष्टदायक व्रतों

पशुभर्त्तारं महादेवं जगत्पतिम् । मोक्षयामास तां देवीं सरिच्छ्रेष्ठां सरस्वतीम् ॥ १५ ॥ तेषान्तु सा प्रभावेन प्रकृतिस्था सरस्वती । प्रसन्नसलिला जज्ञे यथा पूर्वं तथैव हि ॥ १६ ॥ विमुक्ता च सरिच्छ्रेष्ठा विबभौ सा यथा पुरा । दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्या मुनिभिस्तैस्तथा कृतम् ॥ १७ ॥ तानेव शरणं जग्मू राक्षसा क्षुधितास्तदा । कृत्वाञ्जलिं ततो राजन्राक्षसाः क्षुधयार्दिताः ॥ १८ ॥ ऊचुस्तान् वै मुनीन् सर्वान् कृपायुक्तान् पुनः पुनः । वयं हि क्षुधितास्चैव धर्महीनाश्च शाश्वतात् ॥ १९ ॥ न च नः कामकारोऽयं यद्वयं पापकारिणः । युष्माकञ्चाप्रसादेन दुष्कृतेन च कर्मणा ॥ २० ॥ यत् पापं वर्द्धतेऽस्माकं यतः स्मो ब्रह्मराक्षसाः। योषिताञ्चैव पापेन योनिदोषकृतेन च ॥ २१ ॥ एवं हि वैश्यशूद्राणां क्षत्रियाणां तथैव च । ये ब्राह्मणान् प्रद्विषन्ति ते भवन्तीह

के द्वारा जगत्पति पशुपति महादेवजीकी आराधना करके उस श्रेष्ठ नदी सरस्वतीको पापसे मुक्त कर दिया ॥ १४ ॥ १५ ॥ ऋषियोंके प्रतापसे सरस्वती नदी वास्तविक रूपमें आगयी और उसका जल पहलेकी समान ही निर्मल होगया ॥ १६ ॥ वह श्रेष्ठ नदी पापसे छूटकर पहलेकी समान ही शोभा पाने लगी, मुनिओंने सरस्वतीके जलको स्वच्छ कर दिया, यह देखकर ॥१७॥ भूखे राक्षस उन ऋषियोंकी ही शरणमें गये और हे राजन्! भूखसे घबडाये हुए वे राक्षस हाथ जोड़कर उन सब कृपालु मुनियोंसे वारम्वार कहने लगे, कि—हम भूखे हैं और अपने सनातनधर्मसे हीन होगये हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ तथा हम पापकर्म करनेवाले हैं इसलिये आपने जो कुछ किया है. यह हमें अच्छा नहीं लगता, हमारे ऊपर आपकी कृपा न होनेसे तथा हमारे पाप के कारण हमारे दुष्कर्म वढ रहे हैं. क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रजाति की स्त्रियोंके पापोंसे तथा उनके योनिदोषसे हम ब्रह्मराक्षस हो गये हैं, जो पुरुष ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं वे भी इस लोकमें राक्षस

राक्षसाः ॥ २२ ॥ आचार्यमृत्विजञ्चैव गुरुं वृद्धजनं तथा । प्राहिणो येऽवमन्यन्ते ते भवन्तीह राक्षसाः ॥ २३ ॥ तत् कुरुध्वमिहास्माकं तारणं द्विजसत्तमाः । शक्ता भवन्तः सर्वेषां लोकानामपि तारणे ॥ २४ ॥ तेषान्तु मुनयः श्रुत्वा तुष्टुवुस्तां महानदीम् । मोक्षार्थं रक्षसां तेषामूचुः प्रयतमानसाः ॥२५॥ क्षतं कीटावपन्नञ्च यच्चोच्छिष्टान्वितं भवेत् । सकेशमवधूतञ्च रुदितोपहतञ्च यत् २६ एभिः संसृष्टमन्नञ्च भागोऽसौ रक्षसामिह । तस्माज्ज्ञात्वा सदा विद्वानेतान् यत्नाद्धि वर्ज्जयेत् ॥ २७ ॥ राक्षसान्नमसौ भुंक्ते यो भुंक्ते ह्यन्नमीदृशम् । शोधयित्वा ततस्तीर्थमृषयस्ते तपोधनाः२८ मोक्षार्थं राक्षसानाञ्च नदीं तां प्रत्यचोदयन् । महर्षीणां मतं ज्ञात्वा ततः सा सरिताम्वरा ॥ २९ ॥ अरुणामानयामास स्वां तनुं

हो होते हैं ॥ २०—२२ ॥ और जो आचार्यका, ऋत्विज्का, गुरुजनोंका, वृद्धोंका तथा प्राणियोंका अपमान करते हैं वे भी इस लोकमें राक्षस होकर ही जन्मते हैं ॥ २३ ॥ इसलिये हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! आपको हमारा उद्धार करना चाहिये, क्योंकि—आप सब लोकोंको तार सकते हैं ॥ २४ ॥ राक्षसोंकी इस बात को सुनकर मनको नियममें रखने वाले ऋषि, राक्षसोंकी मुक्ति के लिये महानदी सरस्वतीकी स्तुति करते हुए कहने लगे; कि— ॥ २५ ॥ जिस अन्न पर रुधिर गिर गया हो, जिसमें कीड़े पड़ गये हों, जो जूठा हो, जिसमें बाल पड़े हों, जिस अन्नका तिरस्कार किया गया हो और जिसके ऊपर रुदन किया गया हो२६ इन संसर्गोंका अन्न इस लोकमें राक्षसोंका भाग होगा, इसलिये समझदार मनुष्योंको सदा ऐसे पदार्थोंको ब्रह्मराक्षसोंका भाग जानकर त्याग देना चाहिये ॥ २७ ॥ परन्तु जो मनुष्य ऊपर बताये हुए अन्नोंका भोजन करता है, वह राक्षसी अन्नका ही भोजन करता है, उन तपस्वियोंने ऐसा कह कर और उस तीर्थ को शुद्ध करके राक्षसोंका उद्धार करनेके लिये सरस्वती नदीको

पुरुषर्षभ । यस्यां ते राक्षसा स्नात्वा तनूस्त्यक्त्वा दिवं गताः ३०
अरुणायां महाराज ब्रह्मवध्यापहा हि सा । एतमर्थमभिज्ञाय देव-
राजः शतक्रतुः ॥ ३१ ॥ तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा विमुक्तः पाप्मना
किल । जनमेजय उवाच । किमर्थं भगवान् शक्रो ब्रह्मवध्यामवा-
प्तवान् । कथमस्मिंश्च तीर्थे वै आप्लुत्याकल्मषोऽभवत् । वैशम्पायन
उवाच । शृणुष्वैतदुपाख्यानं यथावृत्तं जनेश्वर ॥ ३२ ॥ यथा
बिभेद समयं नमुचेर्वासवः पुरा । नमुचिर्वासवाद्भीतः सूर्यरश्मि
समाविशत् ॥ ३४ ॥ तेनेन्द्रः सख्यमकरोत् समयञ्चेदमब्रवीत् ।
न चार्द्रेण न शुष्केण न रात्रौ नापि चाहनि ॥ ३५ ॥ वधिष्या-
म्यसुरश्रेष्ठ सखे सत्येन ते शपे । एवं स समयं कृत्वा दृष्ट्वा नी-

प्रेरणा की, महानदी सरस्वतीने भी महर्षियोंके विचारको जान कर हे राजन् ! अपने रूपकी ही एक अरुणा नदी वहाँ प्रकट करी, उसमें स्नान करके अपने शरीरको त्यागते हुए राक्षस स्वर्गमें चले गये ॥ २८—३० ॥ हे महाराज ! इस प्रकार अरुणा नदी ब्रह्महत्याका नाश करने वाली है और इस चर्चा को सुनकर देवराज इन्द्र उस तीर्थमें स्नान करके ब्रह्महत्याके पाप से छूट गया था, जनमेजयने बूझा, कि—हे वैशम्पायन जी ! भगवान् इन्द्रको ब्रह्महत्या क्यों लगी थी? ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और वह इस तीर्थमें स्नान करके पापरहित कैसे हुआ था? वैशंपायनने उत्तर दिया, कि—हे राजन् ! इन्द्रकी कथा जिस प्रकार है उसको मैं कहता हूं, सुनो ॥ ३३ ॥ पुराने समयकी बात है, कि इन्द्रने नमुचिके साथ की हुई प्रतिज्ञाको तोड़दिया, तब नमुचि इन्द्रसे भयभीत होकर सूर्यकी किरणोंमें घुसगया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर इन्द्रने नमुचिके साथ मित्रता करली तथा यह नियम कर लिया कि—हे असुरोंमें श्रेष्ठ मित्र! गीली वस्तुसे सूखी वस्तुसे रात्रिके समय या दिनमें मैं तुझे नहीं मारूँगा, यह बात मैं सत्यकी शपथ खाकर तुमसे कहता हूं ऐसा नियम करनेके अनन्तर जब

हारमीश्वरः ॥ ३६ ॥ चिच्छेदास्य शिरो राजन्नपां फेणेन वासवः। तच्छिरो नमुचेश्छिन्नं पृष्ठतः शक्रमन्वियात् ॥ ३७ ॥ भो भो मित्रहन् पापेति ब्रुवाणं शक्रमन्तिकात्। एवं स शिरसा तेन चोद्यमानः पुनः पुनः ॥ ३८ ॥ पितामहाय सन्तप्त एतमर्थं न्यवेदयत्। तमब्रवील्लोकगुरुररुणायां यथाविधि ॥ ३९ ॥ इष्ट्वोपस्पृश देवेन्द्र तीर्थे पापभयापहे। एषा पुण्यजला शक्र कृता मुनिभिरेव च ॥ ४० ॥ निगूढमस्यागमनमिहासीत् पूर्वमेव तु। ततोऽभ्येत्यारुणां देवीं प्लावयामास वारिणा ॥ ४१ ॥ सरस्वत्यरुणायाश्च पुण्योयं सङ्गमो महान्। इह तं यज देवेन्द्र दद दानान्यनेकशः॥४२ अत्राप्लुत्य सुघोरात्त्वं पातकाद्विमोक्ष्यसे। इत्युक्तः स सरस्वत्याः कुञ्जे वै जनमेजय ॥ ४३ ॥ इष्ट्वा यथावद्बलभिदरुणायामुपास्पृ-

कुहर पड़ रहा था, उस समय इन्द्रने पानीके झागोंसे नमुचिका शिर काटडाला था, वह काटा हुआ नमुचि राक्षसका शिर इन्द्र के पीछे २ घूमने लगा ॥ ३५-३७ ॥ और इन्द्रके समीप आकर कहने लगा, कि-अरे रे मित्रको मार डालने वाले पापी ! खड़ा रह, इसप्रकार नमुचिके मस्तकने वारम्वार कहा, इससे घवड़ाया हुआ इन्द्र पितामहके पास गया और उनको अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया, लोकगुरु ब्रह्माजीने उससे कहा कि-हे इन्द्र ! तू अरुणा नदीके तट पर जा और शास्त्रमें लिखी विधिसे यज्ञ कर तथा पाप और भयको हरने वाले इस तीर्थमें स्नान कर, तब तेरी ब्रह्महत्या दूर होगी, हे इन्द्र ! मुनियोंने इस अरुणा नदीके जलको पवित्र किया है ॥ ३८-४० ॥ पहले सरस्वती देवी गुप्त रूपसे यहाँ पधारी थी और उसने अपने जलसे अरुणा नदीके जलको पवित्र किया था ॥ ४१ ॥ जहाँ सरस्वती और अरुणा नदीका पवित्र महान् सङ्गम हुआ है तहाँ जाकर हे इन्द्र ! तू यज्ञ कर तथा ब्राह्मणोंको बहुतसे दान दे ॥ ४२ ॥ तू इस सङ्गममें स्नान करते ही महाघोर पापसे मुक्त होजायगा, हे जनमेजय !

शत् । स मुक्तः पाप्मना तेन ब्रह्मवध्याकृतेन ह ॥ ४४ ॥ जगाम संहृष्टमनास्त्रिदिवं त्रिदिवेश्वरः । शिरस्तच्चापि नमुचेस्तत्रैवाप्लुत्य भारत । लोकान्कामदुघान् प्राप्तमक्षयान् राजसत्तम् । ॥ ४५ ॥ वैशम्पायन उवाच । तत्राप्युपस्पृश्य बलो महात्मा दत्वा च दानानि पृथग्विधानि । अवाप्य धर्मं परमार्यकर्मा जगाम सोमस्य महत् सुतीर्थम् ॥ ४६ ॥ यत्रायजद्राजसूयेन सोमः साक्षात् पुरा विधिवत् पार्थिवेन्द्र । अत्रिर्धीमान् विप्रमुख्यो बभूव होता यस्मिन् क्रतुमुख्ये महात्मा ॥ ४७ ॥ यस्यान्तेभूत् सुमहद्दानवानां दैतेयानां राक्षसानाञ्च देवैः । यस्मिन् युद्धं तारकाख्यं सुतीव्रं यत्र स्कन्दस्तारकं वै जघान ॥ ४८ ॥ सैनापत्यं लब्धवान्

ब्रह्माजीके इसप्रकार कहने पर इन्द्र सरस्वती तट पर गया और तहाँ विधिपूर्वक यज्ञ करके अरुणा नदीमें स्नान किया, इससे वह ब्रह्महत्याके पापसे छूट गया था ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ फिर वह मनमें प्रसन्न होता हुआ स्वर्गपुरीमें गया और नमुचि दैत्य का मस्तक हे भरतवंशी राजन्! उस ही तीर्थमें स्नान करके कामना पूरी करने वाले अक्षयलोकमें चलागया ॥ ४५ ॥ वैशंपायन कहते हैं, कि—हे राजा जनमेजय! महाबली बलदेवजीने उस तीर्थ में भी स्नान करके अनेकों प्रकार के दान दिये, परमधर्म प्राप्त किया और परमार्थ के कर्म किये, फिर बड़े भारी सोम नामके तीर्थमें गये ॥ ४६ ॥ हे राजेन्द्र! साक्षात् सोमने पहले इस तीर्थमें विधिपूर्वक राजसूय यज्ञ किया था, उस महायज्ञमें महात्मा अत्रि ऋषि होता बने थे ॥४७॥ उस राजसूय यज्ञके होजाने पर दैत्य और राक्षसोंका देवताओंके साथ बड़ाभारी युद्ध हुआ था, जो भयानक युद्ध तारक युद्ध कहलाताहै, इस युद्धसे स्वामिकार्त्तिकेयने तारकको मारा था ॥ ४८ ॥ जहाँ दैत्योंके नाशक स्वामिकार्त्तिकेयने देवताओंके सेनापतिका पद लिया था, जहाँ स्वामिकार्त्ति-

देवतानां महासेनो यत्र दैत्यान्तकर्त्ता। साक्षाच्चापि न्यवसत् कार्त्तिकेयः सदा कुमारो यत्र स लक्षराजः ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३ ॥

जनमेजय उवाच। सरस्वत्याः प्रभावोऽयमुक्तस्ते द्विजसत्तम। कुमारस्याभिषेकन्तु ब्रह्मन् व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ यस्मिन् काले च देशे च यथा च वदताम्वर। यैश्चाभिषिक्तो भगवान् विधिना येन च प्रभुः ॥२॥ स्कन्दो यथा च दैत्यानामकरोत् कदनं महत्। तथा मे सर्वमाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे ॥३॥ वैशम्पायन उवाच। कुरुवंशस्य सदृशं कौतूहलमिदं तव। हर्षमुत्पादयत्येव वचो मे जनमेजय ॥ ४ ॥ हन्त ते कथयिष्यामि शृण्वानस्य जनाधिप। अभिषेकं कुमारस्य प्रभावञ्च महात्मनः ॥ ५ ॥ तेजो माहेश्वरं

केय स्वयं विराजते हैं तथा जहाँ पीपलका बड़ा भारी वृक्ष खड़ा है उसको नाम सोमतीर्थ है ॥४६॥ तितालीसवाँ अध्याय समाप्त ४३

जनमेजयने बूझा, कि—हे द्विजवर वैशम्पायन! आपने मुझे यह सरस्वतीका प्रभाव सुनाया, हे ब्रह्मन्! अब मुझे कुमारके अभिषेककी कथा विस्तारके साथ सुनाइये ॥ १ ॥ हे कहनेवालों में श्रेष्ठ! कुमार कार्त्तिकेयको किस देशमें, किस समय, किस प्रकार और किस २ ने विधिविधानसे अभिषिक्त किया था? २ कार्त्तिकेयने दैत्योंका बड़ा भारी संहार किस प्रकार किया था? यह सब मुझसे कहो, क्योंकि—मुझे सुननेके लिये बड़ा चाव है ॥ ३ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि—हे जनमेजय! तुम्हें सुनने की इच्छा है और मेरे वचन तुम्हें आनन्द देते हैं, यह तुम्हारे कुरुकुलके योग्य ही है ॥ ४ ॥ हे नरेन्द्र! यदि तुम्हें कथा सुननेकी इच्छा है तो मैं भी तुम्हे महात्मा स्वामिकार्त्तिकेयके अभिषेककी तथा उनके प्रभावकी कथा सुनाऊँगा ॥५॥ पुराने समयकी बात है, कि—महेश्वरका तेज (वीर्य) स्खलित होकर अग्निमें जापड़ा,

स्कन्नमग्नौ प्रपतितं पुरा । तत् सर्वभक्षो भगवान्नाशकद्दग्धुम-
क्षयम् ॥ ६ ॥ तेनासीदतितेजस्वी दीप्तिमान् हव्यवाहनः । न
चैव धारयामास गर्भं तेजोमयं तदा ॥ ७ ॥ स गङ्गामभिसङ्क्रम्य
नियोगाद्ब्रह्मणः प्रभुः । गर्भमाहितवान् दिव्यं भास्करोपमते-
जसम् ॥ ८ ॥ अथ गङ्गापि तं गर्भमसहन्ती विधारणे । उत्ससर्ज
गिरौ रम्ये हिमवत्यमरार्च्चिते ॥ ९ ॥ स तत्र ववृधे लोकाना-
वृत्य ज्वलनात्मजः । ददृशुर्ज्वलनाकारं तं गर्भमथ कृत्तिकाः १०
शरस्तम्बे महात्मानमनलात्मजमीश्वरम् । ममायमिति ताः सर्वाः
पुत्रार्थिन्योऽभिचक्रुशुः ॥ ११ ॥ तासां विदित्वा भावं तं मातॄणां
भगवान् प्रभुः । प्रस्नुतानां पयः षड्भिर्वदनैरपिबत्तदा ॥१२॥ तं
प्रभावं समालक्ष्य तस्य बालस्य कृत्तिकाः । परं विस्मयमापन्ना

उस अक्षय तेजको सबका भक्षण करने वाले अग्निदेव न जला सके ॥ ६ ॥ किन्तु उस तेजसे अग्नि अति तेजस्वी और दीप्तिमान् होगया तो भी उस तेजोमय गर्भको धारण नहीं किया ।७। किन्तु ब्रह्माजीकी आज्ञासे गङ्गाके पास जाकर उस सूर्यकी समान तेजस्वी दिव्य गर्भको गङ्गामें डाल दिया ॥ ८ ॥ गङ्गा भी उस गर्भको धारण न कर सकी, इस कारण उसने देवताओंके पूज्य रमणीय हिमालय पर्वत पर दर्भके कुण्डमें उस गर्भको डाल दिया ॥ ९ ॥ वह अग्निकी समान दमकता हुआ गर्भ सब लोकों को प्रकाशित करता हुआ बढ़ने लगा, उस समय कृत्तिकाओंने अग्निके पुत्ररूप और अग्निकी समान ही प्रकाशवान् उस गर्भको दर्भके कुण्ड में पड़ा हुआ देखा, वे सब कृत्तिकायें पुत्रको चाहती थीं, इस कारण वे 'यह पुत्र मेरा है, यह पुत्र मेरा है' ऐसा पुकार उठीं और फिर उसके पास गयीं ॥ १० ॥ ११ ॥ भगवान् स्कन्द उन सब माताओंके भावको जानकर छः मुखोंसे छहों कृत्तिकाओंका दूध एक ही समयमें पीने लगे ॥ १२ ॥ दिव्य शरीरको धारण करनेवाली कृत्तिका देवियें उस बालकके ऐसे प्रभावको देखकर

देव्यो दिव्यवपुर्द्धराः ॥ १३ ॥ यत्तोत्सृष्टः स भगवान् गङ्गायां गिरिमूर्द्धनि । स शैलः काञ्चनः सर्वः सम्बभौ कुरुनन्दन ॥१४॥ वर्धता चैव गर्भेण पृथिवी तेन रञ्जिता । अतश्च सर्वे संवृत्ता गिरयः काञ्चनाकराः ॥ १५ ॥ कुमारः सुमहावीर्य्यः कार्त्तिकेय इति स्मृतः । गांगेयः पूर्वमभवन्महायोगबलान्वितः ॥ १६ ॥ शमेन तपसा चैव वीर्येण च समन्वितः । ववृधेऽतीव राजेन्द्र चन्द्रवत् प्रियदर्शनः ॥ १७ ॥ स तस्मिन् कांचने दिव्ये शरस्तम्बे श्रिया वृतः । स्तूयमानः सदा शेते गन्धर्वैर्मुनिभिस्तथा ॥ १८ ॥ तथैनमन्वनृत्यन्त देवकन्याः सहस्रशः । दिव्यवादित्रनृत्यज्ञाः स्तुवन्त्यश्चारुदर्शनाः ॥ १९ ॥ अन्वास्ते च नदी देवं गङ्गा वै सरिताम्वरा । दधार पृथिवी चैनं बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २० ॥ जातकर्मादिका-

---

बड़े आश्चर्यमें होगयी ॥ १३ ॥ गङ्गाने पर्वतकी चोटी पर जहाँ स्कन्दको छोड़ा था वह सब पर्वत भी हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! सुवर्णका बनकर दमकने लगा ॥ १४ ॥ वह गर्भ ज्यों २ बढ़ने लगा त्यों २ पृथिवी भी शोभायमान होने लगी और सब पर्वत भी सुवर्णमय होगये ॥ १५ ॥ फिर उस महापराक्रमी कुमारका नाम कार्त्तिकेय रक्खा गया और पहले उसको गङ्गाने धारण किया था, इससे गाङ्गेय भी कहलाया, वह महायोगी शम, तप और वीरतासे युक्त था, उसका स्वरूप चन्द्रमाकी समान प्रीति उत्पन्न करनेवाला था, वह अत्यन्त वृद्धि पाने लगा ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ उसने सोनेके दिव्य दर्भके कुण्डमें शयन किया और गन्धर्व तथा मुनि उसकी स्तुति करने लगे ॥ १८ ॥ दिव्य बाजे और नृत्योंकी कलामें कुशल रूपवती सहस्रों देवकन्यायें उन स्वामी कार्त्तिकेयके सामने नृत्य करने लगीं और उनकी स्तुति करने लगीं ॥१९॥ नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा उनकी सेवा करने लगी, पृथिवी ने उत्तम रूप धर कर उनको गोदमें उठा लिया ॥२० ॥ बृहस्पति

स्तत्र क्रियाश्चक्रे बृहस्पतिः । वेदश्चैनञ्चतुर्मूर्त्तिरुपतस्थे कृताञ्जलिः ॥ २१ ॥ धनुर्वेदश्चतुष्पादः शस्त्रग्रामः ससंग्रहः । तत्रैनं समुपातिष्ठत् साक्षाद्वाणी च केवला ॥ २२ ॥ स ददर्श महावीर्यो देवदेवमुमापतिम् । शैलपुत्र्या सहासीनं भूतसंघशतैर्वृतम् २३ निकाया भूतसंघानां परमाद्भुतदर्शनाः । विकृता विकृताकारा विकृताभरणध्वजाः ॥ २४ ॥ व्याघ्रसिंहर्क्षवदना बिडालमकराननाः । वृषदंशमुखाश्चान्ये गजोष्ट्रवदनास्तथा ॥ २५ ॥ उलूकवदना केचित् गृध्रगोमायुदर्शनाः । क्रौञ्चपारावतनिभैर्वदनैराङ्कवैरपि ॥ २६ ॥ श्वाविच्छल्लकगोधानामजैडकगवान्तथा । सदृशानि वपूंष्यन्ये यत्र तत्र व्यधारयन् ॥ २७ ॥ केचिच्छैलाम्बुद-

---

ने तहाँ उनके जातकर्म आदि संस्कार कराये तथा चारों वेद मूर्तिवान् हो दोनों हाथ जोड़कर उनकी उपासना करने लगे २१ तथा चारों पादोंके साथ धनुर्वेद, संग्रहके साथ शस्त्रोंका समूह और साक्षात् सरस्वती देवी ये भी उनकी उपासना करने लगे ॥ २२ ॥ कितना ही समय बीतजाने पर पार्वतीके साथ बैठे हुए देवदेव उमापति महापराक्रमी शंकरको उस कुमारके दर्शन हुए, उस समय शंकर भूतमण्डलीसे घिरे हुए थे ॥२३॥ अति अद्भुत दीखते हुए, विलक्षण आकारवाले, विलक्षण आभूषण और ध्वजाओंवाले अनेकों भूत शंकरके पास बैठे थे ॥ २४ ॥ उनमें कितनों हीके मुख व्याघ्र, सिंह और रीछोंकेसे थे, कितनों हीके बिलाव और मगर मच्छोंकेसे थे, कोई वनबिलावकेसे मुखवाले थे तथा कितनों ही के मुख हाथी और ऊँटके से थे ॥ २५ ॥ कोई उलूक मुख थे, कोई गिज्ज गीदड़से दीखते थे, किन्हीके क्रौंच, कबूतर और रंकु जातिके मृगोंकेसे थे ॥२६॥ तथा कितने ही भूतोंके शरीर बड़े सेई, छोटी सेई, चन्दन गौ, बकरा, भेड, हिरन और बैलकेसे थे, सब भूत शंकर पार्वतीको चारों ओरसे घेरकर खड़े थे॥२७॥ पर्वत और मेघकी समान कितने ही भूत हाथों

मरूयाश्चक्रोद्यतगदायुधाः । केचिदञ्जनपुञ्जाभा केचिच्छ्वेताचल-
प्रभाः ॥ २८ ॥ सप्त मातृगणांश्चैव समाजग्मुर्विशाम्पते । साध्या
विश्वेथ मरुतो वसवः पितरस्तथा ॥ २९ ॥ रुद्रादित्यास्तथा सिद्धा
भुजगा दानवा खगाः । ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् सपुत्रः सह
विष्णुना ॥ ३० ॥ शक्रस्तथाभ्ययाद्द्रष्टुं कुमारवरमच्युतम् ।
नारदप्रमुखाश्चापि देवगन्धर्वसत्तमाः ॥ ३१ ॥ देवर्षयश्च सिद्धाश्च
बृहस्पतिपुरोगमाः । पितरो जगतः श्रेष्ठा देवानामपि देवताः॥३२॥
तेपि तत्र समाजग्मुर्यामा धामाश्च सर्वशः । स तु बालोपि बल-
वान् महायोगबलान्वितः ॥ ३३ ॥ अभ्याजगाम देवेशं शूलहस्तं
पिनाकिनम् । तमाव्रजन्तमालक्ष्य शिवस्यासीन्मनोगतम् ॥ ३४ ॥
युगपच्छैलपुत्र्याश्च गङ्गायाःपावकस्य च । कं नु पूर्वमयं बालो गौर-
वादभ्युपैष्यति ॥ ३५ ॥ अपि मामिति सर्वेषां तेषामासीन्मनोग-

में चक्र और गदा लिये हुए थे, कितने ही भूतोंके शरीरकी कांति अञ्जनके ढेरकी समान और कितने ही भूतोंके शरीरकी कान्ति श्वेताचल पर्वतकी सी थी ॥२८॥ हे राजन्! तहाँ स्वामी कार्त्तिकेय का दर्शन करनेके लिये सातों मातृका, साध्यदेवता, विश्वेदेवा, मरुत् देवता, वसु, पितृदेव, रुद्रगण, आदित्यगण, सिद्धगण, भुजङ्गगण दानवगण; पक्षीगण, विष्णु, भगवान् ब्रह्मा, उनके पुत्र तथा इन्द्र-कुमार आये, देवता, बड़े २ गन्धर्व, नारद आदि देवर्षि, बृह-स्पति आदि सिद्धपुरुष, जगत्में श्रेष्ठ और देवताओंके भी देव ऐसे पितर, याम और धाम नामके सब देवता भी कुमारका दर्शन-करनेको आये, कुमार कार्त्तिकेय बालक होने पर भी बलवान् और बड़े योगबलसे युक्त थे ॥ २९—३३ ॥ वह बालक, त्रिशूल और पिनाकधारी देवोंके ईश्वर शंकरके पास आया, उसको आता हुआ देखकर शंकर, पार्वती, गङ्गा और अग्निदेवके मनमें एक साथ यह विचार उठा, कि-यह बालक पहले किसको श्रेष्ठ मान कर किसके पास आवेगा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ और सबके मनमें

तम् । तेषामेतदभिप्रायं चतुर्णामुपलक्ष्य सः ॥ ३६ ॥ युगपद्योगमास्थाय ससर्ज विविधास्तनुः । ततोऽभवच्चतुर्मूर्त्तिः क्षणेन भगवान् प्रभुः ॥ ३७ ॥ तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः । एवं स कृत्वा ह्यात्मानं चतुर्धा भगवान् प्रभुः ॥ ३८ ॥ यतो रुद्रस्ततः स्कन्दो जगामाद्भुतदर्शनः । विशाखस्तु ययौ येन देवी गिरिवरात्मजा ॥ ३९ ॥ शाखो ययौ च भगवान् वायुमूर्त्तिर्विभावसुम् । नैगमेयोऽगमद्गङ्गां कुमारः पावकप्रभः ॥ ४० ॥ सर्वे भास्वरदेहास्ते चत्वारः समरूपिणः । तान् समभ्ययुरव्यग्रास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१ ॥ हाहाकारो महानासीद्देवदानवरक्षसाम् । तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यमद्भुतं लोमहर्षणम् ॥ ४२ ॥ ततो रुद्रश्च देवी च पावकश्च पितामहम् । गङ्गया सहिताः सर्वे प्रणिपेतुर्जगत्पतिम् ॥४३॥

यही भासा, कि—यह पहले मेरे ही पास आवेगा, उन चारोंके ऐसे अभिप्रायको जानकर ॥ ३६ ॥ स्वामीकार्त्तिकेयने तुरन्त योगबलसे भाँति -२ के चार शरीर उसी समय धारण कर लिये ॥ ३७ ॥ और उन स्वामीकार्त्तिकेयके पीछे २ शाख, विशाख, और नैगमेय नामकी तीन मूर्त्तियें चलने लगीं, इसप्रकार भगवान् स्कन्दने अपने चार स्वरूप किये थे, उनमेंसे ॥ ३८ ॥ जिधर अद्भुत स्वरूपवाले रुद्र बैठे थे उधरको स्वयं स्कन्दरूपसे गये, जिधर हिमालयकुमारी गिरिजादेवी बैठीं थीं, उधरको विशाखरूपसे गये ।३९। जिधर भगवान् अग्निदेव बैठे थे,उधरको वायुमूर्त्ति शाख और जिधर गङ्गा बैठी थी, उधरको अग्निकी समान कान्तिवाला कुमारका नैगमेय रूप गया ॥ ४० ॥ वे चारों शरीर एकसे रूप वाले तेजस्वी थे, वे चारों रूप चारोंके पास धीरजसे गये, यह घटना बड़ी अचरजकी हुई थी ॥ ४१ ॥ उस बड़े आश्चर्यकारी और रोमाञ्च खड़े करनेवाले अद्भुत वृत्तान्तको देख देवता, दानव और राक्षस बड़ा हाहाकार कर उठे ॥ ४२ ॥ फिर रुद्र, उमादेवी, अग्नि और गङ्गा ये सब इकट्ठे होकर ब्रह्माजीके पास गये और

प्रणिपत्य ततस्ते तु विधिवद्राजपुंगव । इदमूचुर्वचो राजन् कार्त्तिकेयप्रियेप्सया ॥ ४४ ॥ अस्य बालस्य भगवन्नाधिपत्यं यथेप्सितम् । अस्मत्प्रियार्थं देवेश सदृशं दातुमर्हसि ॥ ४५ ॥ ततः स भगवान् धीमान् सर्वलोकपितामहः । मनसा चिंतयामास किमयं लभतामिति ॥ ४६ ॥ ऐश्वर्याणि हि सर्वाणि देवगन्धर्वरक्षसाम् । भूतयक्षविहङ्गानां पन्नगान्च सर्वशः ॥ ४७ ॥ पूर्वमेवादिदेशासौ निकायेषु महात्मनाम् । समर्थश्च तमैश्वर्ये महामतिरमन्यत ॥४८॥ ततो मुहूर्त्तं स ध्यात्वा देवानां श्रेयसि स्थितः । सैनापत्यं ददौ तस्मै सर्वभूतेषु भारत ॥ ४९ ॥ सर्वदेवनिकायानां ये राजानः परिश्रुताः । तान् सर्वान् व्यादिदेशास्मै सर्वभूतपितामहः ॥५०॥ ततः कुमारमादाय देवा ब्रह्मपुरोगमाः । अभिषेकार्थमाजग्मुः

विधिपूर्वक उनको प्रणाम करके कार्त्तिकेयका प्रिय करनेकी इच्छासे उनसे कहने लगे, कि—॥४३॥४४॥ हे भगवान् ब्रह्मदेव! हमारा प्रिय करनेकी इच्छासे अपनी इच्छानुसार इस बालकको इसके योग्य अधिपतिपना दीजिये ॥ ४५ ॥ बुद्धिमान् और सब लोकों के पितामह ब्रह्माजी अपने मनमें विचार करनेलगे, कि—इसको कौनसा अधिकार मिलना चाहिये ॥ ४६ ॥ यह बालक देवता गंधर्व, राक्षस, भूत, यक्ष, पक्षी और सब प्रकारके सर्पोंके ,सब ऐश्वर्योंको महात्माओंके शरीरमें पहले ही भोग चुका है,इसकारण उस बालकको ब्रह्माजीने ऐश्वर्य भोगनेमें समर्थ माना ४७ ४८ फिर दो घडीतक देवताओंके हितका विचार करके उन्होंने सब प्राणियोंका सेनापतिपना दिया ॥ ४९ ॥ और सब देवताओंकी जातिके जो जो राजे प्रसिद्ध हैं, उन सबों को ब्रह्माजीने आज्ञा दी, कि—यह कुमार तुम्हारा सेनापति है ॥ ५० ॥ फिर ब्रह्मा आदि सब देवता इकट्ठे होकर उस कुमारका अभिषेक करनेके लिये उस महापर्वत पर आये और तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध स्यमन्तपञ्चक नामके आश्रममें बहनेवाली पवित्र और शुभ महानदी

शैलेन्द्रं सहितास्ततः ॥ ५१ ॥ पुण्यां हैमवतीं देवीं सरिच्छ्रेष्ठां सरस्वतीम् । समन्तपञ्चके या वै त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ ५२ ॥ तत्र तीरे सरस्वत्याः पुण्ये सर्वगुणान्विते । निषेदुर्देवगन्धर्वाः सर्वे सम्पूर्णमानसाः ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि कुमाराभिषेकोपक्रमे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततोऽभिषेकसम्भारान् सर्वान् संभृत्य शास्त्रतः । बृहस्पतिः समिद्धेऽग्नौ जुहावाग्निं यथाविधि ॥ १ ॥ ततो हिमवता दत्ते मणिप्रवरशोभिते । दिव्यरत्नाचिते पुण्ये निषण्णं परमासने॥२॥ सर्वमङ्गलसम्भारैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम् । आभिषेचनिकं द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणाः ॥ ३ ॥ इन्द्रविष्णू महावीर्यौ सूर्य्याचन्द्रमसौ तथा । धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानलौ ४ पूष्णा भगेनार्यम्ना च अंशेन च विवस्वता । रुद्रश्च सहितो

सरस्वतीके सकल गुणोंवाले तटपर देव गन्धर्व आदि सब हर्षमें भरेहुए मनके साथ बैठगये ॥ ५१-५३ ॥ चौवालीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥　　॥　छ　॥　छ

वैशंपायन कहते हैं, कि—हे राजा जनमेजय! बृहस्पतिने अभिषेककी विधिमें कहे हुए अत्यन्त उपयोगी सब पदार्थ इकट्ठे किये और प्रकट ए अग्निमें विधिविधानसे आहुतियें देकर होम किया १ और हिमालयके दियेहुए बहुमूल्य मणियोंसे तथा रत्नोंसे शोभायमान विचित्र सिंहासन पर स्वामिकार्त्तिकेय विराजे ॥ २ ॥ सब देवता भी शास्त्रोक्त मंत्रोंका उच्चारण करते हुए माङ्गलिक पदार्थ अभिषेककी सामग्री लेकर उस स्थान पर आये ॥ ३ ॥ महावीर्यशाली इन्द्र और भगवान् विष्णु, सूर्य, चन्द्रमा, धाता, विधाता , पवन, अग्नि ॥ ४ ॥ और सूर्यका अंशभूत पूषा, भग, अर्यमा, अंश, विवस्वान्, मित्र तथा वरुण देवताके साथ बुद्धिमान रुद्रदेव ॥ ५ ॥ और रुद्रके ग्यारह गण, आठ वसु, द्वादश

धीमान् मित्रेण वरुणेन च ॥ ५॥ रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां च वृतः प्रभुः। विश्वैर्देवैर्मरुद्भिश्च साध्यैश्च पितृभिः सह ॥ ६ ॥ गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपन्नगैः। देवर्षिभिरसंख्येयैस्तथा ब्रह्मर्षिभिर्वरैः ॥ ७ ॥ वैखानसैर्वालखिल्यैर्वाय्वाहारैर्मरीचिपैः। भृगुभिश्चांगिरोभिश्च यतिभिश्च महात्मभिः ॥ ८ ॥ सर्पैर्विद्याधरैः पुण्यैर्योगसिद्धैस्तथा वृतः। पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः ॥ ९ ॥ अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भृगुरेव च। क्रतुर्हरः प्रचेताश्च मनुर्दक्षस्तथैव च ॥ १० ॥ ऋतवश्च ग्रहाश्चैव ज्योतींषि च विशाम्पते। मूर्तिमत्यश्च सरितो वेदाश्चैव सनातनाः ॥११॥ समुद्राश्च ह्रदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च। पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च जनाधिप ॥ १२ ॥ अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती। उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः कुहूः ॥ १३ ॥ राका च धिषणा चैव पत्न्यश्चान्या दिवौकसाम्। हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकशृङ्गवान् ॥ १४ ॥ ऐरावतः सानुचरः कला

आदित्य, अश्विनीकुमार, विश्वेदेवता, मरुद्गण, साध्यदेवता, पितर ॥ ६ ॥ गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, पन्नग, असंख्यों देवर्षि, ब्रह्मर्षि ॥ ७ ॥ वायुका आहार करनेवाले तथा सूर्यकी किरणोंको पीनेवाले वैखानस, वालखिल्य, भृगु, अङ्गिरा और महात्मा यति ॥ ८ ॥ सर्प, विद्याधर, पुण्यवान्, योगसिद्ध पितामह, महातपस्वी पुलस्त्य ॥ ९ ॥ अङ्गिरा, कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु, क्रतु, हर, प्रचेता, मनु और दक्ष ॥ १० ॥ ऋतु, ग्रह, ज्योतिर्गण, मूर्त्तिमान् नदियें, सनातन वेद ॥ ११ ॥ समुद्र, ह्रद, अनेकों प्रकारके तीर्थ, हे राजन् ! पृथ्वी, आकाश, दिशा, और वृक्ष ॥ १२ ॥ देवमाता अदिति ह्री, श्री, स्वाहा, सरस्वती, उमा, शची, सिनीवाली, अनुमति, कुहू ॥ १३ ॥ राका, धिषण, देवताओंकी अन्य स्त्रियें, हिमालय विंध्याचल, अनेकों शिखरोंवाला मेरु ॥ १४ ॥ अनुचरों सहित

काष्ठास्तथैव च । मासार्द्धमासा ऋतवस्तथा रात्र्यहनी नृप ॥१५॥
उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो नागराजश्च वासुकिः । अरुणो गरुडश्चैव
वृक्षाश्चौषधिभिः सह ॥ १६ ॥ धर्मश्च भगवान् देवः समाजग्मुर्हि
सङ्गताः । कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ये ॥ १७ ॥
बहुलत्वाच्च नोक्ता ये विविधा देवतागणाः । ते कुमाराभिषेकार्थं
समाजग्मुस्ततस्ततः ॥ १८ ॥ जगृहुस्ते तथा राजन् सर्व एव दिवौ-
कसः । आभिषेचनिकं भाण्डं मंगलानि च सर्वशः ॥ १९ ॥
दिव्यसम्भारसंयुक्तैः कलशैः काञ्चनैर्नृप । सरस्वतीभिः पुण्या-
भिर्दिव्यतोयाभिरेव च ॥ २० ॥ अभ्यषिञ्चन् कुमारं वै संप्रहृष्टा
दिवौकसः । सेनापतिं महात्मानमसुराणां भयङ्करम् ॥ २१ ॥
पुरा यथा महाराज वरुणं वै जलेश्वरम् । तथाभ्यषिञ्चद्भगवान्
ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २२ ॥ कश्यपश्च महातेजाः ये चान्ये

ऐरावत, कला, काष्ठा, मास, पक्ष, ऋतु तथा हे राजन्! रात्रि, दिन ॥ १५ ॥ घोड़ोंमें श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा, नागराज, वासुकि, अरुण, गरुड़, औषधियों सहित वृक्ष ॥ १६ ॥ भगवान् सूर्य, काल, यम, मृत्यु, यमके अनुचर ॥ १७ ॥ तथा अधिक होनेके कारण जिनकी गिनती नहीं कीजासकती ऐसे और भी भाँति२के अनेकों देवता कुमारका अभिषेक करनेके लिये जहाँ तहाँसे आकर इकट्ठे होगये ॥ १८ ॥ हे महाराज! उस समय सब देवता अभिषेक का कलश और माङ्गलिक पदार्थ लेकर तहाँ उपस्थित होगये और पहले सब लोकोंके पितामह भगवान् ब्रह्माजीने जैसे जलके अधिपति वरुण देवताका अभिषेक किया था, तैसे ही देवताओंने अति-प्रसन्न होकर दिव्य सामग्रीसे भरे हुए सुवर्णके कलशोंके द्वारा सरस्वती नदीके पवित्र जलसे असुरोंको भयभीत करने वाले महात्मा कुमारका देवताओंके सेनापति पद पर अभिषेक किया ॥ १९-२२ ॥ इस अभिषेककी क्रियामें महातेजस्वी कश्यपने

नानुकीर्त्तिताः । तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो बलिनो वातरंहसः ॥२३॥ कामवीर्यधरान् सिद्धान् महापारिषदान् प्रभुः । नन्दिसेनं लोहिताक्षं घण्टाकर्णञ्च सम्मतम् ।२४। चतुर्थमस्यानुचरं ख्यातं कुमुदमालिनम् । ततः स्थाणुर्महावेगं महापारिषदं प्रभुः ॥ २५ ॥ मायाशतधरं कामं कामवीर्य्यबलान्वितम् । ददौ स्कन्दाय राजेन्द्र सुरारिविनिवर्हणम् ॥ २६ ॥ स हि देवासुरे युद्धे दैत्यानां भीमकर्मणाम् । जघान दोर्भ्यां संक्रुद्धः प्रयुतानि चतुर्दश ॥ २७ ॥ तथा देवा ददुस्तस्मै सेनां नैर्ऋतसंकुलाम् । देवशत्रुक्षयकरीमजय्यां विष्णुरूपिणीम् ॥ २८ ॥ जयशब्दं तथा चक्रुर्देवाः सर्वे सवासवाः । गन्धर्वयक्षरक्षांसि मुनयः पितरस्तथा ॥ २९ ॥ ततः प्रादादनुचरौ यमः कालोपमावुभौ । उन्माथञ्च प्रमाथञ्च महावीर्यौ

तथा लोकमें प्रसिद्ध अन्य प्रजापतियोंने भी भाग लिया था, उस समय ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर स्वामिकार्त्तिकेयको वायुकी समान वेगवाले बलवान्, इच्छानुसार पराक्रम करने वाले और सिद्ध नन्दिसेन, लोहिताक्ष, घण्टाकर्ण तथा प्रसिद्ध कुमुदमाली नाम के चार बड़े अनुचर भेट किये, हे राजन्! महातेजस्वी शंकरने कार्त्तिकेयको एक बड़ा अनुचर भेट कि जो सैंकड़ों प्रकारकी माया करना जानता था, यथेच्छ पराक्रम और बल दिखाने वाला था तथा देवशत्रु दानवोंका नाशकर्त्ता था ॥ २३-२६ ॥ इस ही अनुचरने देवासुर संग्राममें क्रोधमें भरकर दोनों हाथोंसे भयङ्करकर्म करनेवाले एक करोड़ चालीसलाख दैत्योंका संहार कियाथा२७ तथा देवताओंने नैऋती नामके देवतोंओंसे भरी हुई, अजित और दैत्योंका संहार करनेवाली, विष्णुरूपी सेना कार्त्तिकेयको भेटकी ॥ २८ ॥ उस समय इन्द्रादिक देवगण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, मुनि और पितरोंने एकसाथ जयजयकारकी ध्वनि की। २९॥ और यम तथा कालकी समान वीर्य और महाकान्ति-

महानुनी ॥ ३० ॥ सुभ्राजो भास्वरश्चैव यौ तौ सूर्यानुयायिनौ ।
तौ सूर्यः कार्त्तिकेयाय ददौ प्रीतः प्रतापवान् ॥ ३१ ॥ कैलास-
शृङ्गसङ्काशौ श्वेतमाल्यानुलेपनौ । सोमोऽप्यनुचरौ प्रादान्मणिं सु-
मणिमेव च ॥ ३२ ॥ ज्वालाजिह्वं तथा ज्योतिरात्मजाय हुता-
शनः । ददावनुचरौ शूरौ परसैन्यप्रमाथिनौ ॥ ३३ ॥ परिघञ्च
वटश्चैव भीमञ्च सुमहाबलम् । दहतिं दहनञ्चैव प्रचण्डौ वीर्य-
सम्मतौ ॥ ३४ ॥ अंशोऽप्यनुचरान् पञ्च ददौ स्कन्दाय धीमते ।
उत्क्रोशं पंचकं चैव वज्रदण्डधरावुभौ ॥ ३५ ॥ ददावनलपुत्राय
वासवः परवीरहा । तौ हि शत्रून्महेन्द्रस्य जघ्नतुः समरे बहून् ३६
चक्रञ्च विक्रमञ्चैव संक्रमञ्च महाबलम् । स्कन्दाय त्रीननुचरान्
ददौ विष्णुर्महायशाः ॥ ३७ ॥ वर्द्धनं नन्दनञ्चैव सर्वविद्यावि-

वाले उन्माथ और प्रमाथ नामके दो अनुचर भेट किये ॥ ३० ॥
सुभ्राज और भास्वर नामवाले जो सूर्यके अनुचर थे उनको प्रतापी
सूर्यने प्रसन्न होकर कुमारको भेंटमें दिया ॥ ३१ ॥ चन्द्रमाने
भी कैलासके शिखरकी समान कान्तिवाले, श्वेत फूलोंको धारण
करनेवाले, शरीर पर चन्दन लगाये हुए मणि और सुमणि नाम
के दो अनुचर दिये ॥ ३२ ॥ अग्निने अपने पुत्र कार्त्तिकेयको
ज्वालाजिह्व और ज्योति नामके, शत्रुओंका संहार करनेवाले दो
वीर अनुचर भेट किये ॥ ३३ ॥ अंशदेव वायुने परिघ, वट, भीम
दहति और दहन नामके प्रचण्ड और महाबली पाँच अनुचर बुद्धि-
मान कार्त्तिकेयको अर्पण किये, शत्रुओंका नाश करनेवाले वीर
इन्द्रने वज्रका दण्ड धारण करनेवाले उत्क्रोश और पञ्चक नाम
के दो अनुचर कार्त्तिकेयको अर्पण किये, इन अनुचरोंने देवासुर
संग्राममें महेन्द्रके बहुतसे शत्रुओंका संहार किया था ॥३४-३६॥
महायशस्वी विष्णुने कार्त्तिकेयको चक्र, विक्रम और संक्रम नाम
के तीन महाबली अनुचर अर्पण किये ॥३७॥ वैद्यवर अश्विनी-

शारदौ । स्कन्दाय ददतुः प्रीतावश्विनौ भिषजां वरौ ॥ ३८ ॥
कुन्दञ्च कुसुमञ्चैव कुमुदञ्च महायशाः । डम्बराडम्बरौ चैव ददौ
धाता महात्मने ॥ ३९ ॥ चक्रानुचक्रौ बलिनौ मेघचक्रौ बलो-
त्कटौ । ददौ त्वष्टा महामायौ स्कन्दायानुचरावुभौ ॥ ४० ॥
सुव्रतं सत्यसन्धञ्च ददौ मित्रो महात्मने । कुमाराय महात्मानौ
तपोविद्याधरौ प्रभुः ॥ ४१ ॥ सुदर्शनीयौ वरदौ त्रिषु लोकेषु
विश्रुतौ । सुव्रतञ्च महात्मानं शुभकर्माणमेव च ॥ ४१ ॥
कार्त्तिकेयाय संप्रादाद्विधाता लोकविश्रुतौ । पाणितकं कालिकञ्च
महामायाविनावुभौ ॥ ४३ ॥ पूषा च पार्षदौ प्रादात् कार्त्तिके-
याय भारत । बलञ्चातिबलञ्चैव महावक्त्रौ महाबलौ ॥ ४४ ॥
प्रददौ कार्त्तिकेयाय वायुर्भरतसत्तम । यमञ्चातियमं चैव तिमि-

कुमारने प्रसन्न होकर सकल विद्याओंमें कुशल वर्धन और नंदन नामके दो अनुचर भेट किये ॥ ३८ ॥ बड़ी कीर्त्तिवाले धाताने महात्मा कार्त्तिकेयको कुन्द, कुसुम, कुमुद, डम्बर और आडम्बर नामके अनुचर अर्पण किये ॥ ३९ ॥ विश्वकर्माने महाबली और बड़े मायावी चक्र, अनुचक्र नामके दो अनुचर कार्त्तिकेयको भेट किये ॥ ४० ॥ प्रभु मित्रदेवने महात्मा कुमारको तप और विद्या-ओंसे पूर्ण,महात्मा सुव्रत और सत्यसंध नामके दो अनुचर दिए४१ विधाताने तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध दर्शनीय और वरदान देनेवाले महात्मा सुव्रत और शुभकर्मा कार्त्तिकेय को दिये, पूषा ने महामायावी पाणीतक और कालिक नामके दो पार्षद कार्त्ति-केयको दिये, हे भरतसत्तम !.वायुने बड़े मुखवाले और महाबली बल तथा अतिबल नामके दो पार्षद कार्त्तिकेयको दिये, सत्य प्रतिज्ञावाले वरुणने कुमारको मछलीके सा मुखवाले महाबली यम और अतियम नामके पार्षद दिये और हे राजन् ! हिमवान्‌ने अग्निके पुत्र कुमारको महात्मा सुवर्चा और अतिवर्चा नामके दो अनुचर दिये, हे भरतवंशी राजन् ! मेरुने अग्निनन्दनको महा-

चवन्ते महाबलौ ॥ ४५ ॥ प्रददौ कार्त्तिकेयाय वरुणः सत्यसङ्गरः
सुवर्च्चसं महात्मानं तथैवाप्यतिवर्चसम् ॥ ४६ ॥ हिमवान् प्रददौ
राजन् हुताशनसुताय वै । कांचनञ्च महात्मानं मेघमालिनमेव
च ॥ ४७ ॥ ददावनुचरौ मेरुरग्निपुत्राय भारत । स्थिरञ्चाति-
स्थिरञ्चैव मेरुरेवापरौ ददौ ॥ ४८ ॥ महात्मा त्वग्निपुत्राय
महाबलपराक्रमौ । उच्छृंगञ्चातिशृंगं च महापाषाणयोधिनौ ४९
प्रददावग्निपुत्राय विन्ध्यः पारिषदावुभौ । संग्रहं विग्रहं चैव समु-
द्रोपि गदाधरौ ॥ ५० ॥ प्रददावग्निपुत्राय महापारिषदाशुभौ ।
उन्मादं पुष्पदन्तञ्च शंकुकर्णं तथैव च ॥ ५१ ॥ प्रददावग्निपुत्राय
पार्वती शुभदर्शना । जयं महाजयञ्चैव नागौ ज्वलनसूनवे ॥५२॥
प्रददौ पुरुषव्याघ्र वासुकिः पन्नगेश्वरः । एवं साध्याश्च रुद्राश्च
वसवः पितरस्तथा ॥ ५३ ॥ सागराः सरितश्चैव गिरियश्च महा-
बलाः । ददुः सेनागणाध्यक्षान् शूलपट्टिशधारिणः ॥ ५४ ॥
दिव्यप्रहरणोपेतान्नानावेशविभूषितान् । शृणु नामानि चाप्येषां

त्मा कांचन और मेघमालि नामके दो अनुचर दिये, तथा स्थिर और अस्थिर नामके दूसरे भी दो अनुचर दिये ॥ ४२-४८ ॥ ये दोनों भी महाबली और परमपराक्रमी थे, विंध्याचलने बड़े भारी पाषाणके साथ युद्ध करनेवाले उच्छृङ्ग और अतिशृङ्ग नाम के दो अनुचर कार्त्तिकेयको भेट किये, समुद्रने भी गदाधारी संग्रह विग्रह नामके दो बड़े पार्षद कुमारको दिये, शुभदर्शना पार्वतीने कुमारको उन्माद, शंकुकर्ण और पुष्पदन्त नामके तीन पार्षद दिये, हे पुरुषव्याघ्र राजन् ! सर्पोंके राजा वासुकिने जय और पराजय नामके दो हाथी दिये, इसीप्रकार साध्य, रुद्र, वसु, पितर, सागर, नदी तथा बड़े बली पर्वतोंने शूल तथा पट्टिशको धारण करनेवाले सेनागणोंके अध्यक्ष दिये ॥ ४९—५४ ॥ वे दिव्य शस्त्रोंको धारण करनेवाले और अनेकों वेषोंसे भूषित थे, अब स्वामी कार्तिकेयको भेटमें मिले हुए शस्त्रधारी दूसरे

येन्ये स्कन्दस्य सैनिकाः ॥ ५५ ॥ विविधायुधसम्पन्नाश्चित्रा-भरणभूषिता । शंकुकर्णो निकुम्भश्च पद्मः कुमुद एव च ॥ ५६ ॥ अनन्तो द्वादशभुजस्तथा कृष्णोपकृष्णकौ । घ्राणश्रवाः कपिस्कंधः कांचनाक्षो जलन्धमः ॥ ५७ ॥ अक्षः सन्तर्जनो राजन् कुनदीकस्तमोन्तकृत् । एकाक्षो द्वादशाक्षश्च तथैवैकजटः प्रभुः ॥ ५८ ॥ सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्राक्षः क्षितिकम्पनः । पुण्यनामा सुनामा च सुचक्रः प्रियदर्शनः ५९ परिश्रुतः कोकनदः प्रियमाल्यानुलेपनः । अजोदरो गजशिराःस्कंधाक्षःशतलोचनः६०ज्वालाजिह्वः करालश्च शितकेशो जटी हरिः । परिश्रुतः कोकनदः कृष्णकेशो जटाधरः६१ चतुर्दंष्ट्रोष्टजिह्वश्च मेघनादः पृथुश्रवाः । विद्युताक्षो धनुर्वक्त्रो जाठरो मारुताशनः ॥ ६२ ॥ उदाराक्षो रथाक्षश्च वज्रनाभो वसुप्रदः । समुद्रवेगो राजेन्द्र शैलकम्पी तथैव च ॥६३॥ वृषो मेषः प्रवाहश्च तथा नन्दोपनन्दकौ । धूम्रश्वेतः कलिङ्गश्च सिद्धार्थो वरदस्तथा६४ प्रियकश्चैव नन्दश्च गोनन्दश्च प्रतापवान् । आनन्दश्च प्रमोदश्च

सैनिकोंके भी नाम सुनो ॥ ५५ ॥ शंकुकर्ण, निकुम्भ, पद्म,कुमुद अनन्त, द्वादशभुज, कृष्ण, उपकृष्ण, घ्राणश्रवा, कपिस्कन्ध, कांचनाक्ष, जलन्धम, ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! अक्ष,सन्तर्जन कुनदीक, तमोन्तकृत् एकाक्ष,द्वादशाक्ष, एकजट ॥ ५८ ॥ सहस्र-बाहु, विकट, व्याघ्राक्ष, क्षितिकम्पन, पुण्यनामा, सुनामा, प्रिय-दर्शन, सुचक्र ॥ ५९ ॥ परिश्रुत, प्रियमाल्यानुलेपन, कोकनद, अजोदर, गजशिरा, स्कन्धाक्ष, शतलोचन ॥ ६० ॥ ज्वालाजिह्व करालाक्ष, शितकेश, जटी, हरि, परिश्रुत, कोकनद, कृष्णकेश, जटाधर ॥ ६१ ॥ चतुर्दंष्ट्र अष्टजिह्व, मेघनाद, पृथुश्रवा, विद्यु-ताक्ष, धनुर्वक्त्र, जाठर, मारुताशन ॥ ६२ ॥ हे राजेन्द्र ! उदाराक्ष रथाक्ष, वज्रनाभ, वसुप्रभ, समुद्रवेग तथा शैलकम्पी ॥ ६३ ॥ वृष मेष, प्रवाह, नन्द तथा उपनन्दक, धूम्र, श्वेत, कलिङ्ग,सिद्धार्थ तथा वरद ॥६४॥ प्रियक, नन्द, प्रतापी, गोनन्द, आनन्द, प्रमोद

स्वस्तिको ध्रुवकस्तथा ॥ ६५ ॥ चेमवाहः सुवाहश्च सिद्धपत्रश्च भारत । गोव्रजः कनकापीडो महापारिषदेश्वरः ॥ ६६ ॥ गायनो हसनश्चैव बाणः खड्गश्च वीर्यवान् । वैताली चातिताली च तथा कथकवाचिकौ ॥ ६७॥ हंसजः पङ्कदिग्धाङ्गः समुद्रोन्मादनश्च ह । रणोत्कटः प्रहासश्च श्वेतसिद्धश्च नन्दनः ॥ ६८ ॥ कालकण्टकः प्रभासश्च तथा कुम्भाण्डकोदरः । कालकाक्षः शितश्चैव भूतानां मथनस्तथा ॥ ६९ ॥ यज्ञवाहः सुवाहश्च देवयाजी च सोमपः । मज्जानश्च महातेजा क्रथक्राथौ च भारत ॥७० ॥ तुहरश्च तुहारश्च चित्रदेवश्च वीर्यवान् । मधुरः सुप्रसादश्च किरीटी च महाबलः ॥ ७१ ॥ वत्सलो मधुवर्णश्च कलशोदर एव च । धर्मदो मन्मथकरः सूचीवक्त्रश्च वीर्यवान् ॥ ७२ ॥ श्वेतवक्त्रः सुवक्त्रश्च चारुवक्त्रश्च पाण्डुरः ।दण्डबाहुः सुबाहुश्च रजः कोकिलकस्तथा ७३ अचलः कनकाक्षश्च बालानामपि यः प्रभुः । सञ्चारकः कोकनदो गृध्रपत्रश्च जम्बुकः ॥७४॥ लोहाजवक्त्रो जवनः कुम्भवक्त्रश्च

स्वस्तिक, तथा ध्रुवक ॥ ६५ ॥ हे भारत ! चेमवाह, सुवाह, सिद्धपत्र, गोवज्र, पारिषदोंका बड़ाभारी अधिपति कनकापीड़ ॥ ६६ ॥ गायन, हसन, बाण, पराक्रमी खड्ग, वैताली, गतिताली, कथक तथा वाचिक ॥ ६७ ॥ हंसज, पंकदिग्धाङ्ग, समुद्रोन्मादन, रणोत्कट, प्रहास, श्वेतसिद्ध और नन्दन ॥६८॥ कालदण्ड, प्रभास, कुम्भाण्डकोदर, कालकक्ष, सित तथा भूतमथन ॥ ६९ ॥ हे भारत ! यज्ञवाह, सुवाह, देवयाजी, सोमप, महातेजस्वी मज्जान, क्रथ और क्राथ ॥ ७० ॥ तुहरु, तुहार, पराक्रमी चित्रदेव, मधुर, सुप्रसाद, महाबली किरीटी ॥ ७१ ॥ वत्सल, मधुवर्ण, कलशोदर, धर्मद, मन्मथकर और पराक्रमी सूचीवक्त्र ॥ ७२ ॥ श्वेतवक्त्र, सुवक्त्र, चारुवक्त्र, पांडुर, दंडबाहु, सुबाहु, रज तथा कोकिलक ॥ ७३ ॥ अचल, कनकाक्ष, बालप्रभु, संचारक, कोकनद, गृद्धपत्र तथा जम्बुक ॥ ७४ ॥ लौहाजवक्त्र, जवन

कुम्भकः । स्वर्णग्रीवश्च कृष्णौजा हंसवक्त्रश्च चन्द्रभः ॥७५॥पाणि-
कूर्चो च शम्बूकः पञ्चवक्त्रश्च शिक्षकः । चापवक्त्रश्च जाम्बूकः
शाकवक्त्रश्च कुञ्जलः ७६ योगयुक्ता महात्मानः सततं ब्राह्मणप्रियाः।
पैतामहा महात्मानो महापारिषदाश्च ह ॥ ७७ ॥ यौवनस्थाश्च
वृद्धाश्च बालाश्च जनमेजय । सहस्रशः पारिषदाः कुमारमुपत-
स्थिरे ॥ ७८ ॥ वक्त्रैर्नानाविधैर्ये तु शृणु तान् जनमेजय । कूर्म-
कुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥ ७९ ॥ खरोष्ट्रवदनाश्चान्ये
वराहवदनास्तथा । मार्जारशशवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च भारत ८०
नकुलोलूकवक्त्राश्च काकवक्त्रास्तथा परे।आखुबभ्रुकवक्त्राश्च मयूर-
वदनास्तथा ॥ ८१ ॥ मत्स्यमेषाननाश्चान्ये अजाविमहिषाननाः ।
ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च द्वीपिसिंहाननास्तथा ॥ ८२॥ भीमागजानना-

कुम्भवक्त्र, कुम्भक, स्वर्णग्रीव, कृष्णौजा, हंसवक्त्र, चन्द्रभ॥७५॥
पाणिकूर्चा- शंबूक, पंचवक्त्र, शिक्षक, चापवक्त्र, जम्बूक, शाक-
वक्त्र, कुञ्जल ॥ ७६ ॥ हे जनमेजय ! इत्यादि सहस्रों पार्षद
स्वामी कार्त्तिकेयकी सेवामें उपस्थित किये गये, ये सब महात्मा
योगी, सदा ब्राह्मणों पर प्रेम रखनेवाले और बड़े पारिषद थे,
इनमें कितने ही तरुण, कितने ही बालक और किनने ही वृद्ध
थे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ हे जनमेजय ! इनके मुख भी अनेकों प्रकार
के थे, उनको मैं बताता हूँ. तुम सुनो, कोई कछुए और मुरगे केसे
मुखवाले तथा कोई खरगोश और उल्लूकेसा मुखवाले थे ॥७९॥
हे भारत ! कोई गधे और ऊँटकेसा मुख वाले, कोई वराहकेसा
मुखवाले, कोई बिलावकेसा मुखवाले, कोई खरगोशकेसा और
कोई लम्बा मुखवाले थे ॥ ८० ॥ कोई नौलेकेसा, कोई उलूक
केसा, कोई काककेसा, कोई चूहेकेसा कोई बभ्रुकेसा और कोई
मोरकेसा मुखवाले थे ॥ ८१ ॥ कोई मच्छी और मेंढेकेसा मुख
वाले और कोई बकरी, भेड़ तथा भैंसेकेसा मुखवाले थे, कोई
रीछ और बाघकेसा मुखवाले तथा कोई गैंडे और सिंहकेसा

श्चैव तथा नकमुखाश्चये । गरुडाननाः कंकमुखा वृककाकमुखास्तथा ।। ८३ ।। गोखरोष्ट्रमुखाश्चान्ये वृषदंशमुखास्तथा। महाजठरपादाङ्गास्ता-रकाक्षाश्च भारत ।। ८४ ।। पारावतमुखाश्चान्ये तथा वृषमुखाः परे। कोकिलाभाननाश्चान्ये श्येनतित्तिरकाननाः ।। ८५ ।। कृकला-समुखाश्चैव विरजोऽम्बरधारिणः । व्यालवक्त्राः शूलमुखाश्चण्ड-वक्त्राः शुभाननाः ।। ८६ ।। आशीविषाश्चीरधरा गोनासावदना-स्तथा । स्थूलोदरा कृशाङ्गाश्च स्थूलाङ्गाश्च कृशोदराः ।। ८७ ।। ह्रस्वग्रीवा महाकर्णा नानाव्यालविभूषणाः । गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ।। ८८ ।। स्कन्धे मुखा महाराज तथाप्युदर-

मुखवाले थे ।। ८२ ।। कोई भयानक, कोई हाथीकेसा मुखवाले कोई नाकेकेसा मुखवाले, कोई गरुड़मुख, कोई कङ्कमुख और कोई भेड़िया तथा काककेसा मुखवाले थे ।। ८३ ।। कोई बैल गधे और ऊँटकेसा मुखवाले, कोई वनविलावकेसा मुखवाले थे, हे भारत ! उनके पेट, पैर और शरीर बड़े २ थे तथा आँखें तारों की समान चमकती थीं ।। ८४ ।। उनमें किन्हीके मुख कबूतर केसे और और किन्हीके बैलकेसे थे, किन्हीके मुख कोकिलकेसे थे, दूसरे बाज और तीतरकेसा मुखवाले थे ।। ८५ ।। कितने ही के मुख कॅंकड़ेकेसे थे, ये सब स्वच्छ वस्त्र पहन रहे थे, किन्हीके मुख सर्पकेसे, किन्हीके शूलसे, किन्हीके मुख सुन्दर थे ।। ८६ ।। किन्हींके मुख आशीविष जाति (वाले साँपोंकी समान थे और वे शरीरों पर चीथड़े ही पहने हुए थे, किन्हीके नाक और मुख बैलोंकी समान थे, किन्हीके पेट बड़े और शरीर दुबले थे, किन्हींके शरीर मोटे और पेट दुबले थे ।। ८७ ।। किन्हींकी गरदन छोटी और कान बडे २ थे, कोई भाँति २ के सर्पोंके आभूषण पहने हुए थे, कोई गजराजकी खाल और कोई मृगछाला ओढेहुए थे ।।८८।। हे महाराज ! किन्हीके कन्धोंमें मुख थे तो किन्हीके पेटमें मुख थे, किन्हीके पीठमें मुख

तोमुखाः । पृष्ठमुखा हनुमुखास्तथा जंघामुखा अपि ॥८९॥ पार्श्वाननाश्च बहवो नानादेशमुखास्तथा । तथा कीटपतङ्गानां सदृशास्या गणेश्वराः ॥ ९० ॥ नानाव्यालमुखाश्चान्ये बहुबाहुशिरोधराः । नानावृक्षभुजा केचित् कटिशीर्षास्तथापरे ॥ ९१ ॥ भुजङ्गभोगवदना नानागुल्मनिवासिनः ।चीरसंवृतगात्राश्च नानाकनकवाससः ॥ ९२ ॥ नानावेशधराश्चैव नानामाल्यानुलेपनाः । नानावस्त्रधराश्चैव चर्मवासस एव च ॥ ९३॥ उष्णीषिणो मुकुटिनः सुग्रीवाश्च सुवर्चसः । किरीटिनः पञ्चशिखास्तथा काञ्चनमूर्धजाः ॥ ९४ ॥ त्रिशिखा द्विशिखाश्चैव तथा सप्तशिखाःपरे । शिखंडिनो मुकुटिनो मुण्डाश्च जटिलास्तथा॥९५॥चित्रमालाधरा केचित् केचिद्रोमानना-

---

थे किन्हीके ठोड़ीमें मुख थे और किन्हीके जांघोंमें मुख थे ॥८९॥ किन्हीकी पसलियोंमें मुख थे, किन्हीके बहुतसे अङ्गोंमें मुख थे, किन्ही के कीडे और पतङ्गोंकेसे मुख थे तथा वे सब गणोंके अधिपति थे ॥ ९० ॥ किन्हीके सर्पोंकेसे मुख, बहुतसे हाथ, बहुतसे शिर और बहुतसे पेट थे, कोई अनेकों प्रकारके वृक्षोंको खाने वाले थे तो किन्हीकी कमरमें शिर थे ॥ ९१ ॥ किन्हीके शरीर और मुख भुजङ्गोंकेसे थे और वे अनेकों प्रकारके झुंडोंमें रहते थे तथा शरीरको वस्त्रसे ढके रहते थे. कोई भाँति२के सुनहरी वस्त्र पहने हुए थे ॥ ९२ ॥ भाँति२ के वेष बनाये हुए, अनेकों भाँति के फूल पहने हुए, चन्दन लगाये, नाना प्रकारके वस्त्र और चमड़े ओढ़े हुए थे ॥ ९३ ॥ मस्तकों पर पगड़ियें और मुकट धारण किये हुए थे, सुन्दर कण्ठ और उत्तम तेजवाले, मुकुटधारी पांच शिखा और सुनहरी केशोंवाले थे ॥ ९४ ॥ तीन शिखा वाले, दो शिखावाले, सात शिखावाले, सादी चोटियोंवाले, मुकुटधारी, कोई शिरमुण्डे और कोई जटाधारी थे ॥ ९५ ॥ कोई विचित्र मालायें धारण किये थे तो किन्हीके मुखोंपर रोम थे, कोई

स्तथा । विग्रहैकरसा नित्यमजेयाः सुरसत्तमैः ॥ ९६ ॥ कृष्णा निर्मांसवक्त्राश्च दीर्घपृष्ठास्तनूदराः । स्थूलपृष्ठा ह्रस्वपृष्ठाः प्रलम्बोदरमेहनाः ॥ ९७ ॥ महाभुजा ह्रस्वभुजा ह्रस्वगात्राश्च वामनाः । कुब्जाश्च ह्रस्वजङ्घाश्च हस्तिकर्णशिरोधराः ॥ ९८ ॥ हस्तिनासाः कूर्मनासा वृकनासास्तथापरे । दीर्घच्छ्वासा दीर्घजंघा विकराला ह्यधोमुखाः ॥ ९९ ॥ महादंष्ट्रा ह्रस्वदंष्ट्राश्चतुर्दंष्ट्रास्तथापरे । वारणेन्द्रनिभाश्चान्ये भीमा राजन् सहस्रशः ॥ १०० ॥ सुविभक्तशरीराश्च दीप्तिमन्तः स्वलङ्कृताः । पिङ्गाक्षाः शंकुकर्णाश्च रक्तनासाश्च भारत ॥ १०१ ॥ पृथुदंष्ट्रा महादंष्ट्राः स्थूलौष्ठा हरि-

---

विवादमें ही आनन्द मनाने वाले और कोई बड़े२ देवताओं के भी जीतनेमें न आनेवाले थे ॥ ९६ ॥ कोई श्यामशरीर, कोई मांस शून्य मुखवाले, कोई बड़ी पीठ और दुबले पेट वाले थे, कोई मोटी पीठवाले, कोई छोटी पीठवाले, कोई लंबे पेट और लंबे लिङ्गवाले थे ॥ ९७ ॥ कितनेही बडी भुजाओंवाले, कितने ही छोटी भुजाओंवाले, कितने ही छोटे शरीरोंवाले ठिगने कोई कुबड़े, कोई छोटी जाँघोंवाले, कोई हाथकी बराबर कानवाले, कोई शंखसी ठोडीवाले, कोई हाथी वा कछुएकीसी नाकवाले, थे, कितने ही भेडियेकीसी नाकवाले थे, कोई लँबे होठोंवाले, लंबी जाँघवाले, नीचे मुखवाले, बड़ी२ दाढ़ोंवाले, छोटी दाढ़ों वाले, और कितने हा चार दाढ़ों वाले, भी थे, हे राजन्! सहस्रों सैनिक बड़े हाथीकी समान भयानक थें ॥ ९८-१०० ॥ और हे भरतवंशी राजन्! उनके शरीर सुन्दर अवयवोंवाले, उज्ज्वल और उत्तम शृङ्गार किये हुए थे, किन्हीकी आंखें पीली थीं तो किन्हीके कान शंकुसे थे और किन्हीकी नाक लाल रङ्गकी थीं १०१ किन्हींकी दाढ़ें खुक्कल और किन्हीकी दाढ़ें बहुत बड़ीं थीं, किन्हीके ओठ मोटे तो किन्हीके केश नीले रङ्गके थे, किन्हीके

मूर्धजाः । नानापादौष्ठदंष्ट्राश्च नानाहस्तशिरोधराः ॥ १०२ ॥ नानाचर्मभिराच्छन्नाः नानाभाषाश्च भारत । कुशला देशभाषासु सुजल्पन्तोऽन्योन्यमीश्वराः ॥ १०३ ॥ हृष्टाः परिपन्ति स्म महापारिषदास्तथा। दीर्घग्रीवा दीर्घनखा दीर्घपादशिरोभुजाः१०४ पिंगाक्षा नीलकण्ठाश्च लम्बकर्णाश्च भारत । वृकोदरनिभाश्चैव केचिदञ्जनसन्निभाः ॥ १०५ ॥ श्वेताक्षा लोहितग्रीवाः पिंगाक्षाश्च तथापरे । कल्माषा बहवो राजंश्चित्रवर्णाश्च भारत १०६ चामरापीडकनिभाः श्वेतलोहितराजयः । नानवर्णाः सवर्णाश्च मयूरसदृशप्रभाः ॥ १०७ ॥ पुनः प्रहरणान्येषां कीर्त्यमानानि मे शृणु । शेषैः कृतः पारिषदैरायुधानां परिग्रहः ॥१०८॥ पाशोद्यत-

अनेकों चरण, अनेकों होठ, अनेकों दाढ़ें, अनेकों हाथ और अनेकों कण्ठ थे ॥ १०२ ॥ हे राजन्! वे भाँति२ के चमड़े ओढ़ रहे थे, उनकी बोलियें भाँति २ की थीं, वे सब स्थानीय भाषा बोलनेमें चातुर थे, इसलिये आपस में बातें करते थे ॥ १०३ ॥ ये सब बड़े२ पार्षद मनमें प्रसन्न होकर स्वामिकार्त्तिकेयके पास आकर उपस्थित हो गये, इनमें से बहुतसोंकी गर्दन लम्बी थीं, किन्हींके नख लम्बे तो किन्हीके पैर, किन्हीके मस्तक और किन्हीके भुजदण्ड लम्बे थे ॥ १०४ ॥ किन्हीकी आँखें पीली और किन्हीके कंठ काले थे, किन्हीके कान लम्बे और किन्हीके पेट भेडियेकेसे थे, कोई अंजनसे श्यामवरण किन्हीकी आँखें स्वेत और पीले रङ्गको थीं, हे राजन्! किन्हीकी गर्दन लाल रङ्गकी थीं तो किन्हीके शरीर चितकवरे थे, हे भारत! कितनोंही के शरीर में विचित्र रङ्ग थे ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ कितनोंही के शरीरका रङ्ग चँवर और फूलोंके मुकुटसा स्वेत तथा मोरकेसा रङ्गविरङ्गा था, किन्ही के शरीरोंका रङ्ग जुदी२जातिका और कितनोंका रङ्ग एकही प्रकारका था ॥ १०७ ॥ अब इन पार्षदोंने जो २ आयुध

क्रूराः केचित् व्यादितास्याः खराननाः । पृष्ठाक्षा नीलकण्ठाश्च तथा परिघबाहवः ॥ १०९ ॥ शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः । असिमुद्गरहस्ताश्च दण्डहस्ताश्च भारत ॥ ११० ॥ गदाभुशुण्डिहस्ताश्च तथा तोमरपाणयः । आयुधैर्विविधैर्घोरैर्महात्मानो महाजवाः ॥ १११ ॥ महाबला महावेगा महापारिषदास्तथा । अभिषेकं कुमारस्य दृष्ट्वा हृष्टा रणप्रियाः ॥ ११२ ॥ घण्टाजालपिनद्धाङ्गा ननृतुस्ते महौजसः । एते चान्ये च बहवो महापारिषदा नृप ॥११३॥ उपतस्थुर्महात्मानं कार्त्तिकेयं यशस्विनम् । दिव्याश्चाप्यन्तरीक्षाश्च पार्थिवाश्चानिलोपमाः ॥ ११४ ॥ व्यादिष्टा दैवतैः शूराः स्कन्दस्यानुचराभवन् । तादृशानां सहस्राणि

धारण किये थे, उन आयुधोंको मैं तुमसे कहता हूं, सुनो १०८ गधे और व्याघ्रकेसे मुखवाले कितने ही पार्षदोंने मुख फाड़ कर हाथमें फाँसी लेली थी, किन्हीकी आँखें पीठमें थीं, किन्ही के कंठश्याम थे, कितने ही हाथमें परिघ लिये हुए थे ॥ १०९ ॥ कोई शतघ्नी, चक्र और कोई मूसल लिये हुए थे, कोई तलवार मुग्दर और कोई हाथोंमें लाठियें लिये हुए थे ॥ ११० ॥ किन्हीं राक्षसी कदके अति बलवानोंके हाथमें गदा और भुशुण्डी था, तथा किन्हीके हाथोंमें तोमर (भाले) थे, इसप्रकार वे अनेकों प्रकारके भयानक आयुध धारण किये हुए थे, ये पारिषद बड़े वेगवाले, महाबली और रणके प्रेमी थे, कुमारका अभिषेक हुआ देखकर प्रसन्न हो रहे थे और शरीर पर घंटियोंके जाल पहरे हुए थे, ये तथा और भी बड़े २ पार्षद यशस्वी महात्मा स्वामी कार्त्तिकेयके पास आकर खड़े होगये थे, इनमें कितने ही पृथिवी परविचरनेवाले, कितने ही आकाशमें विचरनेवाले, और कितने ही स्वर्गमें रहनेवाले थे, ये सब पवनकी समान वेगवाले थे, देवताओंकी आज्ञा पाकर वे सहस्रों, लाखों तथा अब्जों वीर

प्रभुतान्यधुद्धानि च। अभिषिक्तं महात्मानं परिवार्य्योपतस्थिरे ११५
इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि स्कन्दा-
भिषेके पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

वैशम्पायन उवाच । शृणु मातृगणान्राजन् कुमारानुचरानिमान् । कीर्त्यमानान्मया वीर सपत्नगणसूदनान् ॥ १ ॥ यशस्विनीनां मातॄणां शृणु नामानि भारत । याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः कल्याणीभिश्च भागशः ॥२॥ प्रभावती विशालाक्षी पालिता गोस्तनी तथा श्रीमती बहुला चैव तथैव बहुपुत्रिका ॥ ३ ॥ अप्सु जाता च गोपाली बृहदम्बालिका तथा । जयावती मालतिका ध्रुवरत्ना भयङ्करी ॥ ४ ॥ वसुदामा सुदामा च विशोका नन्दिनी तथा । एकचूडा महाचूडा चक्रनेमिश्च भारत ॥ ५ ॥ उत्तेजनी जयत्सेना कमलाक्ष्यथ शोभना । शत्रुञ्जया तथा चैव क्रोधना शलभी खरी ॥ ६ ॥ मागधी शुभवक्त्रा च तीर्थसेनिश्च भारत ।

स्वामीकार्त्तिकेयके अनुचर बनकर अभिषिक्त हुए महात्मा स्वामी कार्त्तिकेयको चारों ओरसे घेरकर सेवामें खड़े होगये ॥ १११ ॥ ॥ ११५ ॥ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥

वैशम्पायनने कहते हैं, कि—हे वीर जनमेजय ! अब मैं तुमसे शत्रुओंका संहार करनेवाले स्वामीकार्त्तिकेयकी अनुचर माताओंके नाम कहता हूँ, उनको सुनो, हे भारत ! जिन कल्याणी मातृकाओंने त्रिभागके अनुसार तीनों लोकोंको व्याप्त कर रक्खा है उन यशवाली मातृकाओंके नाम सुनो ॥ २ ॥ प्रभावती, विशालाक्षी, पालिता तथा गोस्तनी, श्रीमती, बहुला तथा बहुपुत्रिका ॥ ३ ॥ अप्सुजाता, गोपाली तथा बृहदम्बालिका, जयावती, मालतिका, ध्रुवरत्ना, भयंकरी ॥४॥ हे भारत ! वसुदामा, सुदामा विशोका तथा नन्दिनी, एकचूड़ा, महाचूड़ा और चक्रनेमि ॥५॥ उत्तेजनी, जयत्सेना, कमलाक्षी, शोभना, शत्रुञ्जया, क्रोधना, शलभी तथा खरी ॥ ६ ॥ हे भारत ! माधवी, शुभवक्त्रा, तीर्थ-

गीतप्रिया च कल्याणी रुद्ररोमा मिताशना ॥ ७ ॥ मेघस्वना भोगवती सुभ्रूश्च कनकावती । अलाताक्षी वीर्यवती विद्युज्जिह्वा च भारत ॥ ८ ॥ पद्मावती सुनक्षत्रा कन्दरा बहुयोजना । सन्तानिका च कौरव्य कमला च महाबला ॥ ९ ॥ सुदामा बहुदामा च सुप्रभा यशस्विनी । नृत्यप्रिया च राजेन्द्र शतोलूखलमेखला १० शतघण्टा शतानन्दा भगनन्दा च भाविनी । वपुष्मती चन्द्रशीता भद्रकाली च भारत ॥ ११ ॥ ऋक्षाम्बिका निष्कुटिका वामा चत्वरवासिनी । सुमङ्गला स्वस्तिमती वृद्धिकामा जयप्रिया ॥१२॥ धनदा सुप्रसादा च भवदा च जलेश्वरी । एडी भेडी समेडी च वेतालजननी तथा ॥ १३ ॥ कण्डूतिः कालिका चैव देवमित्रा च भारत । वसुश्रीः कोटरा चैव चित्रसेना तथाचला ॥ १४ ॥ कुक्कुटिका शंखलिका तथा शकुनिका नृप । कुण्डारिका कोकिलिका कुम्भिकाथ शतोदरी ॥ १५ ॥ उत्क्राथिनी जलेला च महावेगाथ कङ्कणा । मनोजवा कण्टकिनी प्रघसा पूतना तथा १६

सेनी, गीतप्रिया, कल्याणी, रुद्ररोमा, अमिताशना ॥७॥ हे भारत! मेघस्वना, भोगवती, सुभ्रू, कनकावती, अलाताक्षी, वीर्यवती और विद्युज्जिह्वा ॥ ८ ॥ हे कुरुवंशी ! पद्मावती, सुनक्षत्रा, कन्दरा, बहुयोजना, सन्तानिका, कमला और महाबला ॥ ९ ॥ हे राजेंद्र ! सुदामा, बहुदामा, यशस्विनी, नृत्यप्रिया, शतोलूखलमेखला १० हे भारत ! शतघण्टा, शतानन्दा, भगनन्दा, भाविनी, वपुष्मती, चन्द्रशीता और भद्रकाली ॥ ११ ॥ ऋक्षाम्बिका, निष्कुटिका, वामा, चत्वरवासिनी, सुमङ्गला, स्वस्तिमती, वृद्धिकामा, जयप्रिया ॥१२॥ धनदा, सुप्रसादा, भवदा, जलेश्वरी, एडी, भेड़ा, समेडी तथा वेतालजननी ॥१३॥ हे भारत ! कंडूति, कालिका, देवमित्रा, वसुश्रीः, कोटरा, चित्रसेना तथा अचला ॥१४॥ हे राजन् ! कुक्कुटिका, शंखलिका, शकुनिका, कुंडारिका, कोकिलिका, कुम्भिका, और शतोदरी ॥ १५ ॥ उत्क्राथिनी, जलेला, महावेगा, कङ्कणा.

केशयन्त्री त्रुटिर्वामा क्रोशनाथ तडित्प्रभा । मन्दोदरी तु मुण्डी च कोटरा मेघवाहिनी १७ सुभगा लम्बिनी लंबा ताम्रचूडा विकाशिनी। ऊर्ध्ववेणीधरा चैव पिंगाक्षी लोहमेखला ॥ १८ ॥ पृथुवस्त्रा मधुलिका मधुकुम्भा तथैव च । पक्षालिका मत्कुलिका जरायुर्ज्जर्जरानना ॥ १९ ॥ ख्याता दहदहा चैव तथा धमधमा नृप । खण्डखण्डा च राजेन्द्र पूषणा मणिकुट्टिका ॥ २० ॥ अमोघा चैव कौरव्य तथा लम्बपयोधरा । वेणुवीणा धरा चैव पिङ्गाक्षी लोहमेखला ॥ २१ ॥ शशोलूकमुखी कृष्णा खरजंघा महाजवा । शिशुमारमुखी श्वेता लोहिताक्षी विभीषणा ॥ २२ ॥ जटालिका कामचरी दीर्घजिह्वा बलोत्कटा । कालेहिका वामनिका मुकुटा चैव भारत ॥ २३ ॥ लोहिताक्षी महाकाया हरिपिण्डा च भूमिप । एकत्वचा सुकुसुमा कृष्णकर्णी च भारत ॥ २४ ॥ क्षुरकर्णी चतुष्कर्णी कर्णप्रावरणा तथा । चतुष्पथनिकेता च गोकर्णी महिपा-

---

मनोजवा, कण्टकिनी, प्रघसा तथा पूतना ॥ १६ ॥ केशयंत्री, त्रुटि, वामा, क्रोशना, तडित्प्रभा, मन्दोदरी, मुंडी, कोटरा, मेघवाहिनी ॥ १७ ॥ सुभगा, लम्बिनी, लम्बा ताम्रचूडा, विकाशिनी ऊर्ध्ववेणी, धरा, पिङ्गाक्षी, लोहमेखला ॥ १८ ॥ पृथुवस्त्रा, मधुलिका, मधुकुम्भा, पक्षालिका, मत्कुलिका जरायु जर्जरानना १९ हे राजन् ! ख्याता, दहदहा, धमधमा, हे राजेन्द्र ! खण्डखण्डा पूषणा, मणिकुट्टिका ॥ २० ॥ हे कुरुवंशी ! अमोघा, लम्बपयोधरा, वेणुवीणाधरा, पिङ्गाक्षी, लोहमेखला ॥ २१ ॥ शशोलूकमुखी कृष्णा, खरजंघा, महाजवा, शिशुमारमुखी, श्वेता, लोहिताक्षी, विभीषणा ॥ २२ ॥ हे भारत ! जटालिका, कामचरी, दीर्घजिह्वा बलोत्कटा, कालेहिका, वामनिका और मुकुटा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! लोहिताक्षी, महाकाया, हरिपिंडा, हे भारत ! एकत्वचा, सुकुसुमा और कृष्णकर्णी ॥ २४ ॥ क्षुरकर्णी, चतुष्कर्णी, कर्णप्राव-

नना ॥ २५ ॥ खरकर्णी महाकर्णी भेरीस्वनमहास्वना। शंख-
कुम्भश्रवाश्चैव भगदा च महाबला ॥ २६ ॥ गणा च सुगणा चैव
तथाभीत्यथ कामदा। चतुष्पथरता चैव भूतितीर्थान्यगोचरा ॥२७॥
पशुदा वित्तदा चैव सुखदा च महायशाः । पयोदा गोमहिषदा
सुविशाला च भारत ॥ २८ ॥ प्रतिष्ठा सुप्रतिष्ठा च रोचमाना
सुरोचना । नौकर्णी मुखकर्णी च विशिरा मन्थिनी तथा ॥२९॥
एकचन्द्रा मेघकर्णा मेघमाला विरोचना । एताश्चान्याश्च बहवो
मातरो भरतर्षभ ॥ ३० ॥ कार्त्तिकेयानुयायिन्यो नानारूपाः सह-
स्रशः । दीर्घनख्यो दीर्घदन्त्यो दीर्घतुण्डयश्च भारत ॥ ३१ ॥
सबला मधुराश्चैव यौवनस्थाः स्वलंकृताः । माहात्म्येन च संयुक्ताः
कामरूपधरास्तथा ॥ ३२ ॥ निर्मांसगात्राः श्वेताश्च तथा का-
ञ्चनसन्निभाः । कृष्णमेघनिभाश्चान्या धूम्राश्च भरतर्षभ ॥३३॥

रणा, चातुष्पथनिकेता, गोकर्णी, महिषानना ॥ २५ ॥ खरकर्णी
महाकर्णी, भेरीस्वनमहास्वना, शंखकुम्भश्रवा, भगदा, महाबला
॥ २६ ॥ गणा, सुगणा, अभीति, कामदा, चातुष्पथरता, भूति-
तीर्था, अन्यगोचरी ॥ २७ ॥ हे भारत ! पशुदा, वित्तदा, महा-
यशा, सुखदा, पयोदा, गोमहिषदा, सुविशाला, ॥२८॥ प्रतिष्ठा,
सुप्रतिष्ठा, रोचमाना, सुरोचाना, नौकर्णी, मुखकर्णी विशिरा तथा
मन्थिनी॥२९॥एकचान्द्रा, मेघकर्णा, मेघमाला और विरोचाना, हे
भरतसत्तम ! ये तथा और भी बहुत सी मातायें थीं ॥ ३० ॥
हे भारत ! ऐसी सहस्रों मातृकायें अनेकों प्रकारके रूप धरकर
स्वामीकार्त्तिकेयकी किङ्करी बनीं, इनके नख, दाँत और मुख
बडे २ थे ॥ ३१ ॥ ये सब बलवती, मधुर, तरुणी, उत्तम अलं-
कार पहरे, माहात्म्यवालीं और यथेच्छ रूप धरनेवालीं थीं ३२
हे भरतसत्तम ! इनमें कितनियोंके शरीरोंमें मांस ही नहीं था,
कितनी ही गौरशरीर, कितनी ही सुनहरी शरीरवालीं, कोई
काली घनघटासी और कोई धुमैले रङ्गकी थीं ॥ ३३ ॥ कोई

अरुणाभा महाभागा दीर्घकेश्यः सिताम्बराः । ऊर्ध्ववेणीधरा-
श्चैव पिंगाक्ष्यो लम्बमेखलाः ॥ ३४ ॥ लम्बोदर्यो लम्बकर्णा-
स्तथा लम्बपयोधराः । ताम्राक्ष्यस्ताम्रवर्णाश्च हर्यक्ष्यश्च तथा-
पराः ॥ ३५ ॥ वरदाः कामचारिण्यो नित्यं प्रमुदितास्तथा ।
याम्या रौद्रास्तथा सौम्याः कौबेर्य्योथ महाबलाः ॥ ३६ ॥ वारु-
ण्योथ च माहेन्द्र्यस्तथाग्नेय्यः परन्तप। वायव्यश्चाथ कौमार्य्यो ब्रा-
ह्मयश्च भरतर्षभ ॥३७॥ वैष्णव्यश्च तथा सौर्य्यो वाराह्यश्च महा-
बलाः । रूपेणाप्सरसां तुल्या मनोहार्य्यो मनोरमाः ॥ ३८ ॥
परपुष्टोपमा वाक्ये तथर्द्ध्या धनदोपमाः । शक्रवीर्य्योपमा युद्धे
दीप्त्या वह्निसमास्तथा ॥ ३९ ॥ शत्रूणां विग्रहे नित्यं भयदा-
स्ता भवन्त्युत । कामरूपधराश्चैव जवे वायुसमास्तथा ॥ ४० ॥

लालरङ्ग, बड़े शरीर, लम्बे केशोंवालीं, स्वेतवस्त्रधारिणी, ऊँची वेणी बनाये, पीली आँखें और लम्बी मेखलावाली थीं ॥३४॥ दूसरी लम्बे पेट, लम्बे कान और लम्बे स्तनोंवालीं तथा कोई लालनेत्र, लालवर्ण, और हरी आँखोंवाली थीं ॥ ३५ ॥ ये सब मातृकायें वरदान देनेवालीं, इच्छानुसार विहार करनेवालीं तथा नित्य आनन्दमें रहनेवाली थीं. इनमें यमकी, रुद्रकी, सोम की और कुबेरकी बड़ी बलवती मातृकायें थीं ॥ ३६ ॥ हे भरत-सत्तम राजन्! वरुणकी, महेन्द्रकी, अग्निकी, वायुकी, कुमारकी और ब्रह्माकी मातृकायें थीं । ३७ ॥ विष्णुकी, सूर्यकी और वराह भगवान् मातृकायें थीं, जो बड़े बलवालीं, रूपमें अप्सराओं की समान मनोहारिणी और मनको आनन्द देनेवाली थीं ३८ बोलनेमें कोकिलकी समान, धनसम्पदामें कुबेरकी समान, युद्ध करनेमें इन्द्रके पराक्रमकी समान तथा प्रकाशमें अग्निकी समान थीं ॥ ३९ ॥ वे विग्रहमें सदा शत्रुओंको भयदायिनी होती थीं, इच्छानुसार रूप धारण करनेवालीं और वायुकी समान वेगवालीं

अचिन्त्यबलवीर्याश्च तथाचिन्त्यपराक्रमाः । वृक्षचत्वरवासिन्यश्च-तुष्पथनिकेतनाः ॥४१॥ गुहाश्मशानवासिन्यः शैलप्रस्रवणालयाः। नानाभरणधारिण्यो नानामाल्याम्बरास्तथा ॥ ४२ ॥ नाना-विचित्रवेशाश्च नानाभाषास्तथैव च । एते चान्ये च बहवो गणाः शत्रुभयंकराः ॥ ४३ ॥ अनुजग्मुर्महात्मानं त्रिदशेन्द्रस्य सम्मते । ततः शक्त्यस्त्रमददद्भगवान् पाकशासनः ॥ ४४ ॥ गुहाय राज-शार्दूल विनाशाय सुरद्विषाम् । महास्वनां महाघण्टां द्योतमानां सितप्रभाम् ॥ ४५ ॥ अरुणादित्यवर्णाञ्च पताकां भरतर्षभ । ददौ पशुपतिस्तस्मै सर्वभूतमहाचमूम् ॥ ४६ ॥ उग्रां नानाप्रहरणां तपोवीर्यबलान्विताम् । अजेयां स्वगुणैर्युक्तां नाम्ना सेनां धन-ञ्जयाम् ॥ ४७ ॥ रुद्रतुल्यबलैर्युक्तां योधानामयुतैस्त्रिभिः । न

थीं ॥ ४० ॥ अचिन्तनीय बल, वीरता और अचिन्त्य पराक्रम वालीं थीं वृक्ष चौंतरे और चौराहों पर निवास करनेवाली थीं ॥ ४१ ॥ गुफाओं और श्मशानोंमें रहनेवालीं, पहाड़ और झरनोंमें रहनेवालीं, अनेकों आभूषण धारण करनेवालीं और भाँति २ की मालायें तथा वस्त्रोंको धारण किये थीं ॥ ४२ ॥ भाँति २ के विचित्र वेषोंवालीं और अनेकों भाषायें बोलनेवालीं ये मातृकायें तथा दूसरी भी कितनी ही शत्रुओंको भय देनेवालीं मातृकायें इन्द्रकी संमतिसे महात्मा स्वामीकार्त्तिकेयकी सेवामें खड़ी थीं, तदनन्तर भगवान् इन्द्रने उस समय शक्ति नामक अस्त्र दिया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजसिंह ! देवशत्रु दानवोंका नाश करनेके लिये बड़ा शब्द करनेवाला, चमकता हुआ स्वेत वर्णका एक घंटा दिया तथा वरुण और आदित्यकी समान कान्तिवाली एक पताका दी, भगवान् पशुपति शिवने सकल भूतोंकी वडीभारी सेना स्वामिकार्त्तिकेयको अर्पण की, उस सेनाके योधा बड़े उग्र अस्त्रोंको धारण करनेवाले, तप वीरता, और बलसे युक्त, अजेय और अपने २ गणोंसे युक्त थे, इस

सा विजानाति रणात् कदाचिद्विनिवर्त्तितुम् ॥ ४८ ॥ विष्णुर्ददौ वैजयन्तीं मालां बलविवर्द्धिनीम् । उमा ददौ विरजसी वाससी सूर्यसन्निभे ॥ ४९ ॥ गङ्गा कमण्डलुं दिव्यममृतोद्भवमुत्तमम् । ददौ प्रीत्या कुमाराय दण्डञ्चैव बृहस्पतिः ॥ ५० ॥ गरुडो दयितं पुत्रं मयूरं चित्रबर्हिणम् । अरुणस्ताम्रचूडञ्च प्रददौ चरणायुधम् ॥ ५१ ॥ नागन्तु वरुणो राजा बलवीर्यसमन्वितम् । कृष्णाजिनं ततो ब्रह्मा ब्रह्मण्याय ददौ प्रभुः ॥ ५२ ॥ समरेषु जयञ्चैव प्रददौ लोकभावनः । सैनापत्यमनुप्राप्य स्कन्दो देवगणस्य ह ॥ ५३ ॥ शुशुभे ज्वलितोऽर्चिष्मान् द्वितीय इव पावकः । ततः पारिषदैश्चैव मातृभिश्च समन्ततः ॥ ५४ ॥ ययौ दैत्यविनाशाय ह्लादयन् सुरपुङ्गवान् । सा सेना नैर्ऋती भीमा सघण्टो-

---

सेनाका नाम धनञ्जया था ॥ ४५—४७ ॥ यह सेना रुद्रकी समान बलवान् और तैंतीस सहस्र योधाओंसे भरपूर थी, वह रण मेंसे कभी पीछेको हटना तो जानती ही नहीं थी ॥ ४८ ॥ विष्णु ने स्वामिकार्त्तिकेयके बलको बढानेवाली वैजयन्ती नामकी माला भेट की, उमाने सूर्यकी समान चमकते हुए दो निर्मल वस्त्र अर्पण किये ॥ ४९ ॥ गङ्गाने कुमारको अमृतमेंसे उत्पन्न हुआ उत्तम दिव्य कमंडलु और बृहस्पतिने प्रसन्न होकर दंड भेंट किया ॥ ५० ॥ गरुड़ने अपना विचित्र रङ्गके परोंवाला प्यारा पुत्र मयूर दिया, अरुणने लाल कलगीवाला मुरगा दिया ॥ ५१ ॥ राजा वरुणने बल और वीरतावाला नाग भेट किया, प्रभु ब्रह्मा जीने ब्राह्मणोंके हितकारी कुमारको काली मृगछाला दी ॥ ५२ ॥ लोकोंको उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माने युद्धमें विजयका वरदान भी दिया, इसप्रकार देवसेनापतिके पदको पाकर स्वामिकार्त्तिकेय ज्वालावाले दूसरे प्रज्वलित अग्निकी समान शोभा पाने लगे और फिर मातृकाओं तथा पार्षदोंको साथ लेकर बड़े२ देवताओं को प्रसन्न करते हुए दैत्योंका संहार करनेको चढ़गये, उनकी

च्छिन्नकेतना ॥ ५५ ॥ सभेरी शंखमुरजा सायुधा सपताकिनी । शारदी द्यौरिवाभाति ज्योतिर्भिरिव शोभिता ॥५६॥ ततो देवनिकायास्ते नानाभूतगणास्तथा । वाद्यामासुरव्यग्रा भेरीः शखांश्च पुष्कलान् ॥ ५७ ॥ पटहान् झर्झरांश्चैव क्रकचान् गोविषाणकान् । आडम्बरान् गोमुखान् डिण्डिमांश्च महास्वनान् ॥ ५८ ॥ तुष्टुवुस्ते कुमारन्तु सर्वे देवाः सवासवाः । जगुश्च देवगन्धर्वाः ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ५९ ॥ ततः प्रीतो महासेनस्त्रिदशेभ्यो वरं ददौ । रिपून् हन्तास्मि समरे ये वो वधचिकीर्षवः ॥ ६० ॥ प्रतिगृह्य वरं देवास्तस्माद्विबुधसत्तमात् । प्रीतात्मानो महात्मानो मेनिरे निहतान् रिपून् ॥ ६१ ॥ सर्वेषां भूतसंघानां हर्षान्नादः समुत्थितः । अपूरयत् लोकांस्त्रीन् वरे दत्ते महात्मना ६२

सेनामें नैर्ऋत नामके देवता भी थे, वह सेना भयानक और सैनिकोंसे खचाखच भरी हुई थी, ऊँची ध्वजा पताकाओंवाली शंख भेरी, मृदङ्ग, आयुध तथा ध्वजा पताकाओं वाली थी और वह शरद ऋतुके आकाशकी समान तेजसे शोभा पारही थी ॥ ५३—५६ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयने शत्रुओंके ऊपर चढायी की, कि-देवता और अनेकों प्रकारके भूतगण धीरज धरकर भेरी, बहुतसे शंख, ढोल, झालर, क्रकच, सींग, आडम्बर और बड़ा भारी शब्द करने वाले डौरुओंको बजाने लगे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ इन्द्रसहित सब देवता स्वामिकार्त्तिकेयकी स्तुति करने लगे, देवता और गन्धर्व गाने लगे तथा अप्सराओंके गण नाचने लगे ५९ फिर स्वामिकार्त्तिकेयने प्रसन्न होकर देवताओंको वरदान दिया कि—जो युद्धमें तुम्हारा नाश करना चाहते हैं, उन शत्रुओंको मैं रणमें मारूँगा ॥ ६० ॥ देवश्रेष्ठ स्वामिकार्त्तिकेयका वरदान पाकर देवता प्रसन्न हुए और शत्रुओंका संहार होगया, ऐसा मानने लगे ॥ ६१ ॥ महात्मा कार्त्तिकेयके वरदान देने पर सब भूतगणोंके हर्षका कोलाहल होउठा, जिससे त्रिलोकी गुञ्जारने

स निर्ययौ महासेनो महत्या सेनया वृतः । वधाय युधि दैत्यानां रक्षार्थञ्च दिवौकसाम् ॥ ६३ ॥ व्यवसायो जयो धर्मः सिद्धिर्लक्ष्मी धृतिः स्मृतिः । महासेनस्य सैन्यानामग्रे जग्मुर्नराधिप ६४ स तथा भीमया देवः शूलमुद्गरहस्तया । ज्वलितालातधारिण्या चित्राभरणवर्मया ॥६५॥ गदामुसलनाराचशक्तितोमरहस्तया । दृप्तसिंहनिनादिन्या विनद्य प्रययौ गुहः ॥ ६६ ॥ तं दृष्ट्वा सर्वदैतेया राक्षसा दानवास्तथा । व्यद्रवन्तः दिशः सर्वा भयोद्विग्नाः समन्ततः ॥ ६७ ॥ अभ्यद्रवन्त देवास्तान् विविधायुधपाणयः । दृष्ट्वा च स ततः क्रुद्धः स्कन्दस्तेजोबलान्वितः ॥ ६८ ॥ शक्त्यस्त्रं भगवान् भीमं पुनः पुनरवासृजत् । अदधच्चात्मनस्तेजो हविषेद्ध

लगी ॥ ६२ ॥ बड़ीभारी सेनाको साथमें लिये हुए वह स्वामिकार्त्तिकेय युद्धमें दैत्योंका वध और देवताओंकी रक्षा करनेके लिये निकल पड़े ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! उस समय व्यवसाय, विजय धर्म, सिद्धि, लक्ष्मी, धृति और स्मृति उनकी सेनाके आगे २ चलने लगे ॥ ६४॥ उन स्वामिकार्त्तिकेय देवने गर्जना करके बड़ी भारी सेनाके साथ शत्रुके ऊपर चढ़ायी की, उनकी सेना भयङ्कर शूल और मुद्गर धारण करनेवाली, बलते हुए उल्मुक लिये, विचित्र प्रकारके गहने पहरे, कवच धारण किये, गदा मूसल बाण शक्ति और तोमरोंको धारण करनेवाली तथा गर्वीले सिंहकी समान गर्जना करनेवाली थी ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ सब दैत्य, दानव और राक्षस स्वामिकार्त्तिकेयको देखते क्षण ही भयसे घवड़ाकर चारों ओरको भागने लगे ॥ ६७ ॥ उसी समय देवता हाथोंमें अनेकों प्रकारके आयुध लिये हुए उनके ऊपर दौड़े, तेजस्वी और बलवान् स्वामिकार्त्तिकेय भी दैत्योंको देखकर क्रोधमें भरगये ॥ ६८ ॥ वे दैत्योंके वारम्वार शक्ति नामका भयानक अस्त्र मारने लगे, उस समय जैसे घी डालनेसे अग्नि बढ़ता है तैसे ही स्वामि-

इवानलः ॥ ६९ ॥ अभ्यस्यमाने शक्त्यस्त्रे स्कन्देनामिततेजसा
उल्काज्वाला महाराज पपात वसुधातले ॥ ७० ॥ संहादयन्तश्च
तथा निर्घाताश्चापतन्क्षितौ । यथान्तकालसमये सुघोराः स्यु-
स्तथा नृप ॥ ७१ ॥ क्षिप्ता ह्येका यदा शक्तिः सुघोरानलसूनुना ।
ततः कोट्यो विनिष्पेतुः शक्तीनां भरतर्षभ ॥ ७२ ॥
ततः प्रीतो महात्मनो जघान भगवान् प्रभुः । दैत्येन्द्रं तारकं नाम
महाबलपराक्रमम् ॥ ७३ ॥ वृतं दैत्यायुतैर्वीरैर्बलिभिर्दशभिर्नृप ।
महिषञ्चाष्टभिः पद्मैर्वृतं संख्ये निजघ्निवान् ॥ ७४ ॥ त्रिपादश्चा-
युतशतैर्जघान दशभिर्वृतं । ह्रदोदरं निखर्वैश्च वृतं दशभिरीश्वरः ॥ ७५
जघानानुचरैः सार्धं विविधायुधपाणिभिः । तथाकुर्वन्त विपुलं
नादं वध्यत्सु शत्रुषु ॥ ७६ ॥ कुमारानुचरा राजन् पूरयन्तो

कार्त्तिकेय भी अपनेमें विद्यमान दैवी तेजसे बढ़ने लगे ॥ ६९ ॥
हे महाराज ! अपारतेजस्वी स्वामिकार्त्तिकेय शक्ति नामके अस्त्रोंको
ज्यों ज्यों छोडने लगे त्यों २ उनकी प्रचण्ड ज्वाला भूमि पर
गिरने लगी ॥ ७० ॥ हे राजन् ! जैसे प्रलयकालमें महाभयानक
कडाके भड़ाके होते हैं, तैसे ही उस समय भी देवताओंको हर्ष देते
हुए भूमि पर वज्रपातकेसे धड़ाके होने लगे ॥ ७१ ॥ हे भरत-
सत्तम ! अग्निकुमार स्वामिकार्त्तिकेय जब महाघोर एक शक्ति
फेंकते थे तो उसमेंसे करोडों शक्तियें निकल पडती थीं ॥ ७२ ॥
तदनन्तर भगवान् स्वामिकार्त्तिकेयने बड़े बल और पराक्रमवाले
एक लाख दैत्योंसे घिरे हुए दैत्यराज तारकासुरको युद्धमें मार
डाला, करोड़ों और आठ पद्म बलवान् दैत्योंसे घिरे हुए महिष
को भी युद्धमें मारडाला ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ एक करोड़ दैत्योंसे घिरेहुए
त्रिपादको तथा दश निखर्वोंसे घिरेहुए ह्रदोदरको भी अनेकों
प्रकारके आयुधोंको धारण करनेवाले अनुचरोंके सहित स्वामि-
कार्त्तिकेयने मारडाला, इसप्रकार स्वामिकार्त्तिकेय जब असुरोंका
नाश कररहे थे उस समय उनके अनुचर हे राजन् ! हर्षमें भरकर

दिशो दश । ननृतुश्च ववल्गुश्च जहसुश्च मुदान्विताः ॥७७॥ शक्त्यस्त्रस्य तु राजेन्द्र ततोर्चिर्भिः समन्ततः । त्रैलोक्यं त्रासितं सर्वं जृम्भमाणाभिरेव च ॥ ७८ ॥ दग्धाः सहस्रशो दैत्या नादैः स्कन्दस्य चापरे । पताकयावधूताश्च हताः केचित् सुरद्विषः ॥ ७९ ॥ केचित् घण्टारवत्रस्ता निपेतुर्वसुधातले । केचित् प्रहरणैश्छिन्ना विनिष्पेतुर्गतायुषः ॥ ८० ॥ एवं सुरद्विषोनेकान् बलवानाततायिनः । जघान समरे वीरः कार्त्तिकेयो महाबलः ॥ ८१ ॥ बाणो नामाथ दैतेयो बलेः पुत्रो महाबलः । क्रौञ्चपर्वतमाश्रित्य देवसंघानबाधत ॥ ८२ ॥ तमभ्ययान् महासेनः सुरशत्रुमुदारधीः । स कार्त्तिकेयस्य भयात् क्रौञ्चं शरणमीयिवान् ॥ ८३ ॥ ततः क्रौञ्चं महामन्युः क्रौञ्चनादनिना-

---

बड़ी २ गर्जनाओंसे दशों दिशाओंको गुँजारते हुए नाच रहे थे और आपसमें बातें करके हँसरहे थे ॥ ७५-७७ ॥ हे राजेन्द्र ! उस समय स्वामिकार्त्तिकेयकी मारी हुई शक्तिकी ज्वालायें चारों ओरको फैलगयीं, जिनसे तीनों लोकोंके प्राणी घबड़ागये ॥७८॥ स्वामिकार्त्तिकेयकी गर्जनाओंसे ही सहस्रों दैत्य भस्म होगये और कोई दैत्य उनकी पताकाकी झपेटसे ही मरगये ॥७९॥ कितने उनके घण्टके शब्दसे त्रास खाकर भूमि पर गिरगये और कितने ही शस्त्रोंसे कटकर प्राणरहित हो भूमि पर गिरगये ॥८०॥ इस प्रकार महाबली वीर स्वामिकार्त्तिकेयने अनेकों आततायी दैत्योंका समरमें संहार किया८१ इतनेमें ही बलिका महाबली पुत्र बाणासुर क्रौंच पर्वत पर पड़ाव डालकर देवगणोंको पीड़ादेने लगा ८२ यह देखकर उदारबुद्धि स्वामिकार्त्तिकेयने उसके ऊपर चढ़ायी की, तब बाणासुरने उनके भयसे क्रौंच पर्वतकी शरण ली८३ तब तो भगवान् स्वामिकार्त्तिकेयको बड़ा क्रोध चढ़ आया, और उन्होंने अग्निकी दी हुई शक्ति मारकर क्रौंच पक्षियोंसे शब्दायमान क्रौंच

दितम् । शक्त्या बिभेद भगवान् कार्त्तिकेयोऽग्निदत्तया ॥ ८४ ॥ स शालस्कन्धशबलं त्रस्तवानरवारणम् । प्रोड्डीनोद्भ्रान्तविहगं विनिष्पतितपन्नगम् ॥ ८५ ॥ गोलांगूलर्क्षसंघैश्च द्रवद्भिरनुनादितम् ।कुरङ्गमविनिर्घोषनिनादितवनान्तरम् ॥८६॥ विनिष्पतद्भिः शरभैः सिंहैश्च सहसा द्रुतैः । शोच्यामपि दशां प्राप्तो रराजैव स पर्वतः ॥ ८७ ॥ विद्याधराः समुत्पेतुस्तस्य शृंगनिवासिनः । किन्नराश्च समुद्विग्नाः शक्तिपातरवोद्धताः ॥ ८८ ॥ ततो दैत्या विनिष्पेतुः शतशोथ सहस्रशः । प्रदीप्तात् पर्वतश्रेष्ठाद्विचित्राभरणस्रजः ॥ ८९ ॥ तान्निजघ्नुरतिक्रम्य कुमारानुचरा मृधे । स चैव भगवान् क्रुद्धो दैत्येन्द्रस्य सुतं तदा ॥ ९० ॥ सहानुजं जघानाशु वृत्रं देवपतिर्यथा। बिभेद शक्त्या क्रौञ्चञ्च पावकिः परवीरहा॥९१

पर्वतके टुकड़े २ कर डाले ॥ ८४ ॥ उस समय सालके वृक्षोंकी शाखाओंसे विचित्र दीखतेहुए उस पर्वत पर रहनेवाले वानर और हाथी भयभीत होगये, पक्षी डरकर उडनेलगे,सर्प बिलोंमेंसे बाहर निकलपड़े, लंगूर और रीछोंने इधर उधरको दौड़कर पर्वत को शब्दायमान करडाला, हिरनोंके शब्दोंसे दूसरे वन भी गूँज उठे, शरभ गिरते हुए भागने लगे और सिंह एकसाथ भाग निकले, इसप्रकार दुःखकी दशाको प्राप्त होने पर भी क्रौंच पर्वत मानो एकप्रकारसे दिपनेलगा ॥८५-८७॥ उस पर्वतके शिखरों पर रहनेवाले विद्याधर और किन्नर भी शक्तिके शब्दको सुनकर घबड़ागये और तहाँसे भागने लगे ॥ ८८ ॥ परन्तु कुमारके अनुचर उन दैत्योंको पकड़२ कर रणमें मारने लगे, फिर जैसे इन्द्रने वृत्रासुरका नाश किया था तैसे ही स्वामिकार्त्तिकेयने भी अत्यन्त क्रोधमें भरकर उसी समय दैत्यराजके छोटे भाईके सहित उसके पुत्रको भी मारडाला और फिर शत्रुवीरोंका संहार करने वाले अग्निकुमार स्वामिकार्त्तिकेयने शक्तिसे क्रौंच पर्वतके टुकड़े कर डाले, महाबली कार्त्तिकेय अपने अनेकों रूप करके संग्राममें

बहुधा चैकधा चैव कृत्वात्मानं महाबलः । शक्तिः क्षिप्ता रणे तस्य पाणिमेति पुनः पुनः ॥ ९२ ॥ एवं प्रभावो भगवांस्ततो भूयश्च पावकिः । शौर्याद्द्विगुणयोगेन तेजसा यशसा श्रिया॥९३॥ क्रौञ्चस्तेन विनिर्भिन्नो दैत्याश्च शतशो हताः । ततः स भगवान् देवो निहत्य विबुधद्विषः ॥ ९४ ॥ स भज्यमानो विबुधैः परं हर्षमवाप ह । ततो दुन्दुभयो राजन् नेदुः शंखाश्च भारत९५ मुमुचुर्देवयोषाश्च पुष्पवर्षमनुत्तमम् । योगिनामीश्वरं देवं शत-शोथ सहस्रशः ॥ ९६ ॥ दिव्यं गन्धमुपादाय ववौ पुण्यश्च भारत । गन्धर्वास्तुष्टुवुश्चैनं यज्वानश्च महर्षयः ॥ ९७ ॥ केचिदेनं व्यवस्यन्ति पितामहसुतं प्रभुम् । सनत्कुमारं सर्वेषां ब्रह्मयोनिं तम-ग्रजम् ॥९८॥ केचिन्महेश्वरसुतं केचित् पुत्रं विभावसोः । उमायाः कृत्तिकानाञ्च गङ्गायाश्च वदन्त्युत ॥ ९९ ॥ एकधा च द्विधा चैव

ज्यों२ शक्तिको फेंकतेथे त्यों२ वह शक्ति फिर बारम्बार लौटकर उनके हाथमें आजाती थी ॥९०–९२॥ अग्निपुत्र प्रतापी भगवान् स्वामीकार्त्तिकेयने शूरता, तेज, यश और लक्ष्मीके प्रभावसे क्रौंच पर्वतका तथा सैंकड़ों दैत्योंका नाश करडाला था, इसप्रकार सहस्रों दैत्योंका संहार करके भगवान् स्वामिकार्त्तिकेय देवताओंसे पूजा पाकर बड़े प्रसन्न हुए हे भरतवंशी राजन्! तुरन्त देवताओंकी दुंदुभियें और नगाड़े बजने लगे९३–९५सैंकड़ों नगाड़े तथा शंख भी बजने लगे सहस्रों देवाङ्गनायें, योगियोंके प्रभु कार्त्तिकेय देवके ऊपर आकाशमेंसे दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं ९६ पवित्र पवन दिव्यगन्धको लेकर बहने लगा, गन्धर्व, महर्षि और, यज्ञ करनेवाले यजमान उनकी स्तुति करने लगे ॥९७॥ इस युद्धके समय योगियों के ईश्वर और देवताओंमें श्रेष्ठ स्वामिकार्त्तिकेयने एक, दो चार इसप्रकार अनेकों रूप धारण किये, इसलिये किन्हीने उनको ब्रह्मा का पुत्र सनत्कुमार जाना, कितनो हीने शंकरका पुत्र जाना, किन्ही

चतुर्द्धा च महाबलम् । योगिनामीश्वरं देवं शतशोथ सहस्रशः१००
एतत्ते कथितं राजन् कार्त्तिकेयाभिषेचनम् । शृणु चैव सरस्वत्या-स्तीर्थवर्य्यस्य पुण्यताम् ॥ १०१ ॥ बभूव तीर्थप्रवरं हतेषु सुर-शत्रुषु । कुमारेण महाराज त्रिविष्टपमिवापरम् ॥ १०२ ॥ ऐश्वर्याणि च तत्रस्थो ददावीशः पृथक् पृथक् । तदा नैर्ऋतमुख्येभ्य-स्त्रैलोक्यं पावकात्मजः ॥ १०३ ॥ एवं स भगवांस्तस्मिंस्तीर्थे दैत्यकुलान्तकः । अभिषिक्तो महाराज देवसेनापतिः सुरैः १०४
तैजसं नाम तत्तीर्थं यत्र पूर्वमपाम्पतिः । अभिषिक्तः सुरगणैर्वरुणो भरतर्षभ ॥ १०५ ॥ तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा स्कन्दञ्चाभ्यर्च्य लाङ्गली । ब्राह्मणेभ्यो ददौ रुक्मं वासांस्याभरणानि च १०६
उषित्वा रजनीं तत्र माधवः परवीरहा । पूज्य तीर्थवरं तच्च स्पृष्ट्वा

ने अग्निका पुत्र, किन्हीने उमाका पुत्र, किन्हीने कृत्तिकाका पुत्र और कितनोहीने गङ्गाका पुत्र जाना ॥ ९८–१०० ॥ हे राजन् ! इन भगवान् स्वामिकार्त्तिकेयके अभिषेककी कथा मैंने तुम्हें सुनादी, अब सरस्वती नामक तीर्थकी पवित्रता सुनो ॥ १०१ ॥ हे महाराज ! स्वामिकार्त्तिकेयके दैत्योंका संहार करडालनेके अनन्तर वह उत्तम तीर्थ दूसरा स्वर्गसा होगया था ॥ १०२ ॥ उस तीर्थमें निवास करके स्वामिकार्त्तिकेयने देवताओंको जुदे २ ऐश्वर्य दिये, नैर्ऋत नामके लोकपाल देवताओंको तीनों लोकोंके ऐश्वर्य दिये ॥ १०३ ॥ देवताओंने जिस तीर्थमें दैत्योंका नाश करनेवाले भगवान् स्वामिकार्त्तिकेयका देवसेनाके अधिपति रूपसे अभिषेक किया था ॥ १०४ ॥ उस तीर्थका नाम तैजस तीर्थ है और उस ही तीर्थमें पहले देवताओंने वरुणका भी जलके अधिपति रूपसे अभिषेक किया था ॥ १०५ ॥ बलदेवजीने इस महातीर्थमें स्नान करके स्वामिकार्त्तिकेयका पूजन किया और ब्राह्मणोंको सोना, वस्त्र तथा आभूषणोंका दान दिया ॥ १०६ ॥ यदुवंशी शत्रुहन्ता हलधर बलदेवजी तहाँ एक रात्रि निव

तोयं च लाङ्गली । हृष्टः प्रीतमनाश्चैव ह्यभवन्माधवोत्तमः १०७
एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि । यथाभिषिक्तो भग-
वान् स्कन्दो देवैः समागतैः ॥ १०८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां
सारस्वतोपाख्याने तारकवधे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६

जनमेजय उवाच । अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन् श्रुतवानस्मि तत्त्वतः ।
अभिषेकं कुमारस्य विस्तरेण यथाविधि ॥ १ ॥ यच्छ्रुत्वा पूतमा-
त्मानं विजानामि तपोधन । प्रहृष्टानि च रोमाणि प्रसन्नञ्च मनो
मम ॥ २ ॥ अभिषेकं कुमारस्य दैत्यानां च वधन्तथा । श्रुत्वा मे
परमा प्रीतिर्भूयः कौतूहलं हि मे ॥ ३ ॥ अपाम्पतिः कथं ह्यस्मि-
न्नभिषिक्तः पुरा सुरैः । तन्मे ब्रूहि महाप्राज्ञ कुशलो ह्यसि
सत्तम ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच । शृणु राजन्निदं चित्रं पूर्व-

करके मनमें बड़े ही प्रसन्न हुए, देवताओंने इकट्ठे होकर जिस प्रकार भगवान् स्वामिकार्त्तिकेयका अभिषेक किया था; तिसप्रकार ही तुम्हारे प्रश्न करने पर यह अभिषेकका सब वृत्तान्त तुम्हें सुना दिया ॥ १०७ ॥ ॥ १०८ ॥ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४६

जनमेजयने कहा, कि—हे वैशम्पायनजी ! आपने मुझे स्वामिकार्त्तिकेयके अभिषेककी अद्भुत कथा विधिपूर्वक विस्तारसे सुनाई, उसको मैंने यथावत् सुन लिया ॥ १ ॥ हे तपोधन ! जिस कथाको सुन कर मैं अपने आत्माको पवित्र मान रहा हूँ, मेरा रोम २ प्रसन्न है और मेरा मन भी प्रसन्न है ॥ २ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयके अभिषेककी और दैत्योंके वधकी कथाको सुनकर मुझे परम प्रसन्नता होरही है, परन्तु मेरा जी चाहता है, कि —और एक कथा सुनूँ ॥ ३ ॥ हे परम बुद्धिमान् श्रेष्ठ पुरुष ! पहले देवताओंने इस तीर्थमें वरुणका जलके अधिपति पद पर अभिषेक किसप्रकार किया था, यह मुझे सुनाइये क्योंकि—आप कथा कहनेमें चातुर हैं ॥ ४ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि—हे राजा जनमेजय ! मैं तुमसे पहले कल्पकी कथा कहता हूँ उस

कल्पे यथातथम् । आदौ कृतयुगे राजन् वर्त्तमाने यथाविधि ॥५॥
वरुणं देवताः सर्वाः समेत्येदमथाब्रुवन् । यथास्मान् सुरराट् शक्रो
भयेभ्यः पाति सर्वदा ॥ ६ ॥ तथा त्वमपि सर्वासां सरितां वै
पतिर्भव । वासश्च ते सदा देव सागरे मकरालये ॥ ७ ॥ समुद्रोयं
तव वशे भविष्यति नदीपतिः । सोमेन सार्द्धञ्च तव हानिवृद्धी
भविष्यतः ॥ ८ ॥ एवमस्त्विति तान् देवान् वरुणो वाक्यमब्रवीत् ।
समागम्य ततः सर्वे वरुणं सागरालयम् ॥ ६ ॥ अपां पतिं प्रच-
क्रुर्हि विधिदृष्टेन कर्मणा । अभिषिच्य ततो देवा वरुणं यादसां
पतिम् ॥ १० ॥ जग्मुः स्वान्येव स्थानानि पूजयित्वा जलेश्वरम् ।
अभिषिक्तस्ततो देवैर्वरुणोपि महायशाः ॥ ११ ॥ सरितः साग-
रांश्चैव नदांश्चापि सरांसि च । पालयामास विधिना यथा
देवान् शतक्रतुः ॥ १२ ॥ ततस्तत्राप्युपस्पृश्य दत्वा च विविधं
वसु । अग्नितीर्थं महाप्राज्ञो जगामाथ प्रलम्बहा ॥ १३ ॥ नष्टो न

को सुनो, पहले सत्ययुगके समयमें सब देवता वरुणके पास जाकर कहने लगे, कि—जैसे इन्द्र सदा भयसे हमारी रक्षा करता है,तैसे ही तुम भी सब नदियोंके पति बनकर हमारी रक्षा करो,तुम सदा मकरोंके निवासरूप समुद्रमें रहते हो,यह नदीपति समुद्र सदा तुम्हारे वशीभूत होकर रहेगा और चन्द्रमा की हानि तथा वृद्धिके साथ तुम्हारी भी हानि और वृद्धि होगी ॥ ५—८॥ वरुणने देवताओंसे ऐसा करना स्वीकार किया और देवताओंने इकट्ठे होकर शास्त्रमें कही हुई रीतिसे वरुणका जलके अधिपतिरूपसे अभिषेक कर दिया और उनकी पूजा करके अपने अपने धामको चले गये, जलजन्तुओंके स्वामी महाकीर्त्तिमान् वरुण देव भी देवताओंके द्वारा अपना अभिषेक होजाने पर जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करता है तैसे ही नदी, समुद्र, नद और सरोवरों की रक्षा करने लगे ॥ ६—१२॥ तदनन्तर उस तीर्थमें भी स्नान करके और ब्राह्मणोंको अनेकों प्रकारका धन देकर प्रलम्ब दैत्यके

दृश्यते यत्र शमीगर्भे हुताशनः । लोकालोकविनाशे च प्रादुर्भूते तदानघ ॥ १४ ॥ उपतस्थुः सुरा यत्र सर्वलोकपितामहम् । अग्निः प्रनष्टो भगवान् कारणञ्च न विद्महे ॥१५॥ सर्वभूतक्षयो मा भूत् सम्पादय विभोऽनलम् । जनमेजय उवाच । किमर्थं भगवानग्निः प्रनष्टो लोकभावनः ॥ १६ ॥ विज्ञातश्च कथं देवैस्तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः । वैशम्पायन उवाच । भृगोः शापाद्भृशं भीतो जातवेदाः प्रतापवान् ॥ १७ ॥ शमीगर्भमथासाद्य ननाश भगवांस्ततः । प्रनष्टे तु तदा वह्नौ देवाः सर्वे सवासवाः ॥ १८ ॥ अन्वेषन्त तदा नष्टं ज्वलनं भृशदुःखिताः । ततोऽग्नितीर्थमासाद्य शमीगर्भस्थमेव हि ॥ १९ ॥ ददृशुर्ज्वलनं तत्र वसमानं यथाविधि । देवाः सर्वे नरव्याघ्र बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ २० ॥ ज्वलनं तं समा-

नाशक महाबुद्धिमान् बलदेवजी अग्नितीर्थमें गये ॥ १३ ॥ जिस तीर्थमें अग्नि शमीके वृक्षमें छुपकर रहनेके कारण दीखता नहीं था, हे निर्दोष राजन्! उस समय सब लोकमें प्रकाशका नाश होगया ॥ १४ ॥ तब देवता सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजीके पास जाकर उनसे कहने लगे. कि-हे भगवन्! भगवान् अग्निदेव अदृश्य होगये हैं, परन्तु ऐसा क्यों हुआ है, इसका कारण हमें नहीं मालूम ।१५। इसलिये हे सब लोकोंमें व्यापक भगवन्! ऐसा करिये, कि-जिसमें अग्निके अभावसे सब लोकोंका नाश न हो, जनमेजयने कहा कि-लोकोंका कल्याण करनेवाले भगवान् अग्निदेव क्यों अदृश्य होगये? ॥ १६॥ और फिर देवताओंने उनको कैसे खोजा, यह मुझे ठीक२ बताओ,वैशम्पायनने कहा, कि-प्रतापी अग्नि भृगुके शापसे बहुत ही भयभीत होगया था॥१७॥तबसे भगवान् अग्निदेव शमीके भीतर जाकर अदृश्य होगये थे. अग्निके अन्तर्धान होजाने पर इन्द्रसहित सब देवता ॥ १८॥ अतिदुःखी होकर अन्तर्धान हुए अग्निको खोजने लगे, खोजते २ वे अग्नि-तीर्थमें आये तो तहाँ शमीके वृक्षमें अग्निको निवास करके रहते हुए देखा, अग्नि देवताका

साग्र मीताभूवन् सवासवाः । पुनर्यथागतं जग्मुः सर्वभक्ष्यश्च सोऽभवत् ॥ २१ ॥ भृगोःशापान्महीपाल यदुक्तं ब्रह्मवादिना । तत्राप्याप्लुत्य मतिमान् ब्रह्मयोनिं जगाम ह ॥ २२ ॥ ससर्ज भगवान् यत्र सर्वलोकपितामहः । तत्राप्लुत्य ततो ब्रह्मा सह देवैः प्रभुः पुरा ॥ २३ ॥ ससर्ज्ज तीर्थानि तथा देवतानां यथाविधि । तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च वसूनि विविधानि च ॥ २४ ॥ कौवेरं प्रययौ तीर्थं यत्र तप्त्वा महत्तपः । धनाधिपत्यं संप्राप्तो राजन्नैलविलः प्रभुः ॥ २५ ॥ तत्रस्थमेव तं राजन्धनानि निधयस्तथा । उपतस्थुर्नरश्रेष्ठ तत्तीर्थं लांगली बलः ॥ २६ ॥ गत्वा स्नात्वा च विधिवद् ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ । ददृशे तत्र तत् स्थानं कौवेरे काननोत्तमे । पुरा यत्र तपस्तप्तं विपुलं सुमहात्मना । यक्षराज्ञा

दर्शन करके तथा उनसे मिल भेंटकर, जिनमें बृहस्पति मुख्य थे ऐसे इन्द्रादि देवता प्रसन्न हुए और फिर अपने २ स्थानको चले गये, बुद्धिमान् अग्नि भी भृगुके शापसे सर्वभक्षी होगया और उन ब्रह्मवादी मुनियोंके कहनेसे उस ही तीर्थमें स्नान करके ब्रह्मत्वको प्राप्त हुआ ॥ १६—२२ ॥ सब लोकोंके पितामह ब्रह्माने पहले देवताओंके साथ उस तीर्थमें स्नान करके तहाँ अन्य देवताओंके बहुतसे तीर्थ उत्पन्न किये थे, उन तीर्थोंमें भी स्नान करके बलदेवजीने ब्राह्मणोंको अनेकों प्रकारका धन दिया और तहाँसे कुवेर तीर्थमें गये, जहाँ भगवान् कुवेरने पहले बडा भारी तप करके देवताओंके धनाध्यक्ष (खजांची) का पद पाया था ॥ २३—२५ ॥ हे राजन् ! उस ही तीर्थमें निवास करते हुए कुवेरकी सेवामें धन और भण्डार स्वयं उपस्थित हुए थे, हलधर बलदेवजीने उस ही तीर्थमें जाकर स्नान किया और ब्राह्मणों को विधिपूर्वक धनके दान दिये तथा तहाँ ही कुवेर नामके बड़े भारी वनमें, जहाँ महात्मा यक्षराज कुवेरने, पहले महातप करके

कुबेरेण वरा लब्धाश्च पुष्कलाः ॥ २८ ॥ धनाधिपत्यं सख्यञ्च रुद्रेणामिततेजसा । सुरत्वं लोकपालत्वं पुत्रञ्च नलकूबरम् ॥२९॥ यत्र लेभे महाबाहो धनाधिपतिरञ्जसा । अभिषिक्तश्च तत्रैव समागम्य मरुद्गणैः ॥ ३० ॥ वाहनञ्चास्य तद्दत्तं हंसयुक्तं मनोजवम् । विमानं पुष्पकं दिव्यं नैर्ऋतैश्वर्यमेव च ॥ ३१ ॥ तत्राप्लुत्य बलो राजन् दत्त्वा दायांश्च पुष्कलान् । जगाम त्वरितो रामस्तीर्थं श्वेतानुलेपनः ॥ ३१ ॥ निषेवितं सर्वसत्त्वैर्नाम्ना बदरपाचनम् । नानर्तुकफलोपेतं सदा पुष्पफलं शुभम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततस्तीर्थवरं रामो ययौ बदरपाचनम् । तपस्विसिद्धचरितं यत्र कन्या धृतव्रता ॥ १ ॥ भरद्वाजस्य दुहिता

बहुतसे वरदान पाये थे, देवताओंका धनाधीशपना, अपारतेजस्वी भगवान् रुद्रके साथ मित्रता, देवपना, लोकपालपना और नलकूबर नामका पुत्र पाया था, उस स्थानका भी बलदेवजीने दर्शन किया, उस स्थान पर ही मरुद्गणोंने इकट्ठे होकर उसका लोकपाल पद पर अभिषेक किया था, यक्षोंका स्वामित्व दिया था तथा हंसोंसे जुता हुआ और मनकी समान वेगवाला पुष्पक नामका दिव्य विमान दिया था ॥ २६-३१ ॥ हे राजन् ! उस तीर्थमें भी श्वेत चन्दन लगाने वाले बलदेवजीने स्नान करके बहुतसे दान किये, और तहाँसे चलकर शीघ्रताके साथ बदरपाचन नामके शुभतीर्थमें गये, इस तीर्थमें सब प्रकारके प्राणी रहते हैं तथा जुदी २ ऋतुओंमें फलनेवाले और नित्य फूल फल देने वाले उत्तम बगीचे हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायनने कहा, कि-हे राजा जनमेजय ! फिर बलदेवजी तपस्वी और सिद्धोंसे बसे हुए बदरपाचन नामके श्रेष्ठ तीर्थमें गये,

रूपेणाप्रतिमा भुवि । श्रुतावती नाम विभो कुमारी ब्रह्मचारिणी२ तपश्चचार सात्युग्रं नियमैर्बहुभिर्वृता । भर्ता मे देवराजः स्यादिति निश्चित्य भामिनी ॥ ३ ॥ समास्तस्या व्यतिक्रान्ता बह्व्यः कुरुकुलोद्वह । चरन्त्या नियमांस्तांस्तान् स्त्रीभिस्तीव्रान् सुदुश्चरान् ॥ ४ ॥ तस्यास्तु तेन वृत्तेन तपसा च विशाम्पते । भक्त्या च भगवान् प्रीतः परया पाकशासनः ॥ ५ ॥ आजगामाश्रमं तस्यास्त्रिदशाधिपतिः प्रभुः । आस्थाय रूपं विप्रर्षेर्वशिष्ठस्य महात्मनः ॥ ६ ॥ सा तं दृष्ट्वोग्रतपसं वशिष्ठं तपतां वरम् । आचारैर्मुनिभिर्दृष्टैः पूजयामास भारत ॥ ७ ॥ उवाच नियमज्ञा च कल्याणी सा प्रियम्वदा । भगवन्मुनिशार्दूल किमाज्ञापयसि प्रभो ॥ ८ ॥ सर्वमद्य यथाशक्ति तव दास्यामि सुव्रत । शक्रभक्त्या च ते पाणिं न दास्यामि कथञ्चन ॥ ९ ॥ व्रतैश्च नियमैश्चैव

इस तीर्थमें पहले भरद्वाजकी अनुपम रूपवती श्रुतावती नामकी पुत्रीने इन्द्रके साथ विवाह करनेका निश्चय करके अत्यन्त उग्र तप करनेका आरम्भ किया था और ब्रह्मचर्यके साथ अनेकों नियमोंका पालन करने लगी थी ॥ १–३ ॥ हे कुरुवंशी! जिनका पालन स्त्रियें नहीं कर सकतीं ऐसे बड़े ही कठिन नियमोंका पालन करते २ उसको बहुतसे दिन बीत गए ॥ ४ ॥ और हे राजन्! उस स्त्रीके ऐसे आचरण, तप और परमभक्तिसे भगवान् इन्द्र उसके ऊपर प्रसन्न होगये ॥ ५ ॥ और देवराज इन्द्र महात्मा वशिष्ठका रूप धरकर उस कन्याके आश्रममें आये ॥६॥ उस कन्याने उग्र तपवाले महातपस्वी वशिष्ठको देखकर ऋषियों के द्वारा जाने हुए आचारके अनुसार उन ऋषिकी पूजा की और नियमोंको जानने वाली कल्याणी श्रुतावती मधुर वाणीमें कहने लगी, कि–हे भगवन्! मुनिराज! क्या आज्ञा है? ॥७॥८ हे सुन्दरव्रतवाले मुनिजी! आज तुम जो माँगोगे वही मैं यथाशक्ति आपको दूँगी, परन्तु इन्द्रके ऊपर भक्ति होनेके कारण मैं

तपसा च तपोधन । शक्रस्तोषयितव्यो वै मया त्रिभुवनेश्वरः १०
इत्युक्तो भगवान् देवः स्मयन्निव निरीक्ष्य ताम् । उवाच नियमं
ज्ञात्वा सान्त्वयन्निव भारत ॥ ११ ॥ उग्रं तपश्चरसि वै विदिता
मेऽसि सुव्रते । यदर्थमयमारम्भस्तव कल्याणि हृद्गतः ॥ १२ ॥
तच्च सर्वं यथाभूतं भविष्यति वरानने । तपसा लभ्यते सर्वं सर्वं
तपसि तिष्ठति॥१३॥यथा स्थानानि दिव्यानि विबुधानां शुभानने।
तपसा तानि प्राप्यानि तपोमूलं महत् सुखम् ॥ १४ ॥ इति कृत्वा
तपो घोरं देहं संन्यस्य मानवाः । देवत्वं यान्ति कल्याणि शृणु
चेदं वचो मम ॥ १५ ॥ पञ्च चैतानि शुभगे बदराणि शुभव्रते ।
पचेत्युक्त्वा तु भगवान् जगाम बलसूदनः ॥ १६ ॥ आमन्त्र्य तां

अपना हाथ आपको किसीप्रकार नहीं देसकूँगी ॥ ९ ॥ हे तपोधन ! मुझे व्रत करके, नियमोंका पालन करके तथा तप करके त्रिभुवनपति इन्द्रको प्रसन्न करना है ॥ १० ॥ इसप्रकार ऋषिवेशधारी इन्द्रसे कहा, तब भगवान् इन्द्र मंद२ हँसते हुए उसकी ओर को देखकर तथा उसके नियमोंको जानकर उसको धीरज देते हुए कहने लगे, कि—॥ ११ ॥ हे सुन्दरव्रत धारण करनेवाली कन्या ! तू उग्र तपस्या कर रही है, इस बातको मैंने जान लिया और हे कल्याणी ! तेरे मनमें जो मनोरथ है और तूने जिसके लिये इस कार्यका आरम्भ किया है वह सब हे सुन्दरवदनी ! अवश्य ही पूरा होगा, तपसे सब पदार्थ मिल जाते हैं, इसलिये तेरा काम भी सिद्ध होगा ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे शुभानने ! देवताओंका दिव्य स्थान तप करनेसे ही मिलता है, इतना ही नहीं, किन्तु महान् सुखका मूल भी तप ही है ॥ १४ ॥ ऐसा विचार कर मनुष्य देहको त्यागकर घोर तपस्या करते हैं और देवतापन को पाते हैं, परन्तु हे कल्याणी ! तू अब मेरी बात सुन ॥ १५ ॥ हे शुभ व्रत करनेवाली कन्या ! ये पाँच बेर ले और इनको पका, इतना कहकर बलहन्ता इन्द्र, उस कन्यासे आज्ञा लेकर

तु कल्याणीं ततो जप्यं जजाप सः । अविदूरे ततस्तस्मादाश्रमा-
त्तीर्थमुत्तमम् । इन्द्रतीर्थेतिविख्यातं त्रिषु लोकेषु मानद ॥ १७ ॥
तस्य जिज्ञासनार्थं स भगवान् पाकशासनः । बदराणामपचनं
चकार विबुधाधिपः ॥ १८ ॥ ततः प्रयता सा राजन् वाग्यता
विगतक्लमा । तत्परा शुचिसम्वीता पावके समधिश्रयत् ॥ १९ ॥
अपचद्राजशार्दूल बदराणि महाव्रता । तस्याः पचन्त्याः सुमहान्
कालोऽगात् पुरुषर्षभ । न च स्म तान्यपच्यंत दिनञ्च क्षयमभ्य-
गात् ॥ २१ ॥ हुताशनेन दग्धश्च यस्तस्याः काष्ठसञ्चयः ।
अकाष्ठमग्निं सा दृष्ट्वा स्वशरीरमथादहत् ॥ २२ ॥ पादौ प्रक्षिप्य
सा पूर्वं पावके चारुदर्शना । दग्धौ दग्धौ पुनः पादावुपावर्त्तय-
तानघ ॥ २३ ॥ चरणौ दह्यमानौ च नाचिन्तयदनिंदिता ।

उसकी तपस्याको जाननेके लिये, 'उसके बेर पकें नहीं' इसके लिये, उसके आश्रमसे थोड़ी दूर बैठ कर मन्त्रका जप करने लगा, हे सन्मान करनेवाले राजन् ! जिस स्थानपर बैठकर इन्द्रने जप किया था वह स्थान तीनों लोकोंमें इन्द्रतीर्थ नामसे प्रसिद्ध हुआ है, इन्द्रने,बेर न पकने पावें, इसके लिये उद्योग किया, तब हे राजन ! तप करनेवाली श्रुतावती बड़ी दुःखित हुई और स्नान कर परिश्रमरहित होकर महाव्रतधारिणी उस कन्याने पाँचों बेरोंको अग्निके ऊपर पकाना आरम्भ करदिया ॥ १६–२० ॥
उन बेरोंको राँधते २ सब दिन बीत गया और उसकी सब लक-ड़ियें जलगयीं, परन्तु हे राजन् ! वह बेर नहीं पके, किन्तु जब लकड़ियें निबड़गयीं तब उस सुन्दरीने अग्निमें अपना शरीर बालना आरम्भ करदिया, उसने पहले अपने दोनों पैर अग्निमें देदिये और हे निर्दोष राजन् ! ज्यों २ उसके पैर जलतेगये त्यों २ उनको भीतरको सरकाने लगी ॥ २१–२३ ॥ उस पवित्र चरित्र-वाली कन्याके दोनों पैर जलगये, परन्तु उसने महर्षिको प्रसन्न

कुर्वाणा दुष्करं कर्म महर्षिप्रियकाम्यया ॥ २४ ॥ न वैमनस्यं तस्यास्तु मुखभेदोऽथवाऽभवत् । शरीरमग्निना दीप्य जलस्थेव हर्षिता ॥ २५ ॥ तच्चास्या वचनं नित्यमवर्तद्धृदि भारत । सर्वथा बदराण्येव पक्तव्यानीति कन्यका ॥ २६ ॥ सा तन्मनसि कृत्वा वै महर्षेर्वचनं शुभा । अपचद्बदराण्येव न चापच्यन्त भारत ॥ २७ ॥ तस्यास्तु चरणौ वह्निर्ददाह भगवान् स्वयम् । न च तस्यामनोदुःखं स्वल्पमप्यभवत्तदा ॥ २८ ॥ अथ तत् कर्म दृष्ट्वाऽस्याः प्रीतस्त्रिभुवनेश्वरः । ततः सन्दर्शयामास कन्यायै रूपमात्मनः ॥ २९ ॥ उवाच च सुरश्रेष्ठस्तां कन्यां सुदृढव्रताम् । प्रीतोऽस्मि ते शुभे भक्त्या तपसा नियमेन च ॥ ३० ॥ तस्माद्योऽभिमतः कामः स ते

करनेकी इच्छासे, किसीसे भी न होसके ऐसा कर्म करनेवाली उस कन्याने अपने चरणोंके जलजाने पर भी उसका कुछ विचार नहीं किया ॥ २४ ॥ तथा उसके मनमें कुछ खेद भी नहीं हुआ अथवा उसके मुखपर खेदकी छाया भी नहीं मालूम हुई, किन्तु वह कन्या अपने शरीरको अग्निमें जलाते समय ऐसी प्रसन्न मालूम होती थी मानो जलमें बैठी है ॥ २५ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! 'तू इन बेरोंको अवश्य पकाना' यह महर्षिकी बात उस कन्याके हृदयमें जमीहुई थी और उन महर्षिकी बातको मनमें रखकर वह कन्या बेरोंको पकाती ही रही, परन्तु हे भरतवंशी राजन् ! वे बेर अग्निमें पके नहीं ॥ २६—२७ ॥ भगवान् अग्निदेव जिस समय उस कन्याके चरणोंको जलारहे थे उस समय उस कन्याके मनमें जरा भी दुःख नहीं था ॥ २८ ॥ उस कन्याके इस अद्भुत कर्मको देखकर इन्द्रदेव उसके ऊपर प्रसन्न होगये और उस कन्याको अपने स्वरूपका दर्शन दिया ॥ २९ ॥ और फिर देवराज इन्द्रने उस अत्यन्त दृढ़ व्रतवाली कन्यासे कहा, कि—हे शुभे ! तेरी भक्ति, तप और नियमसे मैं प्रसन्न हुआ हूँ ॥ ३० ॥ इसलिये हे शुभे ! तुझे जिस कामनाकी इच्छा हो

सत्यस्त्वते शुभे । देहं त्यक्त्वा महाभागे त्रिदिवे मयि यत्स्यसि ३१ इदश्च ते तीर्थवरं स्थिरं लोके भविष्यति । सर्वपापापहं सुभ्रु नाम्ना बदरपाचनम् ॥ ३२ ॥ विख्यातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतम् । अस्मिन् खलु महाभागे शुभे तीर्थवरेऽनघे ३३ त्यक्त्वा सप्तर्षयो जग्मुर्हिमवन्तमरुन्धतीम् । ततस्ते वै महाभागा गत्वा तत्र सुसंशिताः ॥ ३४ ॥ वृत्त्यर्थं फलमूलानि समाहर्त्तुं ययुः किल । तेषां वृत्त्यर्थिनां तत्र वसतां हिमवद्वने ॥ ३५ ॥ अनावृष्टिरनुप्राप्ता तदा द्वादशवार्षिकी । ते कृत्वा चाश्रमं तत्र न्यवसन्त तपस्विनः ३६ अरुन्धत्यपि कल्याणी तपोनित्याऽभवत्तदा । अरुन्धतीं ततो दृष्ट्वा तीव्रं नियममास्थिताम् ॥३७॥ अथागमत् त्रिनयनः सुप्रीतो वरदस्तदा । ब्राह्मं रूपं ततः कृत्वा महादेवो महायशाः ॥ ३८ ॥ तामभ्येत्याब्रवीद्देवो भिक्षामिच्छाम्यहं शुभे । प्रत्युवाच ततः सा तं

वह तेरा मनोरथ सिद्ध होगा, हे महाभागे ! तू इस देहको त्यागने पर स्वर्गमें मेरे साथ रहेगी ॥ ३१ ॥ और हे सुन्दर भौंवाली स्त्री ! जगत्में यह स्थान बदरपाचन नामका, सकल पापोंका नाश करनेवाला सदाके लिये बड़ाभारा तीर्थ होजायगा ॥३२॥ इस त्रिलोकीमें प्रसिद्ध तीर्थमें ब्रह्मर्षि भी स्नान करेंगे, हे महाभागे ! पहले इस पवित्र, श्रेष्ठ और शुभ तीर्थमें सप्तऋषि अरुन्धतीको छोड़कर हिमालय पर्वत पर गये थे, तहाँ वनमें निवास करके वे महाभाग वनमेंसे फल और मूल लाकर उनसे निर्वाह किया करते थे ॥ ३३-३५ ॥ इतनेमें ही बारह वर्षकी अवर्षा होकर दुष्काल पड़गया, तब वे तपस्वी तहाँ आश्रम बनाकर रहने लगे ॥ ३६ ॥ उस समय कल्याणी अरुन्धतीने तपस्या करना आरम्भ करदिया, अरुन्धतीको कठोर नियमोंका पालन करती हुई देखकर त्रिनेत्रधारी, वरदान देनेवाले, महायशस्वी भगवान् शङ्कर प्रसन्न होगये, वह ब्राह्मणका रूप धर उसके सामने आकर कहने लगे, कि-हे कल्याणी ! मैं भिक्षा करना चाहता हूँ, इस

ब्राह्मणस्याच्दर्शना ॥ ३९ ॥ क्षीणोऽन्नसञ्चयो विप्र बदराणीह भक्षय । ततोऽब्रवीन्महादेवः पचस्वैतानि सुव्रते ॥ ४० ॥ इत्युक्ता सापचत्तानि ब्राह्मणप्रियकाम्यया । अधिश्रित्य समिद्धेऽग्नौ बदराणि यशस्विनी ॥ ४१ ॥ दिव्या मनोरमाः पुण्याः कथाः शुश्राव सा तदा । अतीता सा त्वनावृष्टिर्घोरा द्वादशवार्षिकी ॥ ४२ ॥ अनश्नन्त्याः पचन्त्याश्च शृण्वन्त्याश्च कथाः शुभाः । दिनोपमः स तस्याश्च कालोऽतीतः सुदारुणः ॥ ४३ ॥ ततस्तु मुनयः प्राप्ता फलान्यादाय पर्वतात् । ततः स भगवान् प्रीतः प्रोवाचारुन्धतीं तदा ॥ ४४ ॥ उपसर्पस्व धर्मज्ञे यथापूर्वमिमानृषीन् । प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञे तपसा नियमेन च ॥ ४५ ॥ ततः सन्दर्शयामास स्वं रूपं भगवान् हरः । प्रीतोऽब्रवीत्तदा तेभ्यस्तस्याश्च चरितं महत् ४६

पर सुन्दराङ्गी अरुन्धतीने उस ब्राह्मणसे कहा, कि—॥३७–३९॥ हे ब्राह्मणदेव ! अन्नका सञ्चय तो निवड़गया, इसलिये मेरे आश्रममें आप वेर खालीजिये, महादेवने कहा, कि—हे सदाचार वाली स्त्री ! वेरोंको राँधकर मुझे दे ॥ ४० ॥ यशस्विनी अरुन्धती उस ब्राह्मणके कहनेसे उनको प्रसन्न करनेके लिये बलती हुई अग्नि पर वेर राँधनेलगी ॥ ४१ ॥ और उस अवसरमें उसने दिव्य मनोहर और पवित्र कथायें सुनीं, शुभ कथाओंको सुनते हुए उन वेरोंको राँधतेमें ही निराहार दशामें ही वारह वर्षकी भयानक अनावृष्टि बीतगयी और बारहवर्षका महादारुण समय एक दिनकी समान बीतगया ॥ ४२–४३ ॥ और इतनेमें ही मुनि भी फल लेकर हिमालय पर्वतपरसे उसके आश्रममें आगये, उस समय भगवान् शङ्करने प्रसन्न होकर अरुन्धतीसे कहा, कि—॥ ४४ ॥ हे धर्मको जाननेवाली स्त्री ! इन ऋषियों की पहलेकी समान सेवाकर, हेधर्मको जानने वाली ! मैं तेरे तपसे नियमसे प्रसन्न हुआ हूँ ॥ ४५ ॥ फिर भगवान् शङ्करने अपने स्वरूपका दर्शन दिया और उन मुनियोंसे अरुन्धतीका बड़ाभारी

भवद्भिर्हिमवत्पृष्ठे यत्तपः समुपार्जितम् । अस्याश्च यत्तपो विमा न समं तन्मतं मम ॥ ४७ ॥ अनया हि तपस्विन्या तपस्तप्तं सुदुश्चरम् । अनश्नन्त्या पचन्त्या च समा द्वादश पारिताः ॥४८॥ ततः प्रोवाच भगवांस्तामेवारुन्धतीं पुनः । वरं वृणीष्व कल्याणि यत्तेऽभिलषितं हृदि ॥ ४९ ॥ साब्रवीत् पृथुताम्राक्षी देवं सप्तर्षिसंसदि । भगवन् यदि मे प्रीतस्तीर्थं स्यादिदमुत्तमम् ॥ ५० ॥ सिद्धदेवर्षिदयितं नाम्ना बदरपाचनम् । तथाऽस्मिन्देवदेवेश त्रिरात्रमुषितः शुचिः ५१ प्राप्नुयादुपवासेन फलं द्वादशवार्षिकम् । एवमस्त्विति तां देवः प्रत्युवाच तपस्विनीम्॥५२॥ सप्तर्षिभिस्तुतो देवस्ततो नाकं ययौ तदा । ऋषयो विस्मयं जग्मुस्तां दृष्ट्वा चाप्यरुन्धतीम्॥५३॥अश्रान्ताञ्चाविवर्णां च क्षुत्पिपासासहां

चरित्र सुनाते हुए कहा, कि-॥४६ ॥ हे ब्राह्मणो ! तुमने हिमालय पर्वत पर जो तपस्याका सञ्चय किया है, मेरी समझमें वह इस अरुन्धतीका जो तप है उसकी बराबरी नहीं करसकता ४७ इस तपस्विनीने महादुष्कर तप किया है, निराहार रहकर बेरों को पकाते २ ही बारह वर्ष बितादिये हैं ॥४८॥ इसके अनन्तर भगवान् शिवने फिर उस अरुन्धतीसे कहा, कि-हे कल्याणी ! तेरे हृदयमें जो अभिलाषा हो वह वर माँगले ॥ ४९ ॥ विशाल तथा लाल २ नेत्रोंवाली अरुन्धतीने सप्तर्षियोंकी सभामें शंकरसे कहा, कि-हे भगवन् ! आप यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं तो यह स्थान बदरपाचन नामका एक अद्भुत तीर्थ होजाय, सिद्ध और देवर्षि इसके ऊपर प्रेम रक्खें तथा हे देवदेवेश ! इस तीर्थमें कोई भी पुरुष शुद्ध होकर तीन रात्रि रहे और उपवास करे तो उसको बारह वर्ष तीर्थमें रहनेका फल मिले, यह वरदान मुझे दीजिये, शंकरने उस तपस्विनीसे कहा अच्छा ऐसा ही होगा५० ॥ ५२ ॥ फिर सप्तर्षियोंने जिनकी स्तुति की ऐसे महादेव उस

सतीम् । एवं सिद्धिः परा प्राप्ता अरुन्धत्या विशुद्धया ॥ ५४ ॥
यथा त्वया महाभागे मदर्थं शंसितव्रते । विशेषो हि त्वया भद्रे
व्रते ह्यस्मिन् समर्पितः ॥ ५५ तथा चेदं ददाम्यद्य नियमेन सुतो-
षितः । विशेषं तव कल्याणि प्रयच्छामि वरं वरे ॥ ५६ ॥
अरुन्धत्या वरस्तस्या यो दत्तो वै महात्मना । तस्य चाहं प्रभावेन
तव कल्याणी तेजसा ५७ प्रवक्ष्यामि परं भूयो वरमत्र यथाविधि ।
यस्त्वेकां रजनीं तीर्थे वत्स्यते सुसमाहितः ५८ स स्नात्वा प्राप्स्यते
लोकान् देहन्यासात् सुदुर्लभान् । इत्युक्त्वा भगवान् देवः सहस्राक्षः
प्रतापवान् ॥ ५९ ॥ श्रुतावतीं ततः पुण्यां जगाम त्रिदिवं पुनः
गते वज्रधरे राजंस्तत्र वर्षं पपात ह ॥ ६० ॥ पुष्पाणां भरत-
श्रेष्ठ दिव्यानां पुण्यगन्धिनाम् । देवदुन्दुभयश्चापि नेदुस्तत्र महा-

समय अपने कैलासधामको चलेगये और ऋषि अरुन्धतीको परि-श्रमसे रहित, तेजस्वी तथा भूख प्यासले रहित देखकर आश्चर्यमें होगये, (इन्द्र श्रुतावतीसे कहता है, कि) हे उत्तम आचारवाली महाभागे ! तूने जैसे मेरे लिये व्रत करके सिद्धि पायी है, ऐसे ही पतिव्रता अरुन्धतीने भी परमसिद्धि पायी थी, परन्तु हे कल्याणी ! इस व्रतमें तूने अपने देहको अग्निमें होमदिया, यह विशेष बात थी ॥ ५३—५५ ॥ हे कल्याणी ! मैं तेरे नियमसे प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिये हे श्रेष्ठे ! तुझे विशेष वर देता हूँ ॥ ५६ ॥ हे कल्याणी ! महात्मा शंकरने अरुन्धतीको जो वरदान दिया था, उस शंकरके प्रभाव तथा तेजःपुञ्जके प्रकाशसे मैं फिर विधिपूर्वक इस तीर्थके संबन्धमें एक वर तुझे देता हूँ, वह यह है, कि—जो जो पुरुष सावधान होकर इस तीर्थमें एक रात निवास करेगा और स्नान करेगा वह पुरुष देहपात होनेपर महादुर्लभ पवित्र लोकोंमें जायगा सहस्र नेत्रवाले भगवान् इन्द्र श्रुतावतीसे ऐसा कहकर स्वर्गलोकमें चलेगये, हे भरतसत्तम राजन् ! इन्द्रके चले जाने पर पवित्र सुगन्धवाले दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होनेलगी, देव-

स्वनाः ॥ ६१ ॥ मारुतश्च ववौ पुण्यः पुण्यगन्धो विशाम्पते ।
उत्सृज्य तु शुभा देहं जगामेन्द्रस्य भार्यताम् ॥ ६२ ॥ तपसोग्रेण तं
लब्ध्वा तेन रेमे सहाच्युत । जनमेजय उवाच । का तस्या भगवन्माता
क्व संवृद्धा च शोभना ॥ ६३ ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहं विप्र परं कौतू-
हलं हि मे । वैशम्पायन उवाच । भरद्वाजस्य विप्रर्षेः स्कन्नं रेतो
महात्मनः ॥ ६४ ॥ दृष्ट्वाप्सरसमायान्तीं घृताचीं पृथुलोचनाम् ।
स तु जग्राह तद्रेतः करेण जपताम्वरः ॥ ६५ ॥ तदापतत् पर्णपुटे
तत्र सा त्वभवत् सुता । तस्यास्तु जातकर्मादि कृत्वा सर्वं तपोधनः
॥ ६६ ॥ नाम चास्याः स कृतवान् भरद्वाजो महामुनिः । श्रुतावतीति
धर्मात्मा देवर्षिगणसंसदि । स्वे च तामाश्रमे न्यस्य जगाम हिम-

ताओंके नगाड़े बड़े शब्दसे बजने लगे ॥ ५७-६१ ॥ पवित्र और पुण्य सुगन्धवाला वायु बहनेलगा और श्रुतावती अपना देह त्यागकर उग्र तपस्याके कारण इन्द्रकी भार्या होगयी ॥ ६२ ॥ और उग्र तपस्यासे उसको पाकर उसके साथ विहार करनेलगी, जनमेजय बूझता है, कि—हे भगवान् ! वैशंपायनजी ! उस पतिव्रता स्त्रीकी माता कौन थी, और वह सुन्दरी कहाँ पली थी ? हे विप्र ! इसको मैं सुनना चाहता हूँ, मुझे बड़ा कुतूहल होरहा है वैशम्पायनने कहा, कि—एक समय महात्मा विप्रर्षि भरद्वाज विशालनेत्रोंवाली घृताची नामकी अप्सराको देखकर स्खलित होगये, इस वीर्यको जापकोंमें श्रेष्ठ उन मुनिने अपने हाथसे उठाकर एक दोनेमें रखदिया, उसमेंसे वह कन्या उत्पन्न हुई थी, उस कन्याके तपोधन भरद्वाज मुनिने जातकर्म आदि सब संस्कार किये, और देवर्षियोंकी सभामें धर्मात्मा मुनिने उस कन्याका श्रुतावती नाम रक्खा और उस कन्याको अपने आश्रममें छोड़कर स्वयं हिमालयके वनमें तप करनेको चलेगये ॥ ६३-६७ ॥ महानुभाव बलदेवजीने उस बदरपाचन तीर्थमें स्नान करके महात्मा ब्राह्मणों

वद्वनम् ॥ ६७ ॥ तत्राप्युपस्पृश्य महानुभावो वसूनि दत्त्वा च महाद्विजेभ्यः । जगाम तीर्थं सुसमाहितात्मा शक्रस्य वृष्णिप्रवर-स्तदानीम् ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि सारस्वतोपाख्याने अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

वैशम्पायन उवाच । इन्द्रतीर्थं ततो गत्वा यदूनां प्रवरो बलः । विप्रेभ्यो धनरत्नानि ददौ स्नात्वा यथाविधि ॥१॥ तत्रामरराजोऽ-सावीजे क्रतुशतेन च । बृहस्पतेश्च देवेशः प्रददौ विपुलं धनम् ॥ निरर्गलान् सजारूथ्यान् सर्वान् विविधदक्षिणान् । आजहार क्रतूं-स्तत्र यथोक्तान् वेदपारगैः ॥ ३ ॥ तान् क्रतून् भरतश्रेष्ठ शत-कृत्वो महाद्युतिः । पूरयामास विधिवत्ततः ख्यातः शतक्रतुः ४ तस्य नाम्ना च तत्तीर्थं शिवं पुण्यं सनातनम् । इन्द्रतीर्थमिति

को गौ भूमि आदि धनोंके दान दिये और वहाँसे चलकर वृष्णियों के बड़े बलदेवजी बड़ी सावधानीसे शक्रतीर्थमें गये ॥ ६८ ॥ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥

वैशंम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय! यदुवीर बलदेवजीने शक्रतीर्थमें जाकर शास्त्रमें कही हुई विधिसे स्नान किया और ब्राह्मणोंको धन तथा रत्नोंके दान दिये ॥ १ ॥ इस तीर्थमें देव-ताओंके राजा इन्द्रने सौ यज्ञ किये थे और उस देवपतिने बृह-स्पतिको बहुतसा धन दिया था ॥ २ ॥ हे भरतसत्तम! महा-कान्तिवाले इन्द्रने वेदपारगामी ऋषियोंके द्वारा शास्त्रमें लिखी हुई विधिके अनुसार तले ऊपर सौ यज्ञ किये थे और उन पुष्ट यज्ञों में अनेकों प्रकारकी दक्षिणायें दी थीं, उन यज्ञोंको विधिवत् पूरे करने पर ही वह शतक्रतु नामसे प्रसिद्ध हुआ है ॥ ३—४ ॥ और उसके नामसे ही सब पापोंका नाश करनेवाला, कल्याणमय, पवित्र और सनातनतीर्थ शक्रतीर्थ नामसे प्रसिद्ध हुआ है ॥ ५ ॥

स्यातं सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ५ ॥ उपस्पृश्य च तत्रापि विधिवन्मु-
सलायुधः । ब्राह्मणान् पूजयित्वा च सदाच्छादनभोजनैः ॥ ६ ॥
शुभं तीर्थवरं तस्माद्रामतीर्थं जगाम ह । यत्र रामो महाभागो
भार्गवः सुमहातपाः ॥ ७ ॥ असकृत् पृथिवीं जित्वा हतक्षत्रिय-
पुङ्गवाम् । उपाध्यायं पुरस्कृत्य कश्यपं मुनिसत्तमम् ॥ ८ ॥ अय-
जद्वाजपेयेन सोऽश्वमेधशतेन च । प्रददौ दक्षिणाञ्चैव पृथिवीं वै
ससागराम् ॥ ९ ॥ दत्त्वा च दानं विविधं नानारत्नसमन्वितम् ।
सगोहास्तिकदासीकं साजाविगतवान् वनम् ॥ १० ॥ पुण्ये तीर्थ-
वरे तत्र देवब्रह्मर्षिसेविते । मुनींश्चैवाभिवाद्याथ यमुनातीर्थमा-
गमत् ॥११॥ यत्रानयामास तदा राजसूयं महीपते । पुत्रोऽदितेर्महा-
भागो वरुणो वै सितप्रभः ॥१२॥ तत्र निर्जित्य संग्रामे मानुषान् देव-

मूसलका शस्त्र धारण करनेवाले बलदेवजीने उस तीर्थमें भी
विधिपूर्वक स्नान किया और सुन्दर वस्त्र तथा भोजनोंसे ब्राह्म-
णोंका सत्कार करके ॥ ६ ॥ तहाँसे शुभ तथा श्रेष्ठ रामतीर्थमें
गये, जहाँ महाभाग्यशाली और महातपस्वी भृगुवंशी परशुरामने
॥ ७ ॥ इक्कीस वार क्षत्रियोंका संहार करके पृथिवीको जीतनेके
अनन्तर मुनिवर उपाध्याय महात्मा कश्यप ऋषिको मुखिया बना
कर वाजपेय यज्ञ और सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे, तथा समुद्र-
सहित सब पृथिवी दानमें दी थी ॥ ८ ॥ ९ ॥ और फिर भाँति २
के रत्नोंसे युक्त गौ, हाथी, दासियें, बकरे, मेंढे आदि अनेकों
प्रकारके दान देकर स्वयं वनको चलेगये थे ॥ १० ॥ देवर्षि और
ब्रह्मर्षियोंसे सेवित उस रामतीर्थ नामके महापवित्र तीर्थमें स्नान
कर मुनियोंको प्रणाम करके बलदेवजी यमुनातीर्थमें आये ॥११॥
हे राजन् ! इस तीर्थमें अदितिके पुत्र महाभाग्यशाली और श्वेत-
कान्तिवाले वरुणदेवने राजसूय यज्ञ किया था ॥ १२ ॥ शत्रु-
वीरोंका नाश करनेवाले वरुणने संग्राममें मनुष्य तथा देवताओं

तास्तथा। यरं कृतं समाजह्रे वरुणः परवीहा १३ तस्मिन् क्रतुवरे वृत्ते संग्रामः समजायत। देवानां दानवानाञ्च त्रैलोक्यस्य भयावहः १४ राजसूये क्रतुश्रेष्ठे निवृत्ते जनमेजय। जायते सुमहाघोरः संग्रामः क्षत्रियान् प्रति ॥१५॥ तत्रापि लांगली देव ऋषीनभ्यर्च्य पूजया। इतरेभ्योप्यदाद्दानमर्थिभ्यः कामदो विभुः ॥ १६ ॥ वनमाली ततो हृष्टः स्तूयमानो महर्षिभिः। तस्मादादित्यतीर्थञ्च जगाम कमलेक्षणः ॥१७॥ यत्रेष्ट्वा भगवान् ज्योतिर्भास्करो राजसत्तम। ज्योतिषामाधिपत्यं च प्रभावञ्चाप्यपद्यत ॥ १८ ॥ तस्या नद्यास्तु तीरे वै सर्वे देवाः सवासवाः। विश्वेदेवाः समरुतो गन्धर्वाप्सरसश्च ह १९ द्वैपायनः शुकश्चैव कृष्णश्च मधुसूदन। यक्षाश्च राक्षसाश्चैव पिशाचाश्च विशाम्पते ॥ २० ॥ एते चान्ये च बहवो योगसिद्धाः सहस्रशः। तस्मिंस्तीर्थे सरस्वत्याः शिवे पुण्ये परन्तप ॥ २१ ॥

को जीतकर वह श्रेष्ठ यज्ञ किया था ॥ १३ ॥ उस श्रेष्ठ यज्ञके समाप्त होजाने पर देवता और दानवोंमें त्रिलोकीको भय देनेवाला महाभयानक युद्ध हुआ था ॥ १४ ॥ हे जनमेजय! अब भी राजसूय नामका यज्ञ होजाने पर क्षत्रियोंका महाघोर संग्राम हो रहा है ॥१५॥ उस तीर्थमें भी कामनाओंको पूरी करनेवाले हलधर बलदेवजीने ऋषियोंकी पूजा करके उनको सन्तुष्ट किया तथा दूसरे याचकोंको भी दान दिये ॥१६॥ ऋषियोंने जिनकी स्तुति की, ऐसे कमलकी समान नेत्रोंवाले वनमालाधारी बलदेवजी प्रसन्न होतेहुए तहाँसे आदित्यतीर्थमें गये ॥ १७ ॥ हे राजेंद्र! इस तीर्थमें भगवान् सूर्यनारायणने परमात्माका यजन करके ज्योतियों (तेजों) का आधिपत्य तथा प्रभाव पाया था १८ हे राजन्! सब देवता, इन्द्र, विश्वेदेवा, मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सरा, द्वैपायन, शुकदेव, मधुदैत्यका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण, यक्ष, राक्षस, पिशाच और दूसरे सहस्रों योगसिद्ध महात्मा ऋषि मुनि-

यत्र हत्वा पुरा विष्णुरसुरौ मधुकैटभौ। आप्लुत्य भरतश्रेष्ठ तीर्थप्रवर उत्तमं ॥ २२ ॥ द्वैपायनश्च धर्मात्मा तत्रैवाप्लुत्य भारत। संप्राप्य परमं योगं सिद्धिञ्च परमां गतः ॥ २३ ॥ असितो देवलश्चैव तस्मिन्नेव महातपाः। परमं योगमास्थाय ऋषिर्योगमवाप्तवान् ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

वैशम्पायन उवाच। तस्मिन्नेव तु धर्मात्मा वसति स्म तपोधनः। गार्हस्थं धर्मास्थाय ह्यसितो देवलः पुरा ॥ १ ॥ धर्मनित्यः शुचिर्दान्तो न्यस्तदण्डो महातपाः। कर्मणा मनसा वाचा समः सर्वेषु जन्तुषु ॥ २ ॥ अक्रोधनो महाराज तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः। प्रियाप्रिये तुल्यवृत्तिर्यमवत् समदर्शनः ॥ ३ ॥ काञ्चने लोष्टभावे

योंने उस तीर्थ पर सरस्वतीके पवित्र और कल्याणकारी जलमें स्नान करके सिद्धि पायी है ॥ १९—२१ ॥ और हे भरतसत्तम राजन्! पहले विष्णुने मधु और कैटभ नामके असुरोंका नाश करके इस उत्तमतीर्थमें ही स्नान किया था ॥ २२ ॥ हे भारत! धर्मात्मा वेदव्यासजीने भी यहाँ ही स्नान करके परमयोग और परमसिद्धिको पाया था ॥ २३ ॥ महातपस्वी असित और देवल ने भी इस ही तीर्थमें परमयोग साधकर सिद्धि पायी थी ॥२४॥ उनञ्चासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥ छ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं, हे राजन्! पहले धर्मात्मा, तपस्वी, असित और देवल इस तीर्थमें ही गृहस्थधर्मका आश्रय लेकर रहते थे ॥ १ ॥ वह सदा धर्माचरण करनेवाले, पवित्र, जितेंद्रिय काम क्रोधादिको त्यागनेवाले, महातपस्वी और मन वाणी तथा कर्मसे सब प्राणियोंमें एकसा भाव रखनेवाले थे ॥ २ ॥ हे महाराज! वह क्रोधरहित, अपनी निन्दा और स्तुतिको समान

च समदर्शी महातपाः। देवानपूजयन्नित्यमतिथींश्च द्विजैः सह ॥४॥ ब्रह्मचर्यरतो नित्यं सदा धर्मपरायणः। ततोभ्येत्य महाराज योगमास्थाय भिक्षुकः ॥ ५ ॥ जैगीषव्यो मुनिर्धीमांतस्मिंस्तीर्थे समाहितः। देवलस्याश्रमे राजन् प्रवसन् स महाद्युतिः ॥ ६ ॥ योगनित्यो महाराज सिद्धिं प्राप्तो महातपाः। तं तत्र वसमानन्तु जैगीषव्यं महामुनिम् ॥ ७ ॥ देवलो दर्शयन्नेव नैवायुञ्जत धर्मतः। एवं तयोर्महाराज दीर्घकालोभ्यगात् पुरा ॥ ८ ॥ जैगीषव्यं मुनिवरं न ददर्शाथ देवलः। आहारकाले मतिमान् परिव्राड् जनमेजय९ उपातिष्ठत धर्मज्ञो भैक्ष्यकाले स देवलम्। स दृष्ट्वा भिक्षुरूपेण प्राप्तं तत्र महामुनिम्॥१०॥ गौरवं परमं चक्रे प्रीतिं च विपुलान्तथा।

जाननेवाले, प्रिय, और अप्रिय वस्तुमें समान वृत्ति रखनेवाले और यमराजकी समान सबमें समदृष्टि रखनेवाले थे ॥३॥ सुवर्ण और मट्टीके ढलेमें एकसी दृष्टि रखनेवाले, महातपस्वी, देवता, अतिथि और ब्राह्मणोंका नित्य पूजन करनेवाले थे ॥ ४ ॥ नित्य ब्रह्मचर्यमें तत्पर और सदा धर्मपरायण थे, हे महाभाग राजन् ! इस ही तीर्थमें देवलके आश्रममें बुद्धिमान् परमकान्तिमान् जैगीषव्य मुनि भिक्षुकके वेषमें आकर रहने लगे थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे महाराज ! महातपस्वी जैगीषव्यने योगसाधना करके सिद्धि पा ली थी, तहाँ रहते हुए उन महामुनि जैगीषव्यको दिखाकर देवल कोई धर्माचरण नहीं किया करते थे अर्थात् उनकी दृष्टिसे बचेहुए साधना किया करते थे, हे महाराज ! उन दोनोंको तप इसप्रकार करते २ बहुत समय बीतगया ।७-८। हे राजन् जनमेजय! एक दिन भोजन करनेके समय बुद्धिमान् त्यागी देवलने मुनिवर जैगीषव्य को न देखा ॥ ९ ॥ परन्तु भिक्षा करनेका समय होते ही धर्मको जाननेवाले महामुनि जैगीषव्य भिक्षुकके रूपमें देवलके पास आकर खड़े होगये, देवलने भिक्षुकरूपसे तहाँ आयेहुए महामुनिको देखकर

देवलस्तु यथाशक्ति पूजयामास भारत ॥११॥ ऋषिदृष्टेन विधिना समा बह्वीः समाहितः। कदचित्तस्य नृपतेः देवलस्य महात्मनः १२ चिन्ता सुमहती जाता मुनिं दृष्ट्वा महाद्युतिम्। समास्तु समतिक्रांता बह्व्यः पूजयतो मम ॥ १३ ॥ न चायमलसो भिक्षुरभ्यभाषत किञ्चन। एवं विगणयन्नेव स जगाम महोदधिम् ॥ १४ ॥ अन्तरिक्षचरः श्रीमान् कलशं गृह्य देवलः गच्छन्नेव स धर्मात्मा समुद्रं सरिताम्पतिम् ॥ १५ ॥ जैगीषव्यं ततोपश्यद्गतं प्रागेव भारत। ततः स विस्मयंश्चिन्तां जगामाथासितः प्रभुः। १६ ॥ कथं भिक्षुरयं प्राप्तः समुद्रे स्नात एव च। इत्येवं चिन्तयामास महर्षिरसितस्तदा ॥ १७ ॥ स्नात्वा समुद्रे विधिवत् शुचिर्जप्यं जजाप ह। कृतजप्याह्निकः श्रीमानाश्रमञ्च जगाम ह ॥ १८ ॥ कलशं जल-

---

१०. हे भारत! देवलने उनका बडा गौरव किया और उनके ऊपर बड़ी प्रीति दिखायी तथा ऋषियोंकी बतायी हुई विधिसे यथा शक्ति उनकी पूजा की, इसप्रकार साधना करतेहुए वह जैगीषव्य मुनि तहाँ बहुत दिनों तक रहे, हे राजन्! एक दिन महाकांतिवाले जैगीषव्य मुनिको देखकर महात्मा देवलको बडी चिन्ता होनेलगी, कि-मुझे इन मुनिकी पूजा करते २ बहुतसे वर्ष बीतगये।११-१३। परन्तु ये आलसी भिक्षुक मुझसे बात तक नहीं करते, इसप्रकार उन मुनिको तुच्छ मानकर हाथमें कलश लिये हुए धर्मात्मा देवल स्नान करनेके लिये आकाशमार्गसे नदियोंके पति समुद्रके तटपर गये ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे भारत! जैगीषव्यको तहाँ अपनेसे पहले ही वहाँ पहुँचा हुआ देखा, उस समय महाकान्तिवाले महर्षि देवल मुनि आश्चर्यके साथ विचारमें पड़गये, कि-११ यह भिक्षुक यहाँ कैसे आगया और मुझसे पहले न्हाचुका! उस समय महर्षिने ऐसा विचार किया ॥ १७ ॥ देवलने विधिपूर्वक समुद्रमें स्नान करके पवित्र हो अपने जपने योग्य मन्त्रका जप किया

पूर्णं वै गृहीत्वा जनमेजय। ततः स प्रविशन्नेव स्वमाश्रमपदं मुनिः ॥ १९ ॥ आसीनमाश्रमे तत्र जैगीषव्यमपश्यत । न व्याहरति चैवैनं जैगीषव्यः कथञ्चन ॥ २० ॥ काष्ठभूतोश्रमपदे वसति स्म महातपाः। तं दृष्ट्वा चाप्लुतं तोये सागरे सागरोपमम् २१ प्रविष्टमाश्रमञ्चापि पूर्वमेव ददर्श सः। असितो देवलो राजंश्चिन्तयामास बुद्धिमान् ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा प्रभावन्तपसो जैगीषव्यस्य योगजम्। चिन्तयामास राजेन्द्र तदा स मुनिसत्तमः ॥ २३ ॥ मया दृष्टः समुद्रे च आश्रमे च कथं त्वयम्। एवं विगणयन्नेव स मुनिर्मन्त्रपारगः॥२४॥ उत्पपाताश्रमात्तस्मादन्तरिक्षं विशाम्पते। जिज्ञासार्थं तदा भिक्षोर्जैगीषव्यस्य देवलः ॥ २५ ॥ सोन्तरिक्षचरान् सिद्धान् समपश्यत् समाहितान्। जैगीषव्यञ्च तै सिद्धैः पूज्यमा-

और अपना प्रतिदिनका मन्त्र जपकर श्रीमान् देवल अपने आश्रमको चले आये।१८। हे राजन्! वह चलते समय समुद्रके जलसे भरा कलसा लेते आये, उन मुनिने अपने आश्रममें घुसते ही फिर तहाँ आश्रममें भी जैगीषव्यको बैठाहुआ पाया, परन्तु जैगीषव्यने देवलके साथ कुछ बात नहीं की ॥ १९ ॥ २० ॥ परन्तु वह महातपस्वी आश्रममें काठकी समान बैठे ही रहे, सागरकी समान गम्भीर जैगीषव्यको अपनेसे पहले ही समुद्रमें स्नान कियाहुआ पाकर और फिर अपनेसे पहले ही आश्रममें लौटकर आया हुआ देखकर बुद्धिमान् असित देवल मुनि विचारमें पड़गये २१ ॥२२॥ हे राजन्! जैगीषव्यके तप और योगके प्रभावको देखकर उस समय महामुनि देवल विचार करने लगे, कि—॥ २३ ॥ इन मुनिको तो मैंने समुद्रके तट पर देखा था, यह यहाँ आश्रममें कैसे आगये? वेदके पारङ्गत देवल मुनि ऐसा विचार कर भिक्षुक जैगीषव्यके तपका प्रभाव जाननेके लिये हे राजन्! अपने आश्रममेंसे अन्तरिक्षमेंको उड़े, परन्तु तहाँ भी देखा तो अन्तरिक्षचारी

नमपश्यत ।२६। ततोसितः सुसंरब्धो व्यवसायी दृढव्रतः । अप-
श्यद्वै दिवं यान्तं जैगीषव्यं स देवलः ॥ २७ ॥ तस्माच्च पितृलोकं
तं व्रजन्तं सोन्वपश्यत । पितृलोकाच्च तं यान्तं याम्यं लोकमप-
श्यत ॥ २८ ॥ तस्मादपि समुत्पत्य सोमलोकमभिष्टुतम् । व्रजन्त-
मन्वपश्यत् स जैगीषव्यं महामुनिम् ॥ २९ ॥ लोकान् समुत्पत-
न्तन्तु शुभानेकान्तयाजिनाम् । ततोग्निहोत्रिणां लोकांस्ततश्चा-
प्युत्पपात ह ॥३०॥ दर्शञ्च पौर्णमासञ्च ये यजन्ति तपोधनाः ।
तेभ्यः संददृशे धीमान् लोकेभ्यः पशुयाजिनम् ॥ ३१ ॥ व्रजन्तं
लोकममलमपश्यद्देवपूजितम् । चातुर्मास्यैर्बहुविधैर्यजन्ते ये तपो-
धनाः ॥ ३२ ॥ तेषां स्थानं ततो यान्तं तथाग्निष्टोमयाजिनाम् ।
अग्निष्टुतेन च तथा ये यजन्ति तपोधनाः ॥ ३३ ॥ तत्स्थानमनु-

सिद्ध पुरुष सावधान होकर जैगीषव्यकी पूजा कररहे हैं ॥२४॥
॥२६॥ यह देखकर उद्योगी और दृढव्रतधारी असित देवलमुनि
को बड़ा ही क्रोध चढ़ आया, तदनन्तर देवलने जैगीषव्यको स्वर्ग
में जातेहुए देखा ॥ २७ ॥ उन्होंने स्वर्गमेंसे पितृलोकमें जाते
हुए देखा तथा पितृलोकसे यमलोकमें जातेहुए देखा ।२८। तहाँसे
उड़कर अविनाशी चन्द्रलोकमें महामुनि जैगीषव्यको जातेहुए देखा
॥ २९ ॥ फिर एकान्तयाजियोंके शुभ लोकोंमें जातेहुए देखा
तहाँसे अग्निहोत्रियोंके लोकोंमें उड़कर जातेहुए देखा॥३०॥ वह
बुद्धिमान् ऋषि फिर जो तपोधन दर्श और पूर्णमासकी इष्टियें
करते हैं उनके लोकोंमें जातेहुए दीखे, तहाँसे तो पशुयाग करने
वालोंके लोकोंमें जातेहुए दीखे ॥ ३१ ॥ तहाँसे देवपूजित निर्मल
लोकमें जातेहुए दीखे, तहाँसे जो तपोधन अनेकों प्रकारके चातु-
र्मास्य यज्ञोंसे यजन करते हैं ॥ ३२ ॥ उनके लोकोंमें जातेहुए
दीखे, तहांसे अग्निष्टोम यज्ञ करनेवालोंके लोकोंमें जातेहुए दीखे
जो तपोधन अग्निष्टुत नामक यज्ञसे यजन करते हैं ॥ ३३ ॥ उन

संप्राप्तमन्वपश्यत देवलः । वाजपेयं क्रतुवरं तथा बहु सुवर्णकम् ३४
आहरन्ति महाप्राज्ञास्तेषां लोकेष्वपश्यत । यजन्ते राजसूयेन पुण्ड-
रीकेण चैव ये ॥ ३५ ॥ तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः ।
अश्वमेधं क्रतुवरं नरमेधं तथैव ये ॥ ३६ ॥ आहरन्ति नरश्रेष्ठा-
स्तेषां लोकेष्वपश्यत । सर्वमेधञ्च दुष्प्रापं तथा सौत्रामणिञ्च ये ३७
तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः द्वादशाहैश्च सत्रैश्च यज-
न्ते विविधैर्नृप ॥ ३८ ॥ तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः ।
मित्रावरुणयोर्लोके चादित्यानां तथैव च ॥ ३९ ॥ सलोकताम-
नुप्राप्तमपश्यत ततोऽसितः । रुद्राणाञ्च वसूनाञ्च स्थानं यच्च बृह-
स्पतेः ॥ ४० ॥ तानि सर्वाण्यतीतानि समपश्यत ततोऽसितः ।
आरुह्य च गवां लोकं प्रयातो ब्रह्मसत्रिणाम् ॥ ४१ ॥ लोकानप-

के लोकमें जातेहुए जैगीषव्यको देवलने देखा, तहाँसे जो वाज-
पेय नामका बडाभारी यज्ञ करते हैं, और जो अनुसुवर्ण नामका
यज्ञ करते हैं ॥३४॥ उन परमबुद्धिमानोंके लोकोंमें जातेहुए देखा
जो राजसूय यज्ञसे और पुण्डरीक यज्ञसे यजन करते हैं ॥ ३५ ॥
उनके लोकोंमें भी जैगीषव्यको देवलने देखा, जो श्रेष्ठ मनुष्य अश्व-
मेध और नरमेध नामक श्रेष्ठ यज्ञ करते हैं उनके लोकोंमें भी देखा,
जो महाकष्टसे होसकता है ऐसा सर्वमेध और सौत्रामणि यज्ञ जो
करते हैं, उनके लोकोंमें जाते हुए भी जैगीषव्यको देवलने
देखा, हे राजन् ! जो बारह दिन में होसकनेवाले
नानाप्रकारके यज्ञ करते हैं उनके लोकोंमें भी देवल
ने जैगीषव्य मुनिकोदेखा, तथा मैत्रावरुण और आदित्योंके लोकों
में भी देखा ॥ ३६ — ३९ ॥ तदनन्तर असित देवलने, रुद्रोंका,
वसुओंका और बृहस्पतिका जो स्थान है उसमें भी जैगीषव्यको
पहुँचाहुआ पाया ॥ ४० ॥ उन सब लोकोंको पार करके असित
देवल गोलोकमें और ब्रह्मसत्र करनेवालोंके लोकोंमें गये तो

पश्यद्गच्छन्तं जैगीषव्यं ततोसितः ॥ ४२ ॥ पतिव्रतानां लोकांश्च व्रजन्तं सोन्वपश्यत । ततो मुनिवरं भूयो जैगीषव्यमथासितः ॥ ४३ ॥ नान्वपश्यत योगस्थमन्तर्हितमरिन्दम । सोचिन्तयन्महाभागो जैगीषव्यस्य देवलः ॥ ४४ ॥ प्रभावं सुव्रतत्वञ्च सिद्धिं योगस्य चातुलाम् । असितोपृच्छत तदा सिद्धान् लोकेषु सत्तमान् ॥ ४५ ॥ व्रजतः प्राञ्जलिर्भूत्वा धीरस्तान् ब्रह्मसत्रिणः । जैगीषव्यं न पश्यामि तं शंसध्वं महोजसम् ॥ ४६ ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे । सिद्धा ऊचुः । शृणु देवल भूतार्थं शंसतां नो दृढ़व्रत ॥ ४७ ॥ जैगीषव्यः स वै लोकं शाश्वतं ब्रह्मणो गतः । वैशम्पायन उवाच । स श्रुत्वा वचनं तेषां सिद्धानां ब्रह्मसत्रिणाम् ॥ ४८ ॥ असितो देवलस्तूर्णमुत्पपात पपात च ।

तहाँ भी जैगीषव्यको देखा, फिर उस ब्राह्मणको अपने तेजसे भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोकको लांघकर उड़तेहुए और पतिव्रताओंके लोकोंमें पहुँचते हुए देखा परन्तु पतिव्रताओंके लोकोंमें से निकलकर मुनिवर जैगीषव्य कौनसे लोकमें अन्तर्धान होगये यह देवलको नहीं दीखा, तव महाभाग देवल, जैगीषव्यके प्रभाव और सुन्दरव्रत तथा योगकी अतुल सिद्धिके विषयमें विचार करने लगे और उसको जाननेकी इच्छासे असित देवलने सावधान होकर दोनों हाथ जोड़ आकाशचारी सिद्ध पुरुषोंसे पूछा; कि–हे ब्रह्मसत्रियो ! महाबली जैगीषव्य मुझे नहीं दीखते, इसलिये आप मुझे उनका प्रभाव सुनाइये, क्योंकि–मुझे इसके सुननेकी इच्छा और परमकुतूहल है, सिद्धोंने कहा, हे दृढव्रतधारी देवल ! हम तुमसे सच्ची बात कहते हैं, उसको तुम सुनो ॥ ४१—४७ ॥ जैगीषव्य तो ब्रह्मके सनातन लोकमें गये हैं, वैशम्पायन कहते हैं, कि–देवल ब्रह्मसत्री सिद्ध पुरुषोंकी बातको सुनकर तहाँ जानेके लिये तुरन्त आकाशमेंको उड़े, परन्तु तहाँसे नीचेको गिरने लगे,

ततः सिद्धास्तमूचुर्हि देवलं पुनरेव ह ॥ ४९ ॥ न देवल गतिस्तत्र तव गन्तुं तपोधन । ब्रह्मणः सदनं विप्र जैगीषव्यो यदाप्तवान् ॥ ५० ॥ वैशम्पायन उवाच । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सिद्धानां देवलः पुनः । आनुपूर्व्येण लोकांस्तान् सर्वानवततार ह ॥ ५१ ॥ स्वमाश्रमपदं पुण्यमाजगाम पतङ्गवत् । प्रविशन्नेव चापश्यज्जैगीषव्यं स देवलः ॥ ५२ ॥ ततो बुद्ध्या व्यगणयद्देवलो धर्मयुक्तया । दृष्ट्वा प्रभावं तपसो जैगीषव्यस्य योगजम् ॥ ५३ ॥ ततोऽब्रवीन्महात्मानं जैगीषव्यं स देवलः । विनयावनतो राजन्नुपसर्प्य महामुनिम् ॥ ५४ ॥ मोक्षधर्मं समास्थातुमिच्छेयं भगवन्नहम् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा उपदेशं चकार सः ॥ ५५ ॥ विधिञ्च योगस्य परं कार्य्याकार्य्यञ्च शास्त्रतः । सन्यासकृतबुद्धिन्तं ततो

तब सिद्ध पुरुषोंने फिर देवलसे कहा, कि—हे तपोधन देवल! जैगीषव्य ब्रह्मलोकमें गये और हे विप्र! तुम वहाँ नहीं पहुँच सकोगे ॥ ४८—५० ॥ वैशम्पायनने कहा, कि—हे राजा जनमेजय! देवलने उन सिद्धोंकी इस बातको सुनकर क्रमसे उन सब लोकोंमेंसे पक्षीकी समान फिर नीचेको उतरना आरम्भ किया और अपने पवित्र आश्रममें आपहुँचे तथा आश्रममें घुसते ही देवलने देखा, कि—जैगीषव्य बैठेहुए हैं॥ ५१ ॥ ५२ ॥ जैगीषव्यके तपके और योगके ऐसे प्रभावको देखकर देवलने अपनी धर्मयुक्त बुद्धिसे विचार किया ॥ ५३ ॥ हे राजन्! फिर विनय और नम्रताके साथ महात्मा महामुनि जैगीषव्यके समीपमें जाकर कहा, कि—॥ ५४ ॥ हे भगवन्! मैं मोक्षधर्मका साधन करना चाहता हूँ, देवलकी इस बातको सुनकर महातपस्वी जैगीषव्यने संन्यास लेनेके लिये दृढबुद्धिवाले देवलको शास्त्रके अनुसार योगकी विधिका तथा कार्य और अकार्यका उपदेश दिया तथा शास्त्रोक्त विधिके अनुसार इनकी सब क्रियायें कीं, जब देवल

दृष्ट्वा महातपाः ॥ ५६ ॥ सर्वाश्चास्य क्रियाश्चक्रे विधिदृष्टेन कर्मणा। संन्यासकृतबुद्धिं तं भूतानि पितृभिः सह ॥ ५७ ॥ ततो दृष्ट्वा मरुरुदुः कोस्मान् संविभजिष्यति। देवलस्तु वचः श्रुत्वा भूतानां करुणं तदा ॥ ५८॥ दिशो दश व्याहरतां मोक्षं त्यक्तुं मनो दधे। ततस्तु फलमूलानि पवित्राणि च भारत ॥ ५९ ॥ पुष्पाण्योषधयश्चैव रोरूयन्ते सहस्रशः। पुनर्नो देवलः क्षुद्रो नूनं छेत्स्यति दुर्मतिः ॥ ६० ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो यो दत्त्वा नावबुध्यते। ततो भूयो व्यगणयत् स्वबुध्या मुनिसत्तमः ॥ ६१ ॥ मोक्षे गार्हस्थ्यधर्मे वा किन्नु श्रेयस्करं भवेत्। इति निश्चित्य मनसा देवलो राजसत्तम ॥ ६२ ॥ त्यक्त्वा गार्हस्थ्यधर्मं स मोक्षधर्ममरोचयत्। एवमादीनि सञ्चिन्त्य देवलो निश्चयात्ततः ॥ ६३ ॥ प्राप्तवान् परमां सिद्धिं परं योगञ्च भारत। ततो देवाः समागम्य

मुनिने संन्यास लेनेका विचार किया तब सब प्राणी और पितर रोते २ उनसे कहने लगे, कि–अब हमें बलि आदि कौन देगा? दशो दिशाओंमें रोतेहुए प्राणियोंकी करुणाभरी बात सुनकर देवलने संन्यास लेनेका विचार छोड़ दिया, यह देखकर हे भरतवंशी राजन्! पवित्र फल, मूल, सहस्रों फूल और ओषधियें रोने लगीं, कि–दुष्टमति क्षुद्र देवल फिर हमारा छेदन करेगा ॥ ५५ ॥ ६० ॥ मुनिवर देवलने पहले सब प्राणियोंको अभय दिया था, किन्तु शोक है, कि-वह अपने वचनको मिथ्या करता है, इस बात का इस समय उसको कुछ भी विचार नहीं है, परन्तु हे श्रेष्ठ राजन्! वह देवल मुनि अपने मनमें विचारने लगे, कि–मोक्ष और गृहस्थ धर्ममेंसे कौन मेरे लिये कल्याणकारी होगा, ऐसा विचार करनेके अनन्तर ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ उन्होंने गृहस्थाश्रमको त्यागकर मोक्षधर्मके साधनको ही अच्छा समझा ॥ ६३ ॥ हे भरतवंशी राजन्! उन्होंने श्रेष्ठ योगकी साधना करके परमसिद्धि पायी थी, तदन-

बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ६४ ॥ जैगीषव्यं तपश्चास्य प्रशंसन्ति तपस्विनः । अथाब्रवीदृषिवरो देवान् वै नारदस्तथा ॥ ६५ ॥ जैगीषव्ये तपो नास्ति विस्मापयति योऽसितम् । तमेवं वादिनं धीरं प्रत्यूचुस्ते दिवौकसः ॥ ६६ ॥ मैवमित्येव शंसन्तो जैगीषव्यं महामुनिम् । नातः परतरं किञ्चित्तुल्यमस्ति प्रभावतः ॥ ६७ ॥ तेजसस्तपसश्चास्य योगस्य च महात्मनः । एवंप्रभावो धर्मात्मा जैगीषव्यस्तथाऽसितः । तयोरिदं स्थानवरं तीर्थञ्चैव महात्मनोः तत्राप्युपस्पृश्य ततो महात्मा दत्त्वा च वित्तं हलभृद् द्विजेभ्यः । अवाप्य धर्मं परमार्यकर्मा जगाम सोमस्य महत् सुतीर्थम् ॥ ६९ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने जैगीषव्यप्रभावे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

न्तर बृहस्पति आदि देवता और तपस्वी आकर महर्षि जैगीषव्य और उनके तपकी प्रशंसा करनेलगे, यह सुनकर ऋषिवर नारद जीने देवताओंसे कहा, कि—॥ ६४ ॥ ६५ ॥ जिन जैगीषव्यने असित मुनिको आश्चर्यमें डाल दिया है, उनमें कोई विशेष तप नहीं है, ऐसा कहनेवाले नारदजीसे देवताओंने कहा, कि—नहीं यह बात नहीं है, और फिर वे महामुनि जैगीषव्यकी प्रशंसा करते हुए कहनेलगे, कि—उनसे अधिक तो कोई क्या होगा, उनकी समान प्रभाववाला भी कोई नहीं है ॥ ६७ ॥ इन महात्माके तप तेज, और योगकी समता करनेवाला कोई नहीं है, धर्मात्मा जैगीषव्य तथा असितका ऐसा ही प्रभाव है, इस तीर्थमें उन दोनों महात्माओंका श्रेष्ठ आश्रम था ॥ ६८ ॥ उत्तम कर्म करने वाले हलधर महात्मा बलदेवजी उस तीर्थमें गये और स्नान करके ब्राह्मणोंको दान करतेहुए धर्मसञ्चय किया और तहाँसे सोमके महातीर्थपर गये ॥ ६९ ॥ पञ्चसावाँ अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥

वैशम्पायन उवाच। यत्रेजिवानुडुपती राजसूयेन भारत। तस्मिंस्तीर्थे महानासीत् संग्रामस्तारकामयः ॥ १ ॥ तत्राप्युपस्पृश्य बलो दत्त्वा दानानि चात्मवान्। सारस्वतस्य धर्मात्मा मुनेस्तीर्थं जगाम ह ॥ २ ॥ तत्र द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां द्विजोत्तमान्। वेदानध्यापयामास पुरा सारस्वतो मुनिः ॥३॥ जनमेजय उवाच। कथं द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां तपोधन। ऋषीनध्यापयामास पुरा सारस्वतो मुनिः ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच। आसीत् पूर्वं महाराज मुनिर्धीमान् महातपाः। दधीच इति विख्यातो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ तस्यातितपसः शक्रो बिभेति सततं विभो। न स लोभयितुं शक्यः फलैर्बहुविधैरपि ॥६॥ प्रलोभनार्थं तस्याथ प्राहिणोत् पाकशासनः। दिव्यामप्सरसां पुण्यां दर्शनीयामल-

---

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे भरतवंशी राजा जनमेजय! जिस तीर्थमें ग्रहपति चन्द्रमाने राजसूय यज्ञ किया था, उस तीर्थमें ही तारकासुरका महासंग्राम हुआ था ॥ १ ॥ उस तीर्थमें भी आत्मज्ञानी धर्मात्मा बलदेवजीने स्नान आचमन करके दान दिये और फिर सारस्वत मुनिके तीर्थमें गये ॥ २ ॥ वहाँ पहले जब बारह वर्षकी अवर्षा हुई थी तब सारस्वत मुनिने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वेद पढ़ाया था ॥ ३ ॥ जनमेजयने बूझा, कि—हे वैशम्पायनजी! पहले बारह वर्ष तक वर्षा न होने पर सारस्वत मुनिने श्रेष्ठ ब्राह्मणों को वेद कैसे पढ़ाया था? ॥ ४ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि—हे महाराज! पहले महातपस्वी, बुद्धिमान्, दधीचि नामसे प्रसिद्ध एक जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी थे ॥ ५ ॥ हे राजन्! उनके बड़ेभारी तपसे इन्द्र सदा डरता रहता था, इन्द्र उनको अनेकों फलोंका लालच देकर लोभमें न डालसका ॥ ६ ॥ अन्तको इन्द्रने उनको लोभमें डालनेके लिये एक अलम्बुषा नामकी पवित्र, दिव्य और रूपवती अप्सरा भेजी ॥ ७ ॥ हे महाराज! वह महात्मा सरस्वती नदीके तटपर देवताओंका तर्पण कररहे थे, उस समय वह

म्बुषाम् ॥ ७ ॥ तस्य तर्पयतो देवान् सरस्वत्यां महात्मनः ।
समीपतो महाराज सोपातिष्ठत भाविनी ॥८॥ तां दिव्यवपुषां दृष्ट्वा
तस्यर्षेर्भावितात्मनः । रेतः स्कन्नं सरस्वत्यां तत् सा जग्राह
निम्नगा ॥ ९ ॥ कुक्षौ चाप्यदधद्दृष्ट्वा तद्रेतः पुरुषर्षभ । सा दधार
च तं गर्भं पुत्रहेतोर्महानदी ॥ १० ॥ सुषुवे चापि समये पुत्रं सा
सरिताम्वरा । जगाम पुत्रमादाय तमृषिं प्रति च प्रभो ॥ ११ ॥
ऋषिं संसदि तं दृष्ट्वा सा नदी मुनिसत्तमम्। ततः प्रोवाच राजेन्द्र
ददती पुत्रमस्य तम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मर्षे तव पुत्रोयं त्वद्भक्त्या धारितो
मया । दृष्ट्वा तेऽप्सरसं रेतो यत् स्कन्नं प्रागलम्बुषाम् ॥१३॥
तत् कुक्षिणा वै ब्रह्मर्षे त्वद्भक्त्या धृतवत्यहम् । न विनाशमिदं
गच्छेत्त्वत्तेज इति निश्चयात् ॥ १४ ॥ प्रतिगृह्णीष्व पुत्रं स्वं मया

श्रेष्ठ अप्सरा ऋषिके पास जाकर खड़ी होगयी ॥८॥ उस अप्सरा की दिव्य कान्तिको देखकर पवित्रात्मा ऋषिका वीर्य सरस्वती नदीमें स्खलित होगया, उनके वीर्यको महानदीने, मेरे पुत्र होजाय, इस इच्छासे हर्षमें भरकर अपने पेटमें धारण कर लिया और उस वीर्यसे महानदीके गर्भ रहगया ॥ ९ ॥ १० ॥ हे राजन् ! प्रसवका समय आने पर उस महानदीने एक पुत्रको उत्पन्न किया और उस पुत्रको लेकर दधीचि ऋषिके पास गयी ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र ! वह नदी मुनिवर दधीचिको ऋषियोंकी सभामें बैठा हुआ देखकर उनको पुत्र देती हुई कहने लगी, कि–॥ १२ ॥ हे ब्रह्मर्षि ! यह पुत्र आपका है और इसको मैंने आपके ऊपर भक्ति होनेकेकारण धारण करलिया था, जो कि-पहले अलम्बुषा अप्सरा को देखकर आपका वीर्य स्खलित होगया था॥१३॥हे महर्षे! यह आपका तेज नष्ट न होजाय, इस निश्चयसे आप पर भक्ति होने के कारण मैंने उस वीर्यको अपनी कोखमें धारण कर लिया था ॥ १४ ॥ ऐसे मेरे दिएहुए अपने निर्दोष पुत्रको आप लीजिये,

दत्तमनिन्दितम् । इत्युक्तः प्रतिजग्राह प्रीतिञ्चावाप पुष्कलाम् १५
स्वसुतञ्चाप्यजिघ्रत्तं मूर्ध्नि प्रेम्णा द्विजोत्तमः । परिष्वज्य चिरं
कालं तदा भरतसत्तम ॥ १६ ॥ सरस्वत्यै वरं प्रादात् प्रीयमाणो
महामुनिः । विश्वे देवाः सपितरो गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ १७ ॥
तृप्तिं यास्यन्ति सुभगे तर्प्यमाणास्तवाम्भसा । इत्युक्त्वा स तु तुष्टाव
वचोभिर्वै महानदीम् ॥ १८ ॥ प्रीतः परमहृष्टात्मा यथावत् शृणु पा-
र्थिव । प्रसूतासि महाभागे सरसो ब्रह्मणः पुरा । १६ । जानन्ति त्वां
सरिच्छ्रेष्ठे मुनयः शंसितव्रताः । मम प्रियकरी चापि सततं प्रिय-
दर्शने ॥ २० ॥ तस्मात् सारस्वतः पुत्रो महांस्ते वरवर्णिनी ।
तवैव नाम्ना प्रथितः पुत्रस्ते लोकभावनः ॥ २१ ॥ सारस्वत इति
ख्यातो भविष्यति महातपाः । एष द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां द्विज-

ऐसा कहने पर दधीचि मुनि उस पुत्रको लेकर बड़े ही प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥ हे भरतसत्तम ! द्विजवर दधीचिने बड़े प्रेमके साथ उस अपने पुत्रको चिरकाल तक हृदयसे चिपटाकर उसका मस्तक सूँघा ॥ १६ ॥ और महामुनिने प्रसन्न होकर सरस्वतीको वर-दान दिया, कि—हे सुभगे ! तेरे जलसे यदि विश्वेदेवा, पितर, गन्धर्व और अप्सराओंका तर्पण किया जायगा तो वे तृप्त हो जायँगे, ऐसा कहकर उन्होंने महानदी सरस्वतीकी अपने वचनों से प्रशंसा की ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे राजन् ! जिनका अंतःकरण हर्ष पारहा था ऐसे मुनिने प्रसन्न होकर जैसे स्तुति की, उसको सुनो, उन्होंने कहा, कि-महाभागे ! तू पहले ब्रह्माजीके सरोवरमें से बहकर आयी थी ॥ १६ ॥ हे श्रेष्ठनदी ! तुझे उत्तम व्रतधारी मुनि जानते हैं, हे प्रियदर्शने! तू सदा मेरा भी प्रिय किया करती है ॥ २० इसलिये हे सुन्दर वर्णवाली महानदी! तेरा यह पुत्र तेरे ही नामके अनुसार सारस्वत नामसे प्रसिद्ध होगा, और लोगों का कल्याण करेगा ॥ १२ ॥ सारस्वत नामसे यह तेरा पुत्र बड़ा तपस्वी होगा और बारह वर्षकी अवस्था के समय ब्राह्मणोंको

जर्षभान् ॥ २२ ॥ सारस्वतो महाभागे वेदानध्यापयिष्यति ।
पुण्याभ्यश्च सरिद्भ्यस्त्वं सदा पुण्यतमा शुभे ॥ २३ ॥ भवि-
ष्यसि महाभागे मत्प्रसादात्सरस्वती । एवं सा संस्तुता तेन वरं
लब्ध्वा महानदी ॥ २४ ॥ पुत्रमादाय मुदिता जगाम भरतर्षभ ।
एतस्मिन्नेव काले तु विरोधे देवदानवैः ॥ २५ ॥ शक्रः प्रहरणा-
न्वेषी लोकांस्त्रीन् विचचार ह । न चोपलेभे भगवान् शक्रः प्रह-
रणं तदा ॥ २६ ॥ यद्वै तेषां भवेद्योग्यं वधाय विबुधद्विषाम् ।
ततोऽब्रवीत् सुरान् शक्रो न मे शक्या महासुराः ॥ २७ ॥ ऋते-
ऽस्थिभिर्दधीचस्य निहन्तुं त्रिदशद्विषः । तस्माद्गत्वा ऋषिश्रेष्ठो
याच्यतां सुरसत्तमाः ॥ २८ ॥ दधीचास्थीनि देहीति तैर्वधिष्या-
महे रिपून् । स च तैर्याचितोऽस्थीनि यत्नादृषिवरस्तदा ॥ २९ ॥

वेद पढ़ावेगा, हे महाभागा सरस्वती! तू मेरे अनुग्रहसे सदा पवित्र रहनेवाली नदियोंसे भी अधिक पवित्र रहेगी, इसप्रकार दधीचि ऋषिने सरस्वती नदीकी स्तुति की तथा फिर महानदी सरस्वती इस पुत्रको लेकर प्रसन्न होती हुई अपने स्थानको चलीगयी, उसी समय देवता और दानवोंमें विरोध बढ़ गया ॥ २२–२५ ॥ असुरोंका नाश करनेवाले हथियारोंकी खोज करनेके लिये इन्द्र तीनों लोकोंमें घूमकर लौट आया, परन्तु उस समय दैत्योंका नाश करने योग्य शस्त्र ही उसको नहीं मिला, तब इन्द्रने देवताओं से कहा, कि–हे देवताओ! दधीचिके हाड़ोंके बिना इन बड़ेभारी असुरोंको नहीं मारा जासकता, इसलिये तुम उन महर्षिके पास जाकर उनके हाड़ मांगो ॥ २६–२८ ॥ उनसे कहो, कि–हे ऋषे! आप हमें अपनी हड्डियें दीजिये तो हम शत्रुओंका संहार करें, यह सुनकर देवताओंने दधीचिसे हड्डियें मांगीं और श्रेष्ठ ऋषिने यत्नसे अपने हाड़ देदिये ॥ २९ ॥ हे राजन् जरा भी विचार न करके देवताओंका प्रिय कार्य करनेवाले दधीचिने अपने

प्राणत्यागं कुरुश्रेष्ठ चकारैवाविचारयन् । स लोकानक्षयान् प्राप्तो देवप्रियकरस्तदा ॥ ३० ॥ तस्यास्थिभिरथो शक्रः सम्प्रहृष्टमना-स्तदा । कारयास दिव्यानि नानाप्रहरणानि च ॥ ३१ ॥ गदा-वज्राणि चक्राणि गुरून् दण्डांश्च पुष्कलान् । स हि तीव्रेण तपसा संभूतः परमर्षिणा ॥ ३२ ॥ प्रजापतिसुतेनाथ भृगुणा लोकभावनः । अतिकायः स तेजस्वी लोकसारो विनिर्मितः ३३ जज्ञे शैलगुरुः प्रांशुर्महिम्ना प्रथितः प्रभुः । नित्यमुद्विजते चास्य तेजसः पाकशासनः ॥३४॥ तेन वज्रेण भगवान् मन्त्रयुक्तेन भारत । भृशं क्रोधविसृष्टेन ब्रह्मतेजोद्भवेन च ॥ ३५ ॥ दैत्यदानववीराणां जघान नवतीर्नव । अथ काले व्यतिक्रान्ते महत्यतिभयङ्करे ॥३६॥ अनावृष्टिरनुप्राप्ता राजन् द्वादशवार्षिकी । तस्यां द्वादशवार्षिक्या-मनावृष्ट्यां महर्षयः ॥ ३७ ॥ वृत्त्यर्थं प्राद्रवन् राजन् क्षुधार्ताः

प्राण त्यागदिये और वह तत्काल अक्षय लोकोंमें चलेगये ॥३०॥ तब तो इन्द्रने बड़े प्रसन्न होकर उसी समय दधीचिकी हड्डियों के दिव्य अस्त्र बनवाये । ३१ ॥ गदायें, वज्र, चक्र और बड़े २ बहुतसे दण्ड बनवाये, उधर प्रजापतिके पुत्र महर्षि भृगुने तीव्र तप के प्रभावसे वृत्रासुरके बलको बहुतही बढ़ा दिया था तथा उसका शरीर हिमाचलकी समान ऊँचा होगया था, वह महातेजस्वी और महाबली होगया था, उसकी महिमा भी जगत्में प्रसिद्ध होगयी थी, इन्द्र भी उसके तेजसे सदा डरता रहता था ॥३२-३४॥ हे भरतवंशी राजन्! फिर दधीचि मुनिके हाड़ोंमेंसे वज्र बना कर उसको मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया, वह ब्राह्मणके तेजमेंसे बनाया वज्र इन्द्रने क्रोधके साथ मारकर वृत्रासुरको तथा और नब्भै दैत्यों को मारडाला।३५-३६तदनन्तर उस महाभयानक समयके बीतजाने पर हे राजन् ! ऐसा समय आया, कि-बारह वर्ष तक वर्षा ही नहीं हुई और उस बारह वर्षकी अवर्षामें महर्षि भूखसे घबड़ा गये और हे राजन्! आजीविकाके लिये सब दिशाओंमेंको भाग

सर्वतो दिशम् । दिग्भगस्तान् प्रद्रुतान् दृष्ट्वा मुनिः सारस्वतस्तदा ३८
गमनाय मतिं चक्रे तं प्रोवाच सरस्वती । न गन्तव्यमितः पुत्र
तवाहारमहं सदा ॥३९॥ दास्यामि मत्स्यप्रवरानुष्यतामिह भारत ।
इत्युक्तस्तर्पयामास स पितॄन् देवतास्तथा ॥ ४० ॥ आहारमकरो-
न्नित्यं प्राणान्वेदांश्च धारयन् । अथ तस्यामनावृष्ट्यां व्यतीतायां
महर्षयः ॥ ४१ ॥ अन्योन्यं परिपप्रच्छुः पुनः स्वाध्यायकारणात् ।
तेषां क्षुधापरीतानां नष्टा वेदाभिधावताम् ॥ ४२ ॥ सर्वेषामेव
राजेन्द्र न कश्चित्प्रतिभानवान् । अथ कश्चिदृषिस्तेषां सारस्वतमु-
पेयिवान् ॥ ४३ ॥ कुर्वाणं संशितात्मानं स्वाध्यायमृषिसत्तमम् ।
स गत्वा चष्ट तेभ्यश्च सारस्वतमतिप्रभम् ॥ ४४ ॥ स्वाध्याय-
ममरप्रख्यं कुर्वाणं विजने वने । ततः सर्वे समाजग्मुस्तत्र राजन्म-

---

निकले, उस समय सारस्वत मुनिने उन महर्षियोंको सब दिशाओं मेंको भागतेहुए देखकर ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ स्वयं भी तहाँसे चले जानेका विचार किया, तब उनसे सरस्वतीने कहा, कि–हे पुत्र! तुझे यहाँसे नहीं जाना चाहिये, मैं तुझे सदा भोजनके लिये उत्तम मछलियें दूँगी, इसलिये तुझे यहाँ ही रहना चाहिये, हे भारत ! सरस्वतीके ऐसा कहने पर सारस्वत मुनि तहाँ ही रहकर देवता तथा पितरोंका तर्पण करने लगे ॥३९॥४०॥ उस आहार को पाकर सारस्वत मुनिने प्राणोंको और वेदोंको धारण किया, तदनन्तर उस अवर्षाके बीतजाने पर वे महर्षि फिर वेदका स्वाध्याय करनेके लिये आपसमें प्रश्न करने लगे, क्योंकि–भूखसे व्याकुल होकर इधर उधर फिरनेके समय वे वेदोंको भूल गये थे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे राजेन्द्र ! उन सर्वोंमें किसीमें भी (प्रतिभा) स्मरणशक्ति नहीं रही थी, तदनन्तर उनमेंका एक ऋषि सारस्वत मुनि के पास जापहुँचा ॥ ४३ ॥ उसने प्रसन्नात्मा, परमतेजस्वी, ऋषिवर्य सारस्वतको वेदोंका स्वाध्याय करते हुए देखा और ऋषियोंके पास आकर यह समाचार सुनाया ॥४४॥

हर्षयः ॥ ४५ ॥ सारस्वतं मुनिश्रेष्ठमिदमूचुः समागताः । अस्मा-
नध्यापयस्वेति तानुवाच ततो मुनिः ॥ ४६ ॥ शिष्यत्वमुपगच्छ-
ध्वं विधिवद्धि ममेत्युत । तत्राब्रुवन्मुनिगणाः बालस्त्वमसि पुत्रक ४७
स तानाह न मे धर्मो नश्येदिति पुनर्मुनीन । यो ह्यधर्मेण वै ब्रूयाद्
गृह्णीयाद्योऽप्यधर्मतः ॥४८॥ हीयेतां तावुभौ क्षिप्रं स्यातां वा वैरि-
णावुभौ । न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ॥ ४९ ॥ ऋष-
यश्चक्रिरे धर्मं योनूचानः स नो महान् । एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य
मुनयस्ते विधानतः ॥ ५० ॥ तस्माद्वेदाननुप्राप्य पुनर्धर्मं प्रचक्रिरे ।
षष्टिर्मुनिसहस्राणि शिष्यत्वं प्रतिपेदिरे ॥ ५१ ॥ सारस्वतस्य
विप्रर्षेर्वेदस्वाध्यायकारणात् । मुष्टिं मुष्टिं ततः सर्वे दर्भाणां ते ह्युपा-

---

हे राजन् ! तब तो सब महर्षि निर्जन वनमें स्वाध्याय करनेवाले देवतासमान सारस्वत मुनिके पास तहाँ ही चले आये ॥ ४५ ॥ और आकर मुनिवर सारस्वतसे यह कहा, कि—हमें वेद पढ़ाइये, तब मुनिने उनसे कहा, कि—४६ तुम विधिपूर्वक मेरे शिष्य बनो तब तो उन मुनिगणोंने कहा, कि—हे बेटा ! तुम तो बालक हो ॥ ४७ ॥ सारस्वत मुनिने उन महर्षियोंसे फिर कहा, कि—मेरा धर्म नष्ट नहीं होना चाहिये, क्योंकि—जो अधर्मसे विद्या पढ़ाता है और जो धर्मविरुद्ध रीतिसे विद्याको ग्रहण करता है तो वे दोनों अधर्मके कारण तुरन्त नष्ट होजाते हैं अथवा वे दोनों जने वैरी होजाते हैं, अवस्थाका प्रमाण नहीं है, बड़ी अवस्था होनेसे बाल स्वेत होजानेसे, धनसे या अधिक कुटुम्बी होनेसे पुरुष बड़ा नहीं मानाजाता, इसलिये ऋषियोंने यह निश्चय किया है, कि—हममें जो वेद पढ़ा हो वही बड़ा है, सारस्वत मुनिकी इस बातको सुनकर उन ऋषियोंने विधिके अनुसार ॥ ४८—५० ॥ सारस्वत मुनिसे वेदोंको पाकर फिर वैदिक धर्म करना आरम्भ करदिया, वेदके स्वाध्यायके लिये उस समय साठ हजार विप्रर्षि मुनि सारस्वतके शिष्य हुए थे, सारस्वत मुनि बालक थे तो भी

हरन् । तस्यासनार्थं विमर्षेर्बालस्यापि वशे स्थिताः ॥ ५२ ॥
तत्रापि दत्त्वा वसु रौहिणेयो महाबलः केशवपूर्वजोथ। जगाम तीर्थं
मुदितः क्रमेण ख्यातं महद्वृद्धकन्यां स्म यत्र ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि सारस्वतोपाख्याने
एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

जनमेजय उवाच । कथं कुमारी भगवंस्तपोयुक्ता ह्यभूत् पुरा ।
किमर्थञ्च तपस्तेपे को वास्या नियमोभवत् ॥ १ ॥ सुदुष्करमिदं
ब्रह्मंस्त्वत्तः श्रुतमनुत्तमम् । आख्याहि तत्त्वमखिलं यथा तपसि
सा स्थिता ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । ऋषिरासीन्महावीर्यः
कुणिर्गर्गो महायशाः । स तप्त्वा विपुलं राजंस्तपो वै तपतां वरः ३
मनसाथ सुतां सुभ्रूं समुत्पादितवान् विभुः । ताञ्च दृष्ट्वा मुनिः
प्रीतः कुणिर्गर्गो महायशाः ॥ ४ ॥ जगाम त्रिदिवं राजन् सन्त्य-

सब ऋषि उनकी आज्ञामें रहकर उनके आसनके लिये एक २ मुट्ठी कुशा लाकर देने लगे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उस सारस्वत तीर्थ में भी केशवके बड़े भाई रोहिणीके पुत्र बलदेवजीने स्नान करके ब्राह्मणोंको धनके दान दिये और वहाँसे प्रसन्न होकर प्रसिद्ध कन्याक्षेत्रमें गये, जहाँ वृद्धकन्याने तप किया था ॥५३॥ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥ छ ॥ छ

जनमेजयने कहा, कि–हे भगवन्! पहले उस कुमारीने किस प्रकार तप किया था? क्यों तप किया था और उसका नियम क्या था? ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्! आपसे मैंने यह बड़ी दुष्कर बात सुनी है, उस कन्याने जिस प्रकार तप किया हो, उसका परमोत्तम सब तत्त्व मुझे सुनाइये ॥ २ ॥ वैशम्पायनने कहा, कि–हे राजन्! पहले बड़े यश और बड़ी वीरतावाला कुणिगर्ग नामका एक ऋषि था, हे राजन्! उस तप करनेवालोंमें श्रेष्ठ ऋषिने बड़ाभारी तप करके अपने मनसे एक सुन्दर भ्रकुटिवाली कन्या उत्पन्न की, उस कन्याको देखकर महायशस्वी कुणिगर्ग प्रसन्न हुए ॥३॥४॥

ज्येह कलेवरम् । सुभ्रूः सा ह्यथ कन्याणी पुण्डरीकनिभेक्षणा ५
महता तपसोग्रेण कृत्वा श्रममनिन्दिता । उपवासैः पूजयन्ती पितृ-
न्देवांश्च सा पुरा ॥ ६ ॥ तस्यास्तु तपसोग्रेण महान् कालोत्यगा-
न्नृप ॥ सा पित्रा दीयमानापि तत्र नैच्छदनिन्दिता । आत्मनः सदृशं
सा तु भर्त्तारं नान्वपश्यत ॥ ७ ॥ ततः सा तपसोग्रेण पीडयि-
त्वात्मनस्तनुम् । पितृदेवार्च्चनरता बभूव विजने वने ॥ ८ ॥
सात्मानं मन्यमानापि कृतकृत्यं श्रमान्विता ॥ ९ ॥ वार्द्धकेन च
राजेन्द्र तपसा चैव कर्षिता । सा नाशकद्यदा गन्तु पदात् पद-
मपि स्वयम् ॥ १० ॥ चकार गमने बुद्धिं परलोकाय वै तदा ।
मोक्तुकामान्तु तां दृष्ट्वा शरीरं नारदोऽब्रवीत् ॥ ११ ॥ असंस्कृताया
कन्यायाः कुतो लोकास्तवानघे । एवन्तु श्रुतमस्माभिर्देवलोके महा-

हे राजन् ! वह अपने शरीरको वहाँ त्यागकर स्वर्गलोकमें चलेगये
फिर उनकी सुन्दर भ्रकुटि और कमलसमान नेत्रोंवाली वह
कल्याणी कन्या आश्रममें ही रहकर बड़ा उग्र तप करने लगी और
वह श्रेष्ठ कन्या उपवास करके देवताओंका तथा पितरोंका पूजन
करने लगी ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राजन् ! उस कन्याको उग्र तप करते
करते बहुत समय बीतगया, उसका (पालक) पिता उसका
विवाह करने लगा, परन्तु उस निर्दोष कन्याने उस सम्बन्धको
स्वीकार नहीं किया, क्योंकि-उसने देखा, कि-यह पति मेरे
योग्य नहीं है, इसलिये वह निर्जन वनमें जा उग्र तपस्यासे अपने
शरीरको कृश करती हुई पितरों और देवताओंकी पूजामें तत्पर
होगई, परिश्रम पड़ने पर वह कन्या अपने आपको कृतार्थ मानती
थी ॥ ७-९ ॥ हे राजेन्द्र ! इसप्रकार तप करते २ वह कन्या वृद्ध
होगई और इसकारणसे दुबली भी होगई तथा जब उसमें एक
पग चलनेकी भी शक्ति नहीं रही तब तो उसने परलोकमें जाने
का विचार किया और अपने शरीरको त्याग देना चाहा, यह
देखकर नारदने उससे कहा, कि-॥ १० ॥ ११ ॥ हे महाव्रत

व्रते ॥ १२॥ तपः परमकं प्राप्तं न तु लोकास्त्वया जिताः । तन्नारदवचः श्रुत्वा साब्रवीदृषिसंसदि ॥ १३ ॥ तपसोर्द्धं प्रयच्छामि पाणिग्राहस्य सत्तम । इत्युक्ते चास्या जग्राह पाणिं गालवसंभवः॥१४ ऋषिः प्राक् शृङ्गवान्नाम समयञ्चेदमब्रवीत् । समयेन तवाद्याहं पाणिं स्प्रक्ष्यामि शोभने ॥ १५ ॥ यद्येकरात्रं वस्तव्यं त्वया सह मयेति वै । तथेति सा प्रतिश्रुत्य तस्मै पाणिं ददौ तदा ॥ १६ ॥ यथादृष्टेन विधिना हुत्वा चाग्निं विधानतः । चक्रे च पाणिग्रहणं तस्योद्वाहञ्च गालविः ॥ १७ ॥ सा रात्रावभवद्राजंस्तरुणी वरवर्णिनी । दिव्याभरणवस्त्रा च दिव्यस्रगनुलेपना ॥१८॥ तां दृष्ट्वा

धारण करनेवाली निर्दोष कन्या ! हमने देवलोकमें सुना है, किन्तु तो संस्कारशून्य (अविवाहिता) कन्या है, इसलिये तुझे उत्तम लोक कहांसे मिलजायँगे, हे ऋषिकन्या ! तूने तपका परम फल पालिया है,परन्तु तूने किसी लोकको भी नहीं जीता,वह तपस्विनी नारदऋषिकी बातको सुनकर ऋषियोंकी बीच सभामें महर्षियों को सम्बोधन देकर कहने लगी, कि—॥ १२ ॥ १३ ॥ हे महाराज! जो मेरा पाणिग्रहण करे उसका मैं अपनी तपस्याका आधा भाग देनेको तयार हूँ, उस कन्याके ऐसा कहने पर गालवके पुत्र शृङ्गवान् नामके एक ऋषि उस कन्याके साथ विवाह करनेको तयार होगये, परन्तु इससे पहले उन्होंने यह प्रतिज्ञा की, कि—हे शोभने!मैं इस प्रतिज्ञापर तेरा पाणिग्रहण करता हूँ, कि—॥ १४॥ १५ ॥ यदि तू एक रात्रि मेरे साथ निवास करना चाहे तो ऐसा होसकता है उस तपस्विनीने 'बहुत अच्छा'कहकर प्रतिज्ञाकी और अपना हाथ उनको अर्पण कर दिया ॥१६॥ गालवके पुत्र शृङ्गवान् ऋषिने शास्त्रोक्त विधिसे अग्निमें होम करके उस कन्याका पाणिग्रहण किया और विवाहका कर्म पूरा होगया१७ हे राजन् ! वह कन्या रात्रिमें एक सुन्दराङ्गी तरुणी बन गयी, दिव्यवस्त्र और आभूषण धारण किये, शरीरपर दिव्य चन्दनका

गालवि: प्रीतो दीपयन्तीमिव श्रिया । उवास च क्षपामेकां प्रभाते सामब्रीच्च तम् ॥ १९ ॥ यस्त्वया समयो विप्र कृतो मे तपताम्वर । तेनोपितास्मि भद्रन्ते स्वस्ति तेस्तु व्रजाम्यहम् ॥ २० ॥ सानिर्गताब्रवीद्भूयो योस्मिंस्तीर्थे समाहितः । वत्स्यते रजनीमेकां तर्पयित्वा दिवौकसः ॥ २१ ॥ चत्वारिंशतमष्टौ च द्वौ चाष्टौ सम्यगाचरेत् । यो ब्रह्मचर्य्यं वर्षाणि फलं तस्य लभेत सः ॥ २२ ॥ एवमुक्त्वा ततः साध्वी देहं त्यक्त्वा दिवं गता । ऋषिरप्यभवद्दीनस्तस्या रूपं विचिन्तयन् ॥ २३ ॥ समयेन तपोर्द्धञ्च कृच्छ्रात्प्रतिगृहीतवान् । साधयित्वा तदात्मानं तस्याः स गतिमन्वियात् २४

लेप किया ॥१८॥ अपनी शोभासे प्रकाशसा करने लगी उसको देखकर शृङ्गवान् ऋषि प्रसन्न होगये, वह तपस्विनी उनके साथ एक रात रही और प्रातःकाल होते ही वन ऋषिसे कहने लगी, ॥ १९ ॥ हे तप करनेवालोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण ! तुमने मेरे साथ जो नियम किया है, उसके अनुसार मैं तुम्हारे पास एक रात्रि रह चुकी, तुम्हारा कल्याण हो, स्वस्ति हो, अब मैं जाती हूँ ॥२०॥ ऐसा कहकर वह आश्रममेंसे बाहर निकलती हुई कहने लगी, कि—जो पुरुष सावधान होकर इस तीर्थमें एक रात रहकर पितरोंका और देवताओंका तर्पण करेगा ॥ २१ ॥ उसको अट्ठावन वर्ष (१) तक ब्रह्मचर्य करनेवालेको जो फल मिलता है वह मिलेगा ॥ २२ ॥ वह पतिव्रता ऐसा कहती हुई अपने शरीरको त्यागकर स्वर्गमें चलीगयी और ऋषि उसके रूपका विचार करते हुए दीन (सुस्त) होगये ॥ २३ ॥ उन ऋषिने भी बड़े दुःखसे नियमके अनुसार आधा तप लेलिया और अपने आत्माको सिद्ध

(१) चार वेद पढने के अडतालीस वर्ष दो वर्ष गुरुके ऋणमेंसे छूटनेके लिये सेवा करनेके और आठ वर्ष की कन्याके साथ विवाह करके उसके यौवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करनेके आठ वर्ष, इसप्रकार सब मिलाकर अट्ठावन वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करना पड़ता है ।

दुःखितो भरतश्रेष्ठ तस्या रूपवशात्कृतः । एतत्ते वृद्धकन्यायाः व्याख्यातञ्चरितं महत् ॥ २५ ॥ तथैव ब्रह्मचर्यञ्च स्वर्गस्य च गतिः शुभा । तत्रस्थश्चापि शुश्राव हतं शल्यं हलायुधः ॥ २६ ॥ तत्रापि दत्त्वा दानानि द्विजातिभ्यः परन्तप । शुश्राव शल्यं संग्रामे निहतं पाण्डवैस्तदा ॥ २७ ॥ समन्तपञ्चकद्वाराचतो निष्क्रम्य माधवः । पप्रच्छर्षिगणाचामः कुरुक्षेत्रस्य यत् फलम् ॥ २८ ॥ ते पृष्टा यदुसिंहेन कुरुक्षेत्रफलं विभो । समाचख्युर्महात्मानस्तस्मै सर्वं यथातथम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

ऋषयः ऊचुः । प्रजापतेरुत्तरवेदिरुच्यते सनातनं राम समन्तपञ्चकम् । समीजिरे यत्र पुरा दिवौकसो वरेण सत्रेण महावर-

---

बनाकर वह भी पीछेसे उस सतीकी गति (स्वर्ग) को प्राप्त होगये ॥ २४ ॥ वह ऋषि उस कन्याके रूपके बलसे दुःखी हुए थे, हे भरतसत्तम! यह मैंने उस वृद्धकन्याका महान् चरित्र सुना दिया ॥२५॥ तथा उन ऋषिके ब्रह्मचर्य और सुन्दर स्वर्गगति का वृत्तान्त भी सुनादिया, बलदेवजी इस कन्याक्षेत्रमें थे तबही उन्होंने सुना था, कि–राजा शल्य मारा गया ॥ २६ ॥ परन्तु बलदेवजीने उस तीर्थमें भी ब्राह्मणोंको बहुतसे दानदिये और पाण्डवोंने रणमें शल्यको मारडाला यह समाचार सुना ॥ २७ ॥ फिर मधुवंशी बलदेवजीने समन्तपञ्चकके द्वारमेंसे बाहर निकल कर ऋषियोंसे कुरुक्षेत्रका जो फल है वह बूझा ॥ २८ ॥ हेराजन्! यदुवंशमें सिंहसमान बलदेवजीने ऋषियोंसे जब कुरुक्षेत्रका फल बूझा तब उन महात्मा ऋषियोंने सब फल ठीक२ कहकर सुनादिया ॥ २९ ॥ बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥

ऋषियोंने कहा, कि–हेराम! यह समन्तपञ्चक क्षेत्र प्रजापति

प्रदाः ॥ १ ॥ पुरा च राजर्षिवरेण धीमता बहूनि वर्षाण्यमितेन तेजसा । प्रकृष्टमेतत् कुरुणा महात्मना ततः कुरुक्षेत्रमितीह पप्रथे ॥ २ ॥ राम उवाच । किमर्थं कुरुणा कृष्टं क्षेत्रमेतन्महात्मना । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कथ्यमानं तपोधनाः॥३॥ ऋषय ऊचुः । पुरा किल कुरुं राम कर्षन्तं सततोत्थितम् । अभ्येत्य शक्रस्त्रिदिवात् पर्य्यपृच्छत कारणम् ॥ ४ ॥ इन्द्र उवाच । किमिदं वर्त्तते राजन् प्रयत्नेन परेण च । राजर्षे किमभिप्रेतं येनेयं कृष्यते क्षितिः॥५ ॥कुरुरुवाच । इह ये पुरुषाः क्षेत्रे मरिष्यन्ति शतक्रतो । ते गमिष्यन्ति सुकृताँल्लोकान् पापविवर्जितान् ॥ ६ ॥ अवहस्य ततः शक्रो जगाम त्रिदिवं प्रभुः । राजर्षिरप्यनिर्विण्णः कर्षत्येव वसुन्धराम् ॥ ७ ॥ आगम्यागम्य चैवैनं भूयो भूयोऽवहस्य च ।

की सनातनी उत्तरवेदी कहलाता है, पहले महावरदान देनेवाले देवताओंने इसही स्थान पर मुख्य यज्ञ करके परमात्माका यजन किया था॥१॥ तथा महात्मा बुद्धिमान्, महातेजस्वी राजर्षि कुरुने भी पहले यहाँ बहुत वर्षों तक हल चलाया था, इसलिये यह जगत् में कुरुक्षेत्र नामसे प्रसिद्ध हुआ॥२॥बलदेवजीने कहा, कि—हे तपोधनो!महात्मा कुरुने इस खेतमें हल क्यों चलाया था?इस बातको मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ ॥३॥ ऋषियोंने उत्तर दिया, कि—हे बलरामजी! पहले राजा कुरु नित्य उठ कर हल चलाया करता था, इसलिये इन्द्रने स्वर्गमेंसे उसके पास आकर उससे ऐसा करनेका कारण बूझा ॥ ४ ॥ इन्द्रने कहा कि—हे राजन् तुम यह बड़ाभारी प्रयत्न किसलिये करते हो? हे राजेन्द्र! इस पृथ्वीपर हल जोतनेमें तुम्हारा क्या अभिप्राय है? ॥ ५ ॥ कुरुने कहा, कि—हे इन्द्र! इस क्षेत्रमें जो पुरुष मरेंगे वे पापरहित होकर पुण्यलोकोंमें जायँगे ॥ ६ ॥ इसपर इन्द्र हँसा और स्वर्गको लौट गया, राजर्षि भी उदास न होकर भूमिपर हल जोतता ही रहा ॥ ७ ॥ इन्द्र बारंबार कुरुराजके पास आकर उसका उप-

शतक्रतुरनिर्विण्णं पृष्ट्वा पृष्ट्वा जगाम ह ॥ ८ ॥ यदा तु तपसोग्रेण चकर्ष वसुधां नृपः । ततः शक्रोऽब्रवीद्देवान्राजर्षेर्यच्चिकीर्षितम् ॥ ९ ॥ एतच्छ्रुत्वाब्रुवन्देवाः सहस्राक्षमिदं वचः । वरेणच्छन्द्यतां शक्र राजर्षिर्यदि शक्यते ॥ १० ॥ यदि ह्यत्र प्रमीता वै स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः । अस्मानननिष्ट्वा क्रतुभिर्भागो नो न भविष्यति ॥ ११ ॥ आगम्य च ततः शक्रस्तदा राजर्षिमब्रवीत् । अलं खेदेन भवतः क्रियतां वचनं मम ॥ १२ ॥ मानवा ये निराहारा देहन्त्यक्ष्यन्त्यतन्द्रिताः । युधि वा निहताः सम्यगपि तिर्यग्गता नृप ॥ १३ ॥ ते स्वर्गभाजो राजेन्द्र भविष्यन्ति महामते । तथास्त्विति ततो राजा कुरुः शक्रमुवाच ह ॥ १४ ॥ ततस्तमभ्यनुज्ञाप्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना । जगाम त्रिदिवं भूयः क्षिप्रं बलनिषूदनः ॥ १५ ॥ एवमेतद्यदुश्रेष्ठ कृष्टं राजर्षिणा पुरा । शक्रेण

हास करके, बूझ२ कर चलाजाता था ॥ ८ ॥ इसप्रकार जब राजाने उग्रतपके साथ पृथ्वीका कर्षण करना आरम्भ किया, तब इन्द्रने उस राजर्षिका मनोरथ देवताओंसे कहा ॥ ९ ॥ इस बातको सुनकर देवताओंने सहस्राक्ष इन्द्रसे कहा, कि–हे इन्द्र यदि तुम्हारे किये होसकता हो तो तुम इस राजर्षिसे वर माँगनेके लिये कहो ॥ १० ॥ क्योंकि–इस क्षेत्रमें मरनेवाले मनुष्य हमारा यजन किये बिनाही स्वर्गमें चले जायँगे, तो फिर हमें हमारा यज्ञभाग नहीं मिलेगा ॥ ११ ॥ यह सुनकर इन्द्रने उसी समय आकर राजर्षिसे कहा, कि–हे राजन् ! अब तुम कष्ट न भोगो, मेरा कहना करो ॥ १२ ॥ हेभूपते! जो मनुष्य निराहार रहकर सावधानीसे देहको त्यागेंगे तथा तिर्यक् योनिमें पहुँचे हुए भी जो रणमें अच्छे प्रकारसे लड़कर मरेंगे ॥ १३ ॥ हेमहापति राजेन्द्र! वे पुरुष स्वर्गसुखको भोगेंगे, यह सुनकर कुरुराजने इन्द्रसे कहा, कि–बहुत अच्छा १४ तदनन्तर बल दैत्यको मारने वाला इन्द्र प्रसन्न मनसे कुरुराजकी आज्ञा लेकर तुरन्त स्वर्गको लौटगया १५

चाभ्यनुज्ञाते ब्रह्माद्यैश्च सुरैस्तथा ॥ १६ ॥ नातः परतरं पुण्यं भूमेः स्थानं भविष्यति । इह तप्स्यन्ति ये केचित्तपः परमकं नराः ॥ १७ ॥ देहत्यागेन ते सर्वे यास्यन्ति ब्रह्मणः क्षयम् । ये पुनः पुण्यभाजो वै दानं दास्यन्ति मानवाः ॥ १८ ॥ तेषां सहस्रगुणितं भविष्यत्यचिरेण वै । ये चेह नित्यं मनुजा निवत्स्यन्ति शुभेप्सिणः ॥ १९ ॥ यमस्य विषयं ते तु न द्रक्ष्यन्ति कदाचन । यक्ष्यन्ति ये च क्रतुभिर्महद्भिर्मनुजेश्वराः ॥ २० ॥ तेषां त्रिविष्टपे वासो यावद्भूमिर्धरिष्यति । अपि चात्र स्वयं शक्रो जगौ गाथां सुराधिपः ॥२१॥ कुरुक्षेत्रे निबद्धां वै तां शृणुष्व हलायुधः पांशवोऽपि कुरुक्षेत्राद्वायुना समुदीरिताः । अपि दुष्कृतकर्माणं नयन्ति परमां गतिम् ॥ २२ ॥ सुरर्षभा ब्राह्मणसत्तमाश्च तथा नृगाद्या नरदेवमुख्याः । इष्ट्वा महार्हैः क्रतुभिर्नृसिंहाः सन्त्यज्य

हे यदुवंशमें श्रेष्ठ राजन्! पहले इसप्रकार राजर्षि कुरुने इस क्षेत्र का कर्षण किया था, और इन्द्रने तथा ब्रह्मादि देवताओंने इसका अनुमोदन किया था ॥ १६ ॥ भूतलपरके क्षेत्रोंमें इसकी समान पवित्र दूसरा कोई क्षेत्र नहीं है जो कोई मनुष्य इस क्षेत्रमें परम तप करेंगे ॥ १७ ॥ वे सब देहको त्याग कर परब्रह्मके स्थानमें जायँगे तथा जो पुण्यवान् पुरुष इस क्षेत्रमें दान देंगे ॥ १८ ॥ उनका दान थोड़े ही समयमें सहस्रगुणा होजायगा और जो मनुष्य शुभकी इच्छासे यहाँ निवास करेंगे ॥ १९ ॥ वे कभीभी यमके देशको नहीं देखेंगे और जो राजे इस क्षेत्रमें बड़े २ यज्ञोंसे यजन करेंगे ॥ २० ॥ वे जबतक पृथिवी रहेगी तबतक स्वर्गमें निवास करेंगे, हे हलायुध! इन्द्रने स्वयंभी कुरुक्षेत्रके विषयमें गाथा गाई है ॥ २१ ॥ हे बलदेवजी! कुरुक्षेत्रके विषयकी उस गाथाको तुम सुनो,कुरुक्षेत्रमेंसे वायुकी उड़ायी हुई धूलियेंभी बड़ा भारी पापकर्म करने वालेको परमगतिमें पहुँचा देती हैं ॥ २२ ॥ हे मनुष्यामें सिंहसमान बलदेवजी! बड़े२ देवता, उत्तम ब्राह्मण

देहान् सुगतिं प्रपन्नाः ॥ २३ ॥ तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं रामह्रदानाञ्च मचक्रुकस्य च । एतत् कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं प्रजापतेरुत्तरवेदिरुच्यते ॥ २४ ॥ शिवं महत् पुण्यमिदं दिवौकसां सुसम्मतं सर्वगुणैः समन्वितम् । अतश्च सर्वे निहता नृपा रणे यास्यन्ति पुण्यां गतिमक्षयां सदा ॥ २५ ॥ इत्युवाच स्वयं शक्रः सह ब्रह्मादिभिस्तदा । तच्चानुमोदितं सर्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने कुरुक्षेत्रकथने त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

वैशम्पायन उवाच । कुरुक्षेत्रं ततो दृष्ट्वा दत्त्वा दायांश्च सात्वतः । आश्रमं सुमहद्दिव्यमगमज्जनमेजय ॥ १ ॥ मधुकाम्रवणोपेतं प्लक्षन्यग्रोधसंकुलम् । चिरबिल्वयुतं पुण्यं पनसार्जुनसंकु-

तथा नृग आदि मुख्य राजे अत्यन्त पवित्र यज्ञोंके द्वारा परमात्मा का यजन करके देहको त्यागनेपर उत्तम गतिको प्राप्त होगये हैं २३ तरन्तुक और आरन्तुकके तथा रामह्रद और चमचक्रुकके मध्यका जो प्रदेश है वह कुरुक्षेत्र और समन्तपञ्चक मानाजाता है और यही प्रजापतिकी उत्तरवेदी कहलाता है ॥ २४ ॥ यह समन्तकपंचक नामका क्षेत्र महापवित्र, कल्याणकारक, देवताओंसे भलेप्रकार आदर पायाहुआ और सकल गुण सम्पन्न है, इसलिये जो राजे इस रणमें मरते हैं,वे सब सदा पवित्र और अक्षय गतिको पावेंगे२५ इसप्रकार उस समय स्वयं इन्द्रने ब्रह्मादि देवताओंके साथ तहां कहा था और ब्रह्मा,विष्णु, महेश्वरने इस सबका अनुमोदन किया था ॥ २६ ॥ तिरेपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! उस कुरुक्षेत्रमें जाकर सात्वतवंशी-बलदेवजीने ब्राह्मणोंको दान दिये और तहाँसे एक बड़े ही दिव्य आश्रममें गये ॥ १ ॥ उस पवित्र आश्रममें महुए और आमके वन थे और पीपल, बड़, कठहर, अर्जुन तथा करंज

कम् ॥ २ ॥ तं दृष्ट्वा यादवश्रेष्ठः प्रवरं पुण्यलक्षणम् । पप्रच्छ
तानृषीन् सर्वान् कस्याश्रमवरस्त्वयम् ॥ ३ ॥ ते तु सर्वे महात्मान
ऊचू राजन् हलायुधम् । शृणु विस्तरशो राम यस्यायं पूर्व आश्रम।४
अत्र विष्णुः पुरा देवस्तप्तवांस्तप उत्तमम् । अत्रास्य विधिवद्यज्ञाः
सर्वे वृत्ताः सनातनाः ॥ ५ ॥ अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा कौमारब्रह्म-
चारिणी । योगयुक्ता दिवं याता तपःसिद्धा तपस्विनी ॥६॥ बभूव
श्रीमती राजन् शाण्डिल्यस्य महात्मनः । सुता धृतव्रता साध्वी
नियता ब्रह्मचारिणी ॥ ७ ॥ सा तु तप्त्वा तपो घोरं दुश्चरं स्त्री-
जनेन ह । गता स्वर्गं महाभागा देवब्राह्मणपूजिता ॥ ८ ॥ श्रुत्वा
ऋषीणां वचनमाश्रमं तं जगाम ह । ऋषीस्तानभिवाद्याथ पार्श्वे
हिमवतोऽच्युतः ॥ ९ ॥ सन्ध्याकार्याणि सर्वाणि निवर्त्यारुरुहेऽ-

के पेड तहाँ बहुत ही थे ॥ २ ॥ यादवोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीने पवित्र
लक्षणोंवाले उस श्रेष्ठ आश्रमको देखकर सब ऋषियोंसे प्रश्न
किया, कि-यह श्रेष्ठ आश्रम किसका है ? ॥ ३ ॥ हे राजन् !
इस पर उन सब ऋषियोंने महात्मा हलधरको उत्तर दिया, कि-
हे बलराम ! यह आश्रम पहले किसका था, इसको तुम विस्तारके
साथ सुनो ॥ ४ ॥ इस आश्रममें पहले विष्णुदेवने उत्तम तप किया
था तथा इस आश्रममें उन्होंने सब सनातन यज्ञोंको विधिपूर्वक किया
था ॥ ५ ॥ और हे राजन् ! इस ही आश्रममें एक ब्राह्मणीने
छोटी अवस्थासे ही ब्रह्मचर्यका पालन किया था, वह योगसाधन
करती थी- तपसे सिद्ध होगई थी, अन्तमें वह तपस्विनी तपके प्रभाव
से स्वर्गमें चली गई ॥ ६ ॥ हे राजन् ! वह ब्रह्मचर्य-व्रतधारिणी
श्रीमती साध्वी महात्मा शाण्डिल्यकी पुत्री थी ॥ ७ ॥ वह महा-
भाग्यवती कन्या, स्त्रियोंसे न होसकनेवाला घोर तप करके देवता
और ब्राह्मणोंमें पूजा पातीहुई स्वर्गमें चली गयी ॥ ८ ॥ ऋषियों
की इस बातको सुन उनको प्रणाम करके भगवान् बलदेवजी हिमा-
लयके समीप उस आश्रममें गये ।९। और संध्यासमयके सब काम

चलम् । नातिदूरं ततो गत्वा नगं तालध्वजो बली ॥ १० ॥ पुण्यं तीर्थवरं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः । प्रभावञ्च सरस्वत्याः प्लक्षप्रस्रवणं बलः ॥ ११ ॥ संप्राप्तः कारपवनं प्रवरं तीर्थमुत्तमम् । हलायुधस्तत्र चापि दत्त्वा दानं महाबलः ॥ १२ ॥ आप्लुतः सलिले पुण्ये सुशीते विमले शुचौ । सन्तर्पयामास पितॄन् देवांश्च रणदुर्मदः ॥ १३ ॥ तत्राप्येकान्तु रजनीं यतिभिर्ब्राह्मणैः सह । मित्रावरुणयोः पुण्यं जगामाश्रममच्युतः ॥ १४ ॥ इन्द्रोग्निरर्यमा चैव यत्र प्राक् प्रीतिमाप्नुवन् । तं देशं कारपवनाद्यमुनायां जगाम ह १५ स्नात्वा तत्रापि धर्मात्मा परां प्रीतिमवाप्य च । ऋषिभिश्चैव सिद्धैश्च सहितो वै महाबलः ॥ १६ ॥ उपविष्टः कथाः शुभ्राः शुश्राव यदुपुङ्गवः । तथा तु तिष्ठतां तेषां नारदो भगवानृषिः १७

करके जिनकी ध्वजामें ताड़का चिन्ह था ऐसे बलदेवजी तहाँसे कुछ आगे जाकर हिमालय पर चढ़ने लगे ॥ १० ॥ तहाँ उत्तम और पवित्र तीर्थका, सरस्वतीके प्रभावका और प्लक्षप्रस्रवण नामक तीर्थका दर्शन करके बलदेवजी बड़े आश्चर्यमें होगये ॥ ११ ॥ तहाँसे हलधर बलदेवजी कारपवन नामक उत्तम तीर्थमें गये और तहाँ भी उन्होंने ब्राह्मणोंको दान दिये तथा उस तीर्थके पवित्र, शीतल, निर्मल और पुण्यकारक जलमें स्नान करके देवता और पितरोंका तर्पण किया ॥ १२ ॥ १३ ॥ तहाँ एक रात्रि रहनेके अनन्तर ब्राह्मण और संन्यासियोंको साथ लेकर तहाँसे मित्रावरुणके पवित्र आश्रममें गये ॥ १४ ॥ जहाँ पहले इन्द्रने, अग्निने और अर्यमाने प्रीति पायी थी, कारपवनसे चलकर यमुनाके तटपर उस स्थानमें गये ॥ १५ ॥ धर्मात्मा और महाबली बलदेवजी, ऋषि तथा सिद्ध उस तीर्थमें स्नान करके बड़े प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥ और उस तीर्थस्थानमें बैठकर उन ऋषियोंसे उत्तम कथायें सुनने लगे, परन्तु इतनेमें ही जहाँ श्रीमान् बलवदेजी और ऋषि बैठे थे तहाँ नाचने और गानेमें प्रवीण, देवता और ब्राह्मणोंके पूजनीय,

आजगामाथ तं देशं यत्र रामो व्यवस्थितः । जटामण्डलसंवीतः स्वर्णचीरो महातपाः ॥ १८ ॥ हेमदण्डधरो राजन् कमण्डलुधरस्तथा । कच्छपीं सुखशब्दान्तां गृह्य वीणां मनोरमाम् ॥ १९ ॥ नृत्ये गीते च कुशलो देवब्राह्मणपूजितः । प्रकर्त्ता कलहानाञ्च नित्यञ्च कलहप्रियः ॥ २० ॥ तं देशमगमद्यत्र श्रीमान्रामो व्यवस्थितः । प्रत्युत्थाय तु तं सम्यक् पूजयित्वा यतव्रतम् ॥ २१ ॥ देवर्षिं पर्यपृच्छन् स यथावृत्तं कुरून् प्रति । ततोस्याकथयद्राजन्नारदः सर्वधर्मवित् ॥ २२ ॥ सर्वमेतद्यथावृत्तमतीव कुरुसंक्षयम् । ततोब्रवीद्रौहिणेयो नारदं दीनया गिरा ॥ २३ ॥ किमवस्थन्तु तत्क्षेत्रं ये च तत्राभवन्नृपाः । श्रुतमेतन्मया पूर्वं सर्वमेव तपोधन ॥ २४ ॥ विस्तरश्रवणे जातं कौतूहलमतीव मे । नारद उवाच । पूर्वमेव हतो भीष्मो द्रोणः सिन्धुपतिस्तथा ॥ २५ ॥ हतो वैकर्त्तनः कर्णः

नित्य कलह कराने वाले तथा कलह पर प्रीति रखनेवाले, जटाजूटसे ढके, सुनहरी वस्त्र पहरे, महातपस्वी नारदजी, सोनेका दण्ड कमण्डलु तथा मधुर शब्द करनेवाली कच्छपी नामकी मनोहर वीणाको लिये हुए तहाँ पर आपहुँचे ॥ १७-२० ॥ नारदजी को आतेहुए देखकर बलदेवजी उनके सामने खड़े होगये और उन व्रतधारी देवर्षिकी उत्तमप्रकारसे पूजा करके उनसे कुरुवंशी राजाओंका समाचार बूझा, सब धर्मोंको जाननेवाले नारदजीने जिसप्रकार कौरवोंका महासंहार हुआ था, वह जरा २ करके बलदेवजीको सब सुनाया, रोहिणीनन्दन बलदेवजी शोक भरी वाणीमें नारदजीसे बूझनेलगे, कि-॥ २१-२३ ॥ हे तपोधन ! उस क्षेत्रकी क्या दशा हुई है और यहाँ लड़नेको आयेहुए राजाओंकी कैसी दशा हुई है, यह सब मैंने पहले ही सुन लिया है ॥ २४ ॥ परन्तु उसको विस्तारके साथ सुननेके लिये मुझे बड़ी उत्कण्ठा होरही है, नारदजीने कहा, कि-पहले भीष्म मारेगये फिर द्रोण तथा सिन्धुराज मारेगये २५ फिर सूर्यका पुत्र कर्ण मारागया,

पुत्राश्चास्य महारथाः। भूरिश्रवा रौहिणेय मद्रराजश्च वीर्यवान् २६
एते चान्ये च वहवस्तत्र तत्र महावलाः । प्रियान् प्राणान्
परित्यज्य जयार्थं कौरवस्य वै ॥ २७ ॥ राजानो राजपुत्राश्च
समरेष्वनिवर्त्तिनः । अहतांश्च महाबाहो शृणु मे तत्र माधव ॥२८॥
धार्त्तराष्ट्रबले शेषास्त्रयः समितिमर्द्दनाः । कृपश्च कृतवर्मा च द्रोण-
पुत्रश्च वीर्यवान् ॥ २९ ॥ तेपि वै विद्रुता राम दिशो दश भया-
त्तदा । दुर्योधनो हते शल्ये मद्रतेषु कृपादिषु ॥ ३० ॥ ह्रदं द्वैपा-
यनं नाम विवेश भृशदुःखितः । शयानं धार्त्तराष्ट्रन्तु स्तम्भिते
सलिले तदा ॥ ३१ ॥ पाण्डवा सह कृष्णेन वाग्भिरुग्राभिरा-
र्दयन् । स तुद्यमानो बलवान् वाग्भी राम समन्ततः ॥ ३२ ॥
उत्थितः स ह्रदाद्वीरः प्रगृह्य महतीं गदाम् । स चाप्यु-

फिर उस कर्णके महारथी पुत्र मारेगये, हे रोहिणीनन्दन! भूरिश्रवा मारागया मद्रप्रदेशका वीर राजा शल्य मारागया।२६। ये राजे तथा कौरवोंकी विजयके लिये अपने प्यारें प्राणोंको त्यागकर और भी बहुतसे राजे रणमें जहाँ तहाँ समाप्त होगये २७ संग्राममें पीछेको पैर न देनेवाले बहुतसे राजे और राजकुमार मारेगये, हे महाबाहु माधव! अब जो नहीं मारेगये हैं उनके नाम भी मुझसे सुनिये ॥ २८ ॥ दुर्योधनकी सेनामें शत्रुसमूहका संहार करनेवाले कृपाचार्य, कृतवर्मा और पराक्रमी अश्वत्थामा ये तीन बचे हैं ॥२९॥ परन्तु हे बलरामजी!वे भी डरके मारे दशों दिशाओंमेंको भाग गये जब शल्य मारा गया और कृपाचार्य आदि भाग गए तब दुर्योधन ॥ ३० ॥ अत्यन्त दुःखी होकर द्वैपायन सरोवरमें घुसगया और मायासे सरोवरके जलको बाँधकर उसके जलमें विश्राम लेने को सो गया ॥ ३१ ॥ परन्तु तहाँ पांडव श्रीकृष्णको साथ लेकर पहुँचगये, और उग्र वाणीसे दुर्योधनको ताने मारने लगे, हे राम ! चारों ओरसे वाणियोंसे तिकतिकाया हुआ वह बली वीर दुर्योधन अपनी बड़ी भारी

पगतो गोदं भीमेन सह साम्प्रतम् ॥ ३३ ॥ भविष्यति तयोरद्य युद्धं राम सुदारुणम् । यदि कौतूहलं तेऽस्ति व्रज माधव मा चिरम् ३४ पश्य युद्धं महाघोरं शिष्ययोर्यदि मन्यसे । वैशम्पायन उवाच । नारदस्य वचः श्रुत्वा तानभ्यर्च्य द्विजर्षभान् ॥३५॥ सर्वान्विसर्जयामास ये तेनाभ्यागताः सह । गम्यतां द्वारका चेति सोऽन्वशादनुयायिनः ॥ ३६ ॥ सोऽवतीर्याचलश्रेष्ठात् प्लक्षप्रस्रवणाच्छुभात् । ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वा तीर्थफलं महत् । विप्राणां सन्निधौ श्लोकमगायदिममच्युतः ॥ ३७ ॥ सरस्वतीवाससमा कुतो रतिः सरस्वतीवाससमाः कुतो गुणाः । सरस्वतीं प्राप्य दिवं गता जनाः सदा स्मरिष्यन्ति नदीं सरस्वतीम् ॥ ३८ ॥ सरस्वती सर्वनदीषु

गदाको लेकर सरोवरमेंसे बाहर निकल आया और इस समय वह भीमसेनके साथ युद्ध करनेको तयार होगया है ॥३२॥३३॥ हे राम! आज उन दोनोंमें बड़ा दारुण युद्ध होगा, हे माधव! यदि आपको देखनेकी उत्कंठा हो तो शीघ्रही जाइये, विलम्ब न करिये ॥ ३४ ॥ यदि आपकी इच्छा होतो अपने दोनों शिष्योंका महाघोर युद्ध देखिये, वैशंपायन कहते हैं, कि-हेजनमेजय! नारदजीकी इस बातको सुनकर बलदेवजीने सब ब्राह्मणोंका पूजन किया और जो अपने साथ आये थे उन ब्राह्मणोंको विदा कर दिया तथा अपने अनुचरोंको आज्ञा दी, कि-तुम सब द्वारकाको चलेजाओ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तदनन्तर भगवान् बलरामजी हिमालय परके प्लक्षप्रस्रवण नामक पवित्र तीर्थमेंसे नीचे उतरे, तीर्थके बड़ेभारी फलको सुनकर मनमें प्रसन्न हुए और उन्होंने ब्राह्मणोंके सामने यह श्लोक गाये थे कि-॥ ३७ ॥ सरस्वती नदीके तटपर निवास करनेमें चित्तको जो आनन्द मिलता है, वह आनन्द और स्थान पर कहाँ होता है ? सरस्वतीके तट पर निवास करनेमें जो गुण है, वह गुण अन्यत्र कहाँ है ? सरस्वतीको पाकर मनुष्य

पुण्या सरस्वती लोकसुखावहा सदा । सरस्वतीं प्राप्य जनाः सुदुष्कृतं सदा न शोचन्ति परत्र चेह च ॥ ३९ ॥ ततो मुहुर्मुहुः प्रीत्या प्रेक्षमाणः सरस्वतीम् । हयैर्युक्तं रथं शुभ्रमातिष्ठत परन्तपः ॥ ४० ॥ स शीघ्रगामिना तेन रथेन यदुपुङ्गवः । दिदृक्षुरभिसंप्राप्तः शिष्ययुद्धमुपस्थितम् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

वैशम्पायन उवाच । एवं तदभवद्युद्धं तुमुलं जनमेजय । यत्र दुःखान्वितो राजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । रामं सन्निहितं दृष्ट्वा गदायुद्ध उपस्थिते । मम पुत्रः कथं भीमं प्रत्ययुध्यत सञ्जय ॥२॥ सञ्जय उवाच । रामसान्निध्यमासाद्य

स्वर्गमें गये हैं और वे सरस्वती नदीका सदा स्मरण करते हैं ॥ ३८ ॥ सब नदियोंमें सरस्वती नदी पवित्र है, सरस्वती सदा लोकोंका कल्याण करनेवाली है, सरस्वती नदीको पाकर मनुष्य अपने पापके लिये इस लोकमें या परलोकमें कभी भी शोक नहीं करते हैं ॥ ३९ ॥ इसप्रकार सरस्वती नदीके माहात्म्यको गाकर परन्तप बलदेवजी प्रीतिसे बारम्बार सरस्वती नदी की ओरको देखतेहुए घोड़ोंसे जुतेहुए श्वेत रथपर बैठगये ।४०। शिष्योंका जो युद्ध होनेको था उसको देखनेकी इच्छासे यदुवंश में श्रेष्ठ बलदेवजी उस शीघ्र चलनेवाले रथमें बैठकर युद्ध होने के स्थान पर जापहुँचे ॥ ४१ ॥ चौअनवाँ अध्याय समाप्त ५४

वैशम्पायनने कहा, कि—हे राजा जनमेजय ! वह गदायुद्ध ऐसा घोर हुआ था, कि–उसके वृत्तान्तको सुनने पर राजा धृतराष्ट्रने दुःखी होकर यह बात कही थी ॥ १ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय ! गदायुद्धके समय बलदेवजीको आया देखकर मेरे पुत्रने भीमसेनके साथ कैसे युद्ध किया ? ॥ २ ॥ सञ्जयने

पुत्रो दुर्योधनस्तव । युद्धकामो महाबाहुः समहृष्यत वीर्यवान् ॥३॥ दृष्ट्वा लाङ्गलिनं राजा प्रत्युत्थाय च भारत । प्रीत्या परमया युक्तः समभ्यर्च्य यथाविधि ॥ ४ ॥ आसनञ्च ददौ तस्मै पर्यपृच्छदनामयम् । ततो युधिष्ठिरं रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ५ ॥ मधुरं धर्मसंयुक्तं शूराणां हितमेव च । मया श्रुतं कथयतामृषीणां राजसत्तम ॥ ६ ॥ कुरुक्षेत्रं परं पुण्यं पावनं स्वर्ग्यमेव च । दैवतैश्च पिनिषेवितं ब्राह्मणैश्च महात्मभिः ॥ ७ ॥ तत्र वै योत्स्यमाना ये देहं त्यक्ष्यन्ति मानवाः । तेषां स्वर्गे ध्रुवो वासः शक्रेण सह मारिष ८ तस्मात् समन्तपञ्चकमितो यामः द्रुतं नृप । प्रथितोत्तरवेदी सा देवलोके प्रजापतेः ॥९॥ तस्मिन्महापुण्यतमे त्रैलोक्यस्य सनातने ।

उत्तर दिया, कि—युद्धकी इच्छावाला तुम्हारा पुत्र महाबाहु वीर दुर्योधन, बलदेवजीको आयाहुआ देखकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ ॥ ३ ॥ हे भारत ! हलधारी बलदेवजीको देखकर राजा युधिष्ठिर उठकर खड़े होगये, परम प्रीतिके साथ विधिपूर्वक उनकी पूजाकी ॥४॥ और उनको आसन देकर कुशलसमाचार बूझने लगे, तदनन्तर बलरामजीने युधिष्ठिरसे यह बात कही ॥ ५ ॥ बलदेवजीकी वह बात मीठी, धर्मसे भरी थी, हेराजन्! मैंने उपदेश देनेवाले ऋषियोंके मुखसे ऐसा सुना है, कि—कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र शूरोंका हित करने वाला, परमपवित्र और स्वर्ग देनेवाला है, देवता ऋषि और महात्मा ब्राह्मणोंका सेवन किया हुआ है ॥ ६ ॥ ७ ॥ हेराजन्! जो मनुष्य उस क्षेत्रमें युद्ध करते हुए मरेंगे अवश्य ही उनका स्वर्गमें इन्द्रके साथ निवास होगा ॥८॥ इसलिये हे राजन्! हम यहाँसे समन्तपञ्चक नामक क्षेत्रमें शीघ्रही चलें, यह स्थान देवलोकमें प्रजापतिकी उत्तरवेदी कहलाता है ॥ ९ ॥ उस महापुण्यवाले और तीनों लोकमें सनातन तीर्थरूप माने जाने वाले कुरुक्षेत्रमें जो युद्ध करतेमें मरेंगे उनको अव-

संग्रामे निधनं प्राप्य ध्रुवं स्वर्गं भविष्यति ॥१०॥ तथेत्युक्त्वा महा-
राज कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । समन्तपञ्चकं वीरः प्रायादभिमुखः
प्रभुः ॥ ११ ॥ ततो दुर्योधनो राजा प्रगृह्य महतीं गदाम् । पद्भ्या-
ममर्षी द्युतिमानगच्छत् पाण्डवैः सह ॥ १२ ॥ तथा यान्तं गदा-
हस्तं वर्मणा चापि दंशितम् । अन्तरिक्षगता देवाः साधु साध्वि-
त्यपूजयन् ॥ १३ ॥ वार्त्तिकाश्चारणा ये तु दृष्ट्वा ते हर्षमागताः ।
स पाण्डवैः परिवृतः कुरुराजस्तवात्मजः ॥ १४ ॥ मत्तस्येव गजे-
न्द्रस्य गतिमास्थाय सोव्रजत् । ततः शंखनिनादेन भेरीणाञ्च
महास्वनैः ॥ १५ ॥ सिंहनादैश्च शूराणां दिशः सर्वाः प्रपूरिताः ।
ततस्तु ते कुरुक्षेत्रं प्राप्ता नरवरोत्तमाः ॥ १६ ॥ प्रतीच्यभिमुखं
देशं यथोद्दिष्टं सुतेन ते । दक्षिणेन सरस्वत्याश्चापरं तीर्थमुत्तमम् १७

श्यही स्वर्ग मिलेगा ॥ १० ॥ कुन्तीनन्दन वीर राजा युधि-
ष्ठिरने, अच्छा ऐसा ही हो, यह कह कर बलदेवजीकी बात
मानली और समन्तपञ्चक तीर्थकी ओरको चलदिये ॥ ११ ॥
असहनशील. कान्तिमान् राजा दुर्योधन भी हाथमें बड़ी भारी
गदा लेकर पाण्डवोंके साथ पैदलही चलदिया ॥ १२ ॥ उस
समय कवच पहरे हाथमें गदा लेकर आते हुए दुर्योधनकी,
अन्तरिक्षचारी देवताओंने 'धन्य है धन्य है' ऐसा कहकर प्रशंसा
की ॥ १३ ॥ वायुके साथ विचरनेवाले आकाशचारी चारण
(सिद्ध) भी दुर्योधनको देखकर प्रसन्न होगये, वह तुम्हारा
पुत्र कुरुराज दुर्योधन भी पाण्डवोंसे घिरकर ॥ १४ ॥ मतवाले
हाथीकीसी चालसे चलरहा था, तदनन्तर शंखध्वनिसे और
भेरियोंके बड़ेभारी शब्दोंसे तथा शूरोंके शंखनादोंसे सब दिशायें
भरगयीं, तदनन्तर वे सब श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारे पुत्रके साथ कुरुक्षेत्र
में पहुँचनेके लिये पश्चिम दिशाकी ओरको चल दिये और सर-
स्वती नदीके दक्षिण तटपर उत्तमगति देनेवाले एक उत्तम तीर्थ-

तस्मिन् देशे त्वनिरिणे ते तु युद्धमरोचयन् । ततो भीमो महा-
कोटीं गदां गृह्याथ वर्मभृत् ॥ १८ ॥ बिभ्रद्रूपं महाराज सदृशं हि
गरुत्मतः । अवबद्धशिरस्त्राणः संख्ये काञ्चनवर्मभृत् ॥ १९ ॥
रराज राजन् पुत्रस्ते काञ्चनः शैलराडिव । वर्मभ्यां संयतौ वीरौ
भीमदुर्योधनावुभौ ॥ २० ॥ संयुगे च प्रकाशेते संरब्धाविव
कुञ्जरौ । रणमण्डलमध्यस्थौ भ्रातरौ तौ नरर्षभौ ॥ २१ ॥ अशो-
भेतां महाराज चन्द्रसूर्याविवोदितौ । तावन्योन्यं निरीक्षेतां क्रुद्धा-
विव महाद्विपौ ॥ २२ ॥ दहन्तौ लोचनै राजन् परस्परवधैषिणौ।
संप्रहृष्टमना राजन् गदामादाय कौरवः ॥ २३ ॥ सृक्किणी संलि-
हन् राजन् क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन् । ततो दुर्योधनो राजन् गदामा-

---

स्थानमें आपहुँचे, यह स्थान रेतीसहित वा दयालुतारहित था
उसको युद्धस्थल बनानेके लिये सबने अच्छा माना था, उस समय
तहाँ भीमसेन कवच पहनकर और बडी नोकवाली गदा लेकर
खडा होगया॥१५-१८॥हे महाराज ! वह उस समय गरुड़केसा,
रूप धारण किये हुए था और तुम्हारा पुत्र रणमें शिरपर शिर-
स्त्राण (टोप) धारण किये हुए था तथा सोनेका कवच पहरेहुए
था ॥ १९ ॥ इसकारण हे राजन् ! वह सुवर्णका मेरु पर्वतसा
शोभा पारहा था, भीम और दुर्योधन दोनों वीर कवच पहर कर
तयार होगये ॥ २० ॥ मनुष्योंमें श्रेष्ठ वे दोनों भ्राता रणमण्डल
के मध्यमें आकर क्रोधमें भरेहुए दो हाथीसे मालूम होते थे २१
हे महाराज! वे दोनों उदित हुए चन्द्रसूर्यसे मालूम होते थे और
एक दूसरेकी ओरको क्रोधमें भरेहुए गजराजोंकी समान देख
रहे थे ॥ २२ ॥ हेराजन्! परस्परका नाश करनेकी इच्छासे एक
दूसरेको नेत्रोंसे मानो भस्म किये डालते थे । हेराजन् ! मनमें
प्रसन्न होता हुआ दुर्योधन गदा लेकर खड़ा होगया ॥ २३ ॥
हेराजन्! उस समय दुर्योधनके नेत्र क्रोधके कारण लाल२ होरहे थे

दाय वीर्यवान् ॥ २४ ॥ भीमसेनमभिप्रेक्ष्य गजो गजमिवाह्वयत् । अद्रिसारमयीं भीमस्तथैवादाय वीर्यवान् ॥ २५ ॥ आह्वयामास नृपतिं सिंहं सिंहो यथा वने । तावुद्यतगदापाणी दुर्योधनवृकोदरौ २६ संयुगे प्रचकाशेते गिरी सशिराविव । तावुभौ समतिक्रुद्धावुभौ भीमपराक्रमौ ॥ २७ ॥ उभौ शिष्यौ गदायुद्धे रौहिणेयस्य धीमतः । उभौ सदृशकर्माणौ मयवासवयोरिव ॥ २८ ॥ तथा सदृशकर्माणौ वरुणस्य महाबलौ । वासुदेवस्य रामस्य तथा वैश्रवणस्य च २९ सदृशौ तौ महाराज मधुकैटभयोर्युधि । उभौ सदृशकर्माणौ तथा सुन्दोपसुन्दयोः ॥ ३० ॥ रामरावणयोश्चैव वालिसुग्रीवयोस्तथा । तथैव कालस्य समौ मृत्योश्चैव परन्तपौ ॥ ३१ ॥ अन्योन्यमभि-

और वह लम्बे२ स्वास लेता हुआ अपने दोनों गलफुओंको चाट रहा था, हेराजन्! फिर वीर दुर्योधनने अपनी गदा सम्हाली २४ और भीमसेनकी ओरको देखकर जैसे हाथी हाथीका आमंत्रण करता हो तैसेही भीमसेनको पुकारने लगा, तब तो वीर भीमसेनने भी तिसप्रकार ही पर्वतकी समान दृढ गदाको तान लिया ॥२५॥ जैसे वनमें सिंहको सिंह पुकारता हो, ऐसेही हाथमें गदाको ताने हुए दुर्योधन और भीमसेन एक दूसरेको पुकारने लगे ॥ २६ ॥ वे दोनों ही बड़े क्रोधमें भरेहुए थे, दोनोंही भयङ्कर पराक्रमी थे, और रणभूमिमें शिखरोंवाले दो पहाड़ोंकी समान शोभा पारहे थे ॥ २७ ॥ दोनों गदायुद्धमें बुद्धिमान् बलदेवजीके शिष्य थे, दोनोंही मय दानव और इन्द्रकी समान रणचातुरी दिखानेवाले थे ॥२८॥ वे दोनों महाबली थे और वरुण, कृष्ण, राम तथा कुबेरकी समान पराक्रम करनेवाले थे ॥ २९ ॥ हे महाराज! वे दोनों रणमें मधुकैटभकी समान थे तथा दोनों ही सुन्द और उपसुन्दकी समान पराक्रमी थे ॥ ३० ॥ वे दोनों शत्रुओंको त्रास देनेवाले तथा राम रावणकी समान, वालि सुग्रीवकी समान कालकी समान और मृत्युकी समान थे ॥ ३१ ॥ शरद् ऋतुमें

धावन्तौ मत्ताविव महाद्विपौ । वासितासङ्गमे दृप्तौ शरदीव मदोत्कटौ ॥ ३२ ॥ उभौ क्रोधविषं दीप्तं वमन्ताबुरगाविव । अन्योन्यमभिसंरब्धौ प्रेक्षमाणावरिन्दमौ ॥ ३३ ॥ उभौ भरतशार्दूलौ विक्रमेण समन्वितौ । सिंहाविव दुराधर्षौ गदायुद्धे विशारदौ ३४ नखदंष्ट्रायुधौ वीरौ व्याघ्राविव दुरुत्सहौ । प्रजासंहरणे क्षुब्धौ समुद्राविव दुस्तरौ ॥ ३५ ॥ लोहितांगाविव क्रुद्धौ प्रतपंतौ महारथौ । पूर्वपश्चिमजौ मेघौ प्रेक्षमाणावरिन्दमौ ॥ ३६ ॥ गर्जमानौ सुविषमं क्षरन्तौ प्रावृषीव ह । रश्मियुक्तौ महात्मानौ दीप्तिमन्तौ महाबलौ ॥ ३७ ॥ ददृशाते कुरुश्रेष्ठौ कालसूर्याविवोदितौ । व्याघ्राविव सुसंरब्धौ गर्जन्ताविव तोयदौ ॥ ३८ ॥ जहृषाते

मदसे उत्कट हुए और गर्वमें भरेहुए दो बड़े२ हाथी जैसे एक हथिनीके साथ समागम करनेके लिये एक दूसरेके ऊपरको दौड़ते हैं, तैसेही भीम और दुर्योधन भी एक दूसरेके ऊपरको दौड़ रहे थे ॥ ३२ ॥ शत्रुका दमन करनेवाले दोनों योधा, सर्पकी समान प्रदीप्त हुए क्रोधरूपी विषको वमन कररहे थे, क्रोधमें भरे हुए एक दूसरेके ऊपर दृष्टि डाल रहे थे ॥ ३३ ॥ दोनों भरतवंशके सिंहसमान पराक्रमी, दुराधर्ष और गदायुद्धमें प्रवीण थे ॥ ३४ ॥ वे दोनों वीर नख और डाढ़रूप आयुधवाले दो व्याघ्रोंकी समान दुःसह और प्रजाका संहार करनेके लिये उमड़ेहुए दो समुद्रोंकी समान दुस्तर थे ॥ ३५ ॥ वे दोनों शत्रुओं का दमन करने वाले महारथी क्रोधमें भरेहुए दो मङ्गल ग्रहोंकी समान दमक रहे थे, पूर्व और पश्चिमके दो मेघोंकी समान एक दूसरेको देख रहे थे ॥ ३६ ॥ और अत्यन्त गर्जना करके वर्षा ऋतुमें जैसे जलको बरसावें तैसे ही वे दोनों भी मदको बरसा रहे थे, वे दोनों महाबली महात्मा उदित हुए किरणों वाले प्रलयकालके दो सूर्योंकी समान दिप रहे थे, वे व्याघ्रोंकी समान

महाबाहू सिंहकेसरिणाविव । गजाविव सुसंरब्धौ ज्वलिताविव पावकौ ॥ ३९ ॥ ददृशाते महात्मानौ सशृङ्गाविव पर्वतौ । रोषात् प्रस्फुरमाणोष्ठौ निरीक्षन्तौ परस्परम् ॥ ४० ॥ तौ समेतौ महात्मानौ गदाहस्तौ नरोत्तमौ । उभौ परमसंहृष्टावुभौ परमसम्मतौ ४१ सदश्वाविव ह्रेषन्तौ बृहन्ताविव कुञ्जरौ । वृषभाविव गर्जन्तौ दुर्योधनवृकोदरौ ॥ ४२ ॥ दैत्याविव बलोन्मत्तौ रेजतुस्तौ नरोत्तमौ । ततो दुर्योधनो राजन्निदमाह युधिष्ठिरम् ॥ ४३ ॥ भ्रातृभिः सहितञ्चैव कृष्णेन च महात्मना । रामेणामितवीर्येण वाक्यं शौटीर्यसम्मतम् ॥ ४४ ॥ कैकेयैः सृञ्जयैर्दृप्तं पञ्चालैश्च महात्मभिः । इदं व्यवस्थितं युद्धं मम भीमस्य चोभयोः ॥ ४५ ॥ उपोपविष्टाः पश्यध्वं सहैभिर्नृपपुङ्गवैः । श्रुत्वा दुर्योधनवचः प्रत्यपद्यन्त

महाक्रोधी, मेघोंकी समान गरजने वाले, दो हाथियोंकी समान बडे ही क्रोधके आवेशमें आये हुए और अग्निकी समान जाज्वल्यमान थे, केसरी और सिंहकी समान वे दोनों महाबाहु भीम और दुर्योधन युद्ध करनेके लिये हर्षमें भरे हुए थे ॥ ३७—३९ ॥ वे दोनों महात्मा शिखरवाले पर्वतकी समान दीखते थे, वे क्रोधके कारण फड़कते हुए होठोंके साथ एक दूसरेकी ओरको देख रहे थे ॥ ४० ॥ वे दोनों महात्मा हाथमें गदा लेकर युद्धके लिये खड़े हुए थे, दोनों परम हर्षमें भरे हुए थे और दोनों लोकोंके मान्य थे ॥ ४१ ॥ दुर्योधन और भीमसेन श्रेष्ठ घोड़ोंकी समान हिनहिना रहे थे हाथियोंकी समान चिंघार रहे थे और बैलोंकी समान गरज रहे थे ॥ ४२ ॥ बलमें बढे हुए वे दोनों महापुरुष, बलसे उन्मत्त हुए दो दैत्योंकी समान शोभा पारहे थे, हे राजन! उस समय दुर्योधनने भाइयोंके साथ खड़े हुए युधिष्ठिर, महात्मा कृष्ण, महापराक्रमी बलराम, केकय, घमण्डी सृञ्जय और महात्मा पञ्चालों से गर्वके साथ कहा, कि—मेरा भीमसेनके साथ जो युद्ध होना ठहरा है, उसको आप सब बडे२ राजाओंके साथ समीपमें ही बैठ कर

तत्तथा ॥ ४६ ॥ ततः समुपविष्टं तत् सुमहद्राजमण्डलम् । विराजमानं ददृशे दिवीवादित्यमण्डलम् ॥ ४७ ॥ तेषां मध्ये महाबाहुः श्रीमान् केशवपूर्वजः । उपविष्टो महाराज पूज्यमानः समन्ततः ४८ शुशुभे राजमध्यस्थो नीलवासाः सितप्रभः । नक्षत्रैरिव सम्पूर्णो वृतो निशि निशाकरः ॥ ४९ ॥ तौ तथा तु महाराज गदाहस्तौ सुदुःसहौ । अन्योन्यं वाग्भिरुग्राभिस्तक्षमाणौ व्यवस्थितौ ॥५०॥ अप्रियाणि ततोऽन्योन्यमुक्त्वा तौ कुरुसत्तमौ । उदीक्षन्तौ स्थितौ वीरौ वृत्रशक्रौ यथाहवे ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्व्वणि गदापर्वणि गदायुद्धोपक्रमे पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो वाग्युद्धमभवत्तुमुलं जनमेजय । यत्र

देखिये, दुर्योधनकी इस बातको सबने बहुत अच्छा कह कर स्वीकार कर लिया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर देखनेको आया हुआ बड़ा भारी राजमण्डल तहाँ बैठगया, वह आकाशमेंके आदित्यमण्डलसा दिपने लगा ॥ ४७ ॥ उन सब राजाओंके मध्यमें श्रीमान् महाबाहु श्रीकृष्णके बडे भाई बलदेवजी बैठे, हे महाराज! चारों ओरसे उनका आदर होने लगा ॥ ४८ ॥ बलदेवजी गौर शरीर पर श्याम रङ्गके वस्त्र पहरे हुए थे, इसलिये रात्रिमें तारागणसे घिरे हुए चन्द्रमासे मालूम होते थे ॥ ४९ ॥ हे महाराज! वे दोनों महादुःसह योधा हाथमें गदा लेकर तीखी वाणीसे एक दूसरेके ऊपर प्रहार कररहे थे ॥ ५० ॥ फिर एक दूसरेको अप्रिय वचन कहते हुए दोनों कुरुवंशी वीर वृत्रासुर और इन्द्रकी समान युद्धमें एक दूसरेके सामनेको देखने लगे ॥ ५१ ॥ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥　　॥ छ ॥　　॥ छ ॥　　॥ छ ॥

वैशम्पायनने कहा, कि—हे जनमेजय! तदनन्तर भीमसेन और दुर्योधनमें घोर वाक्युद्ध होने लगा, जिसके लिये दुःखित होकर

दुःखान्वितो राजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥ धिगस्तु खलु मानुष्यं यस्य निष्ठेयमीदृशी । एकादशचमूभर्त्ता यत्र पुत्रो ममानघ ॥ २ ॥ आज्ञाप्य सर्वान्नृपतीन् भुक्त्वा चेमां वसुन्धराम् । गदामादाय वेगेन पदातिः प्रस्थितो रणे ॥ ३ ॥ भूत्वा हि जगतो नाथो ह्यनाथ इव मे सुतः । गदामुद्यम्य यो याति किमन्यद्भागधेयतः ॥ ४ ॥ अहो दुःखं महत् प्राप्तं पुत्रेण मम सञ्जय । एवमुक्त्वा स दुःखार्त्तो विरराम जनाधिपः ॥ ५॥ सञ्जय उवाच । स मेघनिनदो हर्षान्नर्दन्निव चगोवृषः।आजुहाव तदा पार्थं युद्धाय युधि वीर्यवान् ॥ ६ ॥ भीममाह्वयमाने तु कुरुराजे महात्मनि । प्रादुरासन् सुघोराणि रूपाणि विविधान्युत ॥ ७ ॥ ववुर्वाताः सुनि-

राजा धृतराष्ट्रने यह वात कही थी, कि-॥१॥ मनुष्यके जन्मको धिक्कार है, कि-जिसकी परिणाममें ऐसी दशा होती है, हे निर्दोष सञ्जय! मेरा पुत्र ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका पालन करता था, सब राजाओं पर आज्ञा चलाता था और इस वसुन्धराको भोगता था, परन्तु आज गदाको लेकर पैदल ही रणमेंको दौड़ा चला जारहा है ॥ २ ॥ ३ ॥ मेरा पुत्र एक दिन पृथिवीका नाथ था, वह आज अनाथकी समान हो गदा उठाकर चले, इसको प्रारब्धके सिवाय और क्या कहा जाय? ॥ ४ ॥ ओः!सञ्जय! मेरे पुत्रने बड़ा दुःख पाया है ! इतना कहकर दुःखसे व्याकुल हुआ राजा धृतराष्ट्र चुप हो रहा ॥ ५ ॥ तब सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र! मेघकी समान गर्जना करनेवाले पराक्रमी दुर्योधनने हर्षमें भरकर साँडकी समान बड़ी गर्जना की और रणभूमिमें युद्ध करनेके लिये भीमसेनको पुकारा, ॥ ६ ॥ जिस समय महात्मा कुरुराजने भीमसेनको पुकारा, उस समय अनेकों प्रकारके भयानक उत्पात होने लगे ॥ ७ ॥ वज्रपातके शब्दके साथ आँधी चलने लगी, धूलिकी वर्षा होने लगी, सब दिशायें

र्षिताः पांशुवर्षं पपात च । बभूवुश्च दिशः सर्वास्तिमिरेण समावृताः ॥ ८ ॥ महास्वना सुनिर्घातास्तुमुला लोमहर्षणा । पेतुस्तथोल्काः शतशः स्फोटयन्त्यो नभस्तलात् ॥ ९ ॥ राहुश्चाग्रसदादित्यमपर्वणि विशाम्पते । चकम्पे च महाकम्पं पृथिवी सवनद्रुमा ॥ १० ॥ दीप्ताश्च वाताः प्रववुर्नीचैः शर्करवर्षिणः । गिरीणां शिखराण्येव न्यपतन्त महीतले ॥ ११ ॥ मृगा बहुविधाकाराः संपतन्ति दिशो दश । दीप्ताः शिवाश्चाप्यनदन् घोररूपाः सुदारुणाः ॥ १२ ॥ निर्घाताश्च महाघोरा बभूवुर्लोमहर्षणाः । दीप्तायां दिशि राजेन्द्र मृगाश्चाशुभवेदिनः ॥ १३ ॥ उदपानगताश्चापो व्यवर्द्धन्त समन्ततः । अशरीरा महानादाः श्रूयन्ते स्म तदा नृप १४ एवमादीनि दृष्ट्वाथ निमित्तानि वृकोदरः । उवाच भ्रातरं ज्येष्ठं

अन्धकारसे ढकगयीं ॥ ८ ॥ बड़ी भारी गर्जना करते हुए महा-भयानक रोमाञ्च खडे करनेवाले सैकड़ों उल्का आकाश-तलको फोड़कर पृथिवी पर गिरने लगे ॥ ९ ॥ हे राजन् ! अमावास्याके विनाही राहू सूर्यको ग्रसने लगा, वनोंके वृक्षोंके साथ पृथिवी बड़ी कपकपीके साथ डगमगाने लगी ॥ १० ॥ प्रकाशमय पवन रेतेकी वर्षा करते हुए चलने लगे, पर्वतों के शिखर टूटकर भूतल पर गिरने लगे ॥ ११ ॥ अनेकों प्रकारके पशु गिरते पड़ते सब दिशाओंमेंको भागने लगे, महा-भयानक गीदड़ियें प्रकाशमें आकर डरावना शब्द करने लगीं ॥ १२ ॥ रोमाञ्च खडे करनेवाले, महाघोर वज्रपातके शब्द होने लगे, और हे राजन! सूर्य-मण्डलसे दीप्त हुई दिशामेंको मृगोंकी टोली अशुभकी सूचना करती हुई दीखने लगी ॥ १३ ॥ कुओंके भीतर के जल चारों ओरसे उफनर कर ऊपरको आने लगे, हेराजन् ! उस समय शरीरोंके विनाही बडे २ शब्द सुनायी आने लगे १४ ऐसे२ कुशकुनोंको देखकर भीमसेनने अपने बडे भाई धर्मराज यु-

धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ १५ ॥ नैष शक्तो रणे जेतुं मन्दात्मा मां सुयोधनः । अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि निगूढं हृदये चिरम् ॥ १६ ॥ सुयोधने कौरवेन्द्रे खाण्डवे पावको यथा । शल्यमद्योद्धरिष्यामि तव पाण्डव हृच्छयम् ॥ १७ ॥ निहत्य गदया पापमिमं कुरुकुलाधमम् । अद्य कीर्त्तिमयीं मालां प्रतिमोक्ष्याम्यहं त्वयि ॥ १८ ॥ हत्वेमं पापकर्माणं गदया रणमूर्द्धनि । अद्यास्य शतधा देहं भिनद्मि गदयानया ॥ १९ ॥ नायं प्रवेष्टा नगरं पुनर्वारणसाह्वयम् । सर्पोत्सर्गस्य शयने विषदानस्य भोजने ॥ २० ॥ प्रमाणकोट्यां पातस्य दाहस्य जतुवेश्मनि । सभायामवहासस्य सर्वस्वहरणस्य च ॥ २१ ॥ वर्षमज्ञातवासस्य वनवासस्य चानघ । अद्यान्तमेषां दुःखानां गन्ताहं भरतर्षभ ॥ २२ ॥ एकान्हा विनिहत्यैनं भवि-

धिष्ठिरसे कहा, कि—॥ १५ ॥ यह मन्दमति दुर्योधन मुझे रणमें नहीं जीत सकता, आजमें चिरकालसे हृदयमें भरेहुए अपने क्रोध को, जैसे खाण्डव-वनमें अर्जुनने अग्निके ऊपर अपना क्रोध डाला था, तैसेही कौरवोंके राजा दुर्योधनके ऊपर डालूँगा, हे युधिष्ठिर! आपके हृदयमें जो काँटा चुभाहुआ है, उसको आज बाहर निकालकर फेंक दूंगा ॥ १६ ॥ १७ ॥ मैं आज ही इस कुरुकुलमें अधम पापीको गदासे मारकर आपके कण्ठमें कीर्त्तिमयी माला पहराऊँगा ॥ १८ ॥ और आजही रणके मुहाने पर इस पापकर्म करनेवालेको गदासे मारकर इसके शरीरके सैंकड़ों टुकड़े करडालूँगा ॥ १९ ॥ कि—जिससे यह पापी अब फिर हस्तिनापुरमें नहीं घुस सकेगा, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ निष्पाप राजन्! इस दुष्टने मेरी शय्या पर साँप छोड़े थे भोजनमें विष दिया था, प्रमाणकोटी में इसने हमें जलमें फेंक दिया था, लाखाभवनमें जला दिया था, सभामें हमारी हँसी की थी हमारा सर्वस्व छीन लिया था बारहवर्षका वनवास और एक वर्षका अज्ञातवास दिया था, हे राजन्! आज मैं सब दुःखोंके पार होजाऊँगा २०-२२ और

ज्याम्यात्मनोनृणः । अद्यायुर्धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्मतेरकृतात्मनः ॥२३॥ समाप्तं भरतश्रेष्ठ मातापित्रोश्च दर्शनम् । अद्य सौख्यन्तु राजेन्द्र कुरुराजस्य दुर्मतेः ॥ २४ ॥ समाप्तञ्च महाराज नारीणां दर्शनं पुनः । अद्यायं कुरुराजस्य शान्तनोः कुलदूषणः ॥ २५ ॥ प्राणान् श्रियञ्च राज्यञ्च त्यक्त्वा शेष्यति भूतले । राजा च धृतराष्ट्रोऽद्य श्रुत्वा पुत्रं निपातितम् ॥ २६ ॥ स्मरिष्यत्यशुभं कर्म यत्तच्छकुनिबुद्धिजम् । इत्युक्त्वा राजशार्दूल गदामादाय वीर्यवान् ॥२७॥ अवातिष्ठत युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन् । तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ॥ २८ ॥ भीमसेनः पुनः क्रुद्धो दुर्योधनमुवाच ह । राज्ञश्च धृतराष्ट्रस्य तथा त्वमपि चात्मनः ॥ २९ ॥ स्मर तद्

इस एक दिनमें ही मैं दुर्योधनको मारकर अपने आत्मासे उऋण होजाऊँगा, हे भरतसत्तम! आज, अपने आपेको वशमें न रखनेवाले दुर्मति दुर्योधनका परमायु पूरा होगया, अब इसको अपने माता पिताका दर्शन भी नहीं मिलेगा, हे राजेन्द्र! आज दुर्मति कुरुराज का सुख भी समाप्त होगया और हे महाराज! अब इसका अपनी स्त्रियोंके दर्शनका सुख भी समाप्त होगया, कुरुराज शान्तनुका कुलकलङ्क पुत्र दुर्योधन आज प्राण, लक्ष्मी और राज्यको त्याग-कर भूमि पर सोवेगा, आज राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रके मरणको सुनकर इसने शकुनिकी संमतिके अनुसार चलनेके कारणसे जो अपना अशुभ कर लिया है उसको याद करेगा, हे राजन्! ऐसा कहकर पराक्रमी भीमने हाथमें गदा ली और जैसे इन्द्रने वृत्रासुर को युद्ध करनेके लिये बुलाया था तैसे ही युद्ध करनेके लिये पुकारता हुआ उसके सामने युद्ध करनेके लिये खड़ा होगया, दुर्योधन भी हाथमें गदा लेकर कैलासके शिखरकी समान, सामने खड़ा होगया, उसको देखकर ॥ २३-२८ ॥ भीमसेनको फिर क्रोध चढ़ आया और उसने दुर्योधनसे कहा, कि-अरे दुष्टबुद्धि-

दुष्कृतं कर्म यद् वृत्तं वारणावते । द्रौपदी च परिक्लिष्टा सभामध्ये रजस्वला ॥ ३० ॥ द्यूते च वञ्चितो राजा यत्त्वया सौबलेन च । वने दुःखञ्च यत् प्राप्तमस्माभिस्त्वत्कृतं महत् ॥ ३१ ॥ विराटनगरे चैव योन्यन्तरगतैरिव । तत् सर्वं पातयाम्यद्य दिष्ट्या दृष्टोसि दुर्मते ॥ ३२ ॥ त्वत्कृतेसौ हतः शेते शरतल्पे प्रतापवान् । गांगेयो रथिनां श्रेष्ठो निहतो याज्ञसेनिना ॥ ३३ ॥ हतो द्रोणश्च कर्णश्च तथा शल्यः प्रतापवान् । वैराग्नेरादिकर्त्तासौ शकुनिः सौबलो हतः ॥ ३४ ॥ प्रातिकामी तथा पापो द्रौपद्याः क्लेशकृद्धतः । भ्रातरस्ते हताः सर्वे शूरा विक्रांतयोधिनः ॥ ३५ ॥ एते चान्ये च बहवो निहतास्त्वत्कृते नृपाः । त्वामद्य निहनिष्यामि

वाले ! वारणावत नगरमें राजा धृतराष्ट्रने तथा स्वयं तूने जो अन्यायके काम किये हैं, उन कर्मोंको तू आज याद कर; बीच राजसभामें तूने ही रजस्वला द्रौपदीको दुःख दियाथा। २९—३० तूने ही शकुनिके द्वारा राजा युधिष्ठिरको जुएमें कपट करके धोखा दिया था और हमने वनमें भी तेरे दिये हुए बड़े भारी दुःखको भोगा था ॥ ३१ ॥ और विराटनगरमें भी हमने मानो दूसरा जन्म ही धारण करलिया हो इसप्रकार छुपे वेशमें रहकर दुःख सहा था, उस सब दुःखको मैं आज निकाल कर फेंकदूँगा अरे दुष्टबुद्धि ! बड़े ही आनन्दकी बात है कि—आज तू मेरी दृष्टि के सामने पड़गया है ॥ ३२ ॥ गङ्गाके पुत्र महाप्रतापी और महारथी भीष्मपितामह. द्रुपदके पुत्र शिखण्डीके हाथसे मारे जाकर शरशय्या पर पड़े हुए हैं. इसका कारण भी तू ही है ३३ तथा प्रतापी द्रोणाचार्य, कर्ण और शल्य भी जो रणमें मारेगये, इसका कारण भी तू ही है, वैररूप अग्निको सबसे पहले सुलगाने वाला सुबलका पुत्र शकुनि मारागया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर द्रौपदीको क्लेश देनेवाला पापी प्रातिकामी मारागया, पराक्रमके साथ लड़नेवाले और शूर तेरे सब भ्राता मारेगये ॥ ३५ ॥ ये

गदया नात्र संशयः ॥ ३६ ॥ इत्येवमुक्तं राजेन्द्र भाषमाणं वृकोदरम् । उवाच वीतभी राजन् पुत्रस्ते सत्यविक्रमः ॥ ३७ ॥ किं कत्थितेन बहुना युध्यस्व त्वं वृकोदर । अद्य तेऽहं विनेष्यामि युद्धश्रद्धां कुलाधम ॥ ३८ ॥ नैव दुर्योधनः क्षुद्र केनचित्त्वद्विधेन वै । शक्यस्त्रासयितुं वाचा यथान्यः प्राकृतो नरः ॥ ३९ ॥ चिरकालेप्सितं दिष्ट्या हृदयस्थमिदं मम। त्वया सह गदायुद्धं त्रिदशैरुपपादितम् ॥ ४० ॥ किं वाचा बहुनोक्तेन कत्थितेन च दुर्मते । वाणीं सम्पाद्यतामेषा कर्मणा मा चिरं कृथाः ॥ ४१ ॥ तस्य तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्व एवाभ्यपूजयन् । राजानः सोमकाश्चैव ये तत्रासन् समागताः ॥ ४२ ॥ ततः सम्पूजितः सर्वैः संप्रहृष्टतनू-

---

तथा और भी बहुतसे राजे तेरे कारणसे ही मारे गये हैं, इस लिये आज मैं तुझे गदासे मारडालूँगा, इसमें सन्देह नहीं समझना ॥ ३६ ॥ हे राजेन्द्र ! जब भीमसेनने इसप्रकार बड़े जोर से कहा, तब तुम्हारे सत्यपराक्रमी पुत्र दुर्योधनने निधड़क होकर यह उत्तर दिया, कि—॥ ३७ ॥ अरे कुलाधम भीम ! इस अपनी आप प्रशंसा करनेसे लाभ क्या है ? आ मेरे साथ युद्ध कर, आज मैं तेरी युद्धकी हुमहुमीको नष्ट किये देता हूँ ॥३८॥ अरे तुच्छ ! जैसे साधारण मनुष्यको वार्तोसे डरादिया जाता है, वैसे तुझ सरीखा कोई भी पुरुष वार्तोमें इस दुर्योधनको भयभीत नहीं करसकता ॥ ३९ ॥ मेरे मनमें भी जो बहुत दिनों से तेरे साथ गदायुद्ध करने की अभिलाषा थी वह मेरी गदायुद्ध की अभिलाषा आज सौभाग्यसे देवताओंने पूरी की है ॥ ४० ॥ अरे दुर्बुद्धि ! बड़ी २ बातें करनेसे अथवा बड़बड़ानेसे क्या लाभ है, अपनी बातको कुछ करतूत दिखाकर सफल कर, अब देर न कर ॥ ४१ ॥ दुर्योधनकी इस बातको सुनकर जो सोमक आदि राजे तहाँ इकट्ठे हुए थे, उन सबोंने दुर्योधनकी बातको

रुहः । भूयो धीरां मतिञ्च क्रे युद्धाय कुरुनन्दनः ॥४३॥ तं मत्त-मिव मातङ्गं तलशब्दैर्नराधिपाः । भूयः संहर्षयाञ्चक्रुर्दुर्योधनम-मर्षणम् ॥ ४४ ॥ तं महात्मा महात्मानं गदामुद्यम्य पाण्डवः । अभिदुद्राव वेगेन धार्त्तराष्ट्रं वृकोदरः ॥ ४५ ॥ बृंहन्ति कुञ्जरास्तत्र हया हेषन्ति चासकृत् । शस्त्राणि चाप्यदीप्यन्त पाण्डवानां जयैषिणाम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि गदायुद्धोपक्रमे षट्पञ्चाशोध्यायः ॥ ५६ ॥

सञ्जय उवाच । ततो दुर्योधनो दृष्ट्वा भीमसेनं तथागतम् । प्रत्युद्ययावदीनात्मा वेगेन महता नदन् ॥ १ ॥ समापेततुरन्योऽन्यं शृङ्गिणौ गोवृषाविव । महानिर्घातघोषश्च प्रहाराणामजायत ॥२॥

सराहा ॥ ४२ ॥ सबने दुर्योधनका सत्कार किया, इससे उसके रोमांच खड़े होगये और कुरुवंशके कुमारने युद्ध करनेके लिये बुद्धिसे धीरज धरकर विचार किया॥४३॥जैसे मदमत्त हाथीको ताली बजाकर उत्साहित किया जाता है, ऐसे ही तहाँ आये हुए राजे भी फिर ताली बजाकर अमर्षी दुर्योधनको उत्साहित करने लगे ॥ ४४ ॥ फिर महात्मा भीम गदा उठाकर बड़े वेगसे महात्मा दुर्योधनके ऊपरको जा चढ़ा ॥ ४५ ॥ उसी समय विजय चाहनेवाले पाण्डवोंके हाथी तले ऊपर गर्जना करने लगे, घोड़े हिनहिनाने लगे और विजय पानेके लिये उछलते हुए शस्त्र चमकने लगे ॥ ४६ ॥ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥

सञ्जय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! भीमको चढ़कर आयाहुआ देखकर दीनतारहित मनवाला दुर्योधन गर्जना करके बड़े वेगके साथ उसके सामने जाडटा॥१॥ वे सींगोंवाले दो बैलों की समान आपसमें जुटगये तब गदाओंकी बड़ीभारी चोटें पड़नेपर वज्रपातकेसा घोर शब्द होने लगा ॥ २॥ विजय चा-

अभवच्च तयोर्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । जिगीषतोर्युधान्योऽन्यमिन्द्रप्रह्लादयोरिव ॥३॥ रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ गदाहस्तौ मनस्विनौ । ददृशाते महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४ ॥ तथा तस्मिन्महायुद्धे वर्त्तमाने सुदारुणे । खद्योतसङ्घैरिव खं दर्शनीयं व्यरोचत ॥ ५ ॥ तथा तस्मिन् वर्त्तमाने संकुले तुमुले भृशम् । उभावपि परिश्रान्तौ युध्यमानावरिन्दमौ ॥ ६ ॥ तौ मुहूर्तं समाश्वास्य पुनरेव परन्तपौ । अभ्यहारयतान्योन्यं संप्रगृह्य गदे शुभे ॥ ७ ॥ तौ तु दृष्ट्वा महावीर्यौ समाश्वस्तौ नरर्षभौ । बलिनौ वारणौ यद्वद्वासितार्थे मदोत्कटौ ॥ ८ ॥ समानवीर्यौ संप्रेक्ष्य प्रगृहीतगदावुभौ । विस्मयं परमं जग्मुर्देवगन्धर्वमानवाः ॥ ९ ॥ प्रगृहीतगदौ दृष्ट्वा

हनेवाले इन्द्र और प्रह्लादमें जैसा तुमुल युद्ध हुआ था, तैसा ही इन दोनोंमें तुमुल और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा ॥ ३ ॥ गदाधारी दोनों मनस्वियों (दिलावरों) के सब अङ्ग लोहूलुहान होगये, तब वे दोनों महात्मा पुष्पित ढाकके दो वृक्षोंसे मालूम होने लगे ॥ ४ ॥ इसप्रकार उन दोनोंका दारुण युद्ध आरम्भ होजाने पर आकाश मानो पटवीजनोंसे भरगया हो ऐसा सुन्दर दीखने लगा ॥ ५ ॥ उस अत्यन्त घोर और संकुल युद्धमें शत्रुओंका दमन करनेवाले दुर्योधन और भीमसेन युद्ध करते २ वहुत ही थकगये ॥ ६ ॥ शत्रुको दहलानेवाले उन दोनोंने मुहूर्त्त भरको विश्राम लिया और फिर वे दोनों उत्तम गदाओंको उठा कर आपसमें युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥ जैसे दो बलवान् हाथी एक हथिनीके लिये मतवाले होजाते हैं, तैसे ही वे दोनों महापराक्रमी योधा भी क्षण भर विश्राम लेनेके अनन्तर एक दूसरेकी ओर को देखकर मदमत्त होगये ॥ ८ ॥ देवता गन्धर्व और मनुष्य इन दोनोंको समान पराक्रमवाले तथा एक सी गदाओंको धारण करके खड़े हुए देखकर बड़े विस्मयमें होगये ॥ ९ ॥ इतना ही

दुर्योधनवृकोदरौ । संशयः सर्वभूतानां विजये समपद्यत ॥ १० ॥
समागम्य ततो भूयो भ्रातरौ बलिनाम्वरौ । अन्योन्यस्यान्तरं प्रेप्सू
प्रचक्रातेन्तरं प्रति ॥ ११ ॥ यमदण्डोपमां गुर्वीमिन्द्राशनिमिवो-
द्यताम् । ददृशुः प्रेक्षका राजन् रौद्रीं विशसनीं गदाम् ॥ १२ ॥
आविध्यतो गदां तस्य भीमसेनस्य संयुगे । शब्दः सुतुमुलो घोरो
मुहूर्तं समपद्यत ॥ १३ ॥ आविध्यन्तमरिं प्रेक्ष्य धार्त्तराष्ट्रोथ
पाण्डवम् । गदामतुलवेगां तां विस्मतः संबभूव ह ॥ १४॥ चरंश्च
विविधान्मार्गान्मण्डलानि च भारत । अशोभत तदा वीरो भूय
एव वृकोदरः ॥ १५ ॥ तौ परस्परमासाद्य यत्तावन्योन्यरक्षणे ।
मार्जाराविव भक्षार्थे ततक्षाते मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ अचरद्भीमसे-

नहीं, किन्तु भीम और दुर्योधनको एकसी गदायें धारण किये हुए देखकर सबोंके चित्तोंमें यह सन्देह होनेलगा, कि—इनमें किसकी विजय होगी ॥ १० ॥ बलवानोंमें श्रेष्ठ ये दोनों भाई फिर आपसमें भिड़कर एक-दूसरेके चूकजानेका अवसर देखने लगे॥ ११ हे राजन् ! सब दर्शक यमदण्डकी समान और उद्यत हुए वज्रकी समान भारी गदाको भयानक और संहार करनेवाला शस्त्र-रूप देखनेलगे॥ १२ उस युद्धमें जब भीमसेन अपनी गदाको घुमाता था तब दो घड़ीतक रणभूमिमें उसका भयानक शब्द गूँजता रहता था ॥ १३ ॥ दुर्योधन अपने शत्रु भीमको बड़े ही वेगसे गदा घुमातेहुए देखकर विस्मयमें होगया ॥ १४ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! अनेकों प्रकारके मार्ग और मण्डलोंमें (पैंतरोंमें) वार-म्वार फिरताहुआ भीमसेन उस समय बड़ी ही शोभा पारहा था ॥ १५ ॥ वे दोनों जने एक दूसरेसे अपनी रक्षा करनेके लिये उद्योगमें लगे हुए थे और भोजनके लिये उद्योग करतेहुए दो बिलावोंकी समान वारम्वार एक दूसरेके ऊपर प्रहार कररहे थे ॥ १६ ॥ भीमसेन अनेकों प्रकारके पैंतरोंसे फिरनेलगा और

चरतु मार्गान्विविधांस्तथा । मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥ १७ ॥ अस्त्रयन्त्राणि चित्राणि स्थानानि विविधानि च । परिमोक्षं प्रहाराणां वर्जनं परिधावनम् ॥१८॥ अभिद्रवणमाक्षेपमवस्थानं सविग्रहम्। परिवर्तनसंवर्तमवप्लुतमुपप्लुतम् १९ उपन्यस्तमपन्यस्तं गदायुद्धविशारदौ । एवं तौ विचरन्तौ तु न्यघ्नन्तौ वै परस्परम् ॥२०॥वञ्चयानौ पुनश्चैव चेरतुः कुरुसत्तमौ । विक्रीडन्तौ सुबलिनौ मण्डलानि विचेरतुः ॥ २१ ॥ तौ दर्शयन्तौ समरे युद्धक्रीडां समन्ततः । गदाभ्यां सहसान्योन्यमाजघ्नतुररिन्दमौ ॥ २२ ॥ तौ परस्परमासाद्य दंष्ट्राभ्यां द्विरदौ यथा । अशोभेतां महाराज शोणितेन परिप्लुतौ ॥ २३ ॥ एवं तदभवद्युद्धं घोर-

दोनों योधा भाँति २ के मण्डलोंसे घूमनेकी, शत्रुके सामने जाने की और शत्रुके पाससे लौटनेकी अनेकों क्रियाओंको करनेलगे ॥ १७ ॥ शत्रुके किसी मर्मस्थानमें प्रहार करके उसको ऊँचा उछालना, अथवा उसको पटककर नीचे पृथिवी पर गिरादेना, अनेकों उपयोगी मर्मस्थानोंमें प्रहार करना, झपाकेसे दौड़कर शत्रुको बाईं अथवा दाहिनी ओर लाकर डालदेना, वेगसे शत्रुसे सामनेको दौडना, शत्रुके उद्योगको निष्फल करना,सावधान रहना, शत्रुके उठकर खडा होते ही उसके साथ फिर युद्ध करना, शत्रुको मारनेके लिये चारों ओर घूमना, शत्रुको घूमनेसे रोकना, शत्रुके प्रहारको बचानेके लिये नीचेको नवकर लेटजाना, तिरछी गतिसे शत्रुके प्रहार का बचाजाना, पासमें जाकर शस्त्रों का प्रहार करना, पीछेको हटकर पीछेको कियेहुए हाथसे शत्रुके ऊपर प्रहारकरना,इत्यादि क्रियायें गदायुद्धमें प्रवीण वे दोनों योधा करनेलगे और एक दूसरेके ऊपर गदाका प्रहारकरनेलगे१८–२० कुरुवंशमें श्रेष्ठ और बड़े ही बलवान् भीमसेन और दुर्योधन वार वार एक दूसरेके प्रहारको बचातेहुए अखाड़ेमें मण्डलाकार

रूपं परन्तप । परिवृत्तेऽहनि क्रूरं वृत्रवासवयोरिव ॥ २४ ॥ गदाहस्तौ ततस्तौ तु मण्डलावस्थितौ बली । दक्षिणं मण्डलं राजन् धार्त्तराष्ट्रोऽभ्यवर्त्तत ॥ २५ ॥ सव्यन्तु मण्डलं तत्र भीमसेनोऽभ्यवर्त्तत । तथा तु चरतस्तस्य भीमस्य रणमूर्द्धनि ॥ २६ ॥ दुर्योधनो महाराज पार्श्वदेशेऽभ्यताडयत् । आहतस्तु तदा भीमः पुत्रेण तव मारिष ॥ २७ ॥ आविध्यत गदां गुर्वीं प्रहारन्तमचिन्तयन् । इन्द्राशनिसमां घोरां यमदण्डमिवोद्यताम् ॥ २८ ॥ ददृशुस्ते महाराज भीमसेनस्य तां गदाम् । आविध्यन्तं गदां दृष्ट्वा भीमसेनं तवात्मजः ॥ २९ ॥ समुद्यम्य गदां घोरां प्रत्यविध्यत् परन्तपः ।

घूमनेलगे ॥ २१ ॥ शत्रुका दमन करनेवाले वे दोनों रणभूमिमें युद्ध क्रीड़ा दिखानेलगे, उस समय जैसे दो हाथी दाँतोंसे एक दूसरेके ऊपर प्रहार करते हैं तैसे ही शत्रुका दमन करनेवाले वे दोनों योधा भी एक दूसरेके ऊपर गदाका प्रहार करनेलगे, लोहूलुहान हुए वे दोनों बड़े शोभायमान मालूम होते थे॥२२॥ ॥ २३ ॥ हे परन्तप राजन् ! वृत्रासुर और इन्द्रके युद्धकी समान इसप्रकार उन दोनोंका महाभयानक युद्ध भी सायंकालके समय होनेलगा ॥ २४ ॥ हे राजन् ! वे दोनों बली हाथमें गदा लेकर मण्डलमें खड़ेहुए थे, दाहिने मण्डलमें दुर्योधन था और वाम मण्डलमें भीमसेन था, इसप्रकार जिस समय भीमसेन रणके मुहाने पर घूमरहा था उस समय ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे महाराज! (अवसर पाकर) दुर्योधनने भीमसेनकी पसलीमें गदा मारी, हे भारत ! तुम्हारे पुत्रकी गदाकी चोट खाया हुआ भीमसेन उसको कुछ न गिनकर अपनी इन्द्रके वज्रकी समान भयानक और भारी गदाको घुमानेलगा, उस समय ऐसा मालूम होता था मानों यमराजने अपने दण्डको सम्हाला है ॥ २७ ॥ २८ ॥ भीमसेन को गदा घुमाता हुआ देख तुम्हारे पुत्रने भी अपनी गदाको ऊँची करके उसकी गदाके ऊपर प्रहार किया, आमने सामने

गदामारुतवेगेन तत्र पुत्रस्य भारत ॥३०॥ शब्द आसीत् सुतुमुलस्तेजश्च समजायत। स चरन् विविधान् मार्गान् मण्डलानि च भागशः ॥ ३१ ॥ समशोभत तेजस्वी भूयो भीमात् सुयोधनः। आविद्धा सर्ववेगेन भीमेन महती गदा ॥ ३२ ॥ सधूमं सार्चिषं चाग्निं मुमोचाग्रं महास्वना। आधूतां भीमसेनेन गदां दृष्ट्वा सुयोधनः ॥ ३३ ॥ अद्रिसारमयीं गुर्वीमाविध्य बह्वशोभत। गदामारुतवेगं हि दृष्ट्वा तस्य महात्मनः ॥ ३४ ॥ भयं विवेश पाण्डूंस्तु सर्वानेव ससोमकान्। तौ दर्शयन्तौ समरे युद्धक्रीडां समन्ततः ३५ गदाभ्यां सहसान्योऽन्यमाजघ्नतुररिन्दमौ। तौ परस्परमासाद्य दंष्ट्राभ्यां द्विरदौ यथा ॥ ३६ ॥ अशोभेतां महाराज शोणितेन परि-

दोनों गदाओं के वेगके साथ टकराने पर उसके झपाटे से उत्पन्न हुए वायुके वेगके कारण महाभयानक शब्द होने लगा और आपसमें टकरानेके कारण उन दोनों गदाओंमेंसे अग्निकी चिनगारियाँ उड़नेलगीं, फिर तेजस्वी दुर्योधन अनेकों प्रकारके पैंतरोंमें—मंडलोंमें विभागके अनुसार घूमनेलगा, उस समय वह भीमसेनसे भी अधिक शोभा पानेलगा, भीमसेन भी बड़े वेगसे अपनी भारी गदाको घुमारहा था, उसका भयङ्कर शब्द होने लगा और उसमेंसे चिनगारियें और धुएँवाला अग्नि निकल रहा था, इसप्रकार भीमसेनने अपनी गदा घुमायी, उसको देखकर दुर्योधन भी पर्वतकी समान कठिन और भारी अपनी गदाको घुमानेलगा, उस समय वह बड़ी ही शोभा पारहा था, महात्मा दुर्योधनकी गदाका वेग पवनकी समान देखकर पाण्डव तथा सोमकवंशके सब राजे भयभीत होगये, फिर भीम और दुर्योधन दर्शकोंको युद्धकी क्रीड़ा दिखानेलगे ॥ २८—३५ ॥ जैसे दो हाथी अपने दाँतोंसे एक दूसरेके ऊपर प्रहार करते हैं तैसे ही शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों एक साथ परस्पर गदाके

प्लुतौ । एवं तदभवद्युद्धं घोररूपंपरन्तप ॥ ३७॥ परिक्षीणेऽहनि क्रूरं वृत्रवासवयोरिव । दृष्ट्वा व्यवस्थितं भीमं तव पुत्रो महाबलः ३८ चरंश्चित्रतरान् मार्गान् कौन्तेयमभिदुद्रुवे । तस्य भीमो महावेगां जाम्बूनदपरिष्कृताम् ॥ ३९ ॥ अभिक्रुद्धस्य क्रुद्धस्तु ताडयामास तां गदाम् । सविस्फुलिङ्गो निर्ह्रादस्तयोस्तत्राभिघातजः ॥४०॥ प्रादुरासीन्महाराज सृष्टयोर्वज्रयोरिव । वेगवत्या तथा तत्र भीमसेनेन मुक्तया ॥ ४१ ॥ निपतन्त्या महाराज पृथिवी समकम्पत । तन्नामृष्यत कौरव्यो गदां प्रतिहतां रणे ॥ ४२ ॥ मत्तो मत्त इव क्रुद्धः प्रतिकुञ्जरदर्शनात् । स सव्यमण्डलं राजन्नुद्भ्राम्य कृतनिश्चयः ॥ ४३ ॥ आजघ्ने मूर्ध्नि कौन्तेयं गदया

प्रहार करनेलगे ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! लोहूसे भीगेहुए वे दोनों शोभा पानेलगे, इस दिन ढलते समय वृत्रासुर और इन्द्रके युद्ध की समान महाभयानक खुलाहुआ क्रूर युद्ध होने लगा, भीमसेनको सामने खड़ाहुआ देखकर तुम्हारा महावली पुत्र ३७–३८ अनेकों प्रकारके पैंतरे बदलता २ भीमसेनके ऊपर जाचढ़ा भीमसेनने क्रोधमें भरकर महाक्रोधी दुर्योधनकी बड़े वेगवाली और सुवर्णसे जड़ीहुई गदाके ऊपर अपनी गदाका प्रहार किया, दोनों गदाओंकी आपसमें रगड़ होनेसे, जैसे फेंकेहुए दो वज्रों की आपसमें रगड़से शब्द होता है तैसे ही उसका शब्द होनेलगा और उसमेंसे अग्निकी चिनगारियें निकलने लगीं, हे महाराज! भीमसेनने अपनी गदाको ऐसे वेगसे छोड़ा था- कि—वह ज्यों ही नीचे गिरी त्यों ही उसकी धमकसे पृथिवी भी कांप उठी, हे महाराज ! जैसे मदमत्त हाथी शत्रु हाथीको देखकर क्रोधमें भरजाता है तैसे ही दुर्योधन भी शत्रुकी गदाके सन्मुख प्रहारको नहीं सहसका, उसने अपनेमें दृढ़ निश्चय करके बाईं ओरको घुमाकर भीमसेनके मस्तक पर गदाका भयानक प्रहार किया तुम्हारे पुत्रकी

भीमवेगया । तया त्वभिहतो भीमः पुत्रेण तत्र पाण्डवः ॥४४॥ नाकम्पत महाराज तदद्भुतमिवाभवत् । आश्चर्यञ्चापि तद्राजन् सर्वसैन्यान्यपूजयन् ॥४५॥ यद्गदाभिहतो भीमो नाकम्पत पदात् पदम् । ततो गुरुतरां दीप्तां गदां हेमपरिष्कृताम् ॥ ४६ ॥ दुर्योधनाय व्यसृजत् भीमो भीमपराक्रमः । तं प्रहारमसंभ्रान्तो लाघवेन महाबलः ॥ ४७ ॥ मोघं दुर्योधनश्चक्रे तत्राभूद्विस्मयो महान्। सा तु मोघा गदा राजन् पतन्ती भीमचोदिता ॥४८॥ चालयामास पृथिवीं महानिर्घातनिःस्वना। आस्थाय कौशिकान्मार्गानुत्पतन् स पुनः पुनः ॥ ४९ ॥ गदानिपातं प्रज्ञाय भीमसेनञ्च वञ्चितम् । वञ्चयित्वा तथा भीमं गदया कुरुसत्तमः ॥ ५० ॥ ताडयामास

गदाका प्रहार होनेपर भी हे महाराज! भीमसेन जरा भी विचलित नहीं हुआ, यह देखकर सब लोग आश्चर्यमें होगये और सब सेनाओंने उस आश्चर्यजनक घटनाको बढ़ादिया ॥३९—४४॥ क्योंकि—गदाका प्रहार होने पर भी भीमसेन जहाँ खड़ा था तहाँसे एक पग भर भी किधर ही को नहीं हटा॥४५॥फिर भयंकर पराक्रमी भीमने सोनेकी पत्तियोंसे जड़ीहुई, बड़ी ही भारी तथा चमकती हुई अपनी गदा भीमके मारी, परन्तु महाबली दुर्योधनने सावधान रहकर चालाकीसे उसके प्रहारको निष्फल कर दिया, यह देखकर तहाँ खड़ेहुए सब लोगोंको बड़ा आश्चर्य मालूम हुआ, हे राजन् भीमसेनके मारने पर निष्फल हुई वह गदा वज्रकी समान भयङ्कर शब्द करतीहुई पृथिवी पर गिरगयी और उसने पृथिवीकोभी कम्पायमान करडाला,दुर्योधनने कौशिक रीतिसे कुशलताके साथ इधर उधरको घूमकर भीमसेनको धोखा देदिया और वारंवार गदाको ऊँची उछालकर अपना बड़ाभारी बल दिखादिया,तथा क्रोधमें भरकर महाबली दुर्योधनने भीमसेनकी छातीपर गदाका प्रहार किया,प्रहारणमें लड़तेहुए दुर्योधने जोरसे

संक्रुद्धो वक्षोदेशे महाबलः । गदया निहतो भीमो मुह्यमानो महारणे ॥ ५१ ॥ नाभ्यमन्यत कर्त्तव्यं पुत्रेणाभ्याहतस्तव । तस्मिंतथा वर्तमाने राजन् सोमकपाण्डवाः ॥ ५२ ॥ भृशोपहतसंकल्पा न हृष्टमनसोभवन् ।स तु तेन प्रहारेण मातङ्ग इव रोषितः५३हस्तिवद्धस्तिसङ्काशमभिदुद्राव ते सुतम् । ततस्तु तरसा भीमो गदया तनयं तव ॥ ५४ ॥ अभिदुद्राव वेगेन सिंहो वनगजं यथा । उपसृत्य तु राजानं गदामोक्षविशारदः ॥ ५५ ॥ आविध्यत गदां राजन् समुद्दिश्य सुतं तव । अताडयद्भीमसेनः पार्श्वे दुर्योधनं तदा ५६ स विह्वलः प्रहारेण जानुभ्यामगमन्महीम् । तस्मिन् कुरुकुलश्रेष्ठे जानुभ्यामवनीं गते ॥५७॥ उदतिष्ठत्ततो नादः सृञ्जयानां जगत्पते । तेषान्तु निनदं श्रुत्वा सृञ्जयानां नरर्षभ ॥ ५८ ॥ अमर्षा-

गदा मारी उससे भीमको मूर्छा आगयी ॥४६–५१ ॥ और वह क्षणभरके लिये अपने कर्तव्यको भी भूलगया, हे राजन् ! ज्यों ही भीमसेन मूर्छित हुआ त्योंही सोमकवंशके राजे तथा पांडव निराश होगये और मनमें शोक करनेलगे, परन्तु भीमसेन दुर्योधनके उग्रप्रहारसे हाथीकी समान क्रोधमें भरगया५२–५३और जैसे हाथी हाथीके ऊपर आक्रमण करता है तैसे ही भीमसेन वेगके साथ गदा लेकर तुम्हारे पुत्रके ऊपर जाचढ़ा॥५४॥अथवा जैसे सिंह वनके हाथीके ऊपरको झपटता है तैसे ही गदाको छोड़नेमें चतुर भीमसेन भी दुर्योधनके ऊपरको झपटकर पास ही आपहुंचा ॥ ५५ ॥ और हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी ओरको ताककर भीमसेनने उसके करवटमें गदाका प्रहार किया ॥ ५६ ॥ उस प्रहारसे दुर्योधन विह्वल होकर घुटुओंके बल पृथिवी पर गिरपड़ा, इसप्रकार कुरुकुलमें श्रेष्ठ दुर्योधनके घुटनोंके बल गिरपड़ने पर ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! सृञ्जय राजाओंने हर्षमें होकर बड़ा कोलाहल करडाला, हे नरेन्द्र ! उन सृञ्जयोंके कोलाहलको सुनकर क्रोधमें भराहुआ और महात्मा

भरतश्रेष्ठ पुनस्ते समकुप्यत । उत्थाय तु महाबाहुर्महानाग इव श्वसन् ॥ ५९ ॥ दिधक्षन्निव नेत्राभ्यां भीमसेनमवैक्षत । ततः स भरतश्रेष्ठो गदापाणिरभिद्रवत् ॥ ६० ॥ प्रमथिष्यन्निव शिरो भीमसेनस्य संयुगे । स महात्मा महात्मानं भीमं भीमपराक्रमः ६१ अताडयच्छंखदेशे न चचालाचलोपमः । स भूयः शुशुभे पार्थस्ताडितो गदया रणे ॥ ६२ ॥ उद्भिन्नरुधिरो राजन् प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ६२ ॥ ततो गदां वीरहणीमयोमयीं प्रगृह्य वज्राशनितुल्यनिःस्वनाम् । अताडयच्छत्रुममित्रकर्षणो बलेन विक्रम्य धनञ्जयाग्रजः ॥ ६३ ॥ स भीमसेनाभिहतस्तवात्मजः पपात संकम्पितदेहबन्धनः । सुपुष्पितो मारुतवेगताडितो वने महाशाल इवा-

---

महाबाहु दुर्योधन उठकर बड़ेभारी साँपकेसी फुंकारें मारने लगा५८-५९और नेत्रोंसे मानो भस्म किये देता हो, इसप्रकार भीमसेनकी ओरको देखनेलगा,और भयंकर महापराक्रमी महात्मा भीमसेनकी खोपड़ीको मानो टुकड़े करडालना चाहता हो,इस प्रकार भीमसेनकी ओरको देखने लगा, और भयङ्कर पराक्रमी महात्मा भीमसेनकी खोपड़ीके माना टुकड़े करड़ालना चाहता हो, इसप्रकार गदा लेकर महात्मा दुर्योधन भीमसेनके ऊपरको दौड़ा ॥ ६० ॥ ६१ ॥ और भीमसेनके ललाट-स्थानमें गदा मारी, परन्तु भीमसेन पर्वतकी समान अचल खडा रहा, इस युद्ध में गदाके प्रहारसे लोहूलुहान हुआ भीमसेन मद टपकानेवाले मस्त हाथीकी समान फिर शोभा पानेलगा ॥ ६२ ॥ शत्रुका संहार करनेवाले धनञ्जयके बड़े भाई भीम ने शत्रुका संहार और वज्र की समान शब्द करनेवाली लोहेकी बनायी हुई गदा लेकर दुर्योधनके मारी और अपने बल पराक्रमको दिखाया ॥ ६३ ॥ वनमें पवनकी झपेटसे जैसे पुष्पोंवाले सालके वृक्षके डाली पत्ते जड़ आदि सब बन्धन हिलजाते हैं, तैसे ही भीमसेनके प्रहारसे

वधूर्णितः ॥ ६४ ॥ ततः प्रणेदुर्जहृषुश्च पाण्डवा समीक्ष्य पुत्रं पतितं क्षितौ तव । ततः सुतस्ते प्रतिलभ्य चेतनां समुत्पपात द्विरदो यथा ह्रदात् ॥ ६५ ॥ स पार्थिवो नित्यममर्षितस्तदा महारथः शिक्षितवत् परिभ्रमन् । अताडयत् पाण्डवमग्रतः स्थितम् स विह्वलाङ्गो जगतीमुपास्पृशत् ॥ ६६ ॥ स सिंहनादं विननाद कौरवो निपात्य भूमौ युधि भीममोजसा । बिभेद चैवाशनितुल्यतेजसा गदानिपातेन शरीररक्षणम् ॥६७॥ ततोन्तरिक्षे निनदो महानभूद्दिवौकसामप्सरसाञ्च नेदुषाम्। पपात चोच्चैरमरप्रवेरितं विचित्रपुष्पोत्करवर्षमुत्तमम् ॥ ६८ ॥ ततः परानाविशदुत्तमं भयं समीक्ष्य भूमौ पतितं नरोत्तमम् । अहीयमानञ्च बलेन कौरवं निशा-

तुम्हारे पुत्रके शरीरके सब बन्धन (अङ्ग) ढीले पड़गये और वह काँपताहुआ पृथिवी पर गिरपडा ॥ ६४ ॥ तुम्हारे पुत्रको भूमिमें गिराहुआ देखकर पाण्डव कोलाहल करने और प्रसन्न होनेलगे, परन्तु तुम्हारा पुत्र चेतना होनेपर जैसे हाथी सरोवरमें से निकलता हो तैसे भूमिपरसे उठकर खडा होगया ॥ ६५ ॥ महारथी तथा नित्य असहनशील रहनेवाले दुर्योधनने शिक्षा पायेहुए योधाकी समान रणमें घूमकर अपने सामने खड़ेहुए भीमसेनके गदा मारी, इससे भीमसेनका शरीर विह्वल होगया और वह भूमि पर गिरपड़ा ॥६६॥ युद्धमें अपने बलसे भीमको भूमिपर गिराकर दुर्योधन सिंहकी समान गर्जना करनेलगा, गदाके प्रहारसे वज्रकी समान उसके शरीर परके कवचके टुकड़े होगये ॥ ६७ ॥ इस समय आकाशमें स्थित देवताओंने बड़ा कोलाहल किया, अप्सरायें चिल्लाने लगीं और देवताओंने दुर्योधनके ऊपर अनेकों जातिके उत्तम पुष्पोंकी वर्षा की।६८। मनुष्योंमें श्रेष्ठ भीमको पृथ्वीपर गिराहुआ देखकर तथा तुम्हारे पुत्रके बलको घटता न देखकर और भीमके दृढ़ कवचको छिन्न भिन्न हुआ देखकर

स्य भेदं सुदृढस्य वर्मणः ॥ ६९ ॥ ततो मुहूर्त्तादुपलभ्य चेतनां प्रमृज्य वक्त्रं रुधिरार्द्रमात्मनः । धृतिं समालम्ब्य निवृत्तलोचनो बलेन संस्तभ्य वृकोदरः स्थितः ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि गदायुद्धे सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

सञ्जय उवाच । समुदीर्णं ततो दृष्ट्वा संग्रामं कुरुमुख्ययोः । अथाब्रवीदर्जुनस्तु वासुदेवं यशस्विनम् ॥ १ ॥ अनयोर्वीरयोर्युद्धे को ज्यायान् भवतो मतः । कस्य वा को गुणो भूयानेतद्वद जनार्दन ॥ २ ॥ वासुदेव उवाच । उपदेशोनयोस्तुल्यो भीमस्तु बलवत्तरः । कृती यत्नपरस्त्वेष धार्त्तराष्ट्रो वृकोदरात् ॥३॥ भीमसेनस्तु धर्मेण युध्यमानो न जेष्यति । अन्यायेन तु युध्यन् वै हन्यादेव

पाण्डवोंको बड़ा भय होनेलगा ॥ ६९ ॥ फिर दो घड़ी बाद भीमसेनको चेत हुआ तब उसने अपने रुधिरसे भीगेहुए मुखको पोंछा, धीरजके साथ दोनों आँखोंको खोला तथा साहसके साथ उस वेदनाको सहकर वह रणमें खडा होगया ॥ ७० ॥ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! कुरुकुलमें मुख्य माने जानेवाले भीम और दुर्योधनके युद्धको बढ़ताहुआ देखकर अर्जुनने यशस्वी वासुदेवसे कहा, कि—॥ १ ॥ हे जनार्दन ! इस युद्धमें इन दोनों वीरोंमेंसे आप किसको श्रेष्ठ समझते हैं ? और किसमें कौनसा गुण अधिक है, यह बात आप मुझे बताइये ।२। कृष्णने कहा, कि-बलदेवजीने इन दोनोंको एक समान शिक्षा दी है, परन्तु भीम बलमें अधिक है और यह दुर्योधन दाँवपेंच भीमसेनसे अधिक जानता है, क्योंकि—इसने अभ्यास अधिक किया है ॥ ३ ॥ यदि भीमसेन धर्मके साथ इससे युद्ध करेगा तो इसको नहीं जीतसकेगा, यदि अन्यायसे युद्ध करेगा तो दुर्योधन

सुयोधनम् ॥ ४ ॥ मायया निर्जिता देवैरसुरा इति नः श्रुतम् । विरोचनस्तु शक्रेण मायया निर्जितः स वै ॥ ५ ॥ मायया चाक्षिपत्तेजो वृत्रस्य बलसूदनः । तस्मान्मायामयं भीम आतिष्ठतु पराक्रमम् ॥ ६ ॥ प्रतिज्ञातन्तु भीमेन द्यूतकाले धनञ्जय । ऊरू भेत्स्यामि ते संख्ये गदयेति सुयोधनं ॥ ७ ॥ सोयं प्रतिज्ञां ताञ्चापि पालयत्वरिकर्षणः । मायाविनञ्च राजानं माययैव निकृन्ततु ८ यद्येष बलमास्थाय न्यायेन प्रहरिष्यति । विषमस्थस्ततो राजा भविष्यति युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥ पुनरेव तु वक्ष्यामि पाण्डवेय निबोध मे । धर्मराजापराधेन भयं नः पुनरागतम् ॥ १० ॥ कृत्वा हि सुमहत् कर्म हत्वा भीष्मप्रमुखान् कुरून् । जयः प्राप्तो यशश्चाग्र्यं वैरञ्च प्रतियातितम् ॥ ११ ॥ तदेवं विजयः प्राप्तः पुनः संशयितः

को अवश्य ही मारलेगा ॥ ४ ॥ हमने सुना है, कि—देवताओं ने भी दैत्योंको कपटसे ही जीता था और इन्द्रने उस विरोचनको भी कपटसे ही जीता था ॥ ५ ॥ इन्द्रने वृत्रासुरका तेज भी मायासे ही नष्ट किया था, इसलिये भीमसेनको मायावी पराक्रम करना चाहिये ॥ ६ ॥ हे धनञ्जय! जुएके समय भीमने प्रतिज्ञा करके दुर्योधनसे कहा था, कि–युद्धमें गदासे तेरी जांघें तोड डालूँगा ॥ ७ ॥ यह शत्रुनाशी भीमसेन अब उस प्रतिज्ञा का पालन करे और कपटी राजा दुर्योधनको कपटसे ही मारदेय ॥ ८ ॥ परन्तु यदि यह भीमसेन अपने बलका भरोसा रखकर न्याय (धर्मयुद्ध) से दुर्योधनके साथ लड़ेगा तो राजा युधिष्ठिर बड़े संकटमें पड़जायँगे ॥ ९ ॥ हे पाण्डुनन्दन! मैं तुझसे फिर कहता हूँ, तू मेरी बातको समझ रख, धर्मराजके अपराधसे हमारे ऊपर फिर भय आया ही चाहता है ॥ १० ॥ हमने महापराक्रम करके भीष्म आदि कौरवोंका संहार किया है और उस से विजय, श्रेष्ठ यश और वैरका बदला लिया है ॥ ११ ॥ परंतु

कृतः । अबुद्धिरेषा महती धर्मराजस्य पाण्डव ॥ १२ ॥ यदेकविजये युद्धं पातितं घोरमीदृशम् । सुयोधनः कृती वीर एकायनगतस्तथा ॥ १३ ॥ अपि चौशनसा गीतः श्रूयतेयं पुरातनः । श्लोकस्तत्त्वार्थसहितस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ १४ ॥ पुनरावर्त्तमानानां भग्नानां जीवितैषिणाम् । भेतव्यमरिशेषाणामेकायनगता हि ते १५ साहसोत्पतितानाञ्च निराशानाञ्च जीविते । न शक्यमग्रतः स्थातुं शक्रेणापि धनञ्जय ॥ १६ ॥ सुयोधनमिमं भग्नं हतसैन्यं ह्रदं गतम् । पराजितं वनप्रेप्सुं निराशं राज्यलम्भने ॥ १७ ॥ कोऽन्वेष संयुगे प्राज्ञः पुनर्द्वन्द्वे समाह्वयेत् । अपि नो निर्जितं राज्यं

उस पायीहुई विजयको युधिष्ठिरने फिर सन्देहमें डाल दिया है हे धनञ्जय ! यह धर्मराजकी महामूर्खता है ॥ १२ ॥ वह एक पुरुषको जीतनेके लिये ऐसे भयानक युद्धमें प्रतिज्ञा कर बैठे हैं (कि—हममेंसे एक हारजाय तो हम सब हारगये) दुर्योधन कार्यकुशल, शूर और एक निश्चय वाला है ॥ १३ ॥ इस विषयमें शुक्राचार्यका गाया हुआ यह श्लोक हमारे सुननेमें आता है, उस तत्त्व अर्थसे भरे हुए श्लोकको मैं कहता हूँ, तू सुन ॥१४॥ जो रणमेंसे भाग गये हों और फिर लड़नेके लिये लौट आये हों और जीवित रहनेके अभिलाषी होकर संग्राममें प्रवृत्त हुए हों उनसे डरते रहना चाहिये, क्योंकि—वे तो जीवन पर उदास होकर लड़नेवाले हैं और उनके मनमें एक ही धारणा है ॥ १५ ॥ हे धनञ्जय ! जो जीवनसे निराश होकर एक साथ लड़नेको आये हों, ऐसे शत्रुओंके सामने इन्द्र भी खडा नहीं रहसकता ॥१६ ॥ इस दुर्योधनकी सेना मारी गई थी, इसलिये यह रणमेंसे भाग कर जलके सरोवरमें जाछुपका था, यह हार चुका है और राज्यको पानेमें निराश होनेके कारण ही वनमें चलाजाना चाहता है ॥१७॥ ऐसे दुर्योधनको कौनसा बुद्धिमान् पुरुष फिर रणभूमिमें द्वन्द्वयुद्धके लिये बुलावेगा ? मुझे, सन्देह होरहा है,

न हरेत सुयोधनः ॥ १८ ॥ यस्त्रयोदशवर्षाणि गदया कृतनिश्रमः। चरत्यूर्द्धञ्च तिर्यक् च भीमसेनजिघांसया॥ १९ ॥ एनञ्चेन्न महाबाहुरन्यायेन हनिष्यति। एष वः कौरवो राजा धार्त्तराष्ट्रो भविष्यति ॥ २० ॥ धनञ्जयस्तु श्रुत्वैतत् केशवस्य महात्मनः। प्रेक्षतो भीमसेनस्य सव्यमूरुमताडयत् ॥ २१ ॥ गृह्य संज्ञां ततो भीमो गदया व्यचरद्रणे। मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च२२ दक्षिणं मण्डलं सव्यं गोमूत्रकमथापि च। व्यचरत् पांडवो राजन्नरिं सम्मोहयन्निव ॥ २३ ॥ तथैव तव पुत्रोऽपि गदामार्गविशारदः। व्यचरंल्लघु चित्रञ्च भीमसेनजिघांसया ॥ २४ ॥ आधु-

---

कि—हमारे जीतेहुए राज्यको यह दुर्योधन कहीं फिर न जीतलेय? १८ जिसने तेरह वर्षतक गदायुद्धको सीखनेके लिये दृढ़ परिश्रम किया है और इस समय वह भीमसेनको मारनेकी इच्छासे कभी ऊपर को उछलता है और कभी टेढ़ावेढ़ा घूमता है ॥ १९ ॥ यदि इसको महाबाहु भीमसेन अन्यायसे नहीं मारेगा तो निःसन्देह यह धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन तुम सबोंका राजा होजायगा॥ २०॥ महात्मा कृष्णकी इस बातको सुनकर भीमसेनको दीखजाय, इस प्रकार धनञ्जय अपनी बाईं जंघाको ठोकने लगा ॥ २१ ॥ अर्जुनकी बताई हुई चेष्टाको भीमसेन समझगया और यमक तथा दूसरे अनेकों प्रकारके पैंतरे बदलता हुआ रणभूमिके अखाड़ेमें घूमने लगा ॥ २२ ॥ वह कभी दाहिनी ओरको पैंतरा बदलता था तो कभी बाईं ओरको मंडल बांधता था, कितनी ही देर तक गोमूत्राकार घूमता हुआ वह ऐसा मालूम होता था, कि मानो शत्रुको धोखा देना चाहता है ॥ २३ ॥ तैसे ही गदायुद्ध में और भाँति २ के पैंतरे बदलनेमें चतुर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन भीमसेनको मारनेकी इच्छासे धीमी झडपके साथ बड़े ही विचित्र ढङ्गसे रणभूमिमें घूमने लगा ॥ २४ ॥ वे दोनों योधा चन्दन

न्वन्तौ गदे घोरे चन्दनागरुरूपिते। वैरस्यान्त परीप्सन्तौ रणे क्रुद्धाविवान्तकौ ॥ २५ ॥ अन्योन्यं तौ जिघांसन्तौ प्रवीरौ पुरुपर्षभौ। युयुधाते गरुत्मन्तौ यथा नागामिषैषिणौ ॥ २६ ॥ मण्डलानि विचित्राणि चरतोर्नृपभीमयोः। गदासम्पातजास्तत्र प्रजज्ञुः पावकार्चिषः ॥ २७ ॥ समं प्रहरतोस्तत्र शूरयोर्बलिनोर्मृधे। क्षुब्धयोर्वायुना राजन् द्वयोरिव समुद्रयोः ॥ २८ ॥ तयोः प्रहरतोस्तुल्यं मत्तकुञ्जरयोरिव। गदानिर्घातसंह्रादः प्रहाराणामजायत२६ तस्मिंस्तदा संप्रहारे दारुणे संकुले भृशम्। उभावपि परिश्रान्तौ युध्यमानावरिन्दमौ ॥ ३० ॥ तौ मुहूर्त्तं समाश्वस्य पुनरेव परन्तप। अभ्यहारयतां क्रुद्धौ प्रगृह्य महतीं गदे ॥ ३१ ॥ तयोः

और अगरसे चर्चित भयानक गदाओंको रणमें घुमा रहे थे और दोनों वैरकी समाप्ति करडालना चाहते थे तथा कोपमें भरेहुए कालसे दीख रहे थे२५जैसे सर्पके मांसकी इच्छासे दो गरुड आपसमें लडते हों, तैसे ही बड़े शूर और समर्थ वे दोनों श्रेष्ठ पुरुष, एक दूसरेका नाश करनेकी इच्छासे लडनेलगे ॥ २६ ॥ विचित्र प्रकारके मंडलोंमें घूमतेहुए दुर्योधनकी और भीमसेनकी गदाके आपसमें टकराने पर उनमेंसे अग्निकी चिनगारियें झडने लगीं ॥ २७ ॥ हे राजन्! वायुसे हिलोड़े हुए दो समुद्र जैसे आपसमें टकराते हों ऐसे ही रणमें वे दोनों बलवान् वीर पुरुष क्रोधके कारण एक समान प्रहार करनेलगे ॥ २८ ॥ मदमत्त हुए हाथियोंकी समान आपसमें युद्ध करनेवाले वे दोनों योधा एक समान प्रहार करनेलगे, उनकी गदाओंके प्रहारोंका चटाचट शब्द वज्रके शब्दकी समान महादारुणऔर एक साथ होरहा था, थोडी देरमें वे दोनों योधा लडते २ थकगये उन्होंने थोडी देर विश्राम किया और फिर दोनों योधा क्रोधमें भरकर बडी गदाओंको लेकर युद्ध करने लगे ॥ २९—३१ ॥ और हे राजेन्द्र! एक

सप्रभवन्युद्धं घोररूपमसंवृतम् । गदानिपाते राजेन्द्र तक्षतौवै पर-
स्परम् ॥ ३२ ॥ समरे प्रद्रुतौ तौ तु वृषभाक्षौ तरस्विनौ । अन्यो-
ऽन्यं जघ्नतुर्वीरौ पंकस्थौ महिषाविव ॥ ३३ ॥ जर्जरीकृतसर्वाङ्गौ
रुधिरेणाभिसंप्लुतौ । ददृशाते हिमवति पुष्पिताविव किंशुकौ ३४
दुर्योधनस्तु पार्थेन विवरे संप्रदर्शिते । ईषदुन्मिषमाणस्तु सहसा
प्रससार ह ॥ ३५ ॥ तमभ्याशगतं प्राज्ञो रणे प्रेक्ष्य वृकोदरः ।
अपाक्षिपद्गदां तस्मै वेगेन महता बली ॥ ३६ ॥ अवाक्षिप्तान्तु तां
दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते । अवासर्पत्ततः स्थानात् सा मोघा न्यप-
तद्भुवि ॥ ३७ ॥ मोक्षयित्वा प्रहारं तं सुतस्तव ससम्भ्रमात् ।
भीमसेनञ्च गदया प्राहरत् कुरुसत्तमः ॥ ३८ ॥ तस्य त्रिस्यन्द-

दूसरेके ऊपर गदाके प्रहार करने लगे, उन में खुले मैदान महाभयानक युद्ध होने लगा ॥ ३२ ॥ बैलकेसे विशाल नेत्रोंवाले वे दोनों बड़े वेगसे युद्ध करने लगे, बीचमें खड़ेहुए दो भैंसोंकी समान परस्पर प्रहार करने लगे, एकके दूसरेके ऊपर प्रहार होनेके कारण उनके सब अङ्ग जर्जरित होगये, दोनों रुधिर से न्हागये थे, इसलिये हिमालय पर पुष्पित हुए ढाकके दो वृक्ष से मालूम होते थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अर्जुनने जाँघ ठोककर भीमसेनको जो इशारा किया था, उसको दुर्योधन समझगया था, वह जरा एक संकुचित हुआ और एक साथ पीछेको हटगया ॥ ३५ ॥ परन्तु थोड़ीही देरमें वह समीपमेंको आया, यह देखकर बुद्धिमान् और बलवान् भीमसेनने बड़ी जोरसे दुर्योधनकी जाँघपर गदा फेंकी ३६ हे राजन्! तुम्हारा पुत्र दुर्योधन भीमसेनको गदा तानते हुए देखकर तहाँसे पीछेको हटगया, तब तो वह गदा निष्फल हो कर पृथ्वीपर जापड़ी ॥ ३७ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! इसप्रकार तुम्हारे पुत्रने बड़ीही फुरतीसे भीमकी गदाके प्रहारको बचाकर भीमसेनके ऊपर अपनी गदाका प्रहार किया ॥ ३८ ॥ उस गदाके प्रहारसे परम

मानेन रुधिरेणामितौजसः । प्रहारगुरुपाताच्च मूर्च्छेव समजा-
यत ॥ ३९ ॥ दुर्योधनो न तं वेद पीड़ितं पाण्डवं रणे । धारया-
मास भीमोपि शरीरमतिपीडितम् ॥ ४० ॥ अमन्यत स्थितं ह्येनं
प्रहरिष्यन्तमाहवे । ततो न प्राहरत्तस्मै पुनरेव तवात्मजः ॥ ४१ ॥
ततो मुहूर्त्तमाश्वस्य दुर्योधनमुपस्थितम् । वेगेनाभ्यपद्राजन् भीम-
सेनः प्रतापवान् ॥४२॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य संरब्धममितौजसम् ।
मोघमस्य प्रहारं तं चिकीर्षुर्भरतर्षभ ॥४३॥ अवस्थाने मतिं कृत्वा
पुत्रस्तव महामनाः । इयेषोत्पतितुं राजंश्छलयिष्यन् वृकोदरम् ४४
अबुध्यद्भीमसेनस्तद्राज्ञस्तस्य चिकीर्षितम् । अथास्य समभिद्रुत्य
समुत्क्रुश्य च सिंहवत् ४५स्त्या वञ्चयतो राजन् पुनरेवोत्पतिष्यतः ।

पराक्रमी भीमके शरीरमेंसे रुधिर वहनेलगा और उस प्रबल प्रहार के कारण भीमसेनको मूर्छासी आगई ॥ ३९॥ परन्तु भीमसेनकी इस पीड़ाका दुर्योधनको जराभी पता नहीं लगा, क्योंकि-भीमसेन ने बड़ी पीडा होने पर भी अपने शरीरको सम्हाले रक्खा था ४० इसलिये दुर्योधनने समझा, कि-अब यह मेरे ऊपर प्रहार करने को खडा है, इसलिये तुम्हारे पुत्रने फिर उसके ऊपर गदाका प्रहार नहीं किया ॥ ४१ ॥ हे राजन्! प्रतापी भीमने क्षण भर विश्राम।लेकर सामने खड़े हुए दुर्योधनके ऊपर बड़े वेगसे आक्र-मण किया ॥ ४२ ॥ हे भरतसत्तम! अपारवली भीमसेन क्रोधमें भरकर अपने ऊपरको चढ़ा आरहा है, यह देखकर उसके प्रहार को निष्फल करनेके लिये और भीमको धोखा देनेके लिये तुम्हारे उदारचित्त पुत्रने अवस्थान नामका दाँव खेलकर भीमसेनको धोखा देनेके लिये ऊपरको उछलनेकी युक्ति की ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ परन्तु भीमसेन दुर्योधनकी इस युक्तिको समझ गया और दुर्यो-धनके ऊपरको सिंहकी समान दहाडता हुआ दौड़ा, कि-हेराजन्! भीमके प्रहारको चुकानेके लिये दुर्योधन ऊपरको उछलनेका विचार

ऊरुभ्यां प्राहिणोद्राजन् गदां वेगेन पाण्डवः ॥ ४६ ॥ सा वज्र-
निष्पेषसमा प्रहिता भीमकर्मणा । ऊरू दुर्योधनस्याथ बभञ्ज
प्रियदर्शनौ ॥ ४७ ॥ स पपात नरव्याघ्रो वसुधामनुनादयन् ।
भग्नोरुर्भीमसेनेन पुत्रस्तव महीपते ॥४८॥ ववुर्वाताः सनिर्घाताः
पांशुवर्षं पपात च । चचाल पृथिवी चापि सवृक्षक्षुपपर्वता ॥४९॥
तस्मिन्निपतिते वीरे पत्यौ सर्वमहीक्षिताम् । महास्वना पुनर्दीप्ता
सनिर्घाता भयंकरी ॥ ५० ॥ पपात चोल्का महती पतिते पृथिवी-
पतौ । तथा शोणितवर्षञ्च पांशुवर्षञ्च भारत ॥५१॥ ववर्ष मघवां-
स्तत्र तव पुत्रे निपातिते । यक्षाणां राक्षसानाञ्च पिशाचानां
तथैव च ॥ ५२ ॥ अन्तरिक्षे महान्नादः श्रूयते भरतर्षभ । तेन
शब्देन घोरेण मृगाणामथ पक्षिणाम् ॥५३॥ जज्ञे घोरतरः शब्दो

करने लगा, परन्तु इतनेमें ही उस भयानक पराक्रम करने वाले
भीमने वज्रकी समान गदा मारकर दुर्योधनकी दोनों शोभायमान
जंघाओंको तोडडाला ॥ ४५-४७॥ हे राजन् ! भीमसेनने जिसकी
दोनों जंघाएं तोड़डाली ऐसा मनुष्योंमें सिंहसमान आपका पुत्र
पृथ्वीको शब्दायमान करता हुआ गिरपड़ा ॥ ४८ ॥ राजाओंका
राजा वह आपका वीर पुत्र ज्योंही पृथ्वी पर गिरा, कि-सायँ २
करते हुए तीव्र पवन चलने लगे, धूलिकी वर्षा होने लगी,
छोटे बड़े वृक्ष, तारागण और पहाड़ोंके साथ पृथ्वी काँपने
लगी बड़ी गर्जना करते और जलते हुए भयंकर उल्मुक
वज्रसमान शब्दके साथ आकाशमेंसे नीचे गिरनेलगे तथा
हे भारत ! रुधिर और धूलिकी वर्षा होने लगी भगवान् इन्द्र
तुम्हारे पुत्रके गिरजाने पर वर्षा करने लगे, हे भरतसत्तम !
आकाशमें यक्ष, राक्षस और पिशाचोंकी बड़ा भारी गर्जना
सुनायी आनेलगा, उन घोर शब्दोंके साथ मृग और दूसरे बहुत
से पशु पक्षियोंका चारों दिशाओंमें भयानक शब्द होनेलगा, मरने

वृन्तां सर्वतो दिशम् । ये तत्र वाजिनः शेषा गजाश्च मनुजैः सह ५४
मुमुचुस्ते महानादं तव पुत्रे निपातिते । भेरीशंखमृदङ्गानामभवच्च
स्वनो महान् ॥ ५५ ॥ अन्तर्भूमिगतश्चैव तव पुत्रे निपातिते ।
बहुपादैर्बहुभुजैः कबन्धैर्घोरदर्शनैः ॥५६॥ नृत्यद्भिर्भयदैर्व्याप्ता
दिशस्तत्राभवन्नृप । ध्वजवन्तोऽस्त्रवन्तश्च शस्त्रवन्तस्तथैव
च ॥ ५७ ॥ प्राकम्पन्त ततो राजंस्तव पुत्रे निपातिते ।
ह्रदाः कूपाश्च रुधिरमुद्वेमुर्नृपसत्तम ॥ ५८ ॥ नद्यश्च सुमहावेगाः
प्रतिस्रोतोवहाभवन् । पुंलिंगा इव नार्यस्तु स्त्रीलिङ्गाः पुरुषाभवन् ५९
दुर्योधने तदा राजन् पतिते तनये तव । दृष्ट्वा तानद्भुतोत्पातान्
पञ्चाला पाण्डवैः सह ॥ ६० ॥ आविग्नमनसः सर्वे बभूवुर्भरत-
र्षभ । ययुर्देवा यथाकामं गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ६१ ॥ कथय-
न्तोऽद्भुतं युद्धं सुतयोस्तव भारत । तथैव सिद्धा राजेन्द्र तथा

से बचेहुए घोड़े, हाथी और मनुष्य भी गर्जना करनेलगे, भेरी, शंख और मृदङ्गोंका भी बड़ा भारी शब्द होनेलगा ॥ ४९–५५ ॥ वह शब्द पृथिवीके नीचे तक पहुँचगया, हे राजेन्द्र आपके पुत्र के मारे जाने पर बहुतसे हाथोंवाले, बहुतसे चरणोंवाले भयानक दीखतेहुए धड़ दिशाओंमें नाचनेलगे, ध्वजा, अस्त्र और शस्त्रों वाले पुरुष काँप उठे, हे राजसत्तम ! पानीके सरोवरों और कुओं मेंसे रुधिर उफनकर बाहरको आनेलगा ॥ ५६–५८ ॥ बड़ी वेगवाली नदियें उलटे प्रवाहसे बहनेलगीं, स्त्रियें पुरुषरूप और पुरुष स्त्रीरूप होगये ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! जिस समय तुम्हारा पुत्र रणमें गिरा उस समय पृथिवी पर और आकाशमें ऐसे २ अनेकों अद्भुत उत्पात होनेलगे ॥ ६० ॥ हे राजन् ! इन उत्पातों को देखकर पाण्डव और पंचालराजे सबके मन उदास होगये ॥ ६१ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! देवता, गन्धर्व. अप्सरायें, सिद्ध तथा अन्तरिक्षमें विचरनेवाले चारण तुम्हारे दोनों पुत्रोंके अद्भुत

वातिकचारणाः ॥६२॥ नरसिंहौ प्रशंसन्तौ विप्रजग्मुर्यथागतम् ६३

इति श्रीमहाभारते गदापर्वणि गदायुद्धे दुर्योधनोरुभङ्गे अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

सञ्जय उवाच । तं पातितं ततो दृष्ट्वा महाशालमिवोद्गतम् । प्रहृष्टमनसः सर्वे ददृशुस्तत्र पाण्डवाः ॥ १ ॥ तं मत्तमिव मातङ्गं सिंहेन विनिपातितम् । ददृशुर्हृष्टरोमाणः सर्वे ते चापि सोमका २ ततो दुर्योधनं हत्वा भीमसेनः प्रतापवान् । पातितं कौरवेन्द्रं तमुपगम्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ गौर्गौरिति पुरा मन्द द्रौपदीमेकवाससम् । यत् सभायां हसन्नस्मांस्तदा वदसि दुर्मते ॥ ४ ॥ तस्यावहासस्य फलमद्य त्वं समवाप्नुहि । एवमुक्त्वा स वामेन पदा मौलिमुपास्पृशत् ॥ ५ ॥ शिरश्च राजसिंहस्य पादेन समलोडयत् ।

द्वन्द्वयुद्धको देखकर इस विषयकी बातें करतेहुए तथा दोनों नरसिंहोंकी प्रशंसा करतेहुए जैसे आये थे तैसे ही अपने २ स्थानों को चलेगये ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ अठावनवां अध्याय समाप्त ॥५८॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! तहाँ ऊँचे और मोटे सालके वृक्षकी समान, भीमसेनके गिराये हुए दुर्योधनको देखकर सब पाण्डव प्रसन्नचित्त दीखते थे ॥१॥ जैसे सिंह उन्मत्त हाथीको भूमिपर ढहा देता है तैसे ही भीमसेनके पृथिवी पर गिरायेहुए दुर्योधनको सब सोमक भी हर्षके रोमाञ्चोंके साथ देखरहे थे ॥ २ ॥ तदनन्तर प्रतापी भीमसेन कुरुराज दुर्योधन की जाँघे तोडकर और उसको पृथिवी पर गिरा उसके पास जाकर यह कहनेलगा, कि-॥ ३ ॥ अरे दुष्टबुद्धि ! पहले भरी सभामें तूने एक वस्त्र पहरे खडीहुई द्रौपदीकी हँसीकी थी और ओ मूर्ख ! बैल बैल कहकर तूने हमारी भी हँसी कीथी ॥ ४ ॥ उस हँसी उडानेके फलको तू आज भोग, ऐसा कहकर भीमसेनने उसके मुकुटको बाएँ पैरसे ठुकरा दिया ॥ ५ ॥ तथा

तत्रैव क्रोधसंरक्तो भीमः परबलार्दनः ॥ ६॥ पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं यत्त-
च्छृणु नराधिप । येस्मान् पुरा शनृत्यन्ति मूढ़ा गौरिति गौरिति ७
तान् वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति । नास्माकं निकृतिर्व-
ह्निर्नाद्यूतं न वञ्चना ॥ ८ ॥ स्वबाहुबलमाश्रित्य प्रबाधामो वयं
रिपून् ८ सोवाप्य वैरस्य परस्य पारं वृकोदरः प्राह शनैः प्रहस्य ।
युधिष्ठिरं केशवसृञ्जयांश्च धनञ्जयं माद्रवतीसुतौ ह ॥ ९ ॥ रज-
स्वलां द्रौपदीमानयन् ये ये चाप्यकुर्वन्त सदस्यवस्त्राम् । तान्
पश्यध्वं पाण्डवैर्धार्त्तराष्ट्रान्रणे हतांस्तपसा याज्ञसेन्याः ॥ १० ॥
ये नः पुरा षण्डतिलानवोचन् क्रूरा राज्ञो धृतराष्ट्रस्य पुत्राः ।
ते नो हताः सगणाः सानुबन्धाः कामं स्वर्गं नरकं वा पतामः ११

जो क्रोधके मारे तमतमा रहा था ऐसे शत्रुसेनाका संहार करने वाले भीमने, राजाओंमें सिंहसमान दुर्योधनके शिरको लात मार कर मसल डाला ॥ ६ ॥ हे राजन् ! भीमसेनने इसके बाद जो बात कही थी उसको भी सुनो, पहले जिन मूर्ख लोगोंने हमको अरे बैल ! अरे बैल!! कहकर हमारे सामने नाच नाचा था,उनके सामने आज हम अरे पशुओं ! अरे पशुओं !! कहकर नाचते हैं, शत्रुओंका निग्रह करनेके लिये छल, अग्नि, जुआ, और धोखा-देही, इनमेंसे हमारे पास कोई भी साधन नहीं है, हमने तो अपने बाहुबलसे ही शत्रुओंको पछाडा है ॥ ७ ॥ ८ ॥ ऐसा कहकर वड़ाभारी बदला लेनेके अनन्तर भीमसेन खब हँसा, फिर धीरे २ युधिष्ठिर, कृष्ण, अर्जुन, सृञ्जय, नकुल और सहदेव से कहनेलगा, कि–॥९॥ जिन्होंने रजस्वला द्रौपदीको राजसभामें लाकर उसको नङ्गी करनेका विचार किया था,उन धृतराष्ट्रकेपुत्रों को पांडवोंने द्रौपदीकी घोर तपस्याके बलसे रणमेंमारडाला, उन को देखो ॥ १० ॥ धृतराष्ट्रके जिन क्रूर पुत्रोंने पहले हमें बिना तेलके तिलोंकी समान षंढ कहा था, उन सबोंको हमने सेवकों

पुनश्च राज्ञः पतितस्य भूमौ स तां गदाम् स्कन्धगतां मगृह्य । वामेन पादेन शिरः प्रमृद्य दुर्योधनं नैकृतिकं न्यवोचत् ॥ १२ ॥ हृष्टेन राजन् कुरुसत्तमस्य क्षुद्रात्मना भीमसेनेन पादम् । दृष्ट्वा कृतं मूर्द्धनि नाभ्यनन्दन् धर्मात्मानः सोमकानां प्रवर्हाः ॥ १३ ॥ तव पुत्रं तथा हत्वा कत्थमानं वृकोदरम् । नृत्यमानञ्च बहुशो धर्मराजोब्रवीदिदम् ॥ १४ ॥ गतोसि वैरस्यानृण्यं प्रतिज्ञा पूरिता त्वया । शुभेनैवाशुभेनाथ कर्मणा विरमाधुना ॥१५॥ मा शिरोऽस्य पदाऽमर्दीमा धर्मस्तेऽतिगो भवेत् । राजा ज्ञातिर्हतश्चायं नैतन्न्याय्यं तवानघ ॥ १६ ॥ एकादशचमूनाथं कुरूणामधिपं तथा । मा स्पा-

और सम्बन्धियों सहित मारडाला, इस कर्मके कारण अब हम चाहे नरकमें जापड़ें या स्वर्गमें जाचढ़ें, इसकी हमको चिन्ता नहीं है ॥ ११ ॥ ऐसा कहकर भीमसेनने भूमिपर पडेहुए दुर्योधनके कन्धे पर धरीहुई गदाको लेलिया और बायें पैरसे कपटी दुर्योधनके शिरमें बारबार लात मारकर उसका अपमान किया १२ हे राजन् ! क्षुद्र चित्तवाले भीमसेनने दुर्योधनके शिरमें लात मारी भीमसेनके इस वर्त्तावको सोमकवंशके धर्मात्मा राजाओंने पसन्द नहीं किया ॥ १३ ॥ तुम्हारे पुत्रके लात मारनेके अनन्तर भीमसेन बहुत सी बातें कहनेलगा और पागलकी समान नाचने कूदने लगा, यह देखकर धर्मराजने उससे कहा, कि— ॥ १४ ॥ अरे भीम ! तूने शुभकर्मसे अथवा अशुभ कर्मसे जैसे भी होसका वैरका बदला लेलिया और अपनी प्रतिज्ञा भी पूरी करली, अब तू चुप होजा ॥ १५ ॥ हे भीम ! तू इसके मस्तक पर पैर न रख, अधर्मका काम न कर, दुर्योधन एक राजा है, यह तेरा अपना कुटुम्बी है, जब यह मारागया तो अब इसके मस्तक पर पैर रखना, यह तेरा काम न्यायका नहीं है ॥ १६ ॥ हे भीम ! दुर्योधन, ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था, कुरु-

त्तोऽभीम पादेन राजानं ज्ञातिमेव च ॥ १७ ॥ हतबन्धुर्हतामात्यो भ्रष्टसैन्यो हतो मृधे । सर्वाकारेण शोच्योऽयं नावहास्योऽयमीश्वरः ॥ १८ ॥ विध्वस्तोऽयं हतामात्यो हतभ्राता हतप्रजः । उत्सन्नपिण्डो भ्राता च नैतन्न्याय्यं कृतं त्वया ॥ १९ ॥ धार्मिको भीमसेनोऽसावित्याहुस्त्वां पुरा जनाः । स कस्माद्भीमसेन त्वं राजानमधितिष्ठसि ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा भीमसेनन्तु साश्रुकण्ठो युधिष्ठिरः । उपसृत्याब्रवीद्दीनो दुर्योधनमरिन्दमम् ॥ २१ ॥ तात मन्युर्न ते कार्यो नात्मा शोच्यस्त्वया तथा । नूनं पूर्वकृतं कर्म सुघोरमनुभूयते ॥२२॥ धात्रोपदिष्टं विषमं नूनं फलमसंस्कृतम् । यद्वयं

पति था, हे भीम! यह राजा है और तिस पर अपना कुटुम्बी है इसके शिरमें तू अपना पैर न लगा ॥ १७ ॥ इस समय इसके भाई भी मारेगये, मित्र और मन्त्री भी मारेगये, सैनिक भी रण में मारेगये, अब यह स्वयं भी अपने आप मारागया, अब तो यह सर्वथा दया करने योग्य होगया है, अब तू इसकी हँसी न कर, क्योंकि-यह राजा है ॥ १८ ॥ इसका अपमान होलिया, इसके मन्त्री मारेगये, भाई मारेगये और पुत्र भी मारेगये, आज इसको तो कोई पिंड देनेवाला भी नहीं रहा ! इसके सिवाय यह अपना भाई ही तो है ! इसको जो तूने पैरसे ठुकराया, यह न्याय का काम नहीं किया है ॥ १९ ॥ हे भीमसेन ! पहले लोग कहा करते थे, कि-भीमसेन धर्मात्मा है, ऐसा तू राजाके शिर पर पैर धरकर क्यों खडा है ? ॥ २० ॥ भीमसेनको ऐसा उलाहना देने के अनन्तर राजा युधिष्ठिरने दीनतासे अडखड़ातेहुए स्वरमें शत्रुओंका दमन करनेवाले दुर्योधनके पासको जाकर कहा, कि-हे भाई ! अब तुझे भी क्रोध नहीं करना चाहिये, तथा अपने लिये तुझे शोक भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि-पहले जन्ममें कियेहुए महाघोर कर्मोंका फल सबको ही भोगना पडता है, इस में जरा भी सन्देह नहीं॥२२॥हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ ! हम तेरा मारण-

त्वां जिघांसामस्त्वञ्चास्मान् कुरुसत्तम ॥ २३ ॥ आत्मनो ह्यपराधेन महद्व्यसनमीदृशम् । प्राप्तवानसि यल्लोभान्मदाद्बाल्याच्च भारत ॥ २४ ॥ घातयित्वा वयस्यांश्च भ्रातॄनथ पितॄंस्तथा । पुत्रान् पौत्रांस्तथा चान्यांस्ततोसि निधनं गतः ॥ २५ ॥ तवापराधादस्माभिर्भ्रातरस्ते महारथाः । निहता ज्ञातयश्चान्ये दिष्टं मन्ये दुरत्ययम् ॥२६॥ आत्मा न शोचनीयस्ते श्लाघ्यो मृत्युस्तवानघ । वयमेवाधुना शोच्याः सर्वावस्थासु कौरव ॥२७॥ कृपणं वर्त्तयिष्यामस्तैर्हीना बन्धुभिः प्रियैः । भ्रातॄणाञ्चैव पुत्राणां नप्तॄणां शोकविह्वलाः ॥ २८॥ कथं द्रक्ष्यामि विधवा वधूः शोकपरिप्लुताः ।

घात करें अथवा तू हमारा प्राण लेना चाहे, तो इस कर्मका खोटा फल विधाताकी आज्ञासे करनेवालेको अवश्य ही भोगना पडेगा ॥ २३ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! तुझे अपने ही अपराध से यह महादुख भोगना पड़ा है, तूने लोभसे, राजमदसे और मूर्खतासे भाइयोंका, पितासमान वडोंका, पुत्रोंका पौत्रोंका तथा और बहुतसे राजाओंका नाश कराया है, इसलिये ही तू स्वयं भी मारागया है ॥ २४ ॥ २५ ॥ और तेरे अपराधके कारण ही हमें तेरे भाइयोंको, तेरे सम्बन्धियोंको और सब महारथियोंको मारना पडा है, मेरी समझमें भवितव्यको कोई नहीं टालसकता ॥ २६ ॥ हे निष्पाप दुर्योधन ! तुझे अपने आपका शोक नहीं करना चाहिये, क्योंकि—तेरी मृत्यु प्रशंसाके योग्य हुई है, परंतु हे कौरव ! हमारा तो सब जीवन ही शोक करने योग्य होगया। ॥ २७ ॥ अब तो हमको ही प्यारे मित्र और बन्धुओंके वियोग के कारण बडे दुःखके साथ जीवन विताना पडेगा ॥ २८ ॥ ओः ! हम तो शोकसे विह्वल होरहे हैं ! अब हम भाइयोंकी, पुत्रोंकी और पौत्रोंकी शोकसागरमें डूबी हुई और शोकसे मूर्छित पडीहुई विधवा स्त्रियोंको कैसे देख सकेंगे, हे राजन् ! तू तो

त्वमेकः प्रस्थितो राजन् स्वर्गे ते निलयो ध्रुवः ॥२६॥ वयं नारकिसंज्ञां वै दुःखं भोच्याम दारुणम् । स्नुषाश्च प्रस्नुषाश्चैव धृतराष्ट्रस्य विह्वलाः । गर्हयिष्यन्ति नो नूनं विधवाः शोककर्षिताः ३० सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वा सुदुःखार्त्तो निशश्वास स पार्थिवः । विललाप चिरश्चापि धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि युधिष्ठिरविलापे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । अधर्मेण हतं दृष्ट्वा राजानं माधवोत्तमः । किमब्रवीत्तदा सूत बलदेवो महाबलः ॥ १ ॥ गदायुद्धविशेषज्ञो गदायुद्धविशारदः । कृतवान्रौहिणेयो यत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥२॥ सञ्जय उवाच । ऊर्वोरभिहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन ते सुतम् । रामः प्रहरतां श्रेष्ठश्चुक्रोध बलवद्बली।३। ततो मध्ये नरेन्द्राणामूर्ध्वबाहु-

---

इस लोकको छोडकर परलोकमें जारहा है; इसकारण एक तू ही सुखी है, तुझे स्वर्गमें अविचल स्थान मिलेगा ॥ २६ ॥ और हम तो नरकका दारुण दुःख भोगेंगे,शोकसे विकल और दुर्बल हुई धृतराष्ट्रके पुत्र और पौत्रोंकी विधवा स्त्रियें अवश्य ही हमारी निन्दा करेंगी और हमको कोसेंगी ॥ ३० ॥ सञ्जय कहता है, कि–हे राजा धृतराष्ट्र ! इसप्रकार दुःखसे आतुर हुए धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिर लंबे २ साँस लेतेहुए बहुत देरतक विलाप करते रहे ॥ ३१ ॥ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे सञ्जय ! भीमसेनने मेरे पुत्र कुरुराज दुर्योधनको अन्यायसे मारडाला, यह देखकर मधुवंशमें श्रेष्ठ महाबली बलदेवजीने क्या कहा था ॥१॥ बलदेवजी गदाकी नीतिके पंडित और गदायुद्धमें प्रवीण मानेजाते हैं, इसलिये अधर्मसे भरे हुए युद्धको देखकर उन्होंने जो कुछ किया हो वह मुझे सुना ॥२॥ संजयने कहा, कि–हे राजा धृतराष्ट्र ! जब भीमसेनने तुम्हारे पुत्र की साँथलोंके ऊपर गदा मारी तब यह देखकर प्रहारके करने

हलायुधः । कुर्वन्नार्तस्वरं घोरं धिग्धिग्भीमेत्युवाच ह ॥४॥ अहो धिग्यदधो नाभेः प्रहृतं धर्मविग्रहे । नैतद्दृष्टं गदायुद्धे कृतवान् यद्वृकोदरः ॥ ५ ॥ अधो नाभ्या न हन्तव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः । अयं त्वशास्त्रविन्मूढः स्वच्छन्दात् संप्रवर्त्तते ॥ ६ ॥ तस्य तत्तद्ब्रुवाणस्य रोषः समभवन्महान् । ततो राजानमालोक्य रोषसंरक्तलोचनः ॥ ७ ॥ न चैकः पतितः कृष्ण केवलं मत्समोऽसमः । आश्रितस्य तु दौर्बल्यादाश्रयः परिभत्स्यते ॥ ८ ॥ ततो लाङ्गलमुद्यम्य भीममभ्यद्रवद्बली ॥ ९ ॥ तस्योर्ध्वबाहोः सदृशं रूपमासी-

वालोंमें श्रेष्ठ और बलवानोंमें बली बलदेवजीको बड़ाही क्रोध चढ़ आया ॥ ३ ॥ उस समय उन हलधारी बलदेवजीने सब राजाओं के मध्यमें ऊँचा हाथ करके आर्त्त तथा भयानक शब्दमें कहा, कि भीमसेन ! तुझे धिक्कार है ! धिक्कार है ! ॥ ४॥ यह बड़े दुःख और धिक्कारकी बात है ! कि—जो धर्मके युद्धमें दुर्योधनके नाभिसे नीचेके भागमें गदा मारी है ! जैसा (अनर्थ) भीमसेनने किया है ऐसा कभी हमने गदायुद्धमें देखाही नहीं ॥ ५ ॥ शास्त्रने यह निश्चय करदिया है, कि—गदायुद्धमें नाभिसे नीचेके भागमें प्रहार न करें, परन्तु यह नीतिको न जाननेवाला मूढ़ भीम अपनी इच्छानुसार वर्त्ताव कर रहा है ॥६॥ ऐसी २ बातें करते हुए बलदेवजीका क्रोध बहुतही बढ़गया, हे महाराज ! फिर राजा दुर्योधनके सामनेको देखकर क्रोधके कारण लाल २ नेत्र किये हुए बलदेवजीने कहा, कि—हे कृष्ण ! यह दुर्योधन हारा नहीं है, यह तो मेरी समान ही समर्थ योधा है, इसकी समान तो कोई योधा है ही नहीं ॥ ७ ॥ ८ ॥ परन्तु आश्रितकी दुर्बलताके कारणसे आश्रयदाताका भी तिरस्कार किया जाता है (अर्थात् दुर्योधन मेरा आश्रित है और इसके अपमानसे मेरा भी अपमान हुआ है अतः मैं इसका फल देता हूं) ऐसा कहकर हाथमेंके हलको ऊँचा करके बलवान् बलदेवजी

नादात्मनः । बहुधातुविचित्रस्य श्वेतस्येव महागिरेः ॥१०॥ तमु-
त्पतन्तं जग्राह केशवो विनयान्वितः । बाहुभ्यां पीनवृत्ताभ्यां प्रय-
त्नाद्बलवद्बली ॥ ११ ॥ सितासितौ यदुवरौ शुशुभातेऽधिकं तदा ।
नभोगतौ यथा राजंश्चन्द्रसूर्यौ दिनक्षये ॥ १२ ॥ उवाच चैनं संर-
ब्धं शमयन्निव केशवः । आत्मवृद्धिर्मित्रवृद्धिर्मित्रमित्रोदयस्तथा १३
विपरीतं द्विषत्स्वेतत् षड्विधा वृद्धिरात्मनः । आत्मन्यपि च मित्रे च
विपरीतं यदा भवेत् ॥ १४ ॥ तदा विद्यान्मनोग्लानिमाशु
शान्तिकरो भवेत् । अस्माकं सहजं मित्रं पाण्डवः शुद्धपौरुषः १५
स्वकाः पितृस्वसुः पुत्रास्ते परैर्निकृता भृशम् । प्रतिज्ञापालनं धर्मः

भीमसेनके ऊपरको लपके ॥ ६ ॥ लंबे २ हाथोंवाले महात्मा बल-
देवजीका स्वरूप इस समय मानो श्वेत वर्णके हिमालय पर्वतकेसा
होगया था ॥ १० ॥ बलदेवजीको भीमसेनके ऊपरको दौड़ता
हुआ देखकर बलवानोंमें बली श्रीकृष्णने बडे विनयके साथ अ-
पनी गोल और पुष्ट भुजाओंसे उद्योग करके बलदेवजीको पकड़
लिया ॥ ११ ॥ हे राजन् ! उस समय जैसे सायंकालके समय
आकाशमें इकट्ठेहुए सूर्य और चन्द्रमा शोभा पाते हैं तैसेही यदु-
वंशमें श्रेष्ठ श्वेत रङ्गके बलदेवजी और श्याम रङ्गके श्रीकृष्णजी
की शोभा हुई ॥ १२ ॥ केशवने क्रोधमें भरेहुए बलदेवजीको
शान्त करते हुए कहा, कि-अपनी वृद्धि, शत्रुका क्षय, अपने मित्र
की वृद्धि, शत्रुके मित्रका क्षय, अपने मित्रके मित्रका उदय और
शत्रुके मित्रके मित्रका क्षय, इसप्रकार मनुष्यकी छः प्रकारकी वृद्धि
मानीजाती है, अपने ऊपर और मित्रके ऊपर जो विपरीत दशा
आपड़ती है (अर्थात् आप या अपने मित्र जब सङ्कटमें आपड़ते हैं)
और शत्रुकी तथा शत्रुके मित्रोंकी वृद्धि होती है तो उस समय
तुरन्त मनमें ग्लानि होती है (आप जानते हैं, कि-) पाण्डव
हमारे स्वाभाविक मित्र हैं और इनमें श्रेष्ठ पुरुषार्थ है ॥ १३-१५ ॥
इसके सिवाय ये हमारी फुआके पुत्र हैं, शत्रुओंने इनको बहुत

क्षत्रियस्येह वेद्म्यहम् ॥१६॥ सुयोधनस्य गदयाहं भङ्क्तास्म्यूरू महाहवे। इति पूर्वं प्रतिज्ञातं भीमेन हि सभातले ॥ १७ ॥ मैत्रेयेणाभिशप्तश्च पूर्वमेव महर्षिणा। ऊरू भेत्स्यति ते भीमो गदयेति परन्तप ॥ १८ ॥ अतो दोषं न पश्यामि मा क्रुध्यस्व प्रलम्बहन्। यौनः स्वैः सुखहार्दैश्च सम्बन्धः सह पाण्डवैः ॥१९॥ तेषां वृद्ध्या हि नो वृद्धिर्मा क्रुधः पुरुषर्षभ। वासुदेववचः श्रुत्वा सारभृत् प्राह धर्मवित् ॥ २० ॥ धर्मः सुचरितः सद्भिः स च द्वाभ्यां नियच्छति। अर्थश्चात्यर्थलुब्धस्य कामश्चातिप्रसङ्गिनः ॥ २१ ॥ धर्मार्थौ धर्म-

दुःखी किया है, (जब राजसभामें दुर्योधनने द्रौपदीसे अपनी गोदीमें बैठनेको कहा था, उस समय) भीमसेनने बीच सभामें प्रतिज्ञा की थी, कि–मैं महायुद्धमें गदा मारकर दुर्योधनकी दोनों साथलोंको तोड़डालूँगा (उस प्रतिज्ञाका भीमसेनने पालन किया है और) प्रतिज्ञाका पालन करना क्षत्रियोंका धर्म है. इस बातको मैं जानता हूं ॥ १६ ॥ १७ ॥ हे परन्तप भ्राताजी ! पहले महर्षि मैत्रेयने दुर्योधनको यह शाप भी दिया था कि–भीमसेन गदा मारकर तेरी जंघाओंको तोड़डालेगा॥१८॥इसलिये हे प्रलंबासुरका नाश करनेवाले बलदेवजी!इस काममें भीमसेनका कुछ भी अपराध नहीं देखता,आप क्रोध न करिये,पाण्डव हमारे अपने हैं कुछ पराये नहीं हैं, किन्तु सुख देनेवाले पाण्डवोंके साथ हमारा यौन (एक रुधिरका) सम्बन्ध है (हमारे दादा इनकी माताके पिता लगते हैं और अर्जुन हमारा बहनोई भी है) ॥ १९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! इसलिये इनकी उन्नति होनेसे हमारी भी उन्नति है, अतः आप क्रोध न करिये, वासुदेव कृष्णकी इस बातको सुनकर धर्मात्मा हलधर बलदेव जी बोले, कि—॥ २० ॥ सत्पुरुषोंने सदा ही धर्मका आचरण किया है, परन्तु वह धर्म, अर्थ और कामके कारण संकोचमें रहता है, अर्थके बहुत ही लोभी पुरुषका अर्थ और कामकी अति करनेवाले पुरुषका काम

कामं च कामार्थं चाप्यपीडयन्। धर्मार्थकामान् योऽभ्येति सोऽत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ २२ ॥ तदिदं व्याकुलं सर्वं कृतं धर्मस्य पीडनात्। भीमसेनेन गोविन्द कामं त्वन्तु यथात्थ माम् ॥ २३ ॥ कृष्ण उवाच। अरोषणो हि धर्मात्मा सततं धर्मवत्सलः। भवान् प्रख्यायते लोके तस्मात् संशाम्य मा क्रुधः ॥ २४ ॥ प्राप्तं कलियुगं विद्धि प्रतिज्ञां पाण्डवस्य च। आनृण्यं यातु वैरस्य प्रतिज्ञायाश्च पाण्डवः ॥ २५ ॥ सञ्जय उवाच। धर्मच्छलमपि श्रुत्वा केशवात् स विशाम्पते। नैव प्रीतिमना रामो वचनं प्राह संसदि २६ हत्वाऽधर्मेण राजानं धर्मात्मानं सुयोधनम्। जिह्मयोधीति लोके

ये दोनों धर्मके ऊपर प्रभाव (असर) डालते हैं ॥ २१ ॥ धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंका जो अविरोधी-रूपसे सेवन करता है (अर्थात् धर्माचरण ऐसा करे, कि—जिससे अर्थ और काममें हानि न पहुँचे, अर्थका सम्पादन इसप्रकार करे, कि—जिससे धर्म और काममें बाधा न पड़े तथा कामका भी सेवन ऐसा करे,कि—जिससे धर्म और अर्थमें हानि न पहुँचे,इस प्रकार त्रिवर्गका सेवन करनेवाला) वह पुरुष महासुख भोगता है ॥ २२ ॥ हे गोविन्द ! भीमसेनने धर्मका नाश करके इस मेरे कहेहुए सब मार्गको व्याकुल (गन्दा) करडाला है, तुमने मुझ से जो बात कही यह काम (मनमानी) है, परन्तु धर्मके विरुद्ध है ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णने कहा, कि—आप क्रोधरहित, सदा धर्मात्मा और धर्म पर प्रेम करनेवाले जगत्में प्रसिद्ध हो, इसलिये आप शान्ति रखिये, क्रोध न करिये ॥ २४ ॥ समझ लीजिये, कि—अब कलियुग आगया है, इसके सिवाय पाण्डुपुत्रकी की हुई प्रतिज्ञाको भी आप भूल न जाइये, पाण्डवोंको अपने वैरके और प्रतिज्ञाके ऋण (बन्धन) मेंसे छूटने दीजिये ॥ २५ ॥ सञ्जय ने कहा, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्णकी कही छलभरीं धर्म की बातोंको सुनकर भी बलदेवजीका मन प्रसन्न नहीं हुआ,

स्मिन् ख्यातं यास्यति पाण्डवः ॥ २७ ॥ दुर्योधनोपि धर्मात्मा गतिं यास्यति शाश्वतीम् । ऋजुयोधी हतो राजा धार्त्तराष्ट्रो नराधिपः ॥ २८ ॥ युद्धदीक्षां प्रविश्याजौ रणयज्ञं वितत्य च । हुत्वात्मानममित्राग्नौ प्राप चावभृथं यशः ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा रथमास्थाय रौहिणेयः प्रतापवान् । श्वेताभ्रशिखराकारः प्रययुर्द्वारकां प्रति ॥३० ॥ पञ्चालास्तु सवार्ष्णेया पाण्डवाश्च विशाम्पते । रामे द्वारवतीं याते नातिप्रमनसोऽभवन् ॥ ३१ ॥ ततो युधिष्ठिरं दीनं चिन्तापरमधोमुखम् । शोकोपहतसङ्कल्पं वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ३२ वासुदेव उवाच । धर्मराज किमर्थं त्वमधर्ममनुमन्यसे । हतबन्धोर्यदेतस्य पतितस्य विचेतसः ॥ ३३ ॥ दुर्योधनस्य भीमेन मृद्यमानं

वह राजसभामें फिर कहनेलगे, कि-॥ २६ ॥ इस भीमसेनने महात्मा राजा दुर्योधनको अधर्मसे मारडाला है, इसलिये यह जगत्में कपटयुद्ध करनेवाला ही कहलावेगा ॥ २७ ॥ और यह धृतराष्ट्रका पुत्र राजा दुर्योधन सरलतासे धर्मयुद्ध करते हुए मारा गया है, इसलिये इसको परलोकमें सनातन सद्गति मिलेगी २८ राजा दुर्योधनने युद्धकी दीक्षा लेकर और रणयज्ञको फैलाकर तथा शत्रुरूप अग्निमें अपने आपको होमकर यशरूप अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान प्राप्त किया ॥ २९ ॥ इतना कहकर श्वेत मेघ के शिखरकी समान आकारवाले, प्रतापी बलदेवजी रथमें बैठ कर द्वारकाकी ओरको चलेगये ॥ ३० ॥ हे राजन् ! बलराम जीके इसप्रकार द्वारकाकी ओर चलेजाने पर पञ्चालराजे, वृष्णिवंशके राजे और पाण्डवोंके मन कुछ एक उदास होगये ॥ ३१॥ उस समय शोकके कारण जिनके संकल्प नष्ट होगये थे, ऐसे युधिष्ठिरने दीनसा बनकर नीचेको मुख करलिया और 'अब क्या करना चाहिये' इसकी चिन्ता करनेलगे, यह देखकर श्रीकृष्ण उनसे कहनेलगे ॥ ३२ ॥ वासुदेव बोले, कि-हे धर्मराज! युधिष्ठिर ! तुमने अधर्मका अनुमोदन क्यों किया ? जिसके भाई

शिरः पदा । उपप्रेक्षसि कस्मात्त्वं धर्मज्ञः सन्नराधिप ॥ ३४ ॥ युधिष्ठिर उवाच । न ममैतत् प्रियं कृष्ण यद्राजानं वृकोदरः । पदा मूर्ध्न्यस्पृशत् क्रोधात् न च हृष्ये कुलक्षये ॥ ३५ ॥ निकृत्या निकृता नित्यं धृतराष्ट्रसुतैर्वयम् । बहूनि परुषाण्युक्त्वा वनं प्रस्थापिता स्म ह ॥ ३६ ॥ भीमसेनस्य तद्दुःखमतीव हृदि वर्त्तते । इति संचिन्त्य वार्ष्णेय मयैतत् समुपेक्षितम् ॥ ३७ ॥ तस्माद्धत्वा कृतप्रज्ञं लुब्धं कामवशानुगम् । लभतां पाण्डवः कामं धर्मेऽधर्मे च वा कृते ॥ ३८ ॥ सञ्जय उवाच । इत्युक्ते धर्मराजेन वासुदेवोऽब्रवीदिदम् । काममस्त्वेतदिति वै कृच्छ्राद्यदुकुलोद्वहः ॥ ३९ ॥ इत्युक्तो वासुदेवेन भीमप्रियहितैषिणा । अन्वमोदत तत् सर्वं यद्भी-

मर चुके हैं और जो अचेत होकर भूमिपर पड़ा हुआ है, उसके मस्तकको भीम सेन लातसे ठुकरावे, उसको हे राजन् ! तुम धर्म को जाननेवाले होकर भी क्यों देखते रहे ? ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ युधिष्ठिरने उत्तर दिया, कि–हे कृष्ण ! भीमसेनने क्रोधमें भरकर दुर्योधनके मस्तकको परसे ठुकराया, यह मुझे अच्छा नहीं लगता और कुलका नाश होनेसे भी मैं प्रसन्न नहीं हूँ ॥ ३५ ॥ परन्तु धृतराष्ट्रके पुत्रोंने सदा ही कपट करके हमें बड़े २ दुःख दिये थे, हमें बड़ी २ तीखी बातें कही थीं, हमको वन २ में भटकाया था, उस दुःखने भीमसेनके हृदयपर बड़ाभारी प्रभाव डाला है, ऐसा विचारकर ही हे कृष्ण ! मैंने भीमसेनके इस कामकी उपेक्षा की है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ और इसलिये ही मूर्ख, लोभी तथा कामके वशीभूतहुए दुर्योधनको मारकर भीमसेन अपनी इच्छाको भले ही पूरी करलेय, इस दशामें ऐसा करना धर्म हो, चाहे अधर्म हो ॥ ३८ ॥ सञ्जयने कहा, कि–हे राजा धृतराष्ट्र ! जब धर्मराजने श्रीकृष्णसे ऐसा कहा, तब यदुवंशी श्रीकृष्णने बड़े कष्टसे कहा, कि–अच्छा तो ऐसा होने दो ॥ ३९ ॥ भीमसेनका हित चाहनेवाले श्रीकृष्णने ऐसा कहकर, भीमसेनने युद्धमें जो कुछ

गेन कृतं युधि ॥ ४० ॥ भीमसेनोऽपि हत्वाजौ तव पुत्रममर्षणः । अभिवाद्याग्रतः स्थित्वा संप्रहृष्टः कृताञ्जलिः ॥ ४१ ॥ प्रोवाच सुमहातेजा धर्मराजं युधिष्ठिरम् । हर्षादुत्फुल्लनयनो जितकाशी विशाम्पते ॥ ४२ ॥ तवाद्य पृथिवी सर्वा क्षेमा निहतकण्टका । तां प्रशाधि महाराज स्वधर्ममनुपालय ॥ ४३ ॥ यस्तु कर्त्ताऽस्य वैरस्य निकृत्या निकृतिप्रियः। सोयं वै निहतः शेते पृथिव्यां पृथिवीपते ॥ ४४ ॥ दुःशासनप्रभृतयः सर्वे ते चोग्रवादिनः । राधेयः शकुनिश्चापि निहतास्तव शत्रवः ॥ ४५ ॥ सेयं रत्नसमाकीर्णा मही सवनपर्वता । उपावृत्ता महाराज त्वामद्य निहतद्विषम् ४६ युधिष्ठिर उवाच । गतो वैरस्य निधनं हतो राजा सुयोधनः । कृष्णस्य मतमास्थाय विजितेयं वसुन्धरा ॥ ४७ ॥ दिष्ट्या गत

किया था, उस सबका अनुमोदन किया ॥ ४० ॥ हे राजन् ! असहनशील भीमसेन रणमें तुम्हारे पुत्रको मारकर बड़ाही प्रसन्न हुआ और युधिष्ठिरके सामने दोनों हाथ जोड़ा खड़ा हो प्रणाम करके कहनेलगा, उस समय उसके नेत्र हर्षसे प्रफुल्लित होरहे थे और वह विजय पानेके कारण तेजसे दमक रहा था।४१।४२। उसने धर्मराजसे कहा. कि—हे महाराज ! शत्रुसे शून्य कण्टकरहित यह सब पृथिवी आजसे आपकी अधीनतामें आगयी, अब आप इसकी रक्षा करतेहुए अपने धर्मका पालन करिये ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! कपटसे प्रेम करनेवाले जिस पुरुषने कपट करके यह वैर खड़ा किया था, हे राजन् ! यह माराजाकर पृथिवी पर पड़ा है ॥ ४४ ॥ इसके सिवाय आपको कटुवचन कहनेवाले कर्ण शकुनि और दुःशासन आदि आपके शत्रु भी मारेगये ॥४५॥ हे महाराज ! रत्नोंसे भरी तथा वन और पर्वतों सहित यह पृथिवी आज शत्रुओंका संहार करनेवाले आपके वशमें आगयी है ॥ ४६ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि—बड़े सौभाग्यकी बात है, कि—उस दुर्योधन को मारकर तूने वैरका बदला लेलिया, और कृष्णकी संमति

स्त्वमानृण्यं मातुः कोपस्य चोभयोः। दिष्ट्या जयसि दुर्द्धर्ष दिष्ट्या शत्रुर्निपातितः ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेव-
सान्त्वनायां षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

धृतराष्ट्र उवाच। हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे। पांडवा सृञ्जयाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥१॥ सञ्जय उवाच। हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे। सिंहेनेव महाराज मत्तं वनगजं यथा २ प्रहृष्टमनसस्तत्र कृष्णेन सह पाण्डवाः। पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव निहते कुरुनन्दने ॥ ३ ॥ आविध्यन्नुत्तरीयाणि सिंहनादांश्च नेदिरे। नैतान् हर्षसमाविष्टानियं सेहे वसुन्धरा ॥ ४ ॥ धनूंष्यन्ये व्याक्षिपन्त ज्याश्चाप्यन्ये तथाक्षिपन्। दध्मुरन्ये महाशंखा-

में चलकर इस पृथिवीको जीत लिया ॥ ४७ ॥ यह सौभाग्यकी बात है, कि—तू अपनी माताके ऋणसे छूटगया और अपने कोपको भी तूने शान्त करलिया, अहोभाग्य है, कि—तू शत्रुका संहार करके विजयी हुआ है और हे दुराधर्ष भीम! यह सौभाग्य ही है, कि—तेरे शत्रु मरणकी शरण होगये ॥ ४८ ॥ साठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥ छ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा, कि—हे सञ्जय! भीमसेनने युद्धमें दुर्योधन को मारडाला, यह देखकर पाण्डवोंने तथा सृञ्जयोंने क्या किया ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा, कि—हे महाराज! जैसे सिंह वनके मत्त गजराजको मारडालता है, ऐसे ही भीमसेनने रणमें दुर्योधनको मारडाला, यह देखकर ॥ २ ॥ कृष्णके सहित पाण्डव अपने मनमें बड़े प्रसन्न हुए, कुरुनन्दन दुर्योधनके मारे जाने पर पञ्चाल और सृञ्जय अपने दुपट्टोंको ऊपरको उछाल२ कर हर्ष का कोलाहल करनेलगे. हर्षके भरेहुए इन सबोंको पृथिवी न सहसकी अर्थात् वे ऊपरको कूदनेलगे ॥ ३ ॥ ४ ॥ उस समय कोई अपने धनुषों पर टङ्कार देने लगे, कोई प्रत्यञ्चाका शब्द

नन्ये जघ्नुश्च दुन्दुभीन् ॥ ५ ॥ चिक्रीडुश्च तथैवान्ये जहसुश्च तवाहिताः । अब्रुवंश्चासकृद्वीरा भीमसेनमिदं वचः ॥ ६ ॥ दुष्करं भवता कर्म रणेश्च सुमहत् कृतम् । कौरवेन्द्रं रणे हत्वा गदयातिकृतश्रमम् ॥ ७ ॥ इन्द्रेणेव हि वृत्रस्य वधं परमसंयुगे । त्वया कृतममन्यन्त शत्रोर्वधमिमं जनाः ॥ ८ ॥ चरन्तं विविधान्मार्गान् मण्डलानि च सर्वशः । दुर्योधनमिमं शूर कोन्यो हन्याद् वृकोदरात् ॥ ९ ॥ वैरस्य च गतः पारं त्वमिहान्यैः सुदुर्गमम् । अशक्यमेतदन्येन सम्पादयितुमीदृशम् ॥ १० ॥ कुञ्जरेणेव मत्तेन वीर संग्राममूर्द्धनि । दुर्योधनशिरो दिष्ट्या पादेन मृदितं त्वया ॥ ११ ॥ सिंहेन महिषस्येव कृत्वा सङ्गरमद्भुतम् । दुःशासनस्य रुधिरं दिष्ट्या

करनेलगे, कोई शंख बजानेलगे और कोई दुन्दुभी बजानेलगे ॥ ५ ॥ कितने ही तुम्हारे शत्रु विलास करनेलगे और कोई हँसने लगे तथा वीर पुरुष भीमसेनसे वार २ यह बात कहने लगे, कि ॥ ६ ॥ गदायुद्धकी विद्यामें परिश्रम करनेवाले कौरवराजको रण में गदासे मारकर तुमने आज महाकठिन और बड़ाभारी काम तथा अथाक परिश्रम किया है ॥ ७ ॥ तुमने जो शत्रुको रणमें मारा है इस तुम्हारे कामको लोगोंने महासंग्राममें इन्द्रके हाथसे होनेवाले वृत्रवधकी समान माना है ॥ ८ ॥ दुर्योधन वीर था, सब प्रकारके मार्ग और मंडलों (पैंतरों) में फिरनेवाला था, उसको भीमसेनके सिवाय दूसरा कौन योधा मारसकता था ? ॥ ९ ॥ दूसरे जिसके पार नहीं पहुँच सकते थे ऐसे वैरसागरके तुम पार पहुँचगये, यह काम दूसरेसे इसप्रकार नहीं होसकता था ॥ १० ॥ हे वीर ! मदमत्त हाथीकी समान तुमने रणके मुहाने पर दुर्योधनके मस्तकका अपने चरणसे कुचला, यह काम भी बड़ा अच्छा हुआ ॥ ११ ॥ जैसे सिंह भैंसेके साथ महायुद्ध करके उसके रुधिरको पीता है, तैसे ही हे निर्दोष भीम ! तुमने भी दुःशासनके साथ उत्तम युद्ध करके उसके रुधिरको पिया,

पोतं त्वयानघ ॥ १२ ॥ ये त्रिमथकू राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् । मूर्ध्नि तेषां कृतः पादो दिष्ट्या ते स्वेन कर्मणा ॥ १३ ॥ अमित्राणामधिष्ठानाद्वधाद् दुर्योधनस्य च । भीमं दिष्ट्या पृथिव्यान्ते प्रथितं सुमहद् यशः ॥ १४ ॥ एवं नूनं हते वृत्रे शक्रं नन्दन्ति बन्दिनः । तथा त्वां निहता मित्रं वयं नन्दाम भारत १५ दुर्योधनवधे यानि रोमाणि हृषितानि नः । अद्यापि न विकृष्यन्ति तानि तद्विद्धि भारत ॥ १६ ॥ इत्यब्रुवन् भीमसेनं वातिकास्तत्र सङ्गताः । तान् हृष्टान् पुरुषव्याघ्रान् पञ्चालान् पाण्डवैः सह १७ ब्रुवतोऽसदृशं तत्र प्रोवाच मधुसूदनः । न न्याय्यं निहतं शत्रुं भूयो हन्तुं नराधिपाः ॥१८॥ असकृद्वाग्भिरुग्राभिर्निहतो ह्येष मन्दधीः ।

यह भी ठीक ही किया ॥ १२ ॥ और जिन्होंने धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरका अपमान किया था, उनके शिरों पर तुमने पराक्रम करके चरण रक्खा, यह काम भी बहुत ही अच्छा किया है १३ हे भीम ! तुमने शत्रुओंका पराजय करके और दुर्योधनका नाश करके पृथिवी पर बड़ाभारी यश फैलाया, यह ठीक किया १४ हे भारत ! जैसे वृत्रासुरको मारने पर बन्दीजनोंने इन्द्रकी स्तुति की थी, ऐसे ही शत्रुओंका संहार करनेवाले तुम्हारा हम अभिनन्दन करते हैं ॥ १५ ॥ हे भारत ! जिस समय तुमने दुर्योधन को मारा, उस समय हमारे रुएँ २ में ऐसा हर्ष समागया था, कि—अभी तक वे वैसे ही हर्षमें भरेहुए हैं यह बात तुमको विदित रहे ॥ १६ ॥ इसप्रकार तहाँ इकट्ठेहुए बातें करनेवाले पुरुष भीमसेनसे कहने लगे, इसके सिवाय पुरुषोंमें व्याघ्रसमान पञ्चाल और पाण्डव भी भीमसेनके पराक्रमको देखकर परम प्रसन्न होगये थे ॥ १७ ॥ वे भीमसेनसे अघटित प्रशंसाकी बातें कहरहे थे, उनसे मधुसूदन कृष्णने कहा, कि—हे राजाओं ! बारम्बार तीखे वचन कहकर मरेहुए शत्रुको मारना उचित नहीं है, यह मन्दबुद्धि जबसे निर्लज्ज होगया था, तबसे मराहुआ ही

तदैवैष हतः पापो यदैव निरपत्रपः ॥ १९ ॥ लुब्धः पापसहायश्च सुहृदां शासनातिगः । बहुशो विदुरद्रोणकृपगांगेयसृञ्जयैः २० पांडुभ्यः प्रार्थ्यमानोपि पित्र्यमंशं न दत्तवान् । नैष योग्योद्य मित्रं वा शत्रुर्वा पुरुषाधमः ॥ २१ ॥ किमनेनातिशुग्नेन वाग्भिः काष्ठसधर्मणा । रथेष्वारोहत क्षिप्रं गच्छामो वसुधाधिपाः ॥ २२ ॥ दिष्ट्या हतोऽयं पापात्मा सामात्यज्ञातिबान्धवः । इति श्रुत्वा त्वधिक्षेपं कृष्णाद्द दुर्योधनो नृपः ॥ २३ ॥ अमर्षवशमापन्न उदतिष्ठद्विशाम्पते । स्फिग्देशेनोपविष्टः स दोर्भ्यां विष्टभ्य मेदिनीम् ॥ २४ ॥ दृष्टिं भ्रूसंकटां कृत्वा वासुदेवे न्यपातयत् । अर्द्धोन्नतशरीरस्य रूपमासीन्नृपस्य तु ॥ २५ ॥ क्रुद्धस्याशीविषस्येव

था ॥ १८ ॥ १९ ॥ यह लोभी था, इसके मित्र पापी थे, यह हितैषियोंके समझानेको नहीं सुनता था, विदुर, द्रोण, कृपाचार्य और सृञ्जयने, पाण्डवोंको उनका अपने पितासे पहुँचा हुआ राज्यका भाग देनेके लिये अनेकों प्रकारसे इसकी विनय की, तो भी इसने पांडवोंको उनका भाग नहीं दिया, यह अधम आज न मित्र कहनेके योग्य रहा, न शत्रु कहनेके योग्य रहा २०॥२१ हे राजाओं! अब तो यह काठकी समान है, इसको शब्दके बाणोंसे अत्यन्त पीडा देनेमें कोई लाभ नहीं है, चलो, चलो, शीघ्रतासे रथोंमें बैठो, अपनी छावनीमें चलें ॥ २२ ॥ यह पापी मन्त्रियों, भाइयों और सम्बन्धियोंके साथ मारागया, यह ठीक ही हुआ है, श्रीकृष्णकी ऐसी तिरस्कारकी वातोंको सुनकर हेराजन्! दुर्योधन बड़े क्रोधमें भरगया, वह दोनों हाथोंको पृथिवी पर टेककर बैठा होगया और नितम्बभागसे पृथिवी पर बैठकर श्रीकृष्णकी ओरको तिरछी भ्रकुटि करके देखनेलगा, इस समय दुर्योधनका शरीर टेढ़ा वेढ़ा होगया था, इसकारण वह, जिसका पूँछ कटगयी हो ऐसे क्रोधी और विषधर सर्पकी समान मालूम

छिन्नपुच्छस्य भारत । प्राणान्तकरणीं घोरां वेदनामप्यचिन्तयन् २६
दुर्योधनो वासुदेवं वाग्भिरुग्राभिरार्दयत् । कंसदासस्य दायाद न ते
लज्जास्त्यनेन वै ॥ २७ ॥ अधर्मेण गदायुद्धे यदहं विनिपातितः ।
ऊरू भिन्धीति भीमस्य स्मृतिं मिथ्या प्रयच्छता ॥ २८ ॥ किन्न
विज्ञातमेतन्मे यदर्जुनमवोचथाः । घातयित्वा महीपालानृजुयुद्धान्
सहस्रशः ॥ २९ ॥ जिह्मैरुपायैर्बहुभिर्न ते लज्जा न ते घृणा ।
अहन्यहनि शूराणां कुर्वाणः कदनं महत् ॥ ३० ॥ शिखण्डिनं
पुरस्कृत्य घातितस्ते पितामहः । अश्वत्थाम्नः सनामानं हत्वा नागं
सुदुर्मते ॥ ३१ ॥ आचार्यो न्यासितः शस्त्रं तत् किं न विदितं मम ।
स चानेन नृशंसेन धृष्टद्युम्नेन वीर्यवान् ॥ ३२ ॥ पात्यमानस्त्वया
दृष्टा न चैनं त्वमवारयः । वधार्थं पाण्डुपुत्रस्य याचितां शक्तिमेव

होता था, उसको ऐसी वेदना होरही थी, कि—मानो प्राणोंका अन्त आपहुँचा हो, तो भी उसको कुछ न गिनकर तीखी वाणी से कृष्णको पीड़ा देताहुआ कहनेलगा, कि—हे कंसके दासपुत्र ! तूने भीमको 'दुर्योधनकी दोनों जंघाओंको तोड़ डाल, ऐसी अधर्मभरी याद दिलाकर, गदायुद्धमें मुझे अधर्मसे मरवाडाला है, इससे क्या तुझे लज्जा नहीं आती ? ॥ २३-२८ ॥ क्या तू यह समझता है, कि—तूने जो मेरी जाँघे तोड डालनेके लिये अर्जुनसे कहा था, यह बात मुझे मालूम नहीं है ? ॥ २९ ॥ सरलतासे युद्ध करनेवाले हजारों राजाओंका कपटभरे उपायों से तूने ही नाश करवाया है ! इससे भी क्या तुझे लज्जा और घृणा नहीं आती ? ॥ ३० ॥ तूने ही शिखंडीको आगे करके हमारे पितामहको मरवाडाला, अरे दुष्टबुद्धि कृष्ण ! तूने ही अश्वत्थामा नामके हाथीको मरवाकर 'अश्वत्थामा मारागया' यह सूचना देतेहुए द्रोणाचार्यको भयभीत करदिया था और उन से शस्त्र रखवा दिया था, क्या यह सब मुझे मालूम नहीं है ? और क्रूरहृदय धृष्टद्युम्न वीर्यवान् द्रोणाचार्यको मारे डालता था

च ॥ ३३ ॥ घटोत्कचे व्यंसयतः कस्त्वत्तः पापकृत्तमः । छिन्न-
हस्तः प्रायगतस्तथा भूरिश्रवा बली ॥ ३४ ॥ त्वया निसृष्टेन हतः
शैनेयेन महात्मना । कुर्वाणश्चोत्तमं कर्म कर्णः पार्थजिगीषया ३५
व्यसनेनाश्वसेनस्य पन्नगेन्द्रसुतस्य वै । पुनश्च पतिते चक्रे
व्यसनार्त्तः पराजितः ॥ ३६ ॥ पातितः समरे कर्णश्चक्रव्यग्रोऽ-
ग्रणीर्नृणाम् । यदि माञ्चापि कर्णञ्च भीष्मद्रोणौ च संयुगे ३७
ऋजुना प्रतियुध्येथा न ते स्याद्विजयो ध्रुवम् । त्वया पुनरनार्येण
जिह्ममार्गेणपार्थिवाः ॥ ३८ ॥ स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो वयञ्चान्ये च
घातिताः । वासुदेव उवाच । हतस्त्वमसि गान्धारे सभ्रातृसुतबा-

उसको देखतेहुए भी तूने रोका नहीं था, पांडुकुमार अर्जुनका नाश करनेके लिये जो शक्ति कर्णने इन्द्रसे पायी थी, उसका प्रयोग घटोत्कचके ऊपर तूने ही करवाया था,तुझसे अधिक पापी और कौन होगा ? ऐसे ही जब बलवान् भूरिश्रवाका हाथ कट गया, तब वह युद्धको छोड़कर मरनेके लिये अनशन व्रत लेनेको तयार हुआ था, तो भी उसको मरवानेके लिये तेरे ही प्रेरणा करनेसे महात्मा सात्यकिने उसको मारा था, वीर कर्णने तो अर्जुनको जीतनेके लिये बड़े २ पराक्रम किये थे, परन्तु तूने बाणरूप हुए तक्षक नागके पुत्र अश्वसेनको बाणमेंसे छटकादिया था, जब कर्णके रथका पहिया भूमिमें घुसगया था और वह दुःखी तथा पराजितसा होगया था, तब मनुष्योंमें आगे गिने-जानेवाले कर्णको अर्जुनके हाथसे रणमें तूने ही मरवाया था, मैं और कर्ण यदि साथ होते, अथवा भीष्म और द्रोण यदि साथ होते ॥ ३१–३७ ॥ और तू हमारे साथ धर्मसे युद्ध करता तो अवश्य ही तेरा पराजय होता, परन्तु तू तो नार्य है और तूने स्वधर्माचरण करनेवाले हमारा तथा दूसरे राजाओंका कपटके उपायोंसे नाश करवाया है, वासुदेवने कहा, कि–अरे गान्धारी के पुत्र ! अधर्मके माग पर चलनेवाला तू, तेरे भाई, पुत्र, सम्बन्धी

न्वयः ॥ ३९ ॥ सगणः ससुहृच्चैव पापमार्गमनुष्ठितः । तवैव दुष्कृतैर्वीरौ भीष्मद्रोणौ निपातितौ ॥४०॥ कर्णश्च निहतः संख्ये तव शीलानुवर्त्तकः । याच्यमानं मया मूढ पित्र्यमंशं न दित्ससि ॥ ४१ ॥ पाण्डवेभ्यः स्वराज्यञ्च लोभाच्छकुनिनिश्चयात् । विषं ते भीमसेनाय दत्तं सर्वे च पाण्डवाः ॥ ४२ ॥ मदीपिता जतुगृहे मात्रा सह सुदुर्मते । सभायां याज्ञसेनी च क्लिष्टा द्यूते रजस्वला ॥ ४३ ॥ तदैव तावद् दुष्टात्मन् वध्यस्त्वं निरपत्रप । अनक्षज्ञञ्च धर्मज्ञं सौवलेनाक्षवेदिना ॥ ४४ ॥ निकृत्या यत् पराजैषीस्तस्मादसि हतो रणे । जयद्रथेन पापेन यत् कृष्णा क्लेशिता वने ॥ ४५ ॥ यातेषु मृगयाञ्चैव तृणविन्दोरथाश्रमम् ।

सेवक और मित्र तेरे पापके ही कारणसे मरे हैं, वीर भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य भी तेरे ही पापोंसे मरे हैं ॥ ३८—४० ॥ कर्ण भी तेरे स्वभावके अनुसार चलनेसे ही रणमें मारागया है, अरे मूढ़ ! मैंने तेरे पास जाकर पांडवोंको उनके पिताका राज्यभाग देनेके लिये याचना की थी,तो भी तूने लोभवश तथा शकुनि के सिखानेमें आकर पांडवोंको उनके पिताका भाग नहीं दिया, किन्तु अरे दुष्टवुद्धि ! तूने भीमसेनको विष दिया था, पांडवोंको कुन्ती माताके सहित लाक्षाभवनमें भस्म करवाडालनेका कपट किया था, जुआ खेलनेकी सभामें यज्ञसेनकी पुत्री रजस्वला द्रौपदीको तूने घसीटकर मँगवाया था ॥४१–४३॥ अरे दुष्टात्मा और निर्लज्ज!उस समय ही तुझे मारडालना चाहिये था, जो युधिष्ठिर जुएसे सर्वथा अनजान और धर्मात्मा थे,उनको तूने कपट करके शकुनिके द्वारा(जो कि–जुआ खेलनेमें चतुर था,उसके साथ खिलवाकर) जुएमें हरवाया था, इसलिये ही तू रणमें मार डाला गया है, जब पाडव वनवासमें थे और शिकार खेलनेको वनमें गये थे, उस समय द्रौपदी तृणविन्दुके आश्रममें अकेली

अभिमन्युश्च यद्वालो एको बहुभिराहवे ॥ ४६ ॥ त्वद्दोषैर्निहतः पापस्तस्मादसि हतो रणे। यान्यकार्याणि चास्माकं कृतानीति प्रभाषसे ॥ ४७ ॥ वैगुण्येन तवात्यर्थं सर्वं हि तदनुष्ठितम् । बृहस्पतेरुशनसो नोपदेशः श्रुतस्त्वया ॥ ४८ ॥ वृद्धा नोपासिताश्चैव हितं वाक्यं न ते श्रुतम् । लोभेनातिबलेन त्वं तृष्णया च वशीकृतः ॥ ४९॥ कृतवानस्य कार्याणि विपाकस्तस्य भुज्यताम्। दुर्योधन उवाच। अधीतं विधिवद्दत्तं भूः प्रशास्ता ससागरा ५० मूर्ध्नि स्थितममित्राणां कोऽनुस्वन्ततरो मया । यदिष्टं क्षत्रबन्धूनां स्वधर्ममनुपश्यताम् ॥ ५१ ॥ तदेवं निधनं प्राप्तं कोऽनुस्वन्ततरो मया । देवार्हा मानुषा भोगाः प्राप्ता असुलभा नृपैः ॥५२॥ ऐश्व-

थी, यह अवसर पाकर तेरे बहनोई पापी जयद्रथने उसका हरण किया (यह तेरी पापभरी संमतिका ही परिणाम था), युद्धमें बालक और अकेले अभिमन्युको बहुतसोंने घेरकर मारडाला था, यह भी तेरा ही अपराध था और इसकारणसे ही हे पापी ! आज तू रणमें मारागया है, तू कहता है, कि–हमने ही सब अकाज (अधर्म) किये हैं, परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो ये सब अकार्य हमें तेरे ही अत्याचारके कारण करने पड़े हैं, तूने बृहस्पतिका और शुक्राचार्यका उपदेश नहीं सुना है, तूने वृद्धोंकी सेवा नहीं की है, तूने हितकारी उपदेश नहीं सुना है, किन्तु तूने तो महालोभ और तृष्णाके वशमें होकर अकार्य ही कियेहैं, इसलिये अब उन अकार्योंके परिणामको भोग, दुर्योधन ने कहा, कि–हे कृष्ण ! मैंने विधिपूर्वक वेदोंका अध्ययन किया है, दान दिये हैं, समुद्रपर्यन्तके भूमंडल पर राज किया है ॥४९॥ ॥५०॥ शत्रुओंके शिरपर पैर रक्खा है (तब कहिये) मुझसे अधिक भाग्यशाली दूसरा कौनसा पुरुष होसकता है ? क्षत्रियों का प्यारा युद्धका मरण भी मैंने पालिया है, इसलिये मुझसे अधिक भाग्यशाली दूसरा कौन पुरुष है ? देवताओंके योग्य

यच्चोत्तमं प्राप्तं कोऽनुस्वन्ततरो मया। ससुहृत्सानुगश्चैव स्वर्गं गन्ताहमच्युत ॥ ५३ ॥ यूयं विहतसंकल्पा शोचन्तो वर्त्तयिष्यथ सञ्जय उवाच। अस्य वाक्यस्य निधने कुरुराजस्य धीमतः ५४ अपतत् सुमहद्वर्षं पुष्पाणां पुण्यगन्धिनाम्। अवादयन्त गन्धर्वा वादित्रं सुमनोहरम् ॥ ५५ ॥ जगुश्चाप्सरसो राज्ञो यशः सम्बद्धमेव च। सिद्धाश्च मुमुचुर्वाचः साधु साध्विति पार्थिव ॥ ५६ ॥ ववौ च सुरभिर्वायुः पुण्यगन्धो मृदुः सुखः। व्यराजंश्च दिशः सर्वा नभो वैदूर्यसन्निभम् ॥ ५७ ॥ अत्यद्भुतानि ते दृष्ट्वा वासुदेवपुरोगमाः। दुर्योधनस्य पूजान्तु दृष्ट्वा व्रीडामुपागमन् ॥ ५८ ॥ हतांश्चाधर्मतः श्रुत्वा शोकार्त्ताः शुशुचुर्हि ते। भीष्मं द्रोणं तथा कर्णं भूरिश्रवसमेव च ॥ ५९ ॥ तांस्तु चिन्तापरान् दृष्ट्वा पाण्ड-

---

और जो दूसरे राजाओंको नहीं मिल सकते, ऐसे, मनुष्योंके उचित भोग भी मैंने भोगे हैं और उत्तम ऐश्वर्य पाया है तो फिर मुझसे अधिक भाग्यशाली दूसरा कौन होसकता है? हे अच्युत! मैं तो अपने मित्र, सम्बन्धी और अनुचरोंके साथ स्वर्गमें जाऊँगा ५१—५३ परन्तु जिनके संकल्प भग्न करदिये हैं ऐसे तुम तो शोकमें ही जीवनको विताओगे, सञ्जयने कहा, कि—हे राजन्! बुद्धिमान् कुरुराज दुर्योधनकी यह बात ज्योंही पूरी हुई, कि—उसके ऊपर पवित्र और सुगन्धित पुरुषोंकी घनी वर्षा होनेलगी, गन्धर्व बड़े मनोहर बाजेको बजानेलगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अप्सराएं इकट्ठी हो कर उस राजाके यशको गानेलगीं, और हे राजन्! सिद्ध पुरुष धन्य धन्य कहकर राजा दुर्योधनकी सराहना करनेलगे ॥ ५६ ॥ पवित्र सुगन्धिवाला सुखदायक वायु मन्द २ चलनेलगा, सब दिशाओंमें प्रकाश होउठा और आकाश वैदूर्यमणिकी समान स्वच्छ होगया ॥ ५७ ॥ इसप्रकार अति अद्भुत घटनाओंको देख कर तथा देवताओंने जो दुर्योधनकी पूजा की, उसको देखकर श्रीकृष्ण आदि सब लज्जित होगये ५८ दूसरी ओर (आकाश-

वान् दीनचेतसः । प्रोवाचेदं वचः कृष्णो मेघदुन्दभिःनिस्वनः६०
नैष शक्योऽतिशीघ्रास्त्रस्ते च सर्वे महारथाः । ऋजुयुद्धेन विक्रान्ता
हन्तुं युष्माभिराहवे ॥ ६१ ॥ नैष शक्यः कदाचित्तु हन्तुं धर्मेण
पार्थिवः । ते वा भीष्ममुखाः सर्वे महेष्वासा महारथाः ॥ ६२ ॥
मयाऽनेकैरुपायैस्तु मायायोगेने चासकृत् । हतास्ते सर्व एवाजौ
भवतां हितमिच्छता ॥ ६३ ॥ यदि नैवंविधं जातु कुर्यां जिह्म-
महं रणे । कुतो वो विजयो भूयः कुतो राज्यं कुतो धनम् ॥६४॥
ते हि सर्वे महात्मानश्चत्वारोऽतिरथा भुवि । न शक्या धर्मतो हन्तुं
लोकपालैरपि स्वयम् ॥ ६५ ॥ तथैवायं गदापाणिर्धार्त्तराष्ट्रो
गतक्लमः । न शक्यो धर्मतो हन्तुं कालेनापीह दण्डिना ॥६६॥

वाणी हुई, कि-) भीष्म, द्रोण, कर्ण और भूरिश्रवाको अधर्म से मारागया है, ऐसी ध्वनिको सुन पाण्डव शोकाकुल होकर पछतावा करनेलगे, पांडवोंको शोकातुर और उदासमन देखकर श्रीकृष्णने मेघ और दुन्दुभीकी समान गम्भीर वाणीमें उनसे कहा, कि—॥ ५९ ॥ ६० ॥ यह दुर्योधन तथा ये सब महारथी अस्त्रविद्यामें बड़े ही चतुर और शीघ्रतासे अस्त्रोंको चलानेवाले थे तुमने इनके साथ धर्मकी रीतिसे युद्ध किया होता तो इनको मार नहीं सकते ॥ ६१ ॥ तथा इस दुर्योधन राजाको भी तुम धर्मसे कभी नहीं मार सकते थे, मैंने केवल तुम्हारा हित करनेकी इच्छा सेही कपटके भरे अनेकों उपाय वतलाकर भीष्म आदि महा-धनुषधारियोंको और महारथी पुरुषोंको बरावर मरवादिया है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ यदि मैं रणमें इसप्रकारकी कपटनीतिको नहीं वतलाता तो तुम्हारी विजय कहाँसे होती? तथा तुम्हें फिर राज्य और धन भी कहाँसे मिलता ॥ ६४ ॥, वे चारों महात्मा पृथिवी पर अतिरथी थे लोकपाल भी उनको धर्मयुद्धसे नहीं मारसकते थे, वे ऐसे समर्थ थे ॥ ६५ ॥ कभी न थकनेवाले गदाधारी दुर्योधनको तो दण्डधारी स्वयं काल भी धर्मयुद्धमें नहीं मारसकता

न च वो हृदि कर्त्तव्यं यदयं घातितो रिपुः । मिथ्या वध्यास्तथोपायैर्बहवः शत्रवोऽधिकाः ॥ ६७ ॥ पूर्वैरनुगतो मार्गो दैवैरसुरघातिभिः । सद्भिश्चानुगतः पन्थाः स सर्वैरनुगम्यते ॥ ६८ ॥ कृतकृत्याः स्म सायाह्ने निवासं रोचयामहे । साश्वनागरथाः सर्वे विश्रामो नराधिपाः ॥ ६९ ॥ वासुदेववचः श्रुत्वा तदानीं पांडवैः सह । पञ्चाला भृशसंहृष्टा विनेदुः सिंहसंघवत् ॥ ७० ॥ ततः माध्मापयन् शंखान् पाञ्चजन्यञ्च माधवः । हृष्टा दुर्योधनं दृष्ट्वा निहतं पुरुषर्षभ ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि कृष्णपांडवसम्वादे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

सञ्जय उवाच । ततस्ते प्रययुः सर्वे निवासाय महीक्षितः ।

था ॥ ६६ ॥ इसलिये इस शत्रुको हमने मारा है, यह बात तुम अपने मनमें न समझ बैठना, मैंने ही मायावी उपायोंसे तुम्हारे बहुतसे शत्रुओंको मारा है ॥ ६७ ॥ पहले समयमें देवताओंने भी असुरोंको मारनेके लिये ऐसी ही नीति ग्रहण की थी, सत्पुरुष जिस मार्ग पर चलते हैं और पुरुष भी उस ही मार्गसे उन के पीछे २ चलते हैं ॥ ६८ ॥ हम अपने काममें विजय पागये, इसलिये अब हम सब घोड़े, हाथी और रथोंके सहित सायंकाल के समय अपनी छावनीमें जाकर निवास करें ॥ ६९ ॥ श्रीकृष्ण की इस बातको सुनकर उस समय पांडवोंके साथ पाञ्चाल बड़े ही हर्षमें भरगये और सिंहोंकी टोलीकी समान बड़ीभारी गर्जना करउठे, दुर्योधनको घायल होकर पड़ाहुआ देखकर सब लोग हर्षमें आकर अपने २ शंख बजानेलगे तथा माधव कृष्णने भी अपना पाञ्चजन्य शंख बजाया ॥ ७१ ॥ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥

सञ्जय कहता है, कि–हे राजा धृतराष्ट्र ! फिर परिघकी समान बाहुवाले सब राजे प्रसन्नतासे अपने २ शंख बजातेहुए

शंखान् प्रध्मापयन्तो वै हृष्टाः परिघबाहवः ॥ १ ॥ पाण्डवान् गच्छतश्चापि शिविरं नो विशाम्पते। महेष्वासोऽन्वगात् पश्चात् युयुत्सुः सात्यकिस्तथा ॥ २ ॥ धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च सर्वशः। सर्वे चान्ये महेष्वासाः प्रययुः शिविराण्युत ॥ ३ ॥ ततस्ते प्राविशन् पार्था हतत्विट्कं हतेश्वरम्। दुर्योधनस्य शिविरं रङ्गवद्विसृते जने॥ ४ ॥ गतोत्सवं पुरमिव हृतनागमिव ह्रदम्। स्त्रीवर्षवरभूयिष्ठं वृद्धामात्यैरधिष्ठितम् ॥ ५ ॥ तत्रैतान् पर्युपातिष्ठन् दुर्योधनपुरःसराः। कृताञ्जलिपुटा राजन् काषायमलिनाम्बराः ॥ ६ ॥ शिविरं समनुप्राप्य कुरुराजस्य पाण्डवाः। अवतेरुर्महाराज रथेभ्यो रथसत्तमाः ॥ ७ ॥ ततो गाण्डीवधन्वानमभ्यभाषत केशवः। स्थितः प्रियहिते नित्यमतीव भरतर्षभ ॥ ८ ॥

अपनी २ छावनीकी ओरको चलदिये ॥ १ ॥ महाधनुषधारी पांडव भी अपनी छावनीकी ओर चले गए, महाधनुषधारी युयुत्सु, सात्यकी ॥२॥ धृष्टद्युम्न, शिखंडी और द्रौपदीके पाँचों पुत्र तथा और २ धनुषधारी भी उनके पीछे २ चलदिये ॥ ३ ॥ पांडव, मनुष्योंसे रहित रणभूमिकी समान दुर्योधनकी निस्तेज और विना राजाकी छावनीमें जापहुँचे, वह छावनी सर्परहित बिलकी समान, उत्सवरहित नगरीकी समान दीखी, उसमें हीजड़े (खोजे) रानियें और बूढे मन्त्री बैठे थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ पांडवोंको छावनीकी ओरको आतेहुए देखकर ये दुर्योधनके परिचारक मैले वस्त्र पहरकर दोनों हाथ जोड़े पांडवोंकी सेवा करनेको उद्यत होगये ॥ ६ ॥ हे महाराज ! महारथी पांडव कुरुराजकी छावनीके समीपमें जापहुँचे, तब अपने २ रथोंमेंसे नीचे उतर पड़े ॥ ७ ॥ हे भरतवंशी श्रेष्ठ राजन् ! परन्तु उस समय पांडवोंके प्यारे और नित्य उनके हितमें लगे रहनेवाले श्रीकृष्णने छावनीको देखकर गांडीवधनुषधारी अर्जुनसे कहा, कि-॥ ८ ॥

अवरोपय गाण्डीवमक्षय्यौ च महेषुधी । अथाहमवरोक्ष्यामि पश्चाद्भरतसत्तम ॥ ९ ॥ स्वयञ्चैवावरोह त्वमेतत् श्रेयस्तवानघ । तच्चाकरोत्तथा वीरः पाण्डुपुत्रो धनञ्जयः ॥ १० ॥ अथ पश्चात्ततः कृष्णो रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम् । अवारोहत मेधावी रथाद्गाण्डीवधन्वनः ॥ ११ ॥ तथावतीर्णे भूतानामीश्वरे सुमहात्मनि । कपिरन्तर्दधे दिव्यो ध्वजो गांडीवधन्विनः ॥१२॥ स दग्धो द्रोणकर्णाभ्यां दिव्यैरस्त्रैर्महारथः । अनादीप्ताग्निना ह्याशु प्रजज्वाल महीपते ॥ १३ ॥ सोपासङ्गः सरश्मिश्च साश्वः सयुगबन्धुरः । भस्मी भूतोऽपतद्भूमौ रथो गाण्डीवधन्वनः ॥१४॥ तं तथा भस्मभूतन्तु दृष्ट्वा पाण्डुसुताः प्रभो । अभवन् विस्मिता राजन्नर्जुनश्चेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥ कृताञ्जलिः सप्रणयं प्रणिपत्या-

हे भरतवंशके श्रेष्ठ पुत्र ! हे अनघ ! तू अपने गांडीव धनुषको तथा अपने दोनों अक्षय भाथोंको कन्धे परसे उतार डाल और रथमेंसे नीचे उतर, फिर मैं रथ परसे उतरूँगा, ऐसा करने में ही तेरा कल्याण है, यह सुनकर पांडुका वीर पुत्र अर्जुन रथ परसे पहले नीचे उतर पड़ा ॥९–१०॥ फिर बुद्धिमान् श्रीकृष्ण घोड़ाकी रासोंको हाथमेंसे छोड़कर अर्जुनके दिव्य रथमेंसे नीचे उतर पड़े ॥ ११ ॥ प्राणियोंके ईश्वर महात्मा श्रीकृष्णजी ज्यों ही रथमेंसे उतरे, कि–अर्जुनके रथकी ध्वजा पर बैठाहुआ दिव्य वानर तत्काल अदृश्य होगया ॥ १२ ॥ हे राजन् ! फिर अर्जुन का वह बडा भारी रथ पहले द्रोण और फिर कर्णके दिव्य अस्त्रोंसे भस्म होगया, तो भी सर्वथा खाक नहीं हुआ था वह, श्रीकृष्ण के उतरनेके अनन्तर और दिव्य वानरके अन्तर्धान होनेके बाद पहिये, धुरी, डोरी और घोड़ोंके सहित विना अग्निके ही एकाएकी बलने लगा, और भस्म होकर भूमिपर गिरगया ॥१३।१४॥ हे राजन् ! पांडव इसप्रकार अर्जुनके रथको भस्म हुआ देखकर आश्चर्यमें पड़गये और अर्जुनने दोनों हाथ जोड़ अभिवादन करके

भिवाद्य च । गोविन्द कस्माद्भगवन्रथो दग्धोऽयमग्निना ॥ १६ ॥ किमेतन्महदाश्चर्यमभवद्यदुनन्दन । तन्मे ब्रूहि महाबाहो श्रोतव्यं यदि मन्यसे ॥ १७ ॥ वासुदेव उवाच । अस्त्रैर्बहुविधैर्दग्धः पूर्वमेवायमर्जुन । मदधिष्ठितत्वात् समरे न विशीर्णः परन्तप ॥१८॥ इदानीन्तु विशीर्णोयं दग्धो ब्रह्मास्त्रतेजसा । मया विमुक्तः कौन्तेय त्वय्यद्य कृतकर्मणि ॥ १९ ॥ ईषदुत्स्मयमानश्च भगवान् केशवोऽरिहा । परिष्वज्य च राजानं युधिष्ठिरमभाषत ॥ २० ॥ दिष्ट्या जयसि कौन्तेय दिष्ट्या ते शत्रवो जिताः । दिष्ट्या गांडीवधन्वा च भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ २१ ॥ त्वञ्चापि कुशली राजन् माद्रीपुत्रौ च पांडवौ । मुक्ता वीरक्षयादस्मात् संग्रामान्निहतद्विषः ॥ २२ ॥ क्षिप्रमुत्तरकालानि कुरु कार्याणि भारत । उपया-

प्रेमके साथ श्रीकृष्णजीसे कहा, कि-हे गोविंद! हेभगवन्! यह मेरा रथ एकायकी अग्निसे क्यों जलगया ? ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे यदुनन्दन ! यह बड़ाभारी आश्चर्य कैसे होगया ? हे महाबाहु कृष्ण! यदि आप मेरे सुननेयोग्य समझते हों तो इसका कारण मुझे बता दीजिये ॥ १७ ॥ वासुदेवने कहा, कि—हे परन्तप अर्जुन ! यह रथ तो अनेकों प्रकारके अस्त्रोंसे पहले ही जल चुका था, परंतु मैं इसके ऊपर बैठाहुआ था, इसलिये यह पहले रणमें जलकर खाक न होसका ॥ १८ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! ब्रह्मास्त्रके तेजसे विशीर्ण हुआ यह रथ इस समय जलकर भस्म होगया है, क्यों कि—तेरे कामको पूरा करके मैंने इस रथको अभी छोडा है,॥१९॥ तदनन्तर शत्रुओंका नाश करनेवाले भगवान् केशव जराएक मुसकराये और राजा युधिष्ठिरको हृदयसे लगाकर कहनेलगे, कि ॥ २० ॥ हे कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर ! तुमने शत्रुओंका पराजय किया और तुम्हारी विजय हुई, यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है तथा जिसमें वीर पुरुषोंका संहार होगया है ऐसे संग्राममेंसे तुम, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव शत्रुओंका संहार कर

तमुपसव्यं सह गांडीवधन्वना ॥ २३ ॥ आनीय मधुपर्कं मां यत् पुरा त्वमवोचथाः । एष भ्राता सखा चैव तव कृष्ण धनञ्जयः२४ रक्षितव्यो महाबाहो सर्वास्वापत्स्विति प्रभो । तव चैवं ब्रुवाणस्य तथेत्येवाहमब्रुवम्२५ स सव्यसाची गुप्तस्ते विजयी च जनेश्वर । भ्रातृभिः सह राजेन्द्र शूरः सत्यपराक्रमः ॥ २६ ॥ मुक्तो वीरक्षयादस्मात् संग्रामाल्लोमहर्षणात् । एवमुक्तस्तु कृष्णेन धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २७ ॥ हृष्टरोमा महाराज प्रत्युवाच जनार्दनम् । युधिष्ठिर उवाच । प्रमुक्तं द्रोणकर्णाभ्यां ब्रह्मास्त्रमरिमर्दन ॥२८॥ कस्त्वदन्यः सहेत् साक्षादपि वज्री पुरन्दरः । भवतस्तु प्रसादेन संशप्तकगणा जिताः ॥२९॥महारणगतः पार्थो यच्च नासीत् पराङ्-

के क्षेम कुशलसे रहे, यह भी आनन्दकी वात है ॥ २१ ॥२२ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! अब तुम्हें आगेको जो काम करने हैं उन को शीघ्रतासे करो, पहले उपसव्य में अर्जुनके साथ तुम्हारे पास आया था उस समय तुमने मुझे मधुपर्क देकर कहा था, कि-हे कृष्ण ! यह अर्जुन तुम्हारा भाई और मित्र लगता है, तुम सदा इसकी सब आपत्तियोंमें सहायता करना, और आपके कहनेसे मैंने भी ऐसा ही करना स्वीकार कर लिया था और हे राजेन्द्र ! स्वीकार करनेके अनुसार ही मैंने विजयी अर्जुनकी और उसके भाइयोंकी रक्षा की है ॥ २३--२६ ॥ और रोमाञ्च खड़े करनेवाले तथा वीरोंका संहार करनेवाले इस संग्राममेंसे वह बचा रहा है, इसप्रकार श्रीकृष्णने राजा युधिष्ठिरसे कहा ॥ २७ ॥ हे महाराज ! उस समय राजा युधिष्ठिरके रोमांच खड़े होगये और उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, युधिष्ठिर बोले, कि हे शत्रुमर्दन ! द्रोणाचार्यने तथा कर्णने जो ब्रह्मास्त्र छोडा था, उससे तो साक्षात् इन्द्र भी रक्षा नहीं कर सकता था, वह रक्षा आपने की है, तुम्हारी कृपासे ही संशप्तक नामक सैनिक मंडल पर हमने विजय पाई थी ॥ २७-२९ ॥ यह तुम्हारी ही कृपा

मुखः । तथैव च महाबाहो पर्यायैर्बहुभिर्मया ॥ ३० ॥ कर्मणामनुसन्तानं तेजसश्च गतीः शुभाः । उपप्लव्ये महर्षिर्मे कृष्णो द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ३१ ॥ यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः । इत्येवमुक्ते ते वीराः शिबिरं तव भारत ॥ ३२ ॥ प्रविश्य प्रत्यपद्यन्त कोषरत्नर्द्धिसञ्चयान् । रजतं जातरूपञ्च मणीनथ च मौक्तिकान् ॥ ३३ ॥ भूषणान्यथ मुख्यानि कम्बलान्यजिनानि च । दासीदासमसंख्येयं राज्योपकरणानि च ॥ ३४ ॥ ते प्राप्य धनमक्षय्यं त्वदीयं भरतर्षभ । उदक्रोशन्महाभागा नरेन्द्र विजितारयः ३५ ते तु वीराः समाश्वस्य वाहनान्यवमुच्य च । अतिष्ठंत मुहुः सर्वे पांडवाः सात्यकिस्तथा ॥ ३६ ॥ अथाब्रवीन्महाराज वासुदेवो महायशाः ।

थी जो अर्जुन महारणमेंसे एक वार भी पीछेको नहीं हटा, तथा हे महाबाहो! तुम्हारीकृपासे ही अनेकों बार हमारे सब काम सिद्ध हुए थे तथा तेजकी शुभ गतियें पाई थीं, महर्षि कृष्णद्वैपायनने मुझसे उपप्लव्यमें कहा था, कि— ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जहाँ धर्म है तहाँ कृष्ण है और जहाँ कृष्ण है तहाँ विजय है, इसप्रकार युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजीसे कहा, तब हे भरतवंशी राजन्! वे वीर तुम्हारे पुत्रकी छावनीमें घुसे और फिर शिविरमेंकी सब सामग्री, भंडारमें के रत्न तथा सब प्रकारकी सम्पत्तिको अपने अधिकारमें करलिया सोना, चाँदी, मणियें, मोती, अनेकों प्रकारके मुख्य २ आभूषण, शाल, मृगछालायें, असंख्यों दास, दासियें, राजकीय सामग्रियें आदि तुम्हारा अक्षय धनभंडार अपने अधिकारमें लेलिया, फिर शत्रुओंको जीतनेवाले महाभाग पांडवोंने बडी जोरसे गर्जना की। ३२-३५। सब वीर राजाओंने, पांडवोंने तथा सात्यकीने रथोंमेंके घोड़े आदि वाहनोंको खोल दिया और तहाँ बैठकर विश्राम करने लगे ॥ ३६ ॥ हे महाराज! फिर महायशवाले वासुदेव कहने लगे, कि—हमें मङ्गलके लिये आजकी रातमें

अस्माभिर्मङ्गलार्थाय वस्तव्यं शिविराद्बहिः ॥ ३७ ॥ तथेत्युक्त्वा हि ते सर्वे पाण्डवाः सात्यकिस्तथा ॥ वासुदेवेन सहिता मंगलार्थं वहिर्ययुः ॥ ३८ ॥ ते समासाद्य सरितं पुण्यामोघवतीं नृप । न्यवसन्नथ तां रात्रिं पांडवा हतशत्रवः ॥ ३९ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा प्राप्तकालमचिन्तयत् । तत्र मे गमनं प्राप्तं रोचयते तव माधव ॥ ४० ॥ गान्धार्याः क्रोधदीप्तायाः प्रशमार्थमरिन्दम । हेतुकारणयुक्तैश्च वाक्यैः कालसमीरितैः ॥ ४१ ॥ क्षिप्रमेव महाभाग गान्धारीं प्रशमिष्यसि । पितामहश्च भगवान् व्यासस्तत्र भविष्यति ॥ ४२ ॥ ततः संप्रेषयामासुर्यादवं नागसाह्वयम् । स च प्रायाज्जवेनाशु वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ४३ ॥ दारुकं रथमारोप्य येन राजाम्बिकासुतः । तमूचुः संप्रयास्यन्तं शैब्यसुग्रीववाहनम् ॥ ४४ ॥

छावनीके बाहर पड़ाव करना चाहिये ॥ ३७ ॥ यह सुनकर अच्छा ऐसा ही करते हैं, ऐसा कहकर सब पांडव और सात्यकी श्रीकृष्ण के सहित मङ्गलके निमित्त छावनीमेंसे बाहर निकल पड़े ॥ ३८ ॥ और हे राजन्! जिनके शत्रु मारे गये हैं ऐसे पाण्डव उस रात में ओघवती नामकी पवित्र नदीके किनारे पर जाकर ठहरे ॥ ३९ ॥ तहाँ राजा युधिष्ठिरने समयोचित विचार करके श्रीकृष्णजीसे कहा कि-हे शत्रुओंका दमन करने वाले माधव! क्रोधके आवेशमें भरी हुई गांधारीके क्रोधको शान्त करनेके लिये आप हस्तिनापुरमें जाइये, क्या यह आपको उचित प्रतीत होता है? हे महाभाग कृष्ण! आप हस्तिनापुरमें जाकर हेतु और कारणोंके साथ समयके अनुकूल बातें कहकर गान्धारीको शीघ्र ही शान्त करें तो बड़ा अच्छा हो, पितामह भगवान् वेदव्यास भी तहाँ ही होंगे ॥ ४०-४२ ॥ ऐसा कहकर श्रीकृष्णजीको हस्तिनापुर भेजनेका निश्चय किया, तदनन्तर प्रतापी कृष्ण, जिसमें शैब्य और सुग्रीव नामके घोड़े जुतरहे थे ऐसे रथमें दारुक सारथीके साथ बैठकर हस्तिनापुरकी ओरको चल दिये, उस समय भी पाण्डवोंने श्रीकृष्णसे कहा, कि-तहाँ

प्रत्याश्वासय गांधारीं हतपुत्रां तपस्विनीम् । स प्रायात्पांडवैस्तत्पुरं सात्वताम्वरः ॥ ४५ ॥ आससाद ततः क्षिप्रं गांधारीं निहतात्मजाम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि कृष्णस्य हास्तिनापुरगमने द्विषष्टोध्यायः ॥ ६२ ॥

जनमेजय उवाच । किमर्थं द्विजशार्दूल धर्मराजो युधिष्टिरः । गान्धार्याः प्रेषयामास वासुदेवं परन्तपम् ॥ १ ॥ यदा पूर्वं गतः कृष्णः शमार्थं कौरवान् प्रति । न च तं लब्धवान् कामं ततो युद्धमभूदिदम् ॥ २ ॥ निहतेषु च योधेषु हते दुर्योधने तदा । पृथिव्यां पांडवेयस्य निःसपत्ने कृते युधि ॥ ३ ॥ विद्रुते शिविरे शून्ये प्राप्ते यशसि चोत्तमे । किन्नु तत् कारणं ब्रह्मन् येन कृष्णो गतः पुनः ॥ ४ ॥ न चैतत्कारणं ब्रह्मन्नल्पं वै प्रतिभाति मे ।

जाकर अंबिकाके पुत्र राजा धृतराष्ट्रको और जिसके पुत्र मारे गये हैं ऐसी यशस्विनी गान्धारीको धीरज देकर शान्त करिये, पाण्डवोंके इस संदेशको लेकर सात्वतोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी, जिसके पुत्र मारे गये हैं ऐसी गान्धारीके पास जानेको तुरन्त विदा हो गये ॥ ४३–४६ ॥ बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥

जनमेजयने बूझा, कि–हे द्विजसिंह वैशंपायनजी ! युधिष्ठिरने परन्तप श्रीकृष्णको गान्धारीके पास किस लिये भेजा था॥१॥ पहले श्रीकृष्णजी सन्धि करानेके लिये कौरवोंकी सभामें गये थे, तहाँ उनकी कामना सफल नहीं हुई थी और इसकारणसे ही यह महाभारतका युद्ध हुआ था ॥ २ ॥ परन्तु जब सब योधा मारे गये और दुर्योधन भी रणमें घायल होकर गिरगया और भूतल पर पांडव शत्रुशून्य होगये, कौरवोंकी छावनी ऊजड़ हो गयी और पांडवोंने उत्तम यश पालिया, हे ब्रह्मन् ! फिर श्रीकृष्णको गान्धारीके पास जानेकी क्या आवश्यकता थी ? यह मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! मुझे प्रतीत होता है, कि–यह

यत्रागमद्यमेयात्मा स्वयमेव जनार्दनः ॥ ५ ॥ तत्त्वतो वै समाचक्ष्व सर्वमध्वर्यु सत्तम । यच्चात्र कारणं ब्रह्मन् कार्यस्यास्य विनिश्चये ६ वैशम्पायन उवाच । त्वद्युक्तोयमनुप्रश्नो यन्मां पृच्छसि पार्थिव । तत्तेहं संप्रवक्ष्यामि यथावद्भरतर्षभ ॥ ७ ॥ हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे । व्युत्क्रम्य समयं राजन् धार्त्तराष्ट्रं महाबलम् ८ अन्यायेन हतं दृष्ट्वा गदायुद्धेन भारत । युधिष्ठिरं महाराज महद्भयमथाविशत् ॥ ९ ॥ चिंतयानो महाभागां गांधारीं तपसान्विताम् । घोरेण तपसा युक्तां त्रैलोक्यमपि सा दहेत् ॥ १० ॥ तस्य चिन्तयमानस्य बुद्धिः समभवत्तदा । गान्धार्याः क्रोधदीप्तायाः पूर्वं प्रशमनं भवेत् ॥ ११ ॥ सा हि पुत्रवधं श्रुत्वा कृतमस्माभिरीदृशम् । मानसेनाग्निना क्रुद्धा भस्मसान्नः करिष्यति ॥ १२ ॥

कोई छोटासा कारण नहीं होगा, जिसके लिये अमेयात्मा स्वयं श्रीकृष्ण गये थे ॥ ५ ॥ इसलिये हे श्रेष्ठ अध्वर्यु ! इस कामका निश्चय करनेके विषयमें जो कारण हो वह मुझसे ठीक ठीक कहिये ॥ ६ ॥ वैशंपायनने कहा, कि–हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है यह उचित ही है, मैं आपके प्रश्नका यथावत् उत्तर देता हूं, सुनिये ॥ ७ ॥ हे राजन् ! भीमसेनने युद्धमें गदायुद्धके नियमका भङ्ग करके अन्यायसे गदाका प्रहार करके महाबली दुर्योधनको मारडाला, यह देखकर युधिष्ठिरका मन भयसे बड़ा व्याकुल होगया था ॥ ८ ॥ ९ ॥ राजा युधिष्ठिर अपने मनमें विचारने लगे, कि–महाभागा गान्धारी बड़ी तपस्विनी है, वह यदि क्रोध करे तो त्रिलोकीको भस्म कर सकती है ॥ १० ॥ इसप्रकार चिन्ता करते हुए उनके मनमें उस समय यह विचार उठा, कि–पहले क्रोधसे प्रज्वलित हुई गान्धारी को शान्त कियाजाय तबही मङ्गल है ॥ ११ ॥ हमने उसके पुत्रको अनीतिसे मारडाला है, इस बातको जब सुनेगी तो वह क्रोध करके मानसिक अग्निसे हमें जलाकर भस्म करडालेगी ॥ १२ ॥ धर्मसे

कथं तीव्रमिदं दुःखं गांधारी संप्रशक्ष्यति । श्रुत्वा विनिहतं पुत्रं छलेनाजिह्मयोधिनम् ॥ १३ ॥ एवं विचिन्त्य बहुधा भयशोकसमन्वितः । वासुदेवमिदं वाक्यं धर्मराजोऽभ्यभाषत ॥ १४ ॥ तव प्रसाद्गोविन्द राज्यं निहतकंटकम् । अप्राप्यं मनसापीदं प्राप्तमस्माभिरच्युत ॥ १५ ॥ प्रत्यक्षं मे महाबाहो संग्रामे लोमहर्षणे । विमर्दः सुमहान् प्राप्तस्त्वया यादवनन्दन ॥ १६ ॥ त्वया देवासुरे युद्धे वधार्थममरद्विपाम् । यथा साह्यं पुरा दत्तं हताश्च विबुधद्विषः १७ साह्यं तथा महाबाहो दत्तमस्माकमच्युत । सारथ्येन च वार्ष्णेय भवता हि धृता वयम् ॥ १८ ॥ यदि न त्वं भवेन्नाथः फाल्गुनस्य महारणे । कथं शक्यो रणे जेतुं भवदेष बलार्णवः ॥ १९ ॥ गदाप्रहारा विपुलाः परिघैश्चापि ताडनम् । शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च

युद्ध करनेवाले दुर्योधनको हमने छल कपटसे मारडाला है, यह वृत्तान्त जब गांधारी सुनेगी तो वह तीव्र दुःखको कैसे सहसकेगी १३ ऐसे २ अनेकों विचार करके भय और शोकसे अतिव्याकुल हुए युधिष्ठिर वासुदेवसे यह बात कहने लगे, कि–।१४। हे गोविन्द ! हमने आपकी कृपासे हमने निष्कंटक राज्य पाया है, हे अच्युत ! यह राज्य मिलजायगा, इस बातका तो हम मनमें विचार भी नहीं कर सकते थे ॥१५॥ हे महाबाहु यदुनन्दन ! आपने इस रोमांचकारी युद्धमें बड़े २ प्रहार सहे हैं, यह बात हमारी प्रत्यक्ष देखी हुई है ॥ १६ ॥ पहले देवासुर संग्राममें दैत्योंका नाश करनेके लिये तुमने जैसे देवताओंकी सहायता की थी और देवताओंके शत्रुओंका नाश किया था ॥ १७ ॥ तैसेही हे अच्युत महाबाहु ! तुमने हमारी भी सहायता की है और हे वृष्णिवंशी ! आपने ही सारथी बनकर हमारी रक्षा की है ॥ १८ ॥ इस संग्राममें यदि आप अर्जुनके नाथ न होते तो यह सेनाका समुद्र रणमें कैसे जीता जा सकता था ? ॥ १९ ॥ हे कृष्ण ! तुमने हमारे लिये गदाओंके, परिघोंके, शक्तियोंके, भिन्दिपालोंके, तोमरोंके और

तोमरैः शरस्तवैः ॥ २० ॥ अस्मत्कृते त्वया कृष्ण वाचः सुदारुणाः श्रुताः । शस्त्राणाञ्च निपाता वै वज्रस्पर्शोपमा रणे ॥ २१ ॥ ते न ते सफला याता हते दुर्योधनेऽच्युत । तत् सर्वं न यथा नश्येत् पुनः कृष्ण तथा कुरु ॥ २२ ॥ सन्देहदोलां प्राप्तं नश्चेतः कृष्ण जये सति । गान्धार्या हि महाबाहो क्रोधं बुध्यस्व माधव ॥२३॥ सा हि नित्यं महाभाग तपसोग्रेण कर्शिता । पुत्रपौत्रवधं श्रुत्वा ध्रुवं नः संप्रधक्ष्यति ॥ २४ ॥ तस्याः प्रसादनं वीर प्राप्तकालं मतं मम । कश्च तां क्रोधताम्राक्षीं पुत्रव्यसनकर्शिताम् ॥ २५ ॥ वीक्षितुं पुरुषः शक्तस्त्वामृते पुरुषोत्तम । तत्र मे गमनं प्राप्तं रोचते तव माधव ॥ २६ ॥ गान्धार्याः क्रोधदीप्तायाः प्रशमार्थमरिन्दम । त्वं हि कर्त्ता विकर्त्ता च लोकानां प्रभवाव्ययः ॥ २७ ॥ हेतु-

फरसोंके बहुतसे प्रहार सहे हैं, बहुतसी कठोर बातें (गालियें) सुनी हैं तथा रणमें वज्रकी समान चोट करनेवाले शस्त्रोंकी मार भी सही है ॥ २० ॥ २१ ॥ परन्तु हे अच्युत ! यह सब दुर्योधनके मारेजानेसे सफल होगया, इसलिये हे कृष्ण! यह सब करा धरा फिर नष्ट न होजाय, इसके लिये फिर उपाय करिये ॥२२॥ हे कृष्ण ! हमारी विजय होजाने पर भी हमारा चित्त सन्देहके झूले पर डोल रहा है, हे महाबाहु माधव ! आप गान्धारीके क्रोध को भी समझ देखिये ॥२३॥ वह महाभागा नित्य उग्रतप करनेके कारण बड़ी दुर्बल शरीर है, वह अपने पुत्र पौत्रोंके मरणको सुनकर निःसन्देह हमें जलाकर भस्म करडालेगी ॥ २४ ॥ हे वीर !मेरी समझमें यह समय गान्धारीको शान्त करनेका है, क्रोधके मारे जिसकी आँखें लाल २ होरही होंगी और जो पुत्रोंके दुःखसे व्याकुल होरही होगी ऐसी गान्धारीकी ओरको हे पुरुषोत्तम ! तुम्हारे सिवाय दूसरा कौन पुरुष देख भी सकेगा ? इसलिये हे माधव ! क्रोधमें भरीहुई गान्धारीके क्रोधको शान्त करनेके लिये उसके पास आप जाइये, तुमही लोकोंको उत्पन्न करनेवाले तथा

कारणसंयुक्तैर्वाक्यैः कालसमीरितैः। क्षिप्रमेव महाप्राज्ञ गांधारीं शमयिष्यसि ॥ २८ ॥ पितामहश्च भगवान् कृष्णस्तत्र भविष्यति। सर्वथा ते महाबाहो गान्धार्याः क्रोधनाशनम् ॥ २९ ॥ कर्त्तव्यं सात्वतां श्रेष्ठ पाण्डवानां हितार्थिना। धर्मराजस्य वचनं श्रुत्वा यदुकुलोद्वहः ॥ ३० ॥ आमन्त्र्य दारुकं प्राह रथः सज्जो विधीयताम्। केशवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणोऽथ दारुकः ॥ ३१ ॥ न्यवेदयद्रथं सज्जं केशवाय महात्मने। तं रथं यादवश्रेष्ठः समारुह्य परन्तप ॥ ३२ ॥ जगाम हास्तिनपुरं त्वरितः केशवो विभुः। ततः प्रायान्महाराज माधवो भगवान् रथी ॥ ३३ ॥ नागसाह्वयमासाद्य प्रविवेश च वीर्यवान्। प्रविश्य नगरीं वीरो रथघोषेण नादयन् ॥ ३४ ॥ विदितं धृतराष्ट्रस्य सोऽवतीर्य रथोत्तमात्।

संहार करनेवाले हो, तुममेंसे ही उत्पत्ति होती है और फिर तुममें ही वे सब समाजाते हैं ॥ २५-२७ ॥ और हे महाबाहु कृष्ण! तुमही हेतु तथा कारणोंसे युक्त समयोचित वचन कहकर गान्धारी को तुरन्त शान्त कर सकोगे ॥ २८ ॥ पितामह भगवान् वेदव्यास भी इस समय वहाँ ही होंगे, इसलिये हे महाबाहु कृष्ण! आपको पाण्डवोंके हितका विचार करके गांधारी के क्रोधको शान्त करना ही चाहिये, यदुकुलके धुरन्धर श्रीकृष्णने धर्मराजकी बात सुन ॥ २९ ॥ ३० ॥ दारुकको बुलाकर कहा, कि-जाओ हमारा रथ तयार करके लाओ, केशवकी आज्ञा होते ही दारुक दौड़कर गया ॥ ३१ ॥ और रथको तयार करके महात्मा कृष्णसे निवेदन किया, यादवोंमें श्रेष्ठ! परन्तप कृष्ण उस रथ पर सवार होगये ॥३२॥ और भगवान् केशव शीघ्रतासे हस्तिनापुरको चलदिये, हे महाराज! तदनन्तर रथमें सवार हुए भगवान् कृष्ण बराबर चले ही गये ॥ ३३ ॥ और वीर्यवान् कृष्ण रथकी घरघराहटके शब्दसे नगरको गुञ्जारतेहुए हस्तिनापुरमें जापहुँचे, उस रथके शब्दसे धृतराष्ट्रको मालूम होगया कि-

अभ्यगच्छददीनात्मा धृतराष्ट्रनिवेशनम् ॥ ३५ ॥ पूर्वञ्चाभिगतं तत्र सोऽपश्यद्दपिसत्तमम् । पादौ प्रपीड्य कृष्णस्य राज्ञश्चापि जनार्दनः ॥ ३६ ॥ अभ्यवादयदव्यग्रो गान्धारीञ्चापि केशवः । ततस्तु यादवश्रेष्ठो धृतराष्ट्रमधोक्षजः ॥ ३७ ॥ पाणिमालम्ब्य राजेन्द्र सुस्वरं प्ररुरोद ह । स मुहूर्त्तादिवोत्सृज्य वाष्पं शोकसमुद्भवम् ॥ ३८ ॥ प्रक्षाल्य वारिणा नेत्रे ह्याचम्य च यथाविधि । उवाच प्रसृतं वाक्यं धृतराष्ट्रमरिन्दमः ॥ ३९ ॥ न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्वृद्धस्य तव भारत । कालस्य च यथावृत्तं तत्ते सुविदितं प्रभो ॥ ४० ॥ यदिदं पाण्डवैः सर्वैस्तव चिन्तानुरोधिभिः । कथं कुलक्षयो न स्यात्तथा क्षत्रस्य भारत ॥ ४१॥ भ्रातृभिः समयं कृत्वा क्षान्तवान् धर्मवत्सलः । द्यूतच्छलजितैः शुद्धैर्वनवासोऽभ्यु-

---

कृष्ण आये हैं, उदारमनवाले श्रीकृष्ण धृतराष्ट्रके राजमहलके पास आकर रथमेंसे उतर पड़े और महलके भीतर चलेगये ॥ ३४॥३५ तहाँ महर्षि वेदव्यास पहलेसे ही आयेहुए थे, उनका दर्शन हुआ कृष्णने वेदव्यासजीके और राजा धृतराष्ट्रके चरण छुए॥ ३६ ॥ फिर उन्होंने प्रणाम करके सावधानीके साथ गान्धारीको भी प्रणाम किया, हे राजेन्द्र ! तदनन्तर यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण धृतराष्ट्रका हाथ पकड़ डीख फोड़कर रोउठे और दो घड़ी तक शोकके आँसू बहाकर ॥ ३७ ॥३८॥ फिर जलसे आँखे धोडालीं,शास्त्रमें लिखीहुई रीतिसे आचमन किया, तदनन्तर शत्रुमर्दन कृष्ण धृतराष्ट्र से प्रसङ्गकी बातें करनेलगे ॥ ३९ ॥ हे भरतवंशी राजन्! तुम वृद्ध हो इसलिये तुमसे पिछला या भविष्यत्का कुछ छुपा नहीं है और हे राजन् ! कालकी जैसी गति है उसको भी आप अच्छे प्रकारसे जानते ही हैं ॥ ४० ॥ हे भारत ! सब पाण्डव आपकी इच्छानुसार वर्त्ताव करते थे और चाहते थे, कि-किसी प्रकार भी कुलका नाश तथा क्षत्रियोंका क्षय न हो ॥ ४१ ॥ धर्म पर प्रेम रखनेवाले धर्मराज अपने भाइयोंके सहित प्रतिज्ञा

पागतः ॥ ४२ ॥ अज्ञातवासचर्या च नानावेशसमाहृतैः । अन्ये च बहवः क्लेशास्त्वशक्तैरिव सर्वदा ॥ ४३ ॥ मया च स्वयमागम्य युद्धकाल उपस्थिते । सर्वलोकस्य सान्निध्ये ग्रामांस्त्वं पञ्च याचितः ॥ ४४ ॥ त्वया कालोपसृष्टेन लोभतो नापवर्जिताः । तवापराधान्नृपते सर्वं क्षत्रं क्षयं गतम् ॥ ४५ ॥ भीष्मेण सोमदत्तेन बाल्हीकेन कृपेण च । द्रोणेन च सपुत्रेण विदुरेण च धीमता ॥ ४६ ॥ याचितस्त्वं शमं नित्यं न च तत् कृतवानसि । कालोपहतचित्तो हि सर्वो मुह्यति भारत ॥ ४७॥ यथा मूढो भवान् पूर्वमस्मिन्नर्थे समुद्यते । किमन्यत् कालयोगाद्धि दिष्टमेव परायणम् ॥ ४८ ॥ मा च दोषान्महाप्राज्ञ पाण्डवेषु निवेशय । अल्पो-

करके सब कुछ सह लिया करते थे, तो भी निर्दोष पाण्डवोंको कपटके जुएमें जीतकर वनवास भोगनेके लिये वनमें भेजदिया गया ॥ ४२ ॥ पांडव अनेकों प्रकारके वेष धारण करके एक वर्ष तक छुपे हुए रहे, इसके सिवाय पांडवोंने सदा असमर्थ पुरुषोंकी समान और भी बहुतसे क्लेश सहे थे ॥ ४३ ॥ इतनेमें ही युद्ध होनेकी ठहरगयी, तब मैं स्वयं तुम्हारे पास आया और सब लोगोंके सामने आपसे पाँच ग्राममात्रकी याचना की ॥ ४४ ॥ परन्तु कालके प्रेरणा कियेहुए आपने लोभवश उस प्रार्थनाको स्वीकार नहीं किया, इसलिये हे राजन् ! तुम्हारे ही अपराधसे इन सब क्षत्रियोंका क्षय हुआ है ॥ ४५ ॥ भीष्म, सोमदत्त, बाल्हीक, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और बुद्धिमान् विदुर नित्य ही आपसे सन्धि करनेके लिये प्रार्थना किया करते थे, परन्तु तुमने उनका कहना माना ही नहीं, हे भरतवंशी राजन् ! इससे प्रतीत होता है, कि—जब काल आकर घेर लेता है तब सब ही मनुष्योंकी बुद्धि भ्रष्ट होजाती है ॥ ४६॥ ४७ ॥ बुद्धिका नाश होने पर मनुष्य भूल कर बैठता है, जिस समय युद्धकी तयारी होरही थी, तब तुम युद्धके परिणामको नहीं जानते थे,

व्यतिक्रमो नास्ति पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ४६ ॥ धर्मतो न्याय-तश्चैव स्नेहतश्च परन्तप । एतत् सर्वन्तु विज्ञाय ह्यात्मदोषकृतं फलम् ॥ ५० ॥ असूयां पाण्डुपुत्रेषु न भवान् कर्त्तुमर्हति । कुलं वंशश्च पिण्डाश्च यच्च पुत्रकृतं फलम् ॥ ५१ ॥ गान्धार्यास्तव वै नाथ पाण्डवेषु प्रतिष्ठितम् । त्वञ्चैव कुरुशार्दूल गान्धारी च यशस्विनी ॥ ५२ ॥ मा शुचो नरशार्दूल पाण्डवान् प्रति किल्बिषम् । एतत् सर्वमनुध्याय आत्मनश्च व्यतिक्रमम् ॥ ५३ ॥ शिवेन पाण्डवान् पाहि नमस्ते भरत-र्षभ । जानासि च महाबाहो धर्मराजस्य या त्वयि ॥५४॥ भक्ति-र्भरतशार्दूल स्नेहश्चापि स्वभावतः । एतच्च कदनं कृत्वा शत्रूणा-मुपकारिणाम् ॥ ५५ ॥ दह्यते स दिवारात्रौ न च शर्माधिग-

इसको कालके योगके सिवाय और क्या कहाजाय ? वास्तवमें काल ही बलवान् है ॥ ४८ ॥ हे महाबुद्धिशाली राजन् ! आप पांडवों पर दोष न रक्खें, महात्मा पांडव तो धर्म न्याय और प्रेमका जरा भी उल्लंघन करनेवाले नहीं हैं, यह सब समझकर तथा जो कुछ परिणाम निकला है वह सब तुम्हारे अपने दोषसे हुआ है, यह समझकर ॥ ४६ ॥ ५० ॥ आपको पांडवोंके ऊपर असूया (देखजलनापन) नहीं करनी चाहिये, पिंड और पुत्रसे प्राप्त होनेवाला जो कुछ भी फल आगेको आपको और गांधारीको मिलेगा, वह सब अब पांडवोंके ही आधार पर है, हे कुरुवंशमें सिंहसमान राजन् ! तुम्हें और यशस्विनी गान्धारीको पांडवोंका अपराध मानकर उनके ऊपर द्वेष नहीं रखना चाहिये. मैंने जो कुछ कहा है, उस सबको विचारकर तथा तुम्हारी अपनी की हुई भूलका भी विचार करके ॥ ५१-५३ ॥ जिसप्रकार पांडवोंका कल्याण हो वह विचार रखकर इनकी रक्षा करिये, हे भरतसत्तम ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ और कहता हूँ, कि-हे महाबाहु भरतवंशके सिंह ! आप जानते हैं कि-आपके ऊपर धर्मराजकी

च्छति । त्वाञ्चैव नरशार्दूल गान्धारीञ्च यशस्विनीम् ॥ ५६ ॥ स शोचन् नरशार्दूलो न शान्तिमधिगच्छति । ह्रिया परमयाविष्टो भवन्तं नाधिगच्छति ॥ ५७ ॥ पुत्रशोकाभिसन्तप्तं बुद्धिव्याकुलितेन्द्रियम् । एवमुक्त्वा महाराज धृतराष्ट्रं यदूत्तमः ॥ ५८ ॥ उवाच परमं वाक्यं गान्धारीं शोककर्शिताम् । सौबलेयि निबोध त्वं यत्त्वां वक्ष्यामि सुव्रते ॥ ५९ ॥ त्वत्समा नास्ति लोकेऽस्मिन्नद्य सीमन्तिनी शुभे । जानासि च यथा राज्ञि सभायां मम सन्निधौ ६० धर्मार्थसहितं वाक्यमुभयोः पक्षयोर्हितम् । उक्तवत्यसि कल्याणि न च ते तनयैः कृतम् ॥ ६१ ॥ दुर्योधनस्त्वया चोक्तो जयार्थी

कैसी स्वाभाविक भक्ति और कैसा स्वाभाविक स्नेह है, राजा युधिष्ठिर भी अशुभ करनेवाले शत्रुओंका संहार करके रातदिन उनके लिये जला करते हैं, उनका चैन पड़ता ही नहीं, हे नरसिंह! पुरुषों में सिंहसमान राजा युधिष्ठिर तुम्हारे लिये और गान्धारीके लिये भी शोक करते हैं, उनको कहीं भी शान्ति नहीं मिलती और बड़ी भारी लज्जाके मारे तुम्हारे पास नहीं आते हैं ॥ ५४–५७ ॥ क्योंकि—इस युद्धमें होनेवाले संहारके कारण तुम पुत्रोंके शोकसे सन्तप्त होरहे हो और तुम्हारी बुद्धि तथा इन्द्रियें भी व्याकुल होरही हैं, हे महाराज! यदुवंशमें उत्तम कृष्ण धृतराष्ट्रसे ऐसा कहकर ॥ ५८ ॥ शोकसे दुर्बल हुई गान्धारीसे उपदेशके वचन कहनेलगे, कि—हे सुबलनन्दिनि! मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसको सुन और समझ ॥ ५९ ॥ हे कल्याणि! इस समय इस लोकमें तेरी समान दूसरी कोई भी स्त्री नहीं है, हे रानी! तूने मेरे सामने सभामें दोनों पक्षोंका हित करनेवाली धर्म तथा अर्थसे भरी बात अपने पुत्रोंसे कही थी, परन्तु हे कल्याणि! तेरे पुत्रोंने तेरी उस बातका जरा भी आदर नहीं किया ॥ ६० ॥ ॥ ६१ ॥ तूने विजय चाहनेवाले दुर्योधनसे तीखी बात भी कही थी कि—अरे ओ मूर्ख! मेरी इस बातको सुन, कि—जहाँ धर्म

परुषं वचः । शृणु मूढ वचो मह्यं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ६२ ॥ तदिदं समनुप्राप्तं तव वाक्यं नृपात्मजे । एवं विदित्वा कल्याणि मा स्म शोके मनः कृथाः ॥ ६३ ॥ पाण्डवानां विनाशाय मा ते बुद्धिः कदाचन । शक्ता चासि महाभागे पृथिवीं सचराचराम् ६४ चक्षुषा क्रोधदीप्तेन निर्दग्धुं तपसो बलात् । वासुदेववचः श्रुत्वा गांधारी वाक्यमब्रवीत् ॥ ६५ ॥ एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि केशव । आधिभिर्दह्यमानाया मतिः सञ्चलिता मम ॥ ६६ ॥ सा मे व्यवस्थिता श्रुत्वा तव वाक्यं जनार्दन । राज्ञस्त्वन्धस्य वृद्धस्य हतपुत्रस्य केशव ॥ ६७ ॥ त्वं गतिः सहितैर्वीरैः पांडवैर्द्विपदांवर । एतावदुक्त्वा वचनं मुखं मच्छाद्य वाससा ॥ ६८ ॥ पुत्रशोकाभिसन्तप्ता गान्धारी प्ररुरोद ह । तत एनां महाबाहुः केशवः शोक-

होता है वहाँ ही विजय होती है ॥ ६२ ॥ हे राजपुत्री ! तेरी वह बात इस समय सामने आगयी, हे कल्याणि ! ऐसा विचारकर तू इस घटनाका अपने मनमें शोक न कर ॥६३॥ तथा पांडवोंका नाश करनेके लिये तू अपने मनमें कभी विचार न करना, हे महाभागे ! तू तपके बलसे, यदि अपने नेत्रको क्रोधाग्निसे लाल-लाल करलेय तो इस स्थावर जङ्गमसहित सब पृथिवीको जलाकर भस्म कर सकती है, वासुदेवकी इस बातको सुनकर गान्धारी बोली कि–॥ ६४ ॥ ६५ ॥ हे महाबाहु केशव ! तुम जो कुछ कहरहे हो, यह ठीक ही है, भीतरी दुःखसे मैं भस्म होरही हूँ, इसलिये मेरी बुद्धि चलायमान होरही थी ॥ ६६ ॥ परन्तु हे केशव ! तुम्हारी बातें सुनकर मेरी बुद्धि कुछ ठिकाने आयी है, हे केशव! यह राजा अन्धे और बूढे हैं, इनके पुत्र मरगये हैं, इसलिये हे कृष्ण ! अब तो इनको वीर पांडवोंका और तुम्हारा ही सहारा है, इतना कहकर पुत्रोंके शोकसे व्याकुल हुई गान्धारीने अपना मुख कपड़ेसे ढकलिया और डीख फोड़कर रोउठी, उस समय महाबाहु केशवने कितने ही दृष्टान्त और कारणों सहित समयके

कर्शितास् ॥ ६९ ॥ हेतुकारणसंयुक्तैर्वाक्यैराश्वासयत् प्रभुः । सगान्धारीं च गांधारीं धृतराष्ट्रञ्च माधवः ॥७०॥ द्रौणिसङ्कल्पितं भावमन्वबुध्यत केशवः । ततस्त्वरित उत्थाय पादौ मूर्ध्ना प्रणम्य च ॥ ७१ ॥ द्वैपायनस्य राजेन्द्र ततः कौरवमब्रवीत् । आपृच्छे त्वां कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ॥ ७२ ॥ द्रौणेः पापोऽस्त्यभिप्रायस्तेनास्मि सहसोत्थितः । पाण्डवानां वधे रात्रौ बुद्धिस्तेन प्रदर्शिता ॥ ७३ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वचनं गान्धार्या सहितोऽब्रवीत् । धृतराष्ट्रो महाबाहुः केशवं केशिसूदनम् ॥ ७४ ॥ शीघ्रं गच्छ महाबाहो पाण्डवान् परिपालय । भूयस्त्वया समेष्यामि क्षिप्रमेव जनार्दन ॥ ७५ ॥ प्रायात्ततस्तु त्वरितो दारुकेण सहाच्युतः । वासुदेवे गते राजन् धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ ७६ ॥ आश्वा-

अनुकूल कितनी ही बातें कहकर सुनायीं, शोकसे दुर्बल हुई गांधारी और धृतराष्ट्रको शान्त किया ॥ ६७–७० ॥ फिर अश्वत्थामाके मनके सङ्कल्पको जानजानेके कारण श्रीकृष्ण तहाँसे उठकर खड़े होगये, उन्होंने वेदव्यासजीके चरणोंमें मस्तक रख कर प्रणाम किया और धृतराष्ट्रसे कहा, कि—हे कुरुवंशके उत्तम राजा ! अब मैं तुमसे जानेके लिये आज्ञा माँगता हूँ, परन्तु तुम मनमें शोक न करना ॥७१॥७२॥ इस समय अश्वत्थामाके मनमें पापी विचार उठ रहा है, इसलिये ही मैं शीघ्रतासे उठकर जारहा हूँ, ऐसा मालूम होता है, कि–अश्वत्थामाने रात्रिमें पांडवोंको मारडालनेका निश्चय किया है॥ ७३ ॥ इस बातको सुनकर महाबाहु धृतराष्ट्र राजाने और गान्धारीने केशी दैत्यको मारनेवाले कृष्णसे इसप्रकार कहा, कि—यदि ऐसा है तो तुम तहाँ शीघ्रही पधारो और पांडवोंकी रक्षा करो, हे जनार्दन ! तुमसे फिर भी शीघ्रही मिलूँगा ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ज्योंही श्रीकृष्णको इसप्रकार जानेकी आज्ञा दी, उसी क्षण श्रीकृष्ण तहाँसे दारुकको साथले पांडवोंके पासको चलेगये, हे राजन् !

सयदमेयात्मा व्यासो लोकनमस्कृतः । वासुदेवोपि धर्मात्मा कृतकृत्यो जगाम ह ॥ ७७॥ शिबिरं हास्तिनपुराद्द दिदृक्षुः पाण्डवान्नृप । आगम्य शिबिरं रात्रौ सोभ्यगच्छत पांडवान् । तच्च तेभ्यः समाख्याय सहितस्तैः समाहितः ॥ ७८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि धृतराष्ट्रगान्धारीप्रबोधने त्रिषष्टोध्यायः ॥ ६३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । अधिष्ठितः पदा मूर्ध्नि भग्नसक्थो महीं गतः । शौटीर्यमानी पुत्रो मे किमभाषत सञ्जय ॥ १ ॥ अत्यर्थं कोपनो राजा जातवैरस्य पाण्डुषु । व्यसनं परमं प्राप्तः किमाह परमाहवे २ सञ्जय उवाच । शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यथा वृत्तं नराधिप । राज्ञा यदुक्तं भग्नेन तस्मिन् व्यसन आगते ॥ ३ ॥ भग्नसक्थो नृपो

श्रीकृष्णजीके चले जाने पर, जिनको सबही प्रणाम करते हैं ऐसे अमेयात्मा भगवान् वेदव्यासजी राजा धृतराष्ट्रको आश्वासन देने लगे, धर्मात्मा वासुदेव भी अपने कामको सिद्ध करनेके लिये हस्तिनापुरसे पांडवोंकी छावनीकी ओरको गये और रातके समय छावनीमें आकर पांडवोंसे मिले और उनको हस्तिनापुरका सब वृत्तान्त सुनाया ॥ ७६-७८ ॥ तिरेसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६३॥

राजा धृतराष्ट्र ने बूझा ! कि-हे सञ्जय ! सब राजाओंके मस्तक पर चरण रखनेवाले, शूरवीरताके अभिमानका पालन करने वाले, महाक्रोधी और पांडवोंके साथ वैर करने वाले मेरे पुत्रकी दोनों जाँघें टूटगयी हैं, वह रणाङ्गणमें पृथ्वी पर पड़ा है, बड़ी विपत्तिमें फँसगया है, उस समय उसने रणमें खडेहुए पांडवोंसे और क्या बात कही थी, वह मुझे सुना ॥ १ ॥ २ ॥ संजयने कहा, कि-हे राजन् ! राजा दुर्योधनकी दोनों जाँघें टूटगयी हैं, उसके ऊपर बड़ा भारी दुःख आपड़ा है, ऐसे समयमें उसने जो कुछ कहा था, वह मैं तुम्हें यथावत् सुनाता हूँ, सुनिये ॥ ३ ॥

राजन् पांशुना लोदगुण्ठितः । यमयन् मूर्द्धजांस्तत्र वीक्ष्य चैव दिशो दश ॥ ४ ॥ केशान्नियम्य यत्नेन निश्वसन्नुरगो यथा । संरम्भाश्रुपरीताभ्यां नेत्राभ्यामभिवीक्ष्य माम् ॥ ५ ॥ बाहू धरण्यां निष्पिष्य मुहुर्मत्त इव द्विपः । प्रकीर्णान्मूर्द्धजान् धुन्वन्दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन् ॥ ६ ॥ गर्हयन् पांडवं ज्येष्ठं निःश्वस्येदमथाब्रवीत् । भीष्मे शान्तनवे नाथे कर्णे शस्त्रभृताम्वरे ॥ ७ ॥ गौतमे शकुनौ चापि द्रोणे चास्त्रभृताम्वरे । अश्वत्थाम्नि तथा शल्ये शूरे च कृतवर्मणि ॥ ८ ॥ इमामवस्थां प्राप्तोस्मि कालो वै दुरतिक्रमः । एकादशचमूभर्त्ता सोहमेतां दशां गतः ॥ ९ ॥ कालं प्राप्य महाबाहो न कश्चिदतिवर्त्तते । आख्यातव्यं मदीयानां येऽस्मिन् जीवन्ति संयुगे ॥ १० ॥ यथाहं भीमसेनेन व्युत्क्रम्य समयं हतः । बहूनि

राजा दुर्योधनकी दोनों जंघाएं टूटगयीं, वह पृथ्वी पर गिरजाने से धूलिमें सन रहा है, फिर उसने हाथसे अपने बालों को यत्न करके इकसार किया और फिर दशों दिशाओंमें देखने लगा ॥ ४ ॥ जिनमें क्रोध और आँसू भररहे थे ऐसे नेत्रोंसे उसने मेरी ओरको देखकर महामदमत्त हाथीकी समान अपने दोनों हाथोंको पृथिवी पर पटका, बिखरेहुए केशोंको हिलाने लगा, दाँतोंसे दाँतोंको पीसने लगा ॥ ५ ॥ ६ ॥ और लंबा साँस लेकर धर्मराजकी निन्दा करता हुआ यह कह उठा अरे ! शान्तनुके पुत्र और मेरे नाथ भीष्मपितामह शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्ण, ॥ ७ ॥ कृपाचार्य, शकुनि, बड़ेभारी शस्त्रधारी द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य और वीर कृतवर्मा आदि महारथी मेरे पास थे, तो भी मैं इस दशामें आपड़ा, निःसन्देह कालकी गतिको कोई नहीं लाँघ सकता; तभी तो ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी होकर भी आज मैं इस दशामें आपड़ा हूँ ॥ ८–९ ॥ हे महाबाहु सञ्जय ! कालको कोई नहीं लांघ सकता, इस युद्धमें मेरे पक्षके जो जीवित रहे हों, उनसे तुम कह देना, कि–॥ १० ॥ भीमसेनने

ह्युनृशंसानि कृतानि खलु पाण्डवैः ॥ ११ ॥ भूरिश्रवसि कर्णे च भीष्मे द्रोणे च श्रीमति । इदञ्चाकीर्त्तिजं कर्म नृशंसैः पांडवैः कृतम् ॥ १२ ॥ येन ते सत्सु निर्वेदं गमिष्यन्ति हि मे मतिः । का प्रीतिः सत्त्वयुक्तस्य कृत्वोपाधिकृतं जयं ॥१३॥ को वा समयभेत्तारं बुधः सम्मन्तुमर्हति । अधर्मेण जयं लब्ध्वा को नु हृष्येत पण्डितः ॥ १४ ॥ यथा संहृष्यते पापः पाण्डुपुत्रो वृकोदरः । किन्नु चित्रमतस्त्वद्य भग्नसक्थस्य यन्मम ॥ १५ ॥ क्रुद्धेन भीमसेनेन पादेन मृदितं शिरः । प्रतपन्तं श्रिया जुष्टं वर्त्तमानञ्च बन्धुषु ॥ १६ ॥ एवं कुर्य्यान्नरो यो हि स वै सञ्जय पूजितः । अभिज्ञौ युद्धधर्मस्य मम माता पिता च मे ॥ १७ ॥ तौ हि सञ्जय दुःखार्त्तौ विज्ञाप्यौ वचनान्मम । इष्टं भृत्या भृताःसम्यग्भूः प्रशास्ता

गदायुद्धके नियमको तोड़कर दुर्योधनको मारडाला, पांडवोंने बड़े ही क्रूर कर्म किये हैं ॥ ११ ॥ क्रूर कर्म करनेवाले पांडवोंने भूरिश्रवा, कर्ण, भीष्म और श्रीमान् द्रोणाचार्यको कपटसे मार कर अपकीर्त्तिका काम किया है ॥ १२ ॥ मुझे निश्चय है, कि इस कर्मके कारणसे पाण्डव सत्पुरुषोंके सामने धिक्कारही पावेंगे धर्मात्मा पुरुष कपटसे विजय पाकर क्या प्रसन्न होगा ?॥ १३ ॥ नियमको तोड़नेवालेका कौन विद्वान् पुरुष सन्मान करेगा और अधर्मसे विजय पाकर जैसा पापी पांडुपुत्र भीमसेन प्रसन्न होता है ऐसा दूसरा कौनसा बुद्धिमान् पुरुष प्रसन्न होगा ? आज मेरी टाँगें टूटगयी हैं, ऐसी दशामें क्रोधी भीमसेनने मेरे मस्तकको पैर से ठुकराया, इससे अधिक आश्चर्यकी बात और क्या होगी ? हे सञ्जय ! जो पुरुष पराक्रमी हो लक्ष्मीवान् हो और बांधवोंके साथ खड़ा हो, और उस समय ऐसा निन्दित काम करे तो वही पुरुष क्या वीरोंमें सन्मान पावेगा ? मेरे माता पिता युद्धधर्मको जानते हैं, वे दुःखसे कातर होगये होंगे ॥ १४-१७ ॥ हे सञ्जय ! मेरे कहनेके अनुसार तू उनसे विनयपूर्वक कहना, कि—मैंने यज्ञ

ससागरा ॥ १८ ॥ मूर्ध्नि स्थितममित्राणां जीवतामेव सञ्जय । दत्ता दाया यथाशक्ति मित्राणाञ्च प्रियम् कृतम् ॥१९॥ अमित्रा बाधिताः सर्वे कोनु स्वन्ततरो मया। मानिता बान्धवाः सर्वे वश्यः सम्पूजितो जनः ॥२०॥ त्रिवर्गं सेवितं सर्वं को नु स्वन्ततरो मया। यातानि परराष्ट्राणि नृपा भुक्ताश्च दासवत् ॥ २२ ॥ प्रियेभ्यः प्रकृतं साधु को नु स्वन्ततरो मया । अधीतं विधिवद्दत्तं प्राप्तमायु-र्निरामयम् ॥२३॥स्वधर्मेण जिता लोकाः को नु स्वन्ततरो मया । दिष्ट्या नाहं जितः संख्ये परान् प्रेष्यवदाश्रितः ॥ २४ ॥ दिष्ट्या

किये हैं, माता, पिता, नौकर चाकर आदि भृत्यवर्गोंका पोषण किया है, समुद्रपर्यन्त भूमण्डल पर अच्छे प्रकारसे राज्य किया है, जीवित शत्रुके मस्तक पर पैर रखकर आधिपत्य भोगा है, शक्तिके अनुसार मित्रोंका प्रिय कार्य किया है ॥ १८ ॥ १९ ॥ और सब शत्रुओंको दबाये रक्खा है, इसलिये मुझसे श्रेष्ठ कौनसा पुरुष है? मैंने अपने सब बान्धवोंका आदर किया है, अपने वशमें रहनेवाले सब मनुष्योंका सत्कार किया है ॥ २० ॥ धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंका भले प्रकारसे सेवन किया है, मैंने बड़े २ राजाओंको अपनी आज्ञामें चलाया है और जो दूसरों को महादुर्लभ है ऐसा सन्मान पाया है, फिर मुझसे श्रेष्ठ पुरुष कौन है? ॥ २१ ॥ आजानेय (युद्धके उपयोगी) घोड़ा पर सवारी लेकर प्रवास किया है, शत्रु राजाओंके देशों पर चढ़ायी की है और वहाँके राजाओंसे दासकी समान काम लिया है, फिर मुझसे श्रेष्ठ कौनसा पुरुष है? ॥ २२ ॥ प्रीतिपात्र पुरुषोंके प्रिय काम किये हैं, वेद पढ़े हैं, शास्त्रमें लिखीहुई विधिसे दान दिये हैं, नीरोगता वाला आयु भोगा है, फिर मुझसे श्रेष्ठ कौनसा पुरुष होगा? ॥ २३ ॥ अपने धर्मसे लोकोंको जीता है और यह अहोभाग्यकी बात है, कि-मैं रणमें शत्रुओंसे हारकर उनके आश्रयमें दासकी समान बनकर नहीं रहा हूँ, फिर मुझसे श्रेष्ठ

मे विपुला लक्ष्मीर्मृते त्वन्यं गता विभो । यदिष्टं क्षत्रबन्धूनां स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥२५॥ निधनं तन्मया प्राप्तं को नु स्वन्ततरो मया । दिष्ट्या नाहं परावृत्तो वैरात् प्राकृतवज्जितः ॥ २६ ॥ दिष्ट्या न विमतिं काञ्चिद्भजित्वा तु पराजितः । सुप्तं वाथ प्रमत्तं वा यथा हन्याद्विषेण वा ॥ २७ ॥ एवं व्युत्क्रान्तधर्मेण व्युत्क्रम्य समयं हतः । अश्वत्थामा महाभागः कृतवर्मा च सात्त्वतः ॥२८॥ कृपः शारद्वतश्चैव वक्तव्या वचनान्मम । अधर्मेण प्रवृत्तानां पाण्डवानामनेकशः ॥ २९ ॥ विश्वासं समयघ्नानां यूयं न गन्तुमर्हथ । वार्तिकांश्चाब्रवीद्राजा पुत्रस्ते सत्यविक्रमः ॥ ३० ॥ अधर्माद्भीमसेनेन निहतोऽहं यथा रणे । सोऽहं द्रोणं स्वर्गगतं कर्णशल्यावुभौ

कौनसा पुरुष होगा ।२४। हे प्रभो ! मेरे मरणके अनन्तर ही मेरी प्यारी राजलक्ष्मी दूसरेके हाथमें गयी है, यह भी आनन्द की बात है और अपने धर्मका आचरण करनेवाले क्षत्रियोंका जो मरण प्यारा होता है वह मरण मुझे प्राप्त हुआ है, फिर मुझसे अधिक श्रेष्ठ पुरुष कौन होगा ? हारजाने पर भी मैंने साधारण पुरुषोंकी समान वैरभावको छोड़ नहीं दिया है, इसको मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ ॥ २५ ॥ २६ ॥ किसीप्रकारकी खोटी बुद्धि होनेसे मेरा अपमान नहीं हुआ है, यह भी आनन्द की बात है, परन्तु जैसे सोतेहुएको या पागलको अथवा किसीको विषदे कर मारदिया जाय, ऐसेही युद्धधर्मका उल्लङ्घन करके तथा नियमको भङ्ग करके इस युद्धमें मेरा संहार किया गया है, ऐसा कहकर तुम्हारे सत्यपराक्रमी पुत्र दुर्योधनने फिर समाचार पहुँचानेवाले मनुष्योंसे कहा, कि—मेरे कहनेसे तुह महाभाग्यशाली अश्वत्थामासे, सात्वतवंशी कृतवर्मासे और कृपाचार्यसे कहना, कि—अनेकों प्रकारसे अधर्म करनेवाले और मर्यादाको तोड़नेवाले पाण्डवोंका तुम कभी विश्वास न करना ॥ २७-३० ॥ रणमें भीमसेनने मुझे अधर्मसे मारा है, और जैसे एक धनहीन बटोही

तथा ॥ ३१ ॥ वृषसेनं महावीर्यं शकुनिञ्चापि सौबलम् । जल-
सन्धं महावीर्यं भगदत्तञ्च पार्थिवम् ॥ ३२ ॥ सौमदत्तिं मह-
ष्वासं सैन्धवञ्च जयद्रथम् । दुःशासनपुरोगांश्च भ्रातॄनात्मसमां-
स्तथा ॥ ३३ ॥ दौःशासनिञ्च विक्रान्तं लक्ष्मणञ्चात्मजावुभौ।
एतांश्चान्यांश्च सुबहून् मदीयांश्च सहस्रशः ॥ ३४ ॥ पृष्ठतोनुग-
मिष्यामि सार्थहीन इवाध्वगः । कथं भ्रातॄन् हतान् श्रुत्वा भर्त्ता-
रञ्च स्वसा मम ॥ ३५ ॥ रोरूयमाणा दुःखार्त्ता दुःशला सा
भविष्यति । स्नुषाभिः प्रस्नुषाभिश्च वृद्धो राजा पिता मम ३६
गान्धारीसहितश्चैव कां गतिं प्रतिपत्स्यते । नूनं लक्ष्मणमातापि
हतपुत्रा हतेश्वरा ॥ ३७ ॥ विनाशं यास्यति क्षिप्रं कल्याणी पृथु-
लोचना । यदि जानाति चार्वाकः परिव्राड् वाग्विशारदः ॥ ३८ ॥

अपने साथ वालोंसे बिछुडजाता है तो वह अपने साथियोंके पीछे२ जाता है, तैसेही अब मैं भी स्वर्गमें गयेहुए द्रोण, कर्ण, शल्य, महापराक्रमी वृषसेन, सुबलनन्दन शकुनि, महापराक्रमी जलसन्ध, राजा भगदत्त, महाधनुर्धारी सोमदत्त, सिन्धुदेशका राजा जयद्रथ मेरे समान ही पराक्रमी मेरे दुःशासन आदि भ्राता, दुःशासनका बलवान् पुत्र, विक्रान्त और लक्ष्मण ये दो मेरे पुत्र तथा मेरे लिये रणमें लड़नेवाले सहस्रों सम्बन्धी एवम् दूसरे भी स्वर्ग-वासी राजाओंके पीछे २ स्वर्गमें जाऊँगा, परन्तु हाय ! अपने भाइयोंके तथा पतिके मरणको सुनकर छाती फाड़कर रोतीहुई तथा दुःखसे व्याकुल हुई मेरी बहिन दुःशला कैसे रहेगी ? पुत्र-वधू और पौत्रवधुओंके सहित मेरे बूढे पिता तथा मेरी माता गान्धारीकी क्या दशा होगी जिसके पुत्र और पति मारे गये हैं ऐसी विशाल नेत्रों वाली लक्ष्मणकी माता भी निःसन्देह मरजायगी, यदि यह बात संन्यासी हुए बोलनेमें चतुर महाभाग चार्वाकको मालूम होजायगी तो वह मेरे वैरका बदललिये विना न रहेंगे। मैं समन्तपञ्चक नामके तीनों लोकोंके प्रसिद्ध

करिष्यति महाभागो ध्रुवं सोपचितिं मम । समन्तपञ्चके पुण्ये त्रिषु लोकेषु विश्रुते ॥३६॥ अहं निधनमासाद्य लोकान् प्राप्स्यामि शाश्वतान् । ततो जनसहस्राणि वाष्पपूर्णानि मारिष ॥ ४० ॥ प्रलापं नृपतेः श्रुत्वा व्यद्रवन्त दिशो दश ।ससागरवना घोरा पृथिवी सचराचरा ॥ ४१ ॥ चचालाथ सनिर्ह्रादा दिशश्चैवाविला भवन् । ते द्रोणपुत्रमासाद्य यथावृत्तं न्यवेदयन् ॥ ४२ ॥ व्यवहारं गदायुद्धे पार्थिवस्य च पातनम् । तदाख्याय ततः सर्वे द्रोणपुत्रस्य भारत । ध्यात्वा च सुचिरं कालं जग्मुरार्त्ता यथागतम् ४३

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि दुर्योधनविलापे चतुःषष्टोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

संजय उवाच । वार्तिकानां सकाशात्तु श्रुत्वा दुर्योधनं हतम् । हतशिष्टास्ततो राजन् कौरवाणां महारथाः ॥ १ ॥ विनिर्भिन्नाः

और पवित्र तीर्थमें मरनेके कारण अब पुण्यवानोंके सनातन लोकोंमें जाऊँगा, हे राजन् ! इसप्रकार राजा दुर्योधनके प्रलापको सुनकर तहाँ खड़े हुए सैंकड़ों मनुष्योंके नेत्रोंमेंसे आँसू भरआये और वे तहाँसे हटकर उसी समय जिधर तिधरको चले गये, समुद्र वन आदि स्थावर और जङ्गम पदार्थों सहित पृथिवी घोररूपसे काँपने लगी, वज्रपातके से शब्द होने लगे, दिशाओंमें अन्धेरा होगया, उधर दूतोंने अश्वत्थामाके पास जाकर जो कुछ हुआ था सब समाचार निवेदन करदिया ॥ ३१–४२ ॥ हे भारत! गदायुद्धमें जैसा हुआ था,दुर्योधनको जिसप्रकार पृथिवी पर गिरादिया था, वह सब वृत्तान्त अश्वत्थामाको यथावत् कह सुनाया और बहुत देर तक उस विषयका विचार करके दुःख से घबड़ाये हुए वे वार्त्ताहर दूत जैसे आये थे तैसेही फिर अपने स्थानको चले गये ॥ ४३ ॥ चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६४॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! वार्त्ताहरोंसे दुर्योधनके मारेजानेका समाचार सुनकर, युद्धमें कौरवोंकी सेनाके

शितैर्बाणैर्गदातोमरशक्तिभिः । अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः॥२॥ त्वरिता जवनैरश्वैरायोधनमुपागमन् ।तत्रापश्यन्महात्मानं धार्तराष्ट्रं निपातितम्॥३॥ प्रभग्नं वायुवेगेन महाशालं यथा वने।भूमौ विचेष्टमानं तं रुधिरेण समुक्षितम् ॥४॥ महागजमिवारण्ये व्याधेन विनिपातितम् । विवर्त्तमानं बहुशो रुधिरौघपरिप्लुतम् ॥ ५ ॥ यदृच्छया निपतितं चक्रमादित्यगोचरम् । महावातसमुत्थेन संशुष्कमिव सागरम् ॥६ ॥पूर्णचन्द्रमिव व्योम्नि तुषारावृतमंडलम् । रेणुध्वस्तं दीर्घभुजं मातङ्गसमविक्रमम् ॥ ७॥ वृतं भूतगणैर्घोरैः क्रव्यादैश्च समन्ततः । यथा धनं लिप्समानैर्भृत्यैर्नृपतिसत्तमम् ८ भ्रुकुटीकृतवक्त्रांतं क्रोधादुद्वृत्तचक्षुषम् । सामर्षं तं नरव्याघ्रं व्याघ्रं

मरतेर बचेहुए महारथी ॥ १ ॥ जो कि–तेज किये हुए बाण गदा, तोमर और शक्तियोंसे घायल होरहे थे ऐसे अश्वत्थामा, कृपाचार्य, और सात्वतवंशी कृतवर्मा ॥ २ ॥ शीघ्र चलनेवाले घोड़ों पर सवार होकर शीघ्रतासे युद्धभूमिमें आये और देखा तो जैसे वनमें महावायुके वेगसे शालका वृक्ष टूटकर पृथिवी पर गिरपड़ता है तैसेही टूटीहुई जंघाओंके साथ पृथिवी पर पड़ाहुआ दुर्योधन तड़फ रहा था और रुधिरमें न्हा रहा था ॥३॥४ ॥ वनमें व्याधे का माराहुआ तथा रुधिरकी धाराओंको बहाता हुआ गजराज जैसे पृथिवी पर पड़ा हो अथवा जैसे दैवेच्छासे सूर्यमण्डल पृथिवी पर गिर पड़ा हो तैसेही दुर्योधन पृथिवी पर पड़ाहुआ तड़फ रहा था, अथवा जैसे बड़ेभारी वायु के झपटेसे समुद्र सूखगया हो अथवा जैसे आकाशमें कुहरसे ढकाहुआ पूर्णिमाका चन्द्रमा हो, ऐसे ही हाथीकी समान पराक्रमी, धूलिमें सनाहुआ महाबाहु दुर्योधन निस्तेज होरहा था ॥ ६ ॥ ७ ॥ जैसे धनके अभिलाषी सेवक बड़े राजाको घेर लेते हैं तैसे ही भयानक भूत और मांसाहारी प्राणी रणभूमिमें पड़ेहुए दुर्योधनको चारों ओरसे घेरेहुए थे ॥ ८ ॥ दुर्योधनके

निपतितं यथा॥९॥ते तं दृष्ट्वा महेष्वासा भूतले पतितं नृपम्। मोह-मभ्यागमन् सर्वे कृपप्रभृतयो रथाः ॥ १० ॥ अवतीर्य्य रथेभ्यश्च प्राद्रवन्राजसन्निधौ। दुर्य्योधनञ्च संप्रेक्ष्य सर्वे भूमावुपाविशन् ११ ततो द्रौणिर्महाराज वाष्पपूर्णेक्षणः श्वसन्। उवाच भरतश्रेष्ठं सर्व-लोकेश्वरेश्वरम् ॥ १२ ॥ न नूनं विद्यते सत्यं मानुषे किञ्चिदेव हि। यत्र त्वं पुरुषव्याघ्र शेषे पांशुषु रूषितः ॥ १३ ॥ भूत्वा हि नृपतिः पूर्वं समाज्ञाप्य च मेदिनीम्। कथमेकोऽद्य राजेन्द्र तिष्ठसे निर्जने वने ॥ १४ ॥ दुःशासनं न पश्यामि नापि कर्णं महार-थम्। नापि तान् सुहृदः सर्वान् किमिदं पुरुषर्षभ ॥१५॥ दुःखं नूनं कृतान्तस्य गतिं ज्ञातुं कथंचन। लोकानां च भवान् यत्र शेषे

मुख पर भ्रकुटि चढ़ीहुई थी, क्रोधके मारे आँखें ऊपरको चढ़ी हुई थीं, अमर्षसे भराहुआ वह मानवसिंह व्याघ्रकी समान पड़ा हुआ था ॥ ९ ॥ भूतल पर पड़ेहुए महाधनुर्धारी राजा दुर्यो-धनको देखकर कृपाचार्य आदि वे सब महारथी मूर्छित होगये ॥ १० ॥ फिर वे रथोंमेंसे नीचे उतरकर झपटेहुए दुर्योधनके पास गये और उसको पृथिवी पर पड़ाहुआ देखकर सब उसके पास पृथिवी पर ही बैठगये ॥ ११ ॥ हे महा-राज! आँसुओंसे जिसकी आँखें भरीहुई थीं ऐसा अश्वत्थामा लम्बा साँस लेकर सब राजाओंके राजा भरतवंशमें श्रेष्ठ दुर्योधन से कहने लगा, कि-॥ १२ ॥ हे पुरुषोंमें व्याघ्र समान राजन्! मनुष्यशरीरमें वास्तवमें जरा भी सत्यता नहीं है, अर्थात् यह क्षणभंगुर है, क्योंकि—तुझसरीखा एक महापुरुष आज धूलि की शय्या पर सोरहा है! ॥ १३ ॥ हे राजेन्द्र! पहले तू एक राजा था, सब पृथिवी पर राज्य करता था, वह तू आज इस समय निर्जन वनमें अकेला क्यों पड़ा है ॥ १४ ॥ हे भरतसत्तम! मैं यहाँ न दुःशासनको देखता हूँ, न महारथी कर्ण को देखता हूँ और न मित्रोंको ही देखता हूँ यह क्या होगया? १५

पांशुषु रूषितः ॥१६॥ एष मूर्द्धाभिषिक्तानामग्रं गत्वा परन्तपः। सतृणं ग्रसते पांशुं पश्य कार्यविपर्य्ययम् ॥१७॥ क्व ते तदमलं छत्रं व्यजनं क्व च पार्थिव। सा च ते महती सेना क्व गता पार्थिवोत्तम ॥ १८ ॥ दुर्विज्ञेया गतिर्नूनं कार्य्याणां कारणान्तरे। यद्वै लोकगुरुर्भूत्वा भवानेतां दशां गतः ॥ १९ ॥ अध्रुवा सर्वमर्त्येषु ध्रुवं श्रीरुपलक्ष्यते। भवतो व्यसनं दृष्ट्वा शक्रविस्पर्द्धिनो भृशम् ॥ २० ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दुःखितस्य विशेषतः। उवाच राजन् पुत्रस्ते प्राप्तकालमिदं वचः ॥ विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां शोकजं बाष्पमुत्सृजन्। कृपादीन् स तदा वीरान् सर्वानेव नराधिपः ॥२२॥ ईदृशो मर्त्यधर्मोऽयं धात्रा निर्दिष्ट उच्यते। विनाशः

शत्रुओंको दहलानेवाले तुम सब मस्तक पर राजतिलक पानेवाले राजाओंमें अग्रणी थे, ऐसे तुम इस समय धूलि और तृणोंको चाटतेहुए धूलिमें क्यों सोरहे हो ? कालके लौट फेरको तो देखा ! मनुष्य कालकी गतिको किसी प्रकार कष्टसे भी नहीं जानसकते ॥ १६ ॥ १७ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे वह निर्मल छत्र चाँवर कहाँ गये ? हे राजसत्तम ! तुम्हारी वह बड़ीभारी सेना कहाँ गयी ? ॥ १८ ॥ किस कारणसे कौनसा काम होगा, यह जानना वास्तवमें कठिन ही है, क्योंकि–तुम सब प्रजाके बड़े होकर भी इस दशाको पहुँचगये ! ॥ १९ ॥ तुम तो इन्द्रसे भी मुचेटा लेनेवाले थे, तो भी तुम्हारे ऊपर यह दुःख आकर पड़ा ! इससे सिद्ध होता है, कि–लक्ष्मी किसीके पास भी स्थिर होकर नहीं रहती है ॥ २० ॥ बहुत ही दुःखी हुए अश्वत्थामाकी इन बातोंको सुनकर, हे राजन् ! आपके पुत्रने समयके अनुकूल बात कही ॥ २१ ॥ उस समय राजा दुर्योधनने दोनों हाथोंसे अपने दोनों नेत्रोंको पोंछडाला और शोकके श्वासको छोड़ता हुआ कृपाचार्य आदि सब वीरोंसे कहने लगा, कि–॥ २२ ॥ कहते हैं, कि–विधाताने मनुष्योंके लिये ऐसा ही (एक दिन अवश्य

सर्वभूतानां कालपर्य्यायमागतः ॥ २३ ॥ सोयं मां समनुप्राप्तः प्रत्यक्षं भवतां हि यः । पृथिवीं पालयित्वाहमेतां निष्ठामुपागतः॥२४ दिष्ट्या नाहं परावृत्तो युद्धे कस्यांचिदापदि । दिष्ट्याहं निहतः पापैश्छलेनैव विशेषतः ॥ २५ ॥ उत्साहश्च कृतो नित्यं मया दिष्ट्या युयुत्सता । दिष्ट्या चास्मि हतो युद्धे निहतज्ञातिबान्धवः ॥२६॥ दिष्ट्या च वोहं पश्यामि मुक्तादस्माज्जनक्षयात् । स्वस्ति युक्तांश्च कल्यांश्च तन्मे प्रियमनुत्तमम् ॥ २७॥ मा भवन्तोनुतप्यन्तां सौहृदान्निधनेन मे । यदि वेदाः प्रमाणं वो जिता लोका मयाक्षयाः॥२८ मन्यमानः प्रभावञ्च कृष्णस्यामिततेजसः । तेन न च्यावितश्चाहं

मरणकी शरणमें होना ही) धर्म रचदिया है, इसलिये जब समय आता है तो सब ही प्राणियोंका मरण होजाता है ॥ २३ ॥ वही काल तुम सबोंके सामने मेरा भी आपहुँचा है, जो मैं एक समय पृथिवीका राज्य करता था, वह मैं इस समय ऐसी दशामें आपड़ा हूँ (कालके वशमें होगया हूँ)॥ २४ ॥ तो भी इतनी बात आनन्द देनेवाली है, कि—मैं कभी आपत्तिके समय भी युद्धमेंसे पीछेको नहीं लौटा हूँ और यह बात भी बड़े हर्षकी है कि—पापियोंने मुझे विशेषकर कपटसे मारा है ॥ २५ ॥ जब जब युद्ध करनेकी इच्छा हुई मैंने सदा उत्साह दिखाया है, इसको भी मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ, और इस युद्धमें मैं सम्बन्धी तथा बान्धवोंके साथ मरणको प्राप्त होरहा हूँ, यह भी हर्षकी बात है ॥ २६ ॥ तथा इस महासंहारमेंसे तुम्हें कुशलके साथ बचाहुआ और समर्थ देखता हूँ, यह मेरा सबसे अधिक प्यारा काम हुआ है ॥ २७ ॥ तुम्हारा मेरे ऊपर स्नेह है इसलिये तुम मेरे मरणके लिये सन्ताप करते हो, परन्तु यदि तुम वेदोंका प्रमाण मानते हो तो समझलो, कि—मैंने अक्षय परलोक जीतलिये हैं ॥ २८ ॥ मैं अपार तेजवाले कृष्णके प्रभावको जानता था, मैं क्षत्रियके धर्मका उत्तम रीतिसे आचरण करता

क्षत्रधर्मात् स्वनुष्ठितात् ॥२९॥ स मया समनुप्राप्तो नास्मि शोच्यः कथञ्चन । कृतं भवद्भिः सदृशमनुरूपमिवात्मनः ॥ ३० ॥ यतितं विजये नित्यं दैवन्तु दुरतिक्रमम् । एतावदुक्त्वा वचनं बाष्पव्याकुललोचनः ॥ ३१ ॥ तूष्णीं बभूव राजेन्द्र रुजाऽसौ विह्वलो भृशम् । तथा तु दृष्ट्वा राजानं बाष्पशोकसमन्वितः ॥३२॥ द्रौणिः क्रोधेन जज्वाल यथा वह्निर्जगत्क्षये । स तु क्रोधसमाविष्टः पाणौ पाणिं प्रपीड्य ह।३३। बाष्पविह्वलया वाचा राजानमिदमब्रवीत् । पिता मे निहतः क्षुद्रैः सुनृशंसेन कर्मणा ॥ ३४ ॥ न तथा तेन तप्यामि यथा राजंस्त्वयाद्य वै । शृणु चेदं वचो मह्यं सत्येन वदतः प्रभो ॥ ३५ ॥ इष्टापूर्त्तेन दानेन धर्मेण सुकृतेन च ।अथाहं

था, उससे वह भी मुझे भ्रष्ट नहीं करसके ॥ २९ ॥ मुझे उत्तम लोकमें गति मिली है, इससे तुम मेरे लिये जरा भी शोक न करो तुम तो अपने करने योग्य सब ही काम करचुके हो ॥ ३० ॥ मैंने सदा ही विजयके लिये उद्योग किया, परन्तु दैवको कोई नहीं लाँघसकता, इतना कहकर दुर्योधनके नेत्र आँसुओंसे व्याकुल होगये ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र ! वह प्रहारकी पीड़ासे अत्यंत विह्वल होरहा था, इसलिये आगेको कुछ न कहसका चुप होरहा, राजा दुर्योधनको आँसू बहाता और शोकातुर हुआ देखकर जैसे प्रलयकालमें अग्नि धधक उठती है तैसे ही अश्वत्थामा क्रोधके मारे जल उठा, हाथसे हाथ मसलता हुआ वह आँसुओंके कारण अड़खड़ाती हुई वाणीमें राजा दुर्योधनसे यह बात बोला, कि-इन चांडालोंने बड़ा पातकी काम करके मेरे पिताको मारडाला ॥ ३२-३४ ॥ उस कर्मसे मेरे मनमें जितना सन्ताप हुआ था, आज तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे उससे भी अधिक संताप होरहा है हे राजन् ! तुमसे मैं सत्य बात कहता हूँ, कि-उसको आप सुन लें, हे प्रभो ! मैं यज्ञ, याग, बाग, कूप, दानधर्म तथा पुण्य

सर्वपंचालान् वासुदेवस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥ सर्वोपायैर्हि नेष्यामि प्रेतराजनिवेशनम् । अनुज्ञान्तु महाराज भवान्मे दातुमर्हति ॥३७॥ इति श्रुत्वा तु वचनं द्रोणपुत्रस्य कौरवः । मनसः प्रीतिजननं कृपं वचनमब्रवीत् ॥ ३८ ॥ आचार्य्य शीघ्रं कलशं जलपूर्णं समानय । स तद्वचनमाज्ञाय राज्ञो ब्राह्मणसत्तमः ॥ ३९ ॥ कलशं पूर्णमादाय राज्ञोन्तिकमुपागमत् । तमब्रवीन्महाराज पुत्रस्तव विशाम्पते ॥४०॥ ममाज्ञया द्विजश्रेष्ठ द्रोणपुत्रोभिषिच्यताम् । सैन्यापत्येन भद्रन्ते मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥४१॥ राज्ञो नियोगाद्योद्धव्यं ब्राह्मणेन विशेषतः । वर्त्तता क्षत्रधर्मेण ह्येवं धर्मविदो विदुः ४२ राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा कृपः शारद्वतस्ततः । द्रौणिं राज्ञो नियोगेन

कर्म जो कुछ भी है उसकी शपथ खाकर कहता हूँ, कि-आज श्रीकृष्णके देखतेहुए सबही उपायोंसे काम लेकर सकल पंचालराजाओंको भेजदूँगा हे महाराज ! आपको मुझे इसकी आज्ञा देनी चाहिये ॥ ३५-३७ ॥ कुरुराज दुर्योधन अश्वत्थामाकी इस प्रीतिजनक बातको सुनकर मनमें प्रसन्न हुआ और उसने कृपाचार्यसे कहा, कि-॥ ३८ ॥ हे आचार्य ! आप बहुतही शीघ्र जलका भरा एक कलश लाइये, कृपाचार्य राजा दुर्योधनकी बात सुनतेही एक कलशमें जल भरकर दुर्योधनके पास लेआये उस समय तुम्हारे पुत्रने कृपाचार्यसे कहा, कि-हे द्विजवर ! यदि आप मेरा भला चाहते हैं तो इन द्रोणनन्दन अश्वत्थामाका इस जलके कलशसे सेनापतिके पदपर अभिषेक कर दीजिये, आपका भला हो ॥ ३९-४१॥ क्षत्रियधर्मका पालन करनेवाले ब्राह्मणको राजाकी आज्ञासे युद्ध करना चाहिये, ऐसा धर्मशास्त्रको जानने वाले मानते हैं ॥ ४२ ॥ राजा दुर्योधनकी इस बातको सुनकर उसकी आज्ञासे कृपाचार्यने अश्वत्थामाका सेनापतिके पदपर

सैनापत्येभिषेचयत् ॥ ४३ ॥ सोभिषिक्तो महाराज परिष्वज्य नृपोत्तमम् । प्रययौ सिंहनादेन दिशः सर्वा निनादयन् ॥ ४४ ॥ दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र शोणितेन परिप्लुतः। तां निशां प्रतिपेदेथ सर्व-भूतभयावहाम् ॥४५॥ अपक्रम्य तु ते तूर्णं तस्मादायोधनान्नृप । शोकसंविग्नमनसश्चिन्ताध्यानपराभवन् ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां शल्यपर्वान्त-र्गतगदापर्वणि अश्वत्थामसैन्यापत्याभिषेके पञ्चषष्टितमोऽध्यायः समाप्तं गदापर्व शल्यपर्व च ।

अभिषेक करदिया ॥ ४३ ॥ हे महाराज अश्वत्थामा भी सेना-पतिके पदपर अभिषेक होजाने पर राजा दुर्योधनको हृदयसे लगा कर सिंहकी समान गर्जनासे सब दिशाओंको शब्दायमान करता हुआ तहाँसे चलदिया ॥ ४४ ॥ हे राजेन्द्र ! रुधिरमें न्हाया हुआ दुर्योधनभी सब प्राणियोंको भय देनेवाली उस रात्रिमें तहाँ ही पड़ा रहा ॥ ४५ ॥ और अश्वत्थामा आदि महारथी उस रणभूमिमेंसे तुरन्त बाहर चलेगये और शोकातुर मनसे आगेके लिये विचार करने लगे ॥ ४६ ॥ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥

इति श्री महाभारते शतसाहस्र्यां संहिता वैयासक्यां
मुरादाबाद निवासि-श्री पण्डितभोलानाथात्मज
भारद्वाजगोत्र-सनातनधर्मपताकासम्पादक
ऋषिकुमारोपनामकं--रामस्वरूपशर्म-
कृतभाषानुवादेन सहितं
शल्यपर्व समाप्तम्

